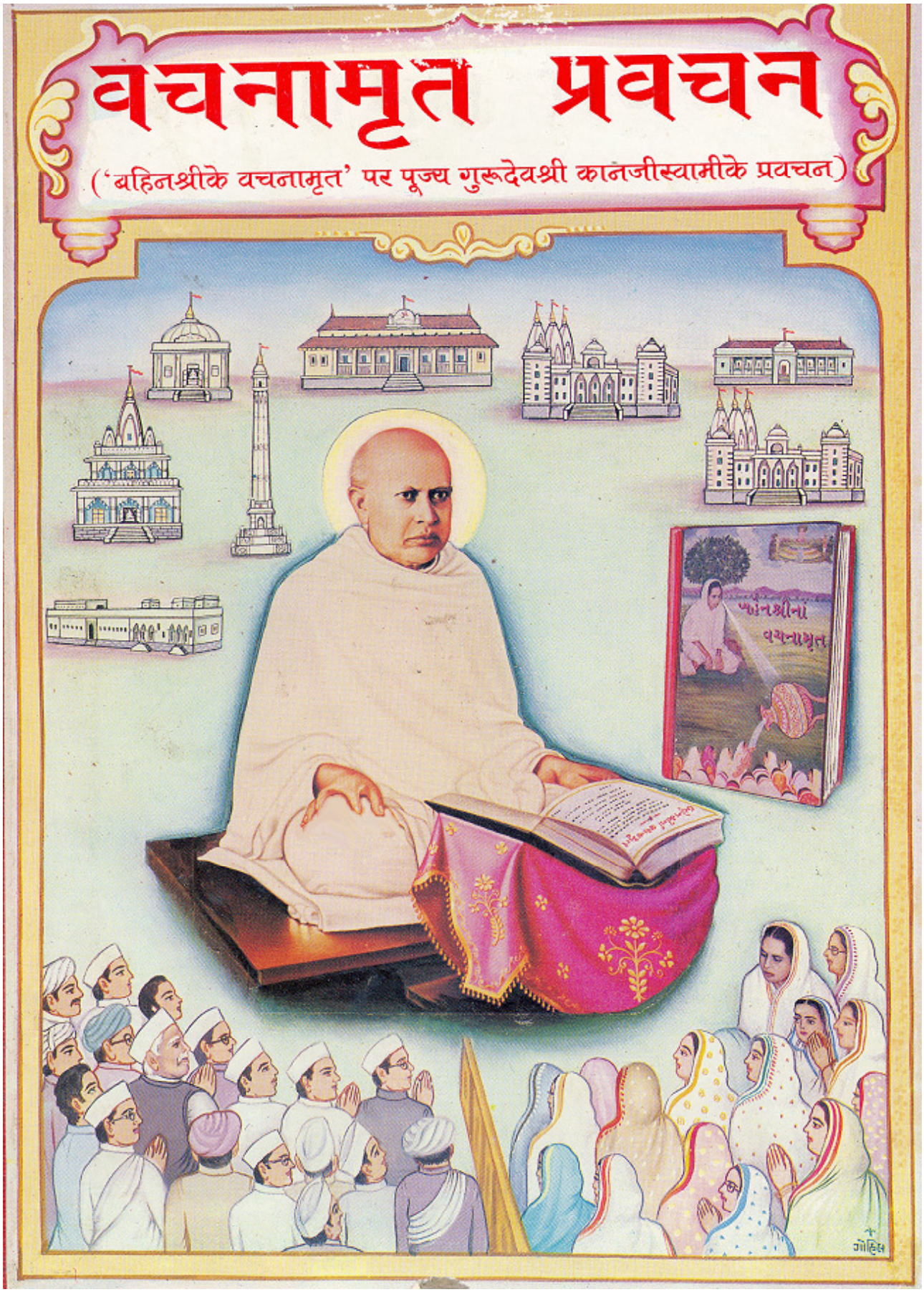
वचनामृत प्रवचन
('बहिनश्रीके वचनामृत' पर पूज्य गुरूदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचन)

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प-१९८

ॐ

नमः परमात्मने ।

श्री

वचनामृत-प्रवचन

(तीसरा भाग)

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके वचनामृत

पर

परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके प्रवचन

संकलनकार :

ब्र. चन्दूलाल खीमचन्द झोबालिया

हिन्दी रूपान्तरकार :

मगनलाल जैन

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़–३६४२५० (सौराष्ट्र)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथमावृत्ति : १,०००

वीर सं. २५२६ वि.सं. २०५७ ई.स. २०००

मूल्य : रू. १७=५०

कम्प्यूटर टाइप सेटिंग :
Arihant computer graphics
Jain Vidhyarthi Gruh compound,
SONGADH-364250

मुद्रक :
स्मृति ऑफसेट
जैन विद्यार्थी गृह, सोनगढ-364250
Phone : (02846) 44081

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been donated by Dr Vinod Shah Blackburn, UK who has paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of VachanAmrut Pravachan Part 3 (Hindi) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	30 May 2010	First electronic version

● પરમોપકારી પૂજ્ય ગુરુદેવ શ્રી કાનજી સ્વામી ●

प्रकाशकीय निवेदन

परमोपकारी परमपूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंका प्रकाशन करना वह हम सब मुमुक्षुओंका कर्त्तव्य है। तदनुसार 'बहिनश्रीके वचनामृत' पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंका यह तीसरा भाग प्रकाशित करते हुए अति हर्ष होता है।

इस ग्रन्थमें पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन अध्यात्मके गहन रहस्योंका उद्घाटन करनेवाले हैं, जो पढ़नेसे सहज ही अनुभवमें आता है। पूज्य गुरुदेवश्रीके ऐसे प्रवचन प्रकाशित करनेका सुअवसर हमें प्राप्त हुआ उसे हम अपना सद्भाग्य समझते हैं और इस कार्य द्वारा पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रति भक्ति-उल्लास व्यक्त करते हैं।

पूज्य गुरुदेवने अपने जीवनकालमें अपने पवित्र जीवनसे तथा भवछेदक वाणीसे हम पर अवर्णनीय उपकार किया है। तदुपरान्त अभी उनकी अनुपस्थितिमें भी उनकी टेप-अवतीर्ण वाणी तथा पुस्तकारूढ़ प्रवचनों द्वारा हम सब पर वे महान उपकार कर रहे हैं। उनके प्रति उपकृतभावसे भीगी हुई भक्ति अपने हृदयमें निरंतर रहे यही भावना।

इस ग्रन्थका प्रकाशन करनेके लिये टेप-रिकॉर्ड परसे अनेक ब्रह्मचारी बहिनोंने प्रवचन उतार दिये हैं तदर्थ उनके आभारी हैं। उन लिखे हुए प्रवचनों परसे, पूज्य गुरुदेवके अंतेःवासी आत्मार्थी विद्वान ब्रह्मचारी भाई श्री चन्दुभाईने—जिन्होंने ३६ वर्ष तक निरंतर पूज्य गुरुदेवके चरणोंमें रहकर उनकी सर्वतोमुखी अमूल्य सेवाभक्तिका अनन्य लाभ लिया है उन्होंने—अति परिश्रमपूर्वक तथापि अति उल्लसितभावसे उनका सुन्दर संकलन करके प्रवचनोंका प्रेस-मैटर तैयार कर दिया है, इस हेतु हम उनके अत्यन्त उपकृत हैं। उन्होंने यह कार्य हाथमें न लिया होता तो ऐसा सर्वांग-संतोषकारक संकलन नहीं बन पाता।

इस ग्रन्थका अनुवाद श्री मगनलालजी जैनने तथा सुन्दर मुद्रण-कार्य शीघ्रतासे 'स्मृति ऑफसेट' तथा 'अरिहंत कॉम्प्युटर ग्राफिक्स'के संचालकोंने किया है; अतः उन सबका आभार मानते हैं।

अंतमें, इस ग्रन्थके स्वाध्याय द्वारा मुमुक्षुजन आत्मकल्याण साधें ऐसी भावना है।

भाद्रपद कृष्णा दूज, सं. २०५७
(पू. बहिनश्रीकी ८७वीं जन्मजयन्ती)
दिनाङ्क : १७-८-२०००

ट्रस्टीगण
श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़–३६४२५०

*

ॐ

नमः श्रीसद्गुरुदेवाय।

प्रस्तावना

भारतवर्षकी भव्य वसुंधरा संतरत्नोंकी पुण्य जन्मस्थली है। पवित्र आर्यभूमिमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं। उसमें सौराष्ट्रका भी प्रमुख स्थान है। बाईसवें तीर्थंकरदेव श्री नेमिनाथ भगवानके समुद्भवसे सौराष्ट्रकी भूमि पावन हुई है। अर्वाचीन युगमें भी अध्यात्मप्रधान जैनाकाशमें चमकते हुए नक्षत्रोंके समान समीपसमयज्ञ श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्मयुगस्रष्टा आत्मज्ञ संत पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं स्वानुभवविभूषित पवित्रात्मा बहिनश्री चम्पाबहिन जैसे असाधारण स्वानुभूति धर्मप्रकाशक साधक महात्माओंकी जगतको भेट देकर सौराष्ट्रकी वसुंधरा पुण्यभूमि बनी है।

परम देवाधिदेव सर्वज्ञ वीतराग चरमतीर्थंकर परम पूज्य श्री महावीरस्वामीकी दिव्यध्वनि द्वारा पुनः प्रवाहित एवं गुरुपरम्परा द्वारा सम्प्राप्त जिस परमपावन अध्यात्मप्रवाहको भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने समयसार आदि प्राभृत-भाजनोंमें सूत्रबद्ध करके चिरंजीव किया है उस पुनीत प्रवाहके अमृतका पान करके, अंतरके पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूतिसमृद्ध आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करके जिन्होंने सौराष्ट्र-गुजरातमें, समग्र भारतवर्षमें तथा विदेशमें भी शुद्धात्मतत्त्वप्रमुख अध्यात्मविद्याका पवित्र आन्दोलन प्रसारित कर बीसवीं–इक्कीसवीं सदीके विषमय भौतिकयुगमें दुःखार्त जीवोंका उद्धार किया है उन जिनशासनप्रभावक परमोपकारी परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीकी शुद्धात्मसुधारसस्यंदी मंगलमय पवित्रता, पुरुषार्थ-धड़कता ध्येयनिष्ठ सहज वैराग्यझरता जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्गदर्शक सदुपदेश एवं अन्य अनेकानेक उपकारोंका वर्णन चाहे जितने संक्षिप्त रूपमें किया जाय तथापि अनेक पृष्ठ भर जायँगे इसलिये पूज्य गुरुदेवका संक्षिप्त जीवनवृत्त तथा उपकार-गुणकीर्तन इस वचनामृत-प्रवचन ग्रन्थमें अन्यत्र दिया है।

'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तकके प्रवचनकार परमोपकारी परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी शुद्धात्मदृष्टिवंत, स्वरूपानुभवी, वीतराग देव-गुरुके परमभक्त, बालब्रह्मचारी, समयसार आदि अनेक गहन शास्त्रोंके पारगामी, स्वानुभवस्यंदी भावश्रुतलब्धिके धनी, सततज्ञानोपयोगी, वैराग्यमूर्ति, नयाधिराज शुद्धनयकी प्रमुखतासहित सम्यक् अनेकान्तरूप अध्यात्मतत्त्वके उत्तम व्याख्यानकार एवं आश्चर्यकारी प्रभावना उदयके धारक अध्यात्मयुगस्रष्टा महापुरुष हैं। उनके यह प्रवचन पढ़ते ही पाठकको उनका गाढ़ अध्यात्मप्रेम, शुद्धात्म-अनुभव, स्वरूपकी ओर ढलती हुई परिणति, वीतरागभक्तिके रंगमें रंगा हुआ चित्त, ज्ञायकदेवके तलका स्पर्श करनेवाला अगाध श्रुतज्ञान एवं प्रभावशाली परम कल्याणकारी वचनयोगका ख्याल आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवने अध्यात्मनवनीत समान इस 'वचनामृत'के प्रत्येक बोलको हर ओरसे छनकर उन संक्षिप्त सूत्रवाक्योंके विराट अर्थोंको इन प्रवचनोंमें खोला है। सबके अनुभवमें आये हों ऐसे घरेलू प्रसंगोंके अनेकों उदाहरणों द्वारा, अतिशय सचोट तथापि सुगम ऐसे अनेक न्यायों द्वारा तथा अनेक यथोचित दृष्टान्तों द्वारा पूज्य गुरुदेवने 'वचनामृत'के अर्थगम्भीर सूक्ष्मभावोंको अतिशय स्पष्ट एवं सरल बनाया है। जीवके कैसे भाव रहें तब जीव–पुद्गलका स्वतंत्र परिणमन समझमें आया कहा जाय, कैसे भाव रहें तब आत्माका यथार्थ स्वरूप समझमें आया माना जाय, भूतार्थ ज्ञायक निज ध्रुवतत्त्वका कैसा आश्रय हो तो द्रव्यदृष्टि परिणमी कही जाय, कैसे-कैसे भाव रहें तब स्वावलम्बी पुरुषार्थका आदर, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप-वीर्या दिककी प्राप्ति हुई कही जाय,–आदि मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत विषय मनुष्यके जीवनमें होनेवाली अनेक घटनाओंके सचोट उदाहरण देकर ऐसे स्पष्ट किये गये हैं कि आत्मार्थीको उस-उस विषयका स्पष्ट भावभासन होकर अपूर्व गंभीर अर्थ दृष्टिगोचर हों और वह, शुभभावरूप बंधमार्गमें मोक्षमार्गकी कल्पना छोड़कर, शुद्धभावरूप यथार्थ मोक्षमार्गको समझकर, सम्यक् पुरुषार्थमें लग जाय। इस प्रकार 'वचनामृत'के स्वानुभूतिदायक गंभीर भावोंको, आरपार उतर जाय ऐसी प्रभावकारी भाषामें तथा अतिशय मधुर, नित्य-नवीन वैविध्यपूर्ण शैलीसे अत्यन्त स्पष्टरूपसे समझाकर गुरुदेवने आत्मार्थी जगतपर असीम उपकार किया है। 'वचनामृत'की सादी भाषाके गर्भमें छिपे हुए अनमोल तत्त्वरत्नोंके मूल्य स्वानुभवविभूषित गुरुदेवने जगतविदित किये हैं।

यह परम पुनीत प्रवचन स्वानुभूतिके पंथको अत्यन्त स्पष्टरूपसे प्रकाशित करते हैं इतना ही नहीं, किन्तु साथ-साथ मुमुक्षुजीवोंके हृदयमें स्वानुभवकी रुचि एवं पुरुषार्थ जागृत करके, कुछ अंशमें सत्पुरुषके प्रत्यक्ष उपदेश जैसा चमत्कारिक कार्य करते हैं। प्रवचनोंकी वाणी इतनी सहज, भावार्द्र, चेतनवंती और जोरदार है कि चैतन्यमूर्ति गुरुदेवके स्वानुभवस्यंदी चैतन्यभाव ही मानो मूर्तिमंत होकर वाणी-प्रवाहरूपसे बह रहे न हों! ऐसी अत्यंत भाववाहिनी–अंतर्वेदनको अति उग्ररूपसे व्यक्त करती, शुद्धात्मा–ज्ञायक–के प्रति अपार प्रेमसे छलकती, हृदयस्पर्शी जोरदार वाणी सुपात्र पाठकके हृदयको आन्दोलित कर देती है और उसकी विपरीत रुचिको क्षीण करके शुद्धात्मरुचिको जागृत करती है। प्रवचनोंके प्रत्येक पृष्ठमें शुद्धात्ममहिमाका अत्यंत भक्तिमय वातावरण गूँज रहा है और उसके प्रत्येक शब्दमेंसे मधुर अनुभवरस टपक रहा है। उस शुद्धात्मभक्तिरससे और अनुभवरससे मुमुक्षुका हृदय भीग जाता है, उसे शुद्धात्माकी लय लगती है, शुद्धात्माके सिवा सर्व भाव उसे तुच्छ भासते हैं और पुरुषार्थ 'चल पड़ूँ, चल पड़ूँ' होने लगता है। ऐसी अपूर्व चमत्कारिक शक्ति पुस्तकारूढ़ प्रवचनवाणीमें क्वचित् ही देखनेमें आती है।

इस प्रकार अध्यात्मतत्त्वविज्ञानके गहन रहस्य अमृत-झरती वाणीमें समझाकर और साथ-साथ शुद्धात्मरुचिको जागृत करके, पुरुषार्थकी प्रेरणा देकर, प्रत्यक्ष सत्समागमकी झाँकी करानेवाले, ये प्रवचन जैनसाहित्यमें अद्वितीय हैं। प्रत्यक्ष सत्समागमके वियोगमें मुमुक्षुओंको ये प्रचवन अनन्य आधारभूत हैं। निरालम्बी पुरुषार्थ समझाना और प्रेरित करना वही उद्देश होनेके साथ 'वचनामृत'के सर्वांग स्पष्टीकरणस्वरूप इन प्रवचनोंमें समस्त शास्त्रोंके सर्व प्रयोजनभूत तत्त्वोंका तलस्पर्शी दर्शन आ गया है। श्रुतामृतका सुखसिन्धु मानों इन प्रवचनोंमें लहरा रहा है। यह प्रवचनग्रन्थ हजारों प्रश्नोंके निराकरणका महाकोष है, शुद्धात्मतत्त्वकी

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रुचि उत्पन्न करके परके ओरकी रुचि नष्ट करनेकी परम औषधि है, स्वानुभूतिका सुगम पंथ है और भिन्न भिन्न कोटिके सर्व आत्मार्थियोंको अत्यन्त उपकारक है। परम पूज्य गुरुदेवने इन अमृतसागर समान प्रवचनोंकी भेट देकर भारतवर्षके मुमुक्षुओंको निहाल कर दिया है।

स्वरूपसुधा प्राप्त करनेके इच्छुक जीवोंको इन परम पवित्र प्रवचनोंका बारम्बार मनन करने योग्य है। संसार-विषवृक्षको छेदनेका वह अमोघ शस्त्र है। डालियों-पत्तोंको पकड़े बिना वे मूलपर ही आघात करते हैं। इस अल्पायु मनुष्यभवमें जीवका सर्वप्रथम कर्त्तव्य एक निज शुद्धात्माका बहुमान, प्रतीति एवं अनुभव है। वे बहुमानादि करानेमें ये प्रवचन परम निमित्तभूत हैं। मुमुक्षु अतिशय उल्लासपूर्वक उनका अभ्यास करके, उग्र पुरुषार्थसे उनमें कहे हुए भावोंको सम्पूर्णतया हृदयमें उतार कर, शुद्धात्माकी रुचि, प्रतीति तथा अनुभव करके, शाश्वत परमानन्दको प्राप्त करो।

परमोपकारी परमकृपालु परम पूज्य गुरुदेवश्रीने जिनके 'वचनामृत' पर ये सुन्दर भाववाही प्रवचन दिये हैं उन प्रशममूर्ति स्वानुभूतिपरिणत पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके संक्षिप्त परिचयके साथ, पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयमें वर्तती—उनकी आध्यात्मिक पवित्रता, स्वानुभूति तथा लोकोत्तर प्रशान्त जीवन सम्बन्धी—विशिष्ट महिमाका और पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभवदशामेंसे प्रवाहित 'वचनामृत'के विषयमें पूज्यपाद गुरुदेवश्रीके उच्चारे हुए पवित्र उद्गारोंका, आत्मार्थी जीवोंके लाभ हेतु यहाँ संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है।

जिनकी पवित्र परिणतिमेंसे भव्यजनकल्याणकारी 'वचनामृत'का पुनीत प्रवाह बहा है उन महान आत्माकी अंतरंग सहजदशाका—शुद्धज्ञायकभावसमर्पित सर्वस्व लोकोत्तर जीवनका क्या वर्णन हो सकता है? उन पवित्रात्मा पूज्य बहिनश्री—चम्पाबेनका जन्म वि. सं. १९७० भाद्रपद कृष्णा २, शुक्रवार, तदनुसार ता. ७-८-१९१४के शुभदिन वढवाण शहरमें हुआ था। पिताजीका नाम श्री जेठालाल मोतीचन्द शाह, माताजीका नाम तेजबा। श्री व्रजलालभाई तथा विद्वान श्री हिम्मतलालभाई—ये दो भाई दो बहिनें—इसप्रकार चार भाई-बहिनोंमें चम्पाबेन सबसे छोटीं। पूज्य चम्पाबेनका प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व—अंतर तथा बाह्य—अति गम्भीर और महान है। बचपनसे ही वैराग्यप्रेम, कुशाग्रबुद्धि, चिन्तनशील स्वभाव तथा दृढ़ निर्णयशक्ति आदि अनेक गुण उनमें सहज उपलब्ध हैं।

वैराग्यभीना और सत्यशोधक उनका हृदय आत्माकी प्राप्तिके लिये तड़फता था। पूज्य गुरुदेवका सत्समागम हुआ, उनकी अध्यात्मामृतझरती अमोघ वज्रवाणीने बहिनश्रीका अंतरंग सत्त्व झलका दिया। निजशुद्धात्मदर्शन—सम्यक्त्व प्राप्त करनेकी आकांक्षा तीव्र बनी। उन्होंने सर्व शक्ति आत्मामें केन्द्रित करके दिन-रात दृष्टिकी निर्मलता तथा स्वात्मानुभूतिकी साक्षात् प्राप्तिके लिये अथक्, अविरत पुरुषार्थ किया, और अन्तमें तीव्र तड़पके परिणामस्वरूप मात्र अठारह वर्षकी छोटी उम्रमें ही वि. सं. १९८९, चैत्र कृष्णा दसवींके दिन वांकानेरमें अपना अप्रतिम पुरुषार्थ सफल किया—भवसंततिछेदक, कल्याणबीज सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, निज भगवान आत्माका अद्भुत साक्षात्कार हुआ और परिणतिमें अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय निर्मल निर्विकल्प स्वात्मानुभूतिका मंगलमय अमृतझरना बहने लगा। अहा! धन्य हैं वे महान आत्मा, धन्य है उनका ध्येयलक्षी अचल पुरुषार्थ और धन्य है उनका अवतार कि जिसमें उन्होंने अवतारसंततिके छेदनका महान कार्य किया!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

दिन-प्रतिदिन उस अमृतझरनेकी–सुधासिक्त आत्मसाधनाकी परिणति वृद्धिंगत होने लगी, और साथ ही साथ सोनगढ़में वि. सं. १९९३, वैशाख कृष्णा अष्टमीके दिन ज्ञानपरिणतिमें जातिस्मरण ज्ञानकी सातिशय निर्मलता भी प्रगट हुई। पूज्य गुरुदेवको स्वयंको कुछ बातोंका—अमुक प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र पहिने हुए ऊँची देहवाले राजकुमार, तीर्थंकरत्व इत्यादिका—जो 'भास' होता था उनका स्पष्ट सत्य निराकरण पूज्य बहिनश्रीके स्मरणज्ञानने कर दिया। पूज्य गुरुदेवके भूत, वर्तमान और भावी भवोंका आश्चर्यकारी अनुसंधान—गतभवमें श्रेष्ठीपुत्ररूपमें श्री सीमंधर भगवानकी सभामें प्रत्यक्ष श्रवण किया था वह—उनके स्मरणज्ञानने दिया। उस पवित्र अनुसंधानज्ञान द्वारा मुमुक्षु समाज पर विशिष्ट उपकार हुआ है।

परम पूज्य अध्यात्मयुगस्रष्टा करुणासागर गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका समस्त मुमुक्षु जगत पर अनंत-अनंत उपकार है। उनके विविध उपकारोंमेंसे एक महान उपकार यह है कि उन्होंने जिनके 'वचनामृत' पर स्वयं भावविभोर होकर यह अद्‌भुत प्रवचन दिये हैं उन प्रशममूर्ति धन्यावतार भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी पवित्र अलौकिक अंतरंगदशाकी यथार्थ पहिचान करायी है।

सुधास्यंदी-स्वात्मानुभूतिपरिणत, विशिष्टज्ञानविभूषित पूज्य बहिनश्रीकी सहज प्रशमरसझरती पवित्र मुद्रा ही मानो, साधकका मूर्त रूप हो तदनुसार सम्यक् मोक्षमार्गका मूल उपदेश दे रही है। शास्त्रोपम-गम्भीर तथापि सरल ऐसे उनके 'वचनामृत' विविध कोटिके सर्व जीवोंको अति उपकारक होते हैं, चमत्कारिक विशदतासे वस्तुस्वरूपको—शुद्धात्मद्रव्यसामान्यकी मुख्यतापूर्वक अनेकान्त सुसंगत द्रव्य-पर्यायस्वरूप निज आत्मतत्त्वको—हस्तामलकवत् दर्शाते हैं और साधक जीवोंकी अटपटी अंतर परिणतिकी अविरुद्धरूपसे स्पष्ट सूझ देते हैं। कृपासागर पूज्य गुरुदेवश्री बहिनश्रीकी पवित्र दशाकी और 'वचनामृत'की महिमा बतलाते हुए सभामें अनेकबार अति प्रसन्नताका अनुभव करते थे। पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभूतिविभूषित पवित्रता, अनेक भव सम्बन्धी धर्मविषयक असाधारण जातिस्मरणज्ञान और 'वचनामृत'की विशिष्टताका मुक्तकण्ठसे प्रकाश करते हुए गुरुदेवकी प्रसन्न मुद्रा हजारों श्रोताओंकी दृष्टि समक्ष आज भी स्पष्ट तैरती है।

प्रशममूर्ति, धन्यावतार, गुणगम्भीर, उदारचित्त तथा देव-गुरुकी परमभक्त पूज्य बहिनश्री अंतरमें अतिमहान और बाह्यमें अति निर्लेप हैं। उनका आत्मलक्षी अंतरंग जीवन और उनकी निर्विकल्प आनन्दमय अद्‌भुतदशा वर्णनातीत है। उनके विशुद्ध गहन व्यक्तित्व पर, उनकी दशाके पारखी पूज्य गुरुदेवने उन्हें 'भगवती' एवं 'जगदम्बा'के असाधारण विशेषण दिये हैं वह उनकी सहज अंतरंगदशाके तथा उनकी महानताके यथार्थ द्योतक हैं। हमेशा तोल-तोलकर वचन उच्चारनेवाले, तीक्ष्णदृष्टिवंत, गहन विचारक, स्वरूपानुभवी परम पूज्य गुरुदेवश्री अन्य किसी भी व्यक्तिको जिन विशेषणोंसे कभी विशेषित नहीं करते थे, ऐसे उपरोक्त दो महिमापूर्ण विशेषणोंसे पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनको अनेकबार प्रसन्नतापूर्वक बिरदाते थे, वही वास्तविकता पूज्य बहिनश्रीकी अद्‌भुत महत्ता अपने हृदयमें दृढ़रूपसे स्थापित करनेके लिये पर्याप्त है। इन विशेषणों द्वारा पूज्य गुरुदेवने संक्षेपसे उनके प्रति अहोभाव व्यक्त करता हुआ अपना हार्द प्रगट किया है। अहा! गुरुदेवके हार्दको तथा उन विशेषणोंकी मर्मभरी गहराईको हम गम्भीरतासे समझें, गुरुदेवके दिये हुए अध्यात्मबोधको जीवनमें बुन लेनेवाली इन 'भगवती माता'की

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मसाधनाके आदर्शको दृष्टि समक्ष रखें और उनके जीवनमेंसे प्राप्त होनेवाली प्रेरणा द्वारा हम अपने आत्मार्थको साधें।

सचमुच 'भगवती माता' पूज्य बहिनश्री मात्र भारतवर्षकी ही नहीं, अपितु दृष्टिगम्य जगतकी अद्वितीय महिलारत्न हैं, मुमुक्षुसमाजकी शिरोमणि हैं, मुमुक्षुमहिला-समाजकी शिरछत्र हैं, कुमारिका ब्रह्मचारिणी बहिनोंकी जीवनाधार हैं और आत्मार्थियोंकी महान आदर्श हैं।

स्वानुभूतिविभूषित पूज्य बहिनश्रीके असाधारण गुणगंभीर व्यक्तित्वका परिचय देते हुए पूज्य गुरुदेव स्वयं प्रसन्न हृदयसे सभामें अनेकबार प्रकाशित करते कि :—

"बहिनोंके महान भाग्य हैं कि चम्पाबेन जैसी 'धर्मरत्न' इस कालमें पैदा हुई हैं। बहिन तो भारतका अनमोल रतन हैं। अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ उनको अंतरसे जागृत हुआ है। उनकी अंतरंग स्थिति कोई और ही है। उनकी सुदृढ़ निर्मल आत्मदृष्टि तथा निर्विकल्प स्वानुभूतिका जोड़ इस कालमें मिलना दुर्लभ है...असंख्य अरब वर्षका उन्हें जातिस्मरण ज्ञान है। बहिन जब ध्यानमें बैठती हैं तब कई बार तो अंतरमें भूल जाती हैं कि 'मैं महाविदेहमें हूँ या भरतमें' !!....बहिन तो अपने अंतरमें–आत्माके कार्यमें–ऐसी लीन हैं कि उन्हें बाहरकी कुछ पड़ी ही नहीं है। प्रवृत्तिका उन्हें किंचित् भी रस नहीं है। उनकी बाह्यमें प्रसिद्धि हो यह उन्हें स्वयंको बिलकुल अच्छा नहीं लगता। परन्तु हमें ऐसा भाव आता है कि बहिन कई वर्षतक छिपी रहीं, अब लोग बहिनको पहिचानें।"

–ऐसे वात्सल्योर्मिभरे भावोद्गारभरी पूज्य गुरुदेवकी मंगल वाणीमें जिनकी आध्यात्मिक पवित्र महिमा सभामें अनेकबार प्रसिद्ध हुई है उन पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके, उन्होंने महिला—शास्त्रसभामें तथा ब्रह्मचारिणी बहिनोंके समक्ष चर्चामें उच्चारे हुए–उनकी स्वानुभवस्यंदी ज्ञानधारामेंसे प्रवाहित–आत्मार्थ-पोषक वचनामृत लिपिबद्ध हों तो अनेक मुमुक्ष जीवोंको महान आत्मलाभका कारण होगा, ऐसी बहुत समयसे समाजके अनेक भाई-बहिनोंको उत्कट भावना वर्तती थी! उस शुभभावनाको साकार करनेमें, कुछ ब्रह्मचारिणी बहिनोंने पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनकी प्रवचनधारा तथा चर्चामेंसे अपनेको विशेष लाभ हो ऐसे वचनामृत लिख लिये थे, उनमेंसे विशिष्ट बोल चुनकर एक संग्रह तैयार किया गया, जो 'बहिनश्रीके वचनामृत' नामक पुस्तकरूपमें श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट–सोनगढ़की ओरसे वि. सं. २०३३में पूज्य बहिनश्रीकी ६४वीं जन्मजयन्ती-उत्सवके मंगल-अवसर पर प्रकाशित किया गया।

इस 'वचनामृत' पुस्तकका गहन अध्ययन करके, जिस प्रकार कुशल जौहरी रत्नको परख लेता है उसीप्रकार उसमें भरे हुए गंभीर भावोंको पूज्य गुरुदेवने तुरन्त परख लिया और श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़के अध्यक्ष श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशीसे कहा–"भाई! इस पुस्तककी लाख प्रतियाँ छपाओ।' (अभी तक–पाँच वर्षके अल्प समयमें ८६००० प्रतियाँ गुजराती, हिन्दी, मराठी तथा कन्नड़–इसप्रकार भिन्न-भिन्न भाषाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं।) अध्यात्मतत्त्व समझनेके लिये यह पुस्तक ध्यानपूर्वक पढ़नेको पूज्य गुरुदेव विशेषरूपसे कहते और नवागंतुकको प्रसन्नतासे भेट देते थे।

इस आत्मार्थिप्रिय अमूल्य पुस्तककी महत्ता, विभिन्न प्रसंगों पर निकले हुए गुरुदेवके मंगलमय पवित्र उद्गारोंमें देखें :—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

'(बहिनश्रीके वचनामृत) पुस्तक समयसर प्रकाशित हो गई। बहिनको कहाँ बाहर आनेकी इच्छा है, किन्तु पुस्तकने उन्हें प्रगट कर दिया। भाषा सरल है किन्तु भाव अति गम्भीर हैं। मैंने पूरी पढ़ ली है। एकबार नहीं लेकिन पच्चीसबार पढ़े तब भी संतोष न हो ऐसी पुस्तक है। दस हजार पुस्तकें छपवाकर हिन्दी-गुजराती 'आत्मधर्म'के सब ग्राहकोंको भेट देना चाहिये ऐसा मुझे विचार आया।' (पूज्य गुरुदेवके भाव-अनुसार हिन्दी-गुजराती 'आत्मधर्म'के ग्राहकोंको यह पुस्तक भेट दी गई थी।)

''परिणमनमेंसे निकले हुए शब्द हैं। बेनकी तो निवृत्ति बहुत। निवृत्तिमेंसे आये हुए शब्द हैं। पुस्तकमें तो समयसारका सार आ गया है—अनुभवका सार है; परम सत्य है। 'वचनामृत' तो ऐसी वस्तु प्रगट हो गई है कि भारतमें सर्वत्र इसका प्रकाशन होना चाहिये।''

'यह (वचनामृत) पुस्तक ऐसी आयी हैं कि चाहे जितने शास्त्र हों, इसमें एक भी बात बाकी नहीं है। थोड़े शब्दोंमें द्रव्य-गुण-पर्याय, व्यवहार-निश्चय आदि सब आ गया है। जगतके भाग्य कि ऐसी सादी भाषामें पुस्तक प्रकाशित हो गई। वीतरागके भावका रटन और मंथन है। सारे देशमें ढिंढोरा पिटेगा। जहाँ पुस्तक हाथमें आयी वहीं कहा कि एक लाख पुस्तकें छपना चाहिये।'

'मैं कहता हूँ कि (वचनामृत) पुस्तक सर्वोत्कृष्ट है—सम्पूर्ण समयसारका सार आ गया है इसलिये सर्वोत्कृष्ट है। यह पुस्तक बाहर लोगोंके हाथमें पहुँचेगी तो डंका बजेगा। इसे पढ़कर तो विरोधी भी मध्यस्थ हो जायँगे—ऐसी बात है। जगतको लाभका कारण है।'

''बेनकी पुस्तक (वचनामृत) बड़ी ऊँची है। सादी भाषा, मर्म बहुत। अतीन्द्रिय आनन्दमेंसे आयी हुई बात है। अकेला मक्खन भरा है—माल भरा है। अति गम्भीर! थोड़े शब्दोंमें बहुत गंभीरता! यह तो अमृतधाराकी वर्षा है। वचनामृत तो बारह अंगका सार है, सारमें सार तत्त्व आ गया है। 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश'की अपेक्षा यह पुस्तक अलौकिक है। जगतके भाग्य हैं कि ऐसी वस्तु प्रगट हुई!''

'जो आनन्दमें जमकर बैठ गया है, जो अतीन्द्रिय आनन्दके ग्रास ले रहा है तथा जो अतीन्द्रिय आनन्दको गटागट पी रहा है ऐसे धर्मीका (—साधकका) यह स्वरूप बहिनके मुखसे (वचनामृतमें) आया है। बिलकुल सादी भाषा। प्रभुके समवसरणमें ऐसी बात चलती थी, भाई! अरे! यह बात बैठ जाय तो निहाल हो जाय! जिनेश्वरका जो आदेश है वह बहिन कह रही हैं।'

पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे अनेकबार 'वचनामृत'की भूरि-भूरि प्रशंसा सुनकर मुमुक्षुसमाजने 'वचनामृत' पर प्रवचन द्वारा उसके गहन भावोंको समझानेकी प्रार्थना पूज्य गुरुदेवसे की। पूज्य गुरुदेवने भक्तोंकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और प्रवचन दिये। प्रवचनोंमें 'वचनामृत'के भावोंको खूब रसपूर्वक स्पष्ट किया। 'वचनामृत'में ४३२ बोल हैं; उन पर १८१ प्रवचन हुए हैं। वे प्रवचन चार भागोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। उनमेंसे यह पहला भाग है।

'बहिनश्रीके वचनामृत'में समादिष्ट अनेक आध्यात्मिक विषयोंपर पूज्य गुरुदेवने इस प्रवचन ग्रन्थमें जो अद्भुत छानबीन की है—तलस्पर्शी स्पष्टीकरण किये हैं, उन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है कि—अहा! इसमें ऐसे अलौकिक भाव भरे हैं। सचमुच, पूज्य गुरुदेवने 'वचनामृत'के गहन भावोंको खोलकर मुमुक्षुओंपर महान उपकार किया है।

T-2

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ये प्रवचन पूज्य बहिनश्रीकी चरणोपासिका कतिपय ब्रह्मचारी बहिनों तथा मुमुक्षु भाई-बहिनोंने टेप-रिकॉर्डमेंसे उतार दिये हैं। उनका यह संकलन तैयार किया गया है। यह संकलन अध्यात्मप्रेमी आदरणीय विद्वद्वर्य भाईश्री हिंमतलाल जेठालाल शाहने अथक परिश्रम लेकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक जाँच लिया है तथा प्रूफ-संशोधनमें भी सहयोग दिया है। वास्तवमें उनके अमूल्य सहयोग बिना इन प्रवचनोंका ऐसे सुन्दररूपमें तैयार होना असम्भव था। इस हेतु कृतज्ञतापूर्वक उनका जितना आभार मानूँ उतना कम है। टेपमेंसे उतार देनेवाले भी धन्यवादके पात्र हैं।

अंतमें, हम—अध्यात्मतत्त्व पिपासु जीव, पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभूति-रसधारामेंसे प्रवाहित इस शुद्धात्मस्पर्शी 'वचनामृत' पर परमोपकारी कृपासिंधु पूज्य गुरुदेवके स्वानुभवप्रधान समस्त निजात्मवैभव खोलकर दिये हुए इन विशद प्रवचनोंके गहरे अवगाहन द्वारा भवसंततिछेदक स्वानुभूति साधनेकी प्रबल प्रेरणा प्राप्त कर अपने साधनापंथको सुधास्यंदी बनाएँ—यही भावना।

भाद्रपद कृष्णा २, सं. २०३८,
(पूज्य बहिनश्रीकी ८४वीं जन्मजयंती)
ता. २०-८-१९९७

—संकलयिता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अध्यात्मयुगस्रष्टा

गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

[संक्षिप्त जीवनवृत्त एवं उपकारगुणकीर्तन]

भरतक्षेत्रकी वर्तमान चौबीसीके चरम तीर्थंकर भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा समुपदिष्ट और भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव आदि निर्ग्रंथ संतों द्वारा सुरक्षित, तर्कशुद्ध अबाधित सुविज्ञान-सिद्धान्तोंकी कसौटी पर पार उतर सके ऐसा, अध्यात्मरसप्रमुख वीतराग जैनधर्म कालदोषके कारण वैज्ञानिक भूमिकासे च्युत होकर रूढ़िग्रस्त साँप्रदायिकतामें और क्रियाकांडमें फँस गया था ऐसे इस युगमें—विक्रमकी २०-२१वीं शताब्दिमें—भारतवर्षके जीवोंके महान पुण्योदयसे जिस महापुरुषने अवतार लेकर आत्मसाधनाके अध्यात्मपथको प्रकाशित किया, संप्रदायकी कैदमेंसे बाहर निकालकर जिन्होंने हजारों जीवोंमें शुद्ध आत्मा समझनेकी जिज्ञासा जगाकर एक नये मुमुक्षुसमाजका सर्जन किया, स्वयंकी स्वानुभवसमृद्ध भेदज्ञान-कलासे जिनशासनके सूक्ष्म रहस्योंको खोलकर जिन्होंने 'तुझमें सब भरा पड़ा है' ऐसा घोषित करके प्रत्येक जीवकी शक्तिरूप प्रभुताका जगतमें ढिंढोरा पीटा—इत्यादि अनेक प्रकारसे भारतवर्षके धर्मपिपासु जीवों पर जिनका अनंत-अनंत उपकार है ऐसे अध्यात्मयुगस्रष्टा परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका संक्षिप्त ★जीवनवृत्त एवं उपकारगुणकीर्तन यहाँ प्रस्तुत किया है।

आध्यात्मिक सत्पुरुष परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका पवित्र जन्म सौराष्टके उमराला गांवमें वि. सं. १९४७ वैशाख सुदी दूज, रविवारके शुभ दिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें हुआ था। गुरुदेवश्रीकी मातुश्री उजमबा व पिताश्री मोतीचंदभाई जातिसे दशाश्रीमाली वणिक एवं धर्मसे स्थानकवासी जैन थे। बचपनसे ही उनके मुखपर वैराग्यकी सौम्यता और आंखोंमें बुद्धि और वीर्यकी प्रतिभा झलकती थी। स्कूलमें तथा जैनशालामें भी प्रायः प्रथम नंबर ही रखते थे।

ग्यारह वर्षकी उम्रमें एक बार जैनशालाकी सीढ़ियोंसे उतरते समय संप्रदायके एक साधुको वैराग्यकी मस्त चालसे जाते हुए देखकर इस होनहार महापुरुषके हृदयमें गहरी छाप पड़ी तथा अन्तर्मनमें ऐसा लगा कि 'अहा! कैसी वैराग्यकी धुन! झुके हुए नेत्रोंके साथ कैसी मस्त चाल! नितांत अकेले, कोई साथी-संगी नहीं! कैसी अवधूत दशा!' इस प्रकार बचपनसे ही वैरागी मस्त जीवनके प्रति उनका चित्त समर्पित हो जाता था। पाठशालाके लौकिक ज्ञानसे उनको संतोष नहीं होता था; उनको अंतरंगमें लगता रहता कि 'जिसकी खोजमें मैं हूँ वह यह नहीं है।' कभी कभी यह दुःख तीव्र हो जाता, और एक बार तो माँसे बिछुड़े बालककी भाँति, यह बाल-महात्मा सत्के वियोगमें बहुत रोये थे।

छोटी उम्रमें ही माताका (वि. सं. १९५९में) व पिताजीका (वि. सं. १९६३में) वियोग हुआ।

★ *जीवनवृत्तका कुछ भाग आदरणीय पं. श्री हिंमतलाल जे. शाहके लेखोंमेंसे शब्दशः लिया है।*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वे पालेजमें पिताजीकी दुकान पर बैठने लगे। व्यापारमें उनका वर्तन प्रामाणिक और सरल था। एक बार बड़ौदाकी अदालतमें जाना पड़ा था। वहाँ उन्होंने न्यायाधीशके समक्ष सत्य घटना स्पष्टतासे बता दी। उनके मुखपर झलकती सरलता, निर्दोषता और निर्भीकताकी न्यायाधीश पर छाप पड़ी, और उनका कहा हुआ सारा विवरण यथार्थ है, ऐसा विश्वास आ जानेसे उसे संपूर्णरूपसे मान्य रखा।

वे कभी कभी नाटक देखने जाते थे; अतिशय आश्चर्यकी बात तो यह है कि नाटकका श्रृंगारिक प्रभाव होनेके बदले किसी वैराग्यप्रेरक दृश्यकी उन पर गहरी छाप पड़ती थी और वह कितने ही दिनों तक रहती थी। कभी कभी तो नाटक देखकर आनेके बाद पूरी रात वैराग्यकी धुन रहती। एक बार नाटक देखकर आनेके बाद उसकी धुनमें 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' इन शब्दोंसे प्रारम्भ होनेवाला बारह कड़ीका एक काव्य उन्होंने बनाया था। अहा! सांसारिक रसके प्रबल निमित्तोंको भी महान आत्माएँ वैराग्यका कैसा निमित्त बना लेती हैं।

दुकान पर भी वे वैराग्यप्रेरक और तत्त्वबोधक धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। उनका मन व्यापारमय या संसारमय नहीं हुआ था। उनका आत्मा अन्दर कुछ और ही शोधमें था। उनके अन्तरका झुकाव सदा धर्म व सत्यकी शोधके प्रति ही था। उनका धार्मिक अभ्यास, उदासीन जीवन और सरल अंतःकरण देखकर सगे-संबंधी उनको 'भगत' कहते थे। सगाईके संदेश आने पर उन्होंने अपने बड़े भाई खुशालभाईको स्पष्ट कह दिया कि 'मेरी सगाई नहीं करना, मेरे आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा है और मेरे दीक्षा लेनेके भाव हैं।' खुशालभाई और सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा बहुत समझाने पर भी उन महात्माके वैराग्यभीने चित्तको संसारमें रहना पसंद नहीं आया! उन्होंने योग्य गुरुके लिये बहुत शोध की। सौराष्ट्र, गुजरात व राजस्थानसे बहुतसे साधुओंसे मिले, पर कहीं भी मन स्थिर नहीं हुआ। अन्तमें बोटाद संप्रदायके श्री हीराचंदजी महाराजके हाथसे दीक्षा लेनेका निश्चित हुआ। विक्रम संवत् १९७०के मागशिर सुदी ९वीं, रविवारके दिन उमरालामें बड़ी धूमधामसे दीक्षा-महोत्सव सम्पन्न हुआ।

दीक्षा लेकर तुरन्त ही गुरुदेवश्री श्वेतांबरके आगमोंका कड़ा अभ्यास करने लगे। उन्होंने चारेक वर्षमें ४५ आगम, लाखों श्लोकोंकी टीका सहित, विचारपूर्वक पढ़ लिये। वे संप्रदायकी रीति अनुसार चारित्र भी कठोर पालते थे। थोड़े ही समयमें उनकी आत्मार्थिताकी, ज्ञान-पिपासाकी और चारित्रकी सुवास स्थानकवासी जैन संप्रदायमें खूब फैल गयी थी।

गुरुदेवश्री प्रारम्भसे ही तीव्र पुरुषार्थी थे। पुरुषार्थ ही उनका जीवनमंत्र था। 'केवली भगवानने देखा होगा तब मोक्ष होगा'—ऐसी काललब्धि और भवितव्यताकी पुरुषार्थहीनता भरी बातें कोई करे तो वे सहन नहीं कर सकते थे। वे दृढ़तासे कहते थे कि जो पुरुषार्थी हैं उसके अनन्त भव होते ही नहीं; केवलीभगवानने भी उसके अनन्त भव देखे ही नहीं; पुरुषार्थीको भवस्थिति आदि कुछ बाधक नहीं होते।'

दीक्षापर्यायके कालमें उन्होंने श्वेतांबरके शास्त्रोंका खूब मननपूर्वक अभ्यास किया। उन्होंने एक लाख श्लोकप्रमाण टीकायुक्त भगवतीसूत्र सत्रह बार पढ़ा। हर कार्य करते समय उनका लक्ष सत्यकी शोधके प्रति ही रहता था। फिर भी वे जिसकी शोधमें थे वह उन्हें अभी तक मिला नहीं था, अथकरूप उल्लसितवीर्यसे उनकी शोधवृत्ति चालू ही थी; तब—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विक्रम संवत् १९७८में विधिकी किसी धन्य घड़ीमें श्रीमद् भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवप्रणीत समयसार नामका महान ग्रंथ गुरुदेवश्रीके करकमलमें आया। उसे पढ़ते ही उनके हर्षका पार न रहा। जिसकी शोधमें वे थे वह उन्हें मिल गया। गुरुदेवश्रीके अन्तर्नयनोंने समयसारमें अमृतके सरोवर छलकते देखे। एकके पीछे एक गाथाएं पढ़ते हुए उन्होंने घूंट भर-भरके वह अमृत पिया। ग्रंथाधिराज समयसारने गुरुदेवश्री पर अपूर्व, अलौकिक, अनुपम उपकार किया और उनके आत्मानन्दका पार न रहा। गुरुदेवश्रीके अन्तर्जीवनमें परम पवित्र परिवर्तन हुआ, भूली हुई परिणति निज घरकी ओर ढली—उपयोगका प्रवाह सुधासिंधु ज्ञायकदेवकी ओर ढला। उनकी ज्ञानकला अपूर्व रीतिसे खिल उठी।

विक्रम संवत् १९९१ तक स्थानकवासी संप्रदायमें रहकर गुरुदेवश्रीने सौराष्ट्रके अनेक प्रमुख शहरोंमें चातुर्मास किया। और शेषकालमें सैकड़ों छोटे-बड़े नगरोंको पावन किया। हजारों श्रोताओंको उनके उपदेशके प्रति बहुमान जागृत हुआ। क्रियाकांडमें लुप्त हुए अध्यात्मधर्मका बहुत उद्योत हुआ। उनके प्रवचनमें ऐसे अलौकिक अध्यात्मिक न्याय आते थे कि जो अन्यत्र कहीं भी सुननेको न मिले हों। 'जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्म बंधे वह भाव भी हेय है।.....शरीरके रोमरोममें तीव्र रोग हो तो भी वह दुःख नहीं, दुःखका स्वरूप ही कुछ और है।....व्याख्यान सुनकर बहुत जीव समझें तो मुझे बहुत लाभ हो ऐसा माननेवाले व्याख्याता मिथ्यादृष्टि हैं।.....इस दुखमें समता नहीं रखूंगा तो कर्मबन्धन होगा–ऐसे भावसे समता रखना वह भी मोक्षमार्ग नहीं।....पाँच महाव्रत भी मात्र पुण्यबंधके कारण हैं।' ऐसे हजारों अपूर्व न्याय व्याख्यानमें अत्यन्त स्पष्ट रीतिसे लोगोंको समझाते थे। प्रत्येक प्रवचनमें वे कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन पर अत्यन्त अत्यन्त भार देते थे। वे कहते थे कि–"शरीरकी चमड़ी उतारकर नमक छिड़कनेवालेके उपर भी क्रोध न किया–ऐसा व्यवहारचारित्र भी इस जीवने अनंत बार पालन किया, परन्तु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्राप्त नहीं किया। लाखों जीवोंकी हिंसाके पापसे भी मिथ्यादर्शनका पाप अनन्तगुना है।....सम्यग्दर्शन प्राप्त करना सरल नहीं है, लाखों-करोड़ोंमें किसी विरल जीवको ही वह प्राप्त होता है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने सम्यक्त्वका निर्णय स्वयं ही कर सकता है। सम्यग्दृष्टि संपूर्ण ब्रह्मांडके भावोंको पी गया होता है।....सम्यक्त्व वह कोई और ही वस्तु है।...सम्यग्दर्शन शून्य क्रियाएं बिना एकाईकी बिंदी हैं।....सम्यग्दर्शनका स्वरूप बहुत ही सूक्ष्म है।....हीरेकी कीमत तो हजारों रूपया होती है परन्तु उसके पहल पाड़ते समय खिरी हुई रजका मूल्य भी सैकड़ों रुपया होता है; वैसे सम्यक्त्वहीरेकी कीमत तो अमूल्य है, वह मिले तो तो कल्याण हो जाय परन्तु न मिले तो भी 'सम्यग्दर्शन यह कोई जुदी ही वस्तु है'–इस प्रकार उसकी महिमा समझकर उसे प्राप्त करनेकी उत्कंठारूप रज भी बहुत लाभकारी है।....मात्र जानना ही ज्ञान नहीं। सम्यक्त्व सहित जानना वही ज्ञान है। ग्यारह अंग मुखाग्र हों परन्तु सम्यग्दर्शन न हो तो वह अज्ञान है।....आजकल तो सभी अपने अपने घरका सम्यक्त्व मान बैठे हैं। सम्यग्दृष्टिको तो मोक्षके अनंत अतीन्द्रिय सुखकी वानगी प्राप्त हो गयी है। वह वानगी मोक्षसुखके अनन्तवें भाग होने पर भी अनन्त है।" इस प्रकार सम्यग्दर्शनकी अद्भुत महिमा अनेक सम्यक् युक्तियोंसे, अनेक प्रमाणोंसे और अनेक सचोट दृष्टातोंसे वे लोगोंको ठसा देते थे। उनका प्रिय और मुख्य विषय सम्यग्दर्शन था। और वे संप्रदायमें थे तबसे ही इसका स्पष्ट रीतिसे प्रतिपादन करते थे। प्रथम सत्य समझनेकी मुख्य आवश्यकता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है ऐसा वे अति दृढ़तापूर्वक पहलेसे ही कहते थे और प्रवचनके प्रारम्भमें एक गाथा बोलते थे—'संबुज्झह जंतवो....' जिसका सारांश था कि—हे जीवों! तुम सम्यक् प्रकारसे समझो समझो! इस प्रकार वे प्रारम्भसे ही सत्य समझनेका उपदेश देते थे।

जैनधर्म पर उनकी अनन्य श्रद्धा, सारा विश्व न माने तो भी अपनी मान्यतामें स्वयं अकेले टिके रहनेकी उनकी अजब दृढ़ता और अनुभवके बलपूर्वक निकलती उनकी न्यायसंगत वाणी बड़े बड़े नास्तिकोंको भी विचारमें डाल देती थी और बहुतोंको आस्तिक बना देती थी। उनका सिंहनाद पात्र जीवोंके हृदयकी गहराईको स्पर्शकर उनके आत्मिक वीर्यको उछाल देता था। अहा! सत्य और अनुभवके जोरसे सारे जगतके अभिप्रायोंके सामने जूझते इस अध्यात्मयोगीकी गर्जना जिन्होंने सुनी होगी उनके कानोंमें उसकी झंकार अभी भी गूंजती होगी! थोड़े ही वर्षोंमें उनके प्रखर ज्ञान, कड़े चारित्र और प्रवचनकौशल्यकी सुवास इतनी अधिक फैल गई कि स्थानकवासी जैनसमाज उनको साधुके रूपमें 'काठियावाडका कोहनूर' कहती थी।

लघु वयसे ही गुरुदेवका वैरागी, चिन्तनपूर्ण, बुद्धिप्रतिभायुक्त, ध्येयलक्षी भक्तजीवन था। बालब्रह्मचारीरूपसे दीक्षित होकर उच्चतम कोटिके स्थानकवासी साधुके रूपमें विचरण करते समय, 'भवभ्रमणका अंत लानेका सच्चा उपाय क्या?', 'द्रव्यसंयमसे ग्रीवक पाया, फिर पीछो पटक्यो, वहाँ क्या करना बाकी रहा?'—इस विषयमें गहरा मंथन व अभ्यास करके उन्होंने खोज निकाला कि—मार्ग कोई जुदा ही है; वर्तमानमें तो शुरुआत ही उल्टी है। क्रियाकांड मोक्षमार्ग नहीं है, परन्तु पारमार्थिक आत्मा तथा सम्यग्दर्शन आदिका स्वरूप निश्चित कर स्वानुभव करना वह मार्ग है; अनुभवमें विशेष लीनता वह श्रावकमार्ग है और उससे भी विशेष स्वरूपरमणता वह मुनिमार्ग है। साथमें होनेवाले बाह्य व्रत-नियम तो अधूरेपनकी–अपरिपक्वताकी प्रगटता है। मोक्षमार्गकी मूल बातमें बहुत बड़ा अन्तर पड़ गया है ऐसा गुरुदेवश्रीने अन्तरसे खोज निकाला।

समयसार-प्ररूपित वास्तविक वस्तुस्वभाव और वास्तविक निर्ग्रंथमार्ग बहुत समयसे भीतर सत्य लगता था, और बाह्यमें वेश तथा आचरण अलग था,–यह विषम स्थिति उन्हें खटकती थी; इसलिये उन्होंने सोनगढ़में योग्य समय–विक्रम संवत् १९९२ की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (महावीर-जयंती), मंगलवारके दिन—'परिवर्तन' किया, स्थानकवासी सम्प्रदायका त्याग किया। संप्रदायका त्याग करनेवालोंको किस किस प्रकारकी अनेक महाविपत्तियां सहनी पड़ती है, उन पर कैसी कैसी अघटीत निंदाकी झडियाँ बरसती हैं, वह सब उनके ख्यालमें था, फिर भी उस निडर और निस्पृह महात्माने उसकी कुछ भी परवाह न की। सत्के प्रति परम भक्तिमें सब प्रकारकी प्रतिकूलताका भय व अनुकूलताका राग अत्यंत गौण हो गया। जगतसे बिलकुल निरपेक्षरूप हजारोंके जनसमुदायमें गर्जनेवाला सिंह सत्के लिये सोनगढ़के एकांत स्थलमें जा बैठा।

उनके 'परिवर्तन'से स्थानकवासी संप्रदायमें बहुत खलबली हुई, विरोध हुआ। परन्तु गुरुदेवश्री काठियावाड़के स्थानकवासी जैनोंके हृदयमें बस गये थे। उनके पीछे काठियावाड़ पागल बना हुआ था। इसलिये 'गुरुदेवश्रीने जो किया होगा वह समझकर ही किया होगा' ऐसा विचार कर धीरे-धीरे लोगोंका प्रवाह सोनगढ़की ओर बहने लगा। सांप्रदायिक मोह अत्यन्त दुर्निवार होने पर भी, सत्के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थी जीवोंकी संख्या तीनों कालमें अत्यन्त अल्प होने पर भी, सांप्रदायिक व्यामोह तथा लौकिक भयको छोड़कर सोनगढ़की ओर बहता सत्संगार्थी जनोंका प्रवाह दिन-प्रतिदिन वेगपूर्वक बढ़ता ही गया।

पूज्य गुरुदेव कहते थे : जैनधर्म यह कोई संप्रदाय नहीं है, यह तो वस्तुस्वभाव—आत्मधर्म है। उसका अन्य किसी धर्मके साथ मेल है ही नहीं। उसका अन्य धर्मके साथ समन्वय करना वह रेशम और टाटके समन्वय जैसा व्यर्थ है। दिगंबर जैनधर्म वही वास्तविक जैनधर्म है और आंतरिक तथा बाह्य दिगंबरत्वके बिना कोई जीव मुनिपना और मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता—ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता थी।

गुरुदेव सम्प्रदायमें थे तभीसे प्रत्येक द्रव्यकी स्वतंत्रताकी श्रद्धा उनके अंतरमें ओतप्रोत हो गयी थी। मैं एक स्वतंत्र पदार्थ हूं, मुझे कोई कर्म रोक नहीं सकते—ऐसा वे बारम्बार कहते थे। वह विशेष स्पष्टतासे समझनेके लिये जामनगरमें चातुर्मासके समय आत्मार्थी श्री हिंमतभाई जे. शाहने प्रश्न पूछा—'महाराज! दो जीवोंके १४८ कर्मप्रकार सम्बन्धी सर्व भेद-प्रभेदोंके प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग–सभी बिलकुल एक समान हों तो वे जीव उत्तरवर्ती क्षणमें समान भाव करेंगे या भिन्न-भिन्न प्रकारके?' गुरुदेवने कहा : 'भिन्न-भिन्न प्रकारके।' पुनः प्रश्न किया : 'दोनों जीवोंकी शक्ति तो पूरी है और आवरण भी बिलकुल एक समान है, तो फिर भाव भिन्न-भिन्न प्रकारके कैसे कर सकते हैं?' गुरुदेवने तुरन्त ही दृढ़तासे उत्तर दिया : 'अकारण पारिणामिक द्रव्य है', अर्थात् जीव जिसका कोई कारण नहीं ऐसे भावसे स्वतंत्रतया परिणमन करनेवाला द्रव्य है, इसलिये उसे अपने भाव स्वाधीनतासे करनेमें वस्तुतः कौन रोक सकता है? वह स्वाधीनतासे अपना सब कुछ कर सकता है। स्वाधीनताका कैसा सुन्दर स्पष्टीकरण!

परमपूज्य गुरुदेवके उपदेशमें मुख्य वजन 'समझ' पर था। 'तुम समझो; समझे बिना सब व्यर्थ है' इस प्रकार वे बारम्बार कहते थे। 'कोई आत्मा—ज्ञानी या अज्ञानी—एक रजकणको भी हिलानेकी सामर्थ्य नहीं रखता, तो फिर देहादिकी क्रिया आत्माके हाथ कहाँसे हो? ज्ञानी व अज्ञानीमें प्रकाश और अंधकार जैसा महान अन्तर है, और वह यह है कि अज्ञानी परद्रव्य तथा रागद्वेषका–शुभाशुभ भावका—कर्ता होता है और ज्ञानी अपनेको शुद्ध अनुभव करता हुआ उनका कर्ता नहीं होता। उस कर्तृत्व बुद्धिको छोड़नेका महा पुरुषार्थ प्रत्येक जीवका कर्तव्य है। वह कर्तृत्वबुद्धि ज्ञान बिना नहीं छूटती। इसलिये तुम ज्ञान करो।'—यह उनके उपदेशका प्रधान स्वर था।

परम पूज्य गुरुदेवके ज्ञानको सम्यक्त्वकी छाप तो बहुत समयसे लगी थी। वह सुधास्यंदी सम्यग्ज्ञान सोनगढ़के विशेष निवृत्तिवाले स्थानमें अद्भुत सूक्ष्मताको प्राप्त हुआ; नई-नई ज्ञानकला खूब खिली। अमृतकलशमें जिस प्रकार अमृत घोला जाता हो उसीप्रकार गुरुदेवके परम पवित्र अमृतकलशस्वरूप आत्मामें तीर्थंकरदेवके वचनामृत खूब घोले गये—घोंटे गये। अन्दर घोंटा गया वह अमृत कृपालु गुरुदेव हजारों मुमुक्षुओंको प्रवचनमें परोसते थे व निहाल करते थे।

समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि शास्त्रों पर प्रवचन देते समय गुरुदेवके शब्द-शब्दमें बहुत गहनता, सूक्ष्मता और नवीनता निकलती, जिससे श्रोताजन शास्त्रका मर्म सरलतासे समझ जाते। जिस अनन्त ज्ञान और आनन्दमय पूर्ण दशाको प्राप्त करके तीर्थंकरदेवने दिव्यध्वनि द्वारा वस्तुस्वरूपका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निरूपण किया, उस परम पवित्र दशाका सुधास्यंदी स्वानुभूतिस्वरूप पवित्र अंश अपने आत्मामें प्रगट करके सद्गुरुदेवने अपनी विकसित ज्ञानपर्याय द्वारा शास्त्रोमें रहे हुए गूढ़ रहस्योंको समझाकर मुमुक्षुओं पर महान-महान उपकार किया है। गुरुदेवकी वाणी सुनकर सैकड़ों शास्त्रोंके अभ्यासी विद्वान भी आश्चर्यचकित हो जाते थे और उल्लासमें आकर कहते थे : 'गुरुदेव! आपके प्रवचन अपूर्व हैं; उनका श्रवण करते हमें तृप्ति ही नहीं होती। आप चाहे जिस बातको समझाओ हमको उसमेंसे नया-नया ही जाननेको मिलता है। नव तत्त्वका स्वरूप या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका स्वरूप, स्याद्वादका स्वरूप या सम्यक्त्वका स्वरूप, निश्चय-व्यवहारका स्वरूप या व्रत-तप-नियमका स्वरूप, उपादान-निमित्तका स्वरूप या साध्य-साधनका स्वरूप, द्रव्यानुयोगका स्वरूप या चरणानुयोगका स्वरूप, गुणस्थानका स्वरूप या बाधक-साधकभावका स्वरूप, मुनिदशाका स्वरूप या केवलज्ञानका स्वरूप—जिस-जिस विषयका स्पष्टीकरण आपके श्रीमुखसे सुनते हैं उसमें हमें अपूर्व भाव ही दृष्टिगोचर होते हैं। आपके शब्द-शब्दमें वीतरागदेवका हृदय प्रगट होता है।'

पूज्य गुरुदेवकी प्रवचनशैली भी अद्भुत थी। कठिन गिने जानेवाले अध्यात्म-विषयको भी खूब स्पष्टतासे, अनेक सरल दृष्टांतों द्वारा, शास्त्रीय शब्दोंका बहुत ही कम प्रयोग करके घरेलू भाषामें समझाते थे, कि जिससे कम पढ़े-लिखे सामान्य लोग भी सरलतासे समझ जायें। गुरुदेवश्री प्रवचन करते-करते अध्यात्ममें ऐसे मग्न हो जाते, परमात्मदशाके प्रति अगाध भक्ति उनके मुखारविंद पर ऐसी झलकती, कि श्रोताओं पर भी उसकी छाप पड़ती। अध्यात्मकी जीवंतमूर्ति गुरुदेवश्रीकी देहके अणु-अणुमेंसे मानों अध्यात्मरस झरता हो ऐसी चमत्कारभरी उनकी प्रतिभा थी। पूज्य गुरुदेवका प्रवचन सुननेवालोंको इतना तो स्पष्ट लगता था कि 'यह कोई विशिष्ट प्रकारका पुरुष है; जगतसे यह कुछ और ही कहता है, अपूर्व कहता है; इसके कथनके पीछे कोई अजब दृढ़ता और जोर है। ऐसा अन्यत्र कहीं भी सुननेमें नहीं आता।' अहा! इस कलिकालमें, अन्तरमें ऐसा अलौकिक पवित्र परिणमन—केवलज्ञानका अंश, और बाह्यमें ऐसा प्रबल प्रभावना-उदय—तीर्थंकरत्वका अंश, इन दोनोंका सुयोग देखकर मुमुक्षुओंका हृदय नाच उठता था।

अहो! परम प्रभावक अध्यात्ममूर्ति गुरुदेवकी उस मोहविनाशिनी वज्रवाणीकी तो क्या बात, उनके दर्शन भी महापुण्यके थोक उछलें तब प्राप्त होते! इस अध्यात्ममस्त महापुरुषके समीप संसारकी आधि-व्याधि-उपाधि फटक भी नहीं सकती थी। संसारतप्त प्राणियोंको उनके पवित्र समागममें परम विश्रांति मिलती थी। जो वृत्तियां महाप्रयत्नसे भी नहीं दबतीं वे पूज्य गुरुदेवके सान्निध्यमें अपने आप शांत हो जातीं हैं—ऐसा अनुभव बहुतसे मुमुक्षुओंको होता था। आत्माका निवृत्तिमय स्वरूप, मोक्षका सुख आदि आध्यात्मिक भावोंकी जो श्रद्धा अनेक तर्कोंसे नहीं हो पाती वह गुरुदेवके दर्शन तथा समागमसे सहजमात्रमें हो जाती। इस प्रकार पूज्य गुरुदेवके स्वानुभवरस-झरते पवित्र ज्ञान और चारित्रने मुमुक्षुओं पर महा कल्याणकारी अनुपम उपकार किया है।

सनातन सत्य वीतराग दिगम्बर जैनमार्ग अंगीकृत करनेके बादके वर्षोंमें शासनप्रभावक पूज्य गुरुदेवश्रीके जीवनवृत्तांतके साथ संबंध रखनेवाले, मुमुक्षुओंको उपकारभूत हों ऐसे, प्रभावनाके अनेक सुयोग बन गये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विक्रम संवत् १९९४की वैशाख कृष्णा अष्टमीके दिन प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनको आत्मध्यानमयी विमल अनुभूतिमेंसे उपयोग बाहर आनेपर, उपयोगकी स्वच्छतामें अनेक भवान्तर सम्बन्धी सहज स्पष्ट जातिस्मरणज्ञान हुआ। पूज्य गुरुदेवको अनेक वर्षोंसे अपने भूत-भविष्यके भवके साथ सम्बन्धवाला जो अस्पष्ट 'भास' होता था उसका स्पष्ट हल बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञान द्वारा मिलनेसे स्वयंके मनोमन्दिरमें एक प्रकारका उजाला हुआ और उनकी धर्मपरिणतिको एक असाधारण नवीन बल मिला। बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञानकी बातें आत्मार्थियोंको उपकारक हो ऐसी लगनेसे पूज्य गुरुदेवश्री उसके कितने ही तथ्य धीरे-धीरे मुमुक्षुओंके समक्ष अत्यन्त धर्मोल्लासपूर्वक रखने लगे थे, जिसे सुनकर आत्मार्थिजन अत्यन्त आह्लादित होते थे और उनके श्रद्धाजीवनमें, भक्तिजीवनमें तथा 'इस अल्पायुषी मनुष्यपर्यायमें निज कल्याण अवश्य कर लेना योग्य है'—ऐसे उद्यमजीवनमें नई चमक आ जाती थी।

जहाँ 'परिवर्तन' हुआ था वह मकान छोटा था इसलिये भक्तोंने संवत् १९९५में प्रवचन तथा पूज्य गुरुदेवके निवास हेतु एक मकान बनवाया और उसका नाम 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर' रखा। परम पूज्य अध्यात्मयोगी गुरुदेवको समयसार परमागमके प्रति अतिशय भक्ति होनेके कारण, स्वाध्यायमन्दिरमें उसके उद्घाटनके दिन—ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी, रविवारके दिन—प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके पवित्र करकमलोंसे श्री समयसार परमागमकी मंगल प्रतिष्ठा की गई। समयसार सर्वोत्तम शास्त्र है–ऐसा गुरुदेव बारम्बार कहते थे। समयसारकी बात करते ही उन्हें अति उल्लास आ जाता था। समयसारकी प्रत्येक गाथा मोक्ष दे ऐसी है—ऐसा गुरुदेवश्री कहते थे। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके सभी शास्त्रों पर उन्हें अत्यन्त प्रेम था। 'भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवका हमारे ऊपर अत्यन्त उपकार है, हम उनके दासानुदास हैं'—ऐसा वे अनेक बार भक्तिभीने हृदयसे कहते थे। भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्रमें सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमन्धर भगवानके समवसरणमें गये थे और वहाँ आठ दिन रहे थे, उस विषयमें पूज्य गुरुदेवको अंशमात्र भी शंका नहीं थी। वे कुंदकुंदाचार्यदेवके विदेहगमनके सम्बन्धमें अत्यन्त दृढ़तापूर्वक अनेक बार भक्तिभीने हृदयसे पुकार करके कहते थे कि—'कल्पना नहीं करना, इन्कार मत करना, यह बात ऐसी ही है; मानो तो भी ऐसी ही है, न मानो तो भी ऐसी ही है; यथातथ्य बात है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाणसिद्ध है।' श्री सीमंधर भगवानके प्रति गुरुदेवश्रीको अतिशय भक्तिभाव था। कभी-कभी सीमंधर भगवानके विरहमें परम भक्तिवंत गुरुदेवश्रीके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगती थी।

पूज्य गुरुदेवश्रीने संवत् १९९५में माघ कृष्णा त्रयोदशीके दिन २०० मुमुक्षुओंके संघ सहित शत्रुंजय सिद्धक्षेत्रकी पावन यात्रा अति उत्साह और भक्तिपूर्वक की। उसी वर्ष चैत्र कृष्णा एकमके दिन स्वाध्यायमन्दिरमें भगवानकी दिव्यध्वनि 'ॐ'के शिलापट्टकी स्थापना की गई थी। तत्पश्चात् राजकोटके मुमुक्षुओंका अति आग्रह होनेसे चातुर्मास करनेके लिये पूज्य गुरुदेव राजकोट पधारे। वहाँ 'आनन्दकुंज'में दस महिने तक रहकर, समयसार, आत्मसिद्धि और पद्मनंदिपंचविंशतिका पर अपूर्व प्रवचन किये। पूज्य गुरुदेवकी नित्य-नई निर्मल ज्ञानपर्यायोंमेंसे सहज स्फुरित जड़-चेतनके विभागके, निश्चय-व्यवहारकी संधिके तथा अन्य अनेक आध्यात्मिक न्याय सुनकर राजकोटके हजारों लोग पावन हुए। वहाँ निशदिन आध्यात्मिक आनन्दका सुन्दर वातावरण गूँज उठा।

T-3.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

राजकोटसे सोनगढ वापिस लौटते समय पूज्य गुरुदेवने ३०० भक्तोंके साथ, २२वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ प्रभुके दीक्षा, केवल और निर्वाण—तीन कल्याणकोंसे पावन हुए गिरिराज गिरनारतीर्थकी अत्यन्त भक्ति तथा उल्लास सहित यात्रा की। पहली टूंक पर दिगंबर जिनमन्दिरमें एवं दीक्षाकल्याणक-धाम सहस्राम्रवनमें जमी हुई भक्तिकी धुन तथा निर्वाणस्थल पाँचवीं टूंक पर पूज्य गुरुदेव परम अध्यात्मरसमें तराबोर बनकर—

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थसे।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे!'

—आदि पद गाते हुए भक्ति कराते थे उस समय प्रसरित हुआ भक्तिभीना शांत आध्यात्मिक वातावरण—उन सबके पवित्र संस्मरण तो भक्तोंके स्मरणपट पर उत्कीर्ण हो गये हैं।

विहारके समय मार्गमें आनेवाले अनेक छोटे-बड़े गांवोंमें पूज्य गुरुदेव वीतराग सद्धर्मका डंका बजाते गये। लोगोंको गुरुदेवके प्रति भक्ति उमड़ पड़ती, भव्य स्वागत-समारोह होते और हजारोंकी संख्यामें प्रवचनसभा छलक उठती। गुरुदेवका प्रभावना–उदय देखकर, तीर्थंकरभगवान तथा समर्थ आचार्यभगवन्त जब विचरते होंगे उस समय धर्मका, भक्तिका व अध्यात्मका कैसा वातावरण फैल जाता होगा उसका तादृश चित्र कल्पनाचक्षु समक्ष खड़ा होता था।

संवत् १९९७ के वैशाख मासमें पूज्य गुरुदेवश्री विहार पूर्ण कर सोनगढ़ पधारे। उसके बाद तुरंत ही श्री नानालालभाई जसाणी तथा उनके भाइयोंने श्री सीमंधरभगवानके जिनमंदिरका निर्माणकार्य प्रारम्भ किया, जिसमें श्री सीमंधरस्वामी आदि जिनभगवंतोंकी वीतरागभाववाही प्रतिमाओंकी पंचकल्याणकविधिपुरस्सर मंगल प्रतिष्ठा संवत् १९९७ के फाल्गुन शुक्ला दूजके शुभ दिन हुई। प्रतिष्ठामहोत्सवके आठों दिन पूज्य गुरुदेवके मुखारविंदसे भक्तिरसभीनी अलौकिक वाणी छूटती थी। बिछुडे हुए सीमंधरभगवानका (भले स्थापना-अपेक्षासे) मिलन होनेसे पूज्य गुरुदेवश्रीको कोई अद्भुत आनन्दोत्साह था। प्रतिष्ठाके पूर्व श्री सीमंधरभगवानकी प्रतिमाके प्रथम दर्शनके समय पूज्य गुरुदेवश्रीकी आँखोंसे विरहवेदनाके आँसू बहने लगे थे। सीमंधरभगवान जब मंदिरमें प्रथम पधारे तब गुरुदेवश्रीको भक्तिरसकी मस्ती चढ़ गई और सारा देह भक्तिरसके मूर्त स्वरूप जैसा शांत–शांत दिखने लगा। गुरुदेवश्रीसे साष्टांग प्रणमन हो गया और भक्तिरसमें अत्यन्त एकाग्रताके कारण शरीर ज्योंका त्यों थोड़े समय तक निश्चेष्टरूपसे पड़ा रहा। भक्तिका यह अद्भुत पावन दृश्य, पासमें खड़े मुमुक्षुओंसे सहा नहीं जाता था; उनके नेत्रोंमें अश्रु भर आये और चित्तमें भक्ति उमड़ पड़ी। पूज्य गुरुदेवने प्रतिष्ठा भी अपने पवित्र हस्तसे, भक्तिभावमें मानों शरीरका भान भूल गये हों ऐसे अपूर्व भावसे की थी।

दोपहरके प्रवचन बाद पूज्य गुरुदेवश्रीकी मंगल उपस्थितिमें इस जिनमन्दिरमें प्रतिदिन पौनघंटा भक्ति होती थी। प्रवचन सुनते समय आत्माके सूक्ष्म स्वरूपके प्रणेता वीतराग जिनेन्द्रभगवन्तका माहात्म्य हृदयमें स्फुरित हुआ हो, जिससे तुरन्त ही जिनमन्दिरमें भक्ति करते हुए, वीतरागदेवके प्रति पात्र जीवोंको अद्भुत भक्तिभाव उल्लसित होता था। इस प्रकार जिनमन्दिर ज्ञान व भक्तिके सुन्दर सुमेलका निमित्त बना।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसके एक साल बाद श्री समवसरण-मन्दिर बना। उसमें श्री सीमन्धरभगवानकी अतिशय भाववाहि चतुर्मुख जिनप्रतिमा बिराजमान है। समवसरणकी सम्पूर्ण रचना अत्यन्त आकर्षक और शास्त्रोक्त विधि अनुसार है। मुनियोंकी सभामें श्री सीमंधरभगवानके सामने अत्यन्त भावपूर्वक हाथ जोड़कर खड़े हुए श्रीमद्भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवकी अति सौम्य मुद्रावन्त निर्ग्रंथ प्रतिमा है। प्रतिष्ठा महोत्सव सं. १९९९के ज्येष्ठ कृष्णा छठके दिन हुआ था। श्री समवसरणके दर्शन करते समय, श्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव विदेहक्षेत्रके तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमन्धर परमात्माके समवसरणमें पधारे थे वह, पूज्य गुरुदेवने पूर्वभवमें प्रत्यक्ष देखा हुआ भव्य प्रसंग उनकी आंखोंके समक्ष खड़ा हुआ और उसके साथ संकलित अनेक पवित्र भाव हृदयमें प्रस्फुरित होनेसे उनका हृदय भक्ति और उल्लाससे भर आया। समवसरणमें भक्तिके समय 'रे! रे! सीमन्धरनाथना विरहा पड्या आ भरतमां' यह पंक्ति आने पर, भगवानके विरह-वेदनसे पूज्य गुरुदेवका भक्तहृदय अत्यन्त द्रवीभूत हो गया था और नेत्रोंमेंसे अश्रुकी धारा बह निकली थी; उस विरहव्यथाका भक्तिभीना दृश्य अभी भी मुमुक्षुओंकी दृष्टि समक्ष घूमता है। श्री समवसरणमन्दिर बननेसे मुमुक्षुओंको समवसरणमें बिराजमान जिनेन्द्रभगवानके पावन दर्शनके साथ साथ सीमन्धर-कुन्दकुन्द मिलनका मधुर प्रसंग दृष्टिगोचर करनेका निमित्त प्राप्त हुआ।

वि. सं. १९९९ के श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके रोज—श्री महावीरभगवानकी दिव्यध्वनि छूटनेके पावन दिन, वीरशासनजयंतीके मंगल दिन—सोनगढ़में पूज्य गुरुदेवने परमागम श्री प्रवचनसार पर व्याख्यान देना प्रारम्भ किया था। उसमें ज्ञेय अधिकार पर व्याख्यान देते समय, अनेक वर्षोंमें भक्तोंने जो सुना था उससे भी अधिक, कोई अचिंत्य, अद्भुत और अपूर्व ऐसे श्रुतका स्रोत पूज्य गुरुदेवश्रीके अन्तर आत्मामेंसे—उनकी निर्मल भावश्रुतज्ञानकी पर्यायमेंसे–बहने लगा। द्रव्यानुयोगके अश्रुतपूर्व अद्भुत न्यायोंसे भरा हुआ वह आश्चर्यकारी स्रोत जिन्होंने बराबर श्रवण किया होगा उनको उसकी महिमा अन्तरंगमें अंकित होगी। बाकी उसका वर्णन तो क्या हो सके? उस श्रुतामृतका पान करते समय ऐसा लगता था कि यह तो कोई सातिशय आश्चर्यकारी आत्मविभूति देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ! या कोई अचिंत्य श्रुतकी निर्मल श्रेणी देखनेका सुभाग्य संप्राप्त हुआ!

सं. १९९९ की भाद्रपद शुक्ला पंचमीको—दशलक्षण पर्युषणपर्वके प्रारम्भके दिन—सोनगढ़में कुमार जैन युवकोंके लिये, तत्त्वज्ञानका अभ्यास करानेके प्रयोजनसे, ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित किया गया था। उसमें तीन वर्षका अभ्यासक्रम रखा गया था। उसमें शामिल होनेवाले ब्रह्मचारी भाई प्रतिदिन तीन घण्टे नियत की हुई धार्मिक पुस्तकोंका शिक्षण प्राप्त करते थे, प्राप्त किये हुए उस शिक्षणको एकांतमें स्वाध्याय और परस्पर चर्चा द्वारा दृढ़ करते थे व पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन, तत्त्वचर्चा, जिनेन्द्रभक्ति इत्यादि दैनिक क्रममें सम्मिलित होते थे; इसप्रकार सारा ही दिन धार्मिक प्रवृत्तिमें व्यतीत होता था।

ज्ञानध्यानरत गुरुदेवको अन्तरमें भावश्रुतकी लब्धि नये-नये न्यायोंसे जैसे-जैसे दिन-प्रतिदिन खिलती जा रही थी वैसे-वैसे उनका पुनीत प्रभावना-उदय भी प्रबलरूपसे वृद्धिंगत होता जा रहा था। सं. १९९९ की फाल्गुन शुक्ला पंचमीके दिन झालावाड़ होकर चातुर्मास हेतु राजकोट जानेके लिये पुनः विहार हुआ। पूज्य गुरुदेव, अमृत बरसते महामेघकी भाँति, मार्गमें आनेवाले हरेक ग्राममें अध्यात्म-अमृतकी झड़ी बरसाते थे और अनेकों—हजारों—तृषावन्त जीवोंकी तृषा शांत करते थे। जैनेतर भी पूज्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुरुदेवका आध्यात्मिक उपदेश सुनकर आश्चर्यचकित रह जाते थे। जैनदर्शनमें मात्र बाह्य क्रियाकाण्ड ही नहीं हैं किन्तु उसमें तर्कशुद्ध सूक्ष्म अध्यात्मविज्ञान भरपूर भरा है ऐसा समझमें आने पर उन्हें जैनदर्शनके प्रति बहुमान प्रगटता था। पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रसारित आत्मविचारके प्रबल आन्दोलनोंसे प्रभावित होकर कितने ही अजैन तो वीतराग दिगम्बर जैनधर्मके श्रद्धालु हो गये थे। सचमुच गुरुदेवने आत्मसाधनाका अध्यात्म-पंथ दरशाकर भारतमें तथा विदेशमें हजारों जीवोंको जागृत किया है। सौराष्ट्रमें तो दिगम्बर जैनधर्मका नवसर्जन उन्हींने किया है। पूज्य गुरुदेवने अन्तरसे खोजा हुआ स्वानुभवप्रधान अध्यात्ममार्ग—दिगम्बर जैनधर्म ज्यों ज्यों प्रसिद्ध होता गया त्यों त्यों अधिकाधिक जिज्ञासु आकर्षित हुए; ग्राम-ग्राममें मुमुक्षुमण्डलोंकी स्थापना हुई। सम्प्रदायत्यागसे जगी विरोधकी आँधी शाँत हो गई। पूज्य गुरुदेवका प्रभावना उदय दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक विकसित होता गया।

मात्र बड़ी उम्रमें गृहस्थ ही नहीं किन्तु छोटी उम्रके बच्चे भी पूज्य गुरुदेवके तत्त्वज्ञानमें उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। गुरुदेवके भक्त हजारोंकी संख्यामें बढ़ने लगे। संवत् १९९८ से प्रतिवर्ष विद्यार्थियोंको धार्मिक शिक्षा देने हेतु ग्रीष्मशिबिर खोला जाता था, विद्यार्थी उसमें उत्साहसे भाग लेते थे, लिखित परीक्षाएँ ली जातीं और पुरस्कार दिये जाते। सं. २००४ से श्रावण मासमें प्रौढ़ गृहस्थोंके लिये भी शिक्षणशिबिर चलता है।

पूज्य गुरुदेवके भक्त देश-विदेशमें जगह-जगह निवास करते हैं, उन्हें गुरुदेवके अध्यात्म-उपदेशका नियमित लाभ प्राप्त हो तदर्थ सं. २००० के मगसिर महीनेसे 'आत्मधर्म' गुजराती मासिक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् करीब डेढ़ वर्ष बाद हिन्दी 'आत्मधर्म'का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। बीचमें कुछ वर्षो तक 'सद्गुरुप्रवचन-प्रसाद' नामका दैनिक प्रवचन-पत्र प्रकाशित होता था। तदुपरान्त समयसार, प्रवचनसारादि मूल शास्त्र तथा प्रवचन-ग्रन्थ इत्यादि अध्यात्मसाहित्यका विपुल मात्रामें—लाखोंकी संख्यामें–प्रकाशन हुआ, हजारों प्रवचन टेप-रिकार्ड किये गये, जिनसे पूज्य गुरुदेवका अध्यात्म-उपदेश घर-घरमें गूंजने लगा।

पूज्य गुरुदेवके मंगल प्रतापसे सोनगढ़ 'अध्यात्म-तीर्थधाम'के रूपमें बदल गया। सोनगढ़का शांत अध्यात्ममय वातावरण और वैविध्यपूर्ण धार्मिक कार्यक्रम देखकर बाहरसे आनेवाले जिज्ञासु मुग्ध हो जाते थे। सोनगढ़में उत्सव, मात्र रूढ़िगत शैलीसे नहीं किन्तु तदनुरूप भावभीने वातावरणमें एक विशिष्ट अनोखी शैलीसे मनाये जाते थे। कुछ दिन यहाँ रहनेवाले जिज्ञासुको फिर कहीं और जगह जाना अच्छा नहीं लगता था और उसे ऐसा लगता था कि—वास्तवमें आत्मार्थीकी अध्यात्म-साधनाका पोषक एवं प्रोत्साहक शांत धार्मिक वातावरण गुरुदेवके इस पवित्र धाम जैसा अन्यत्र कहीं नहीं है?

सं. २००२ की ज्येष्ठ कृष्णा छठके दिन दिगम्बर जैन समाजके सुप्रसिद्ध अग्रिम नेता, इन्दौरके श्री सेठ हुकमचन्दजी पूज्य गुरुदेवकी आध्यात्मिक ख्याति सुनकर, गुरुदेवके दर्शन तथा सत्संग हेतु सोनगढ़ आये। वे पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन सुनकर एवं भक्ति आदिका अध्यात्मरसयुक्त वातावरण देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए। पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे विशिष्ट बातें सुनकर तथा समवसरणकी रचना देखकर उन्हें अति प्रसन्नता हुई। श्री सेठ हुकमचन्दजीके आनेके बाद दिगम्बर समाजका प्रवाह सोनगढ़की ओर विशेष बढ़ने लगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धीरे-धीरे सोनगढ़ एक अध्यात्मविद्याका अनुपम केन्द्र—तीर्थधाम बन गया। बाहरसे हजारों मुमुक्षु भाई-बहिन, दूर-दूरसे अनेक दिगम्बर जैन, पण्डित, त्यागी, ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेवश्रीके उपदेशका लाभ लेने हेतु आने लगे।

पूज्य गुरुदेवका पावन प्रभावना-उदय बढ़ता गया, जिज्ञासुओं की आमद बढ़ती हुई, उत्सवके दिनोंमें स्वाध्यायमन्दिर छोटा लगने लगा। इसलिये जिसमें ढाई हजार लोग अच्छी तरह बैठकर प्रवचन सुन सकें ऐसा विशाल, बीचमें खम्भे रहित, अनेक पौराणिक सुन्दर चित्रों एवं तत्त्वबोधक सुन्दर सैद्धांतिक सुवाक्योंसे सुशोभित 'श्री कुन्दकुन्द-प्रवचन-मंडप'का निर्माण हुआ। संवत् २००३ की फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदाके दिन उसका उद्घाटन करते हुए श्री सेठ हुकमचन्दजी आनन्दविभोर होकर बोले कि—'मेरे हृदयमें ऐसा भाव आ जाता है कि अपनी सारी सम्पत्ति इस सद्धर्मकी प्रभावना हेतु न्योच्छावर कर दूँ तब भी कम है।'

तत्पश्चात् फाल्गुन शुक्ला तीजके दिन वींछिया ग्राममें, सोनगढ़के बाद सर्व प्रथम दिगम्बर जिनमन्दिरका श्री सेठ हुकमचंदजीके शुभ हस्तसे शिलारोपण हुआ।

संवत् २००३ की चैत्र-कृष्णा तीजको सोनगढ़में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषदका वार्षिक अधिवेशन पं. श्री कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री (बनारस)की अध्यक्षतामें हुआ। उस अधिवेशनका प्रसंग अत्यन्त प्रभावशाली था। सोनगढ़का अध्यात्ममय वातावरण देखकर तथा पूज्य गुरुदेव द्वारा हो रही दिगम्बर जैनधर्मकी अध्यात्मतत्त्वप्रचार-प्रमुख अभिवृद्धिको देखकर सभी विद्वान खूब ही प्रभावित हुए थे।

पूज्य गुरुदेवका समग्र जीवन ब्रह्मचर्यके अद्भुत तेजसे अतिशय देदीप्यमान था। उनको पहलेसे ही ब्रह्मचर्यका असीम प्रेम था। दीक्षित पर्यायमें उन्हें मात्र शास्त्रस्वाध्याय एवं तत्त्वचिंतनकी ही धुन रहती थी। चारित्रका पालन भी वे सख्तीसे करते थे; स्त्रियोंके प्रति न तो वे कभी दृष्टि डालते और न ही कभी उनसे वार्तालाप करते थे। सम्प्रदायमें एक बार उनके गुरुने कहा : 'कानजी! इस बहिनको शास्त्रकी गाथा समझा दो।' पूज्य गुरुदेवने उनकी बातका अस्वीकार करते हुए सविनय कहा कि—'महाराज! स्त्रियोंके सम्पर्कमें आना पड़े ऐसा कोई कार्य मुझे कभी न सोंपे।' अहा! कैसा प्रबल वैराग्य! ब्रह्मचर्यका कैसा अद्भुत रंग! पूज्य गुरुदेव, स्त्रियोंके प्रति अत्यन्त उपेक्षावृत्तिसे, मात्र पुरुषोंकी सभा पर दृष्टि जाय इस प्रकार, प्रवचनमें कुछ टेढ़े पुरुषाभिमुख बैठते थे; स्त्रियोंको न तो कभी सम्बोधन करते और न उनके साथ कभी प्रश्नोत्तर। दो बारके प्रवचनोंके सिवा, तत्त्वचर्चा आदि पुंरुषोंके कार्यक्रममें स्त्रियोंको आनेका सख्त प्रतिबन्ध था। पुरुषोंके धार्मिक शिबिरोंमें भी स्त्रियोंको बैठनेकी गुरुदेव सख्त मनाई करते थे। अकेली तो नहीं, किन्तु एकसे अधिक स्त्रियाँ भी, साथमें पुरुषकी उपस्थितिके बिना, उनके दर्शन करने नहीं आ सकती थीं। कोई स्त्रियाँ भूलसे भी यदि, दो प्रवचन तथा जिनेन्द्रभक्तिके सिवा, तत्त्वचर्चा आदि अन्य कार्यक्रमोंमें आजायँ, तो पूज्य गुरुदेव जोरसे निषेध करते और उन्हें स्थान छोड़कर चले जानेको बाध्य होना पड़ता।

स्वानुभवसमृद्ध-शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानी ऐसे पूज्य गुरुदेवके ब्रह्मचर्यकी छाप समाज पर खूब पड़ती थी। उनके ब्रह्मचर्यमय आध्यात्मिक जीवनसे प्रभावित होकर निज हितार्थ कुछ कुमार भाइयोंने, अनेक कुमारिका बहिनोंने तथा अनेक दम्पतियोंने आजीवन ब्रह्मचर्यपालनकी प्रतिज्ञा ली थी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सं. २००५, कार्तिक शुक्ला त्रयोदशीके दिन छह कुमारिका बहिनोंने पूज्य गुरुदेवके समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा अंगीकार की। बादके वर्षोंमें क्रमशः ऐसी ही अन्य चौदह, आठ, नौ एवं ग्यारह कुमारिका बहिनोंने एक साथ, तथा अलग-अलग अन्य अनेक कुमारिका बहिनोंने भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर, पूज्य गुरुदेवके समक्ष ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा ली। अहा! वास्तवमें इस भौतिक विलास-प्रचुर युगमें वीतरागविज्ञानके अध्ययन हेतु प्रशममूर्ति स्वात्मज्ञ पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी कल्याणकारी शरणमें जीवनको वैराग्यमें ढालनेका यह अनुपम आदर्श पूज्य गुरुदेवके पुनीत प्रभावनायोगका एक विशिष्ट अंग है।

गुरुदेवका प्रभाव एवं अध्यात्मका प्रचार भारतमें शीघ्रतासे फैलने लगा। सौराष्ट्रमें जगह-जगह दिगम्बर जिनमन्दिरोंकी तैयारी होने लगी। लोगोंकी जिज्ञासा बढ़ती गई और अधिकाधिक जिज्ञासु सोनगढ आकर लाभ लेने लगे।

पूज्य गुरुदेवके पुनीत प्रभावसे सौराष्ट्र-गुजरातमें दिगम्बर वीतराग जैनधर्मके प्रचारका एक अद्भुत अमिट आन्दोलन फैल गया। जो मंगल कार्य भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवने गिरनार पर वादके समय किया था उसी प्रकारका दिगम्बर जैनधर्मकी सनातन सत्यताकी प्रसिद्धिका गौरवपूर्ण कार्य अहा! पूज्य गुरुदेवने श्वेताम्बर बहुल प्रदेशमें रहकर, अपने स्वानुभूतिमुद्रित सम्यक्त्वप्रधान सदुपदेश द्वारा हजारों स्थानकवासी-श्वेताम्बरोंमें श्रद्धाका परिवर्तन लाकर, सहजरूपसे तथापि चमत्कारिक ढंगसे किया। सौराष्ट्रमें नामशेष हो गये दिगम्बर जैनधर्मके—पूज्य गुरुदेवके प्रभावनायोगसे जगह-जगह निर्मित दिगम्बर मन्दिर, उनकी मंगल प्रतिष्ठाएँ तथा आध्यात्मिक प्रवचनों द्वारा हुए—पुनरुद्धारका युग आचार्यवर श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके मन्दिरनिर्माण-युगका स्मरण कराता है। अहा! कैसा अद्भुत आचार्यतुल्य उत्तम प्रभावनायोग!

पूज्य गुरुदेवने दो-दो बार विशाल मुमुक्षु-संघ सहित की पूर्व, उत्तर एवं दक्षिण भारतके जैन तीर्थोंकी यात्रा तथा उस अरसेमें पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे प्रवाहित सत्यतत्त्व-प्रकाशक प्रवचनों द्वारा हुई अभूतपूर्व प्रभावनाकी तो बात ही क्या! गाँव—गाँवमें भव्य स्वागत, चौराहे-चौराहे पर वधाई, उमड़ता हुआ मानवसमुदाय, श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करते अभिनन्दन-समारोह;—जैन जनतामें धर्मोत्साहकी ऐसी लहर फैल जाती मानों तीर्थंकरभगवानका समवसरण आया हो! गुरुदेवकी अध्यात्मतत्त्व सम्बन्धी गर्जना सुनकर विरोधी काँप उठते, हजारों जिज्ञासुओंके हृदय प्रभावित होकर नाच उठते! अहा! तीर्थयात्राके दौरान हुई धर्म प्रभावनाका आनन्दोल्लासकारी चित्र प्रत्यक्षदर्शी मुमुक्षुओंके स्मृतिपट पर आज भी अंकित हैं।

अहो! उस अभूतपूर्व यात्राका क्या वर्णन हो सके! गुरुदेव जहाँ-जहाँ पधारते वहाँ ऐसा भव्य स्वागत होता कि वहाँकी अजैन जनता भी आश्चर्यमग्न हो जाती और प्रमोदमें बोल उठती कि—अहा कौन हैं यह सन्त पुरुष? अपनी नगरीमें हमने ऐसा भव्य और विशाल स्वागत नहीं देखा। इन्दौरमें हुआ असाधारण भव्य स्वागत तो विशिष्टरूपसे अविस्मरणीय है! पूज्य गुरुदेवके मंगल पदार्पणसे सर सेठ श्री हुकमचन्दजी तो अत्यन्त आनंदित हुए थे और उन्होंने अति आनन्दविभोर होकर हाथी-घोड़े तथा उनका सोने-मखमलका सारा कीमती साज-सामान पूज्य गुरुदेवकी स्वागतयात्राकी विशिष्ट शोभा हेतु निकालनेका अपने लोगोंको आदेश दिया था। इन्दोरमें हुए पूज्य गुरुदेवके प्रवचन भी कोई अद्भूत थे। पण्डित, त्यागी और समाज खूब प्रभावित हुए थे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सं. २०१३, फाल्गुन शुक्ला सप्तमीके दिन पूज्य गुरुदेवने लगभग दो हजार भक्तों सहित श्री सम्मेदशिखरकी जीवनमें प्रथम बार यात्रा की। (दूसरी बार सं. २०२३ में की) अहा! पहली टोंक पर—श्री कुन्थुनाथ भगवानकी टोंक पर—पूज्य गुरुदेवने सम्मेदशिखर तीर्थकी, वहाँसे मोक्ष पधारे तीर्थंकरों तथा सामान्य केवलियोंकी, निर्वाणधामके रूपमें सम्मेदशिखरकी शाश्वतताकी एवं तीर्थयात्राकी, अध्यात्मसाधनाके साथ सुसंगत जो अद्भुत महिमा बतलायी थी उस मधुर प्रसंगका सुस्मरण आज भी भक्तोंको आनन्दित कर देता है। मधुवनमें पाँचेक हजार श्रोताओंकी सभामें जो अद्भुत प्रवचनधारा बहती उससे विद्वान तथा त्यागी भी प्रभावित होते थे। इन्दौरनिवासी पं. श्री बंशीधरजी न्यायाचार्यने अपने भावभीने भाषणमें गद्गद्भावसे साहसपूर्वक समाजसे स्पष्ट कहा था कि—अनन्त चौबीसीके तीर्थंकरों तथा आचार्योंने सत्य दिगम्बर जैनधर्मको अर्थात् मोक्षमार्गको प्रगट करनेवाला जो सन्देश दिया था वह इन कानजीस्वामीकी वाणीमें हमें सुनायी दे रहा है।

सं. २०१५में करीब सातसौ भक्तों सहित गुरुदेवने दक्षिण भारतके जैन तीर्थोंकी मंगल यात्रा हेतु प्रस्थान किया। कुन्दाद्रि, रत्नप्रतिमाओंका धाम मूडबिद्री, विश्वविख्यात बाहुबलिधाम—श्रवणबेलगोला, कुंदकुंदाचार्यदेवकी तपोभूमि पोन्नूर आदि दक्षिण भारतके तथा मध्य भारतके अनेक तीर्थधामोंकी अति आनन्दपूर्वक मंगल यात्रा की। प्रवासके मार्गमें आनेवाले अनेक छोटे-बड़े नगरोंमें अध्यात्मविद्याकी वर्षा की। गाँव-गाँवमें भव्य स्वागत एवं अभिनन्दन-समारोह हुए। पूज्य गुरुदेवके दक्षिण भारतमें पदार्पणसे वहाँका समाज अति आनन्दित हुआ था और लोग उल्लास व्यक्त करते थे कि—जिस प्रकार श्री भद्रबाहुस्वामी हजारों शिष्यों सहित उत्तर भारतसे पधारे थे, उसी प्रकार अहा! श्री कानजीस्वामी हजारों भक्तों सहित पश्चिम भारतसे दक्षिण भारतमें पधारे और धर्मका महान उद्योत किया। (वि. सं. २०२० में दक्षिण भारतकी दूसरी बार यात्रा की थी।)

अध्यात्ममूर्ति स्वानुभूतिसम्पन्न पवित्रात्मा पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावनागगनके धर्मोद्योतकारी अपार प्रसंगसितारोंको गिननेसे गिना नहीं जा सकता। एक घटना याद करो और दूसरी भूलो—ऐसी तो अनेक अद्भुत शासनप्रभावनापूर्ण घटनाओंसे पूज्य गुरुदेवका जीवन विभूषित है। सोनगढ पूज्य गुरुदेवके पावन सत्समागम तथा प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी पवित्र छायामें अध्यात्मतत्त्वाभ्यासपूर्वक जीवन जीने हेतु, गुरुदेवके समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा अंगीकार करके, रहनेवाली कुमारिका ब्रह्मचारिणी बहिनोंके लिये 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविकाब्रह्मचर्याश्रम'की स्थापना हुई; संगमरमरनिर्मित गगनचुम्बी भव्य मानस्तंभ, श्री महावीर भगवानके विशाल भव्य जिनबिम्बयुक्त तथा समयसारादि परमागमोंकी सुन्दर कारीगरीसे अत्यंत सुशोभित अनुपम एवं अद्भुत 'श्री महावीरकुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागममन्दिर' आदिके निर्माणकार्य हुए तथा उनके प्रतिष्ठामहोत्सव मनाये गये; सौराष्ट्र, गुजरात और हिन्दीभाषी प्रदेशोंमें अनेक नगरों एवं ग्रामोंमें मुमुक्षुमण्डलोंकी स्थापना हुई, दिगम्बर जिनमन्दिर तथा समवसरण आदि रचे गये और उनकी भव्य प्रतिष्ठाएँ हुईं; तथा विदेश (नाइरोबी) प्रवास और वहाँ दिगम्बर जिनमन्दिरकी भव्य प्रतिष्ठा तथा अध्यात्मतत्त्वोपदेश द्वारा सनातन सत्य जैनधर्मका प्रचार हुआ।—इस प्रकार पूज्य गुरुदेवके पावन प्रभावना-उदययोगमें विविधरंगी धर्मोद्योत हुआ। अहा! पूज्य गुरुदेव द्वारा हुए धर्मप्रभावनाके उन पावन प्रसंगोंके संस्मरण आज भी भक्तोंके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तनको रोमांचित तथा मनको प्रफुल्लित कर देते हैं! वास्तवमें पूज्य गुरुदेवने इस युगमें एक प्रभावक आचार्य जैसा अद्‌भुत एवं अनुपम कार्य किया है।

पूज्य गुरुदेवके पुनित प्रतापसे सोनगढका जीवन ही जगतसे बिलकुल निराला था। प्रतिदिन प्रातः देव-गुरुके दर्शन, जिनेन्द्रपूजा, दो बार पूज्य गुरुदेवके अध्यात्मरस झरते प्रवचन, जिनेन्द्रभक्ति, भगवानकी आरती और तत्त्वचर्चा आदि कार्यक्रम नियमित चलते थे; तदुपरान्त सत्साहित्यकी—मूल शास्त्रों तथा प्रवचनोंकी—लाखों पुस्तकें और 'आत्मधर्म' पत्र प्रकाशित हुए। सोनगढमें तथा सौराष्ट्र, गुजरात और भारतके अन्य नगरोमें अनेक पंचकल्याणकपुरस्सर जिनबिम्ब-प्रतिष्ठाएँ, वेदी-प्रतिष्ठाएँ हुई। उस हेतु तथा तीर्थयात्राके निमित्तसे भारतवर्षमें अनेक बार गुरुदेवके जिनशासनप्रभावकारी मंगलविहार हुए, लाखों लोगोंने गुरुदेवकी अश्रुतपूर्व अध्यात्मदेशना श्रवण की और हजारों लोगोमें धार्मिक रुचि उत्पन्न हुई! इस तरह विविध प्रकारसे कल्पनातीत व्यापक धर्मोद्योत गुरुदेव द्वारा हुआ।

यह असाधारण धर्मोद्योत स्वयमेव बिना-प्रयत्नके साहजिक रीतिसे हुआ है। गुरुदेवने धर्मप्रभावनाके लिये कभी किसी योजनाका विचार नहीं किया था। मन्दिर बनवानेकी, प्रतिष्ठाएँ करानेकी, पुस्तकें छपवानेकी या धार्मिक शिक्षण-शिबिर चलानेकी-ऐसी किसी प्रकारकी प्रवृत्तियोंमें वे कभी नहीं पड़ते थे। वह उनकी प्रकृतिमें ही नहीं था। मुनिको कोई कर्मप्रक्रमके परिणाम नहीं होते अर्थात् मुनि किसी प्रवृत्तिका कार्यभार नहीं लेते–इस प्रवचनसारकी बातका विवरण करते हुए, मानों अपने हृदयकी बात शास्त्रमेंसे निकल आयी हो इस प्रकार, वे बड़े प्रफुल्लित हो उठते थे। उनका समग्र जीवन निजकल्याणसाधनाको समर्पित था! जगत जगतकी जाने, मुझे अपना करना है—यह उनका हृदय था। 'आप मूए सब डूब गई दुनिया' यह कबीरने गाया है परन्तु गुरुदेवको तो जीवित ही 'मेरे लिये कोई है नहि दुनिया' ऐसी परिणति जीवनमें ओतप्रोत हो गई थी। अहा! कैसी आश्चर्यकारी निस्पृह दशा!

जिन्होंने जो सुधाझरती आत्मानुभूति प्राप्त की थी, जिन कल्याणकारी तथ्योंको आत्मसात् किया था, उसकी अभिव्यक्ति 'वाह! ऐसी वस्तुस्थिति!' ऐसे विविध प्रकारसे सहजभावसे उल्लासपूर्वक उनसे हो जाती, जिसकी गहरी आत्मार्थप्रेरक छाप श्रोताओंके हृदयपट पर अंकित हो जाती। मुख्यतया इस प्रकार उनके द्वारा सहजरूपसे धर्मका उद्योत हो गया था।

पूज्य गुरुदेवके निमित्तसे ऐसी प्रबल बाह्य प्रभावना होने पर भी वह स्वयं सहजरूपसे हो गई थी। गुरुदेवको बाह्यमें किंचित् मात्र रस नहीं था। उनका जीवन तो आत्माभिमुख था। उनका दैनिक क्रम प्रायः निज ज्ञान, ध्यान एवं शास्त्रस्वाध्यायमें व्यतीत होता था। देवदर्शन, शास्त्रप्रवचन, जिनेन्द्रभक्ति और तत्त्वचर्चाके सिवा अन्य प्रवृत्तिके प्रति उपेक्षाभाव वर्तता था। न कभी किसीके साथ इधर-उधरकी बातें करते और न कभी पुस्तक प्रकाशनादि बाह्य कार्योंमें रुचि बतलाते। गुरुदेवकी परिणति ऐसी आत्मोन्मुख एवं वैराग्यपरिणत थी कि उन्हें सरस-नीरस आहारके प्रति लक्ष भी नहीं जाता था। वे हमेशा सादा आहार लेते थे। जो भी आहार आये उसे उपेक्षित एवं उदासीन भावसे ग्रहण कर लेते थे। उनका जीवन मात्र आत्माभिमुख था। वे जगतसे बिलकुल उदास–उदास थे। गुरुदेवके परम पावन आदर्श जीवनसे, उनकी पवित्र आत्मसाधनासे, प्रभावित होनेके कारण जिज्ञासुओंके दल हजारोंकी संख्यामें पूज्य गुरुदेवकी अध्यात्मरसझरती वाणीके प्रति आकर्षित हुए। हजारों भक्तोंके श्रद्धाजीवन एवं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भक्तिजीवन गुरुदेवके पुनीत चरणोंमें अर्पित हुए। अहा! गुरुदेवके प्रतापसे, मरुस्थलमें मीठे कुएकी भाँति, पंचम कालके इस भौतिक विलासके विषमय युगमें चतुर्थ कालका अंश–धर्मकालका प्रवर्तन हुआ। वास्तवमे गुरुदेवने इस कालमें अनेकान्तसुसंगत शुद्धात्मविद्याके नवयुगका प्रवर्तन किया है।

सचमुच तो पूज्य गुरुदेव इन सब कार्योंके 'कर्त्ता' थे ही नहीं, वे तो अंतरसे केवल उनके 'ज्ञाता' ही थे। उनकी दृष्टि और जीवन आत्माभिमुख था। बाह्य कार्य तो 'अकर्ता'भावसे–ज्ञाताभावसे सहजरूपसे हो गये थे। स्वानुभूतिसमन्वित भेदज्ञानधारामेंसे प्रवाहित शुद्धात्मदृष्टिजनक अध्यात्मोपदेश द्वारा आत्मकल्याणका मार्ग बतलाया यही वास्तवमें उनका हमारे ऊपर असाधारण महान-महान मुख्य उपकार है। वे बारम्बार कहते थे––अल्पायुषी मनुष्यभवमें निज कल्याण साधना तथा उसके कारणभूत सम्यग्दर्शन प्राप्त करना ही परम कर्तव्य है। सम्यग्दर्शनका माहात्म्य अपार है।

श्रीमद्राजचंद्रजीने कहा है 'अनंत कालसे जो ज्ञान भवहेतु होता था उस ज्ञानको एक समयमात्रमें जात्यन्तर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शनको नमस्कार।' अरेरे! इस भवान्तकारी सम्यग्दर्शन––निजशुद्धात्मदर्शन––विना अनादिकालसे अनन्त-अनन्त जीव संसारपरिभ्रमणके दुःख भोग रहे हैं। जीव चाहे जितने व्रत-तपादि क्रियाकाण्ड करे या शास्त्रोंका ज्ञान कर ले, किन्तु जब तक रागकी और परलक्षी ज्ञानकी दृष्टि तथा उसकी महिमा छोड़कर भीतर त्रैकालिक आत्मस्वभावकी महिमा न समझे, अन्तर्मुख दृष्टि न करे तब तक उसकी गति संसारकी ओर है। उसमेंसे जो कोई विरल जीव सुगुरुगमसे तत्त्वको समझकर अपूर्व पुरुषार्थपूर्वक अपनी परिणति अन्तर्मुख करके सम्यग्दर्शन––निज शुद्धात्मानुभूति––प्राप्त कर ले उसीने वास्तवमें, संसारमार्ग पर चले जानेवाले विशाल पान्थसमुदायसे अलग होकर, मोक्षमार्ग पर अपना प्रयाण प्रारंभ किया है। भले ही वह धीमी गतिसे चलता हो, असंयमदशा हो, अंतरमें साधनाका––स्थिर हो जानेका उग्र पुरुषार्थ न हो, तथापि उसकी दिशा मोक्षके ओरकी है, उसकी जाति मोक्षमार्गीकी है। सम्यग्दर्शनका ऐसा अद्भुत माहात्म्य कल्याणार्थीके हृदयमें उतर जाना चाहिये।

अहा! मात्र सम्यग्दृष्टि होनेका इतना माहात्म्य है, तो फिर भवसागर पार कर लेनेका अमोघ उपाय बतलानेवाले ऐसे प्रत्यक्ष–उपकारी सम्यग्दृष्टिके माहात्म्यकी तो बात ही क्या? ऐसे अपने परम-उपकारी सम्यग्दृष्टि सातिशयमाहात्म्यवन्त कृपालु कहानगुरुदेवके प्रति अपना सर्वस्व न्योच्छावर कर दें तो वह भी कम है।

पूज्य गुरुदेवने 'भगवान आत्मा....भगवान आत्मा....ज्ञायक' ऐसी ज्ञायकदेवकी मधुर ध्वनि सदैव जीवन्तपर्यन्त गुँजायी। भौतिक जगतमें जहाँ विशाल जनसमुदाय आत्माके अस्तित्व सम्बन्धमें भी शंकाशील है, वहाँ गुरुदेवने युक्ति तथा स्वानुभवके अत्यन्त बलपूर्वक भेरी बजाई कि––एक ज्ञायक आत्मा ही मैं हूं, मैं सर्वके उपर तैरता परम पदार्थ हूँ। वे आत्माकी मस्तीमें गाते थे कि––'परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उलंघी हो जाय जिनेश्वर'। उन्हें आश्चर्य होता कि–यह, भीतर दृष्टिके समक्ष ही, परम निधान––समृद्धिसे भरपूर ज्ञायकतत्त्व––विद्यमान है उसका उल्लंघन करके–उसे लाँघकर–जगत क्यों चला जाता है? 'यह वस्तु सच्ची', 'यह वस्तु यहाँ यह दिख रही' इस प्रकार दृश्य वस्तुको वह देखता है, किन्तु उसके देखनेवालेको वह क्यों नहीं देखता? क्यों उसे लाँघकर चला जाता है?

T-4.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्व दृश्य वस्तुओंके द्रष्टाकी—परम-निधानकी—स्वानुभवयुक्त प्रतीति गुरुगमसे होती है। अहा! ऐसे उस पवित्र गुरुगमके दाता अपने परमोपकारी गुरुदेव अपनेको परम सौभाग्यसे प्राप्त हुए।

पूज्य गुरुदेव कहते थे कि—विश्वके सर्व द्रव्य परिपूर्ण स्वतंत्र हैं। सभी द्रव्योंके गुण-पर्याय अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भिन्न-भिन्न हैं। आत्मद्रव्यका शरीरादि पर द्रव्योंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा अन्य पदार्थोंसे बिलकुल भिन्न रहकर अपने शुभ, अशुभ या शुद्ध भावको स्वयं ही करता है। यहां स्वाभाविकरूपसे ही प्रश्न होता है कि "(श्री प्रवचनसार–शास्त्रमें कहे अनुसार) शुभ या अशुभ परिणमनमें 'शुभ या अशुभ' आत्मा बने"—ऐसा आप कहते हैं और साथ ही "आत्मा 'सदा शुद्ध' रहता है, जिस शुद्धताका आश्रय करना मोक्षमार्ग है"—ऐसा भी आपका कहना है; इन दोनों बातोंका मेल किस प्रकार है।

इस अत्यन्त-अत्यन्त महत्वकी बातका स्पष्टीकरण गुरुदेव इस प्रकार करते थेः—स्फटिकमणि लाल वस्त्रके संयोगसे लाल होता है तब भी उसकी निर्मलता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई है, सामर्थ्य-अपेक्षासे—शक्ति-अपेक्षासे वह निर्मल रहा है; वह लालीरूप अवश्य परिणमित हुआ है, वह लाली स्फटिककी ही है, वस्त्रकी बिलकुल नहीं; परन्तु वह लाली लालरंगके चूरेकी, हिंगड़ेकी या कुकुंमकी लाली जैसी नहीं है; लाल दशाके समय भी सामर्थ्यरूप निर्मलता विद्यमान है। उसी प्रकार आत्मा कर्मके निमित्तसे शुभभावरूप या अशुभभावरूप होता है तब भी उसकी शुद्धता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई है, सामर्थ्य-अपेक्षासे—शक्ति-अपेक्षासे वह शुद्ध रहा है; वह शुभाशुभभावरूप अवश्य परिणमित हुआ है, वह शुभाशुभपना आत्माका ही है, कर्मका बिलकुल नहीं; परन्तु शुभाशुभ दशाके समय भी सामर्थ्यरूप शुद्धता विद्यमान है। जिस प्रकार स्फटिकमणिको लाल हुआ देखकर कोई बालक रोने लगे कि 'अरेरे! मेरा स्फटिकमणि सर्वथा मैला हो गया', किन्तु जौहरी तो उस लालीके समय ही विद्यमान निर्मलताकी मुख्यतापूर्वक जानता होनेसे वह निर्भय रहता है; उसी प्रकार आत्माको शुभाशुभभावरूप परिणमता देखकर अज्ञानी उसे सर्वथा मलिन हुआ मानकर दुःखी-दुःखी हो जाता है, परन्तु ज्ञानी शुभाशुभपनेके समय ही विद्यमान शुद्धताको मुख्यतापूर्वक जानता होनेसे वह निर्भय रहता है।

सामर्थ्य कहो, शक्ति कहो, सामान्य कहो, ज्ञायक कहो, ध्रुवत्त्व कहो, द्रव्य कहो या परमपारिणामिक भाव कहो—यह सब एकार्थ हैं ऐसा गुरुदेव कहते थे।

आत्मा 'भविष्यमें' सर्वज्ञ होगा, सम्पूर्ण सुखी होगा, निर्विकारी होगा ऐसा नहीं, किन्तु 'वर्तमानमें ही' वह सामर्थ्य-अपेक्षासे सम्पूर्ण विज्ञानघन है, अनन्तानन्दका पिण्ड है, निर्विकारी है, जिसकी ज्ञानीको स्पष्ट अनुभवसहित प्रतीति होती है। गुरुदेव कहते कि—**'तेरो सरूप न दुंदकी दोहीमें, तोहीमें है तोही सूझत नाहीं'**। तेरा स्वरूप राग-द्वेषादि द्वन्द्वकी दुविधामें नहीं है, इसी समय राग–द्वेष रहित है; उसकी सूझसे ही मोक्षमार्ग प्रारम्भ होता है। उसकी सूझके बिना तू संसारमें परिभ्रमण करता है।

सामर्थ्यरूप (शक्तिरूप) शुद्धत्त्वके–ध्रुवत्त्वके भान बिना शुद्ध परिणति नहीं होती। ध्रुवत्व अर्थात् अन्वयका अर्थ मात्र 'वह....वह....वह' इतना ही नहीं, किन्तु केवलज्ञान सामर्थ्यसे भरपूर, अनन्तसुखसामर्थ्यसे भरपूर, अनन्तवीर्यादिसामर्थ्यसे भरपूर ऐसा 'वह..वह...वह'—ऐसा अन्वय, ऐसा सामान्य, ऐसा परमपारिणामिक भाव, ऐसा ज्ञायक। ऐसे शुद्धज्ञायकका गुरुदेव सतत अनुभव कर रहे थे इससे उनको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निरन्तर आंशिक शुद्धपरिणति वर्तती थी। उनके साथ वर्तनेवाला प्रयोजनभूत विषयोंका-द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्व, निश्चय–व्यवहार, उपादान-निमित्त, मोक्षमार्ग इत्यादिका—ज्ञान भी उनको विशदतापूर्वक सम्यक्रूपसे परिणमता था जिससे शास्त्रोंके लुप्तप्राय हो गये सच्चे भाव उनके द्वारा खुले और जगतमें खूब प्रचलित हुए।

वे कहते थे कि—'अहो जीवों! अशुभ तथा शुभ दोनों भाव बन्धके कारण हैं, मोक्षके नहीं।' 'तो मोक्षका कारण कौन?' 'शुद्ध भाव।' 'कषाय कम करें उतना तो शुद्ध भाव होगा न?' दृढतासे उत्तर मिलता कि 'वह तो शुभ भाव है; निरन्तर शुद्ध ऐसे निज आत्मपदार्थको श्रद्धना–जानना और उसमें लीन होना वह शुद्ध भाव है'। 'अशुद्धभावके समय भी शुद्ध? अशुद्ध और शुद्ध एकसाथ कैसे हो सकते हैं?' 'हो सकते हैं। **यद् विशेषेपि सामान्यं एकमात्रं प्रतीयते।** अशुद्ध विशेषोंके समय भी सामान्य तो एकरूप —शुद्धरूप रहता है।' शुभाशुभ पर्यायके समय भी भीतर स्वभावमें सामर्थ्यरूपसे परिपूर्ण भरपूर शुद्धता भरी पड़ी है वह बात, श्री पंचाध्यायीके **'सन्त्येनकेत्र दृष्टान्ता हेमपद्मजलाऽनलाः। आदर्शस्फटिकाश्मानौ बोधवारिधिसैन्धवाः॥'**—इस श्लोकमें कहे गये सुवर्ण, कमल, जल, अग्नि, दर्पण, स्फटिकमणि, ज्ञान, समुद्र एवं लवणके दृष्टांतो द्वारा गुरुदेव समझाते थे। विशेष-अपेक्षासे होनेवाली अशुद्धताके समय भी सामान्य अपेक्षासे रहनेवाली द्रव्यकी शुद्धता समझाते हुए गुरुदेव कहते कि—द्रव्य-अपेक्षासे वर्तमानमें शुद्धता विद्यमान न हो तो किसीकाल पर्यायशुद्धता हो ही नहीं सकती। जहाँ अज्ञानी विशेषोंका आस्वादन करते हैं वहीं ज्ञानी सामान्यके आविर्भावपूर्वक स्वाद लेते हैं। यही संक्षेपमें बन्धमार्ग और मोक्षमार्गका मूलभूत रहस्य है।

पूज्य गुरुदेवने भारतवर्षमें सम्यग्दर्शन एवं स्वानुभूतिकी महिमाका पावन युगप्रवर्तन किया।

जिस प्रकार श्री प्रवचनसारमें आचार्यभगवानने जगतके समक्ष घोषित किया है कि 'श्रामण्यको अंगीकार करनेका जो यथानुभूत—हमने स्वयं अनुभव किया हुआ—मार्ग उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं', उसी प्रकार अध्यात्मविद्या–युगस्रष्टा पूज्य गुरुदेवने भी स्वयं अनुभव करके अत्यन्त दृढतापूर्वक सिंहनाद किया कि 'अनुभव करके कहते हैं कि स्वानुभूतिका मार्ग ही मोक्षका उपाय है, तुम निर्भयरूपसे इस मार्ग पर चले आओ।'

स्वानुभूति होने पर जीवको कैसा साक्षात्कार होता है। उस सम्बन्धमें गुरुदेव कहते थे कि—स्वानुभूति होने पर, अनाकुल–आह्लादमय, एक, समस्त विश्व पर तैरता विज्ञानघन परमपदार्थ—परमात्मा अनुभवमें आता है। ऐसे अनुभव बिना आत्मा सम्यक्रूपसे देखनेमें—श्रद्धनेमें ही नहीं आता; इसलिये बिना स्वानुभूतिके सम्यग्दर्शनका—धर्मका प्रारम्भ ही नहीं होता।

ऐसी स्वानुभूति प्राप्त करनेके लिये जीवको क्या करना? स्वानुभूतिकी प्राप्तिके लिये ज्ञानस्वभावी आत्माका किसी भी प्रकार निर्णय करनेको गुरुदेव भारपूर्वक कहते थे। ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करनेमें सहायभूत तत्त्वज्ञानका—द्रव्योंका स्वयंसिद्ध सतपना और स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्वोंका सच्चा स्वरूप, जीव और शरीरकी बिलकुल भिन्न भिन्न क्रियाएँ, पुण्य और धर्मके लक्षणभेद, निश्चय-व्यवहार इत्यादि अनेक विषयोंके सच्चे बोधका—गुरुदेवने भारतव्यापी प्रचार किया। तीर्थंकरदेवों द्वारा कहे गये ऐसे अनेक सत्य तो गुरुदेव द्वारा विविध माध्यमोंसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकाशित हुए ही; साथ ही साथ सर्व तत्त्वज्ञानका सिरमौर—मुकुटमणि जो शुद्धद्रव्यसामान्य अर्थात् परमपारिमाणिक भाव अर्थात् ज्ञायकस्वभावी शुद्धात्मद्रव्यसामान्य—जो स्वानुभूतिका आधार है, सम्यग्दर्शनका आश्रय है, मोक्षमार्गका आलम्बन है, सर्व शुद्धभावोंका नाथ है—उसे बाहर लाकर पूज्य गुरुदेवने अथाह उपकार किया है।

जीव परद्रव्यकी क्रिया तो नहीं करता, किन्तु विकारकालमें भी स्वभाव-अपेक्षासे निर्विकार रहता है, अपूर्ण दशाके समय भी परिपूर्ण रहता है, सदाशुद्ध है, कृतकृत्य भगवान है। जिस प्रकार रंगित दशाके समय स्फटिकमणिके विद्यमान निर्मल स्वभावकी प्रतीति हो सकती है, उसीप्रकार विकारी, अपूर्ण दशाके समय भी जीवके विद्यमान निर्विकारी, परिपूर्ण स्वभावकी प्रतीति हो सकती है। ऐसे शुद्धस्वभावके अनुभव बिना मोक्षमार्गका प्रारम्भ भी नहीं होता, मुनिपनेका पालन भी नरकादिक दुःखोंके भयसे या अन्य किसी हेतुसे किया जाता है। 'मैं कृतकृत्य हूँ, परिपूर्ण हूँ, सहजानन्द हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिये' ऐसी परम उपेक्षारूप, सहज उदासीनतारूप, स्वाभाविक तटस्थतारूप मुनिपना द्रव्यस्वभावके अनुभव बिना कभी नहीं आता। ऐसे शुद्धद्रव्य–स्वभावके—ज्ञायकस्वभावके निर्णयके पुरुषार्थकी ओर, उसकी लगनकी ओर आत्मार्थियोंको मोड़कर, भवभ्रमणसे आकुलित मुमुक्षुओं पर गुरुदेवने अकथ्य उपकार किया है।

जिस प्रकार पूज्य गुरुदेवका तात्त्विक उपदेश हमें सत्य मार्गकी ओर उन्मुख करता है उसी प्रकार उनके ध्येयनिष्ठ जीवनका प्रत्यक्ष परिचय, उनका सत्संग हमारे समक्ष आत्मार्थीजीवनका आदर्श उपस्थित करके हमें पुरुषार्थकी प्रेरणा देता था। 'इस महँगे मनुष्यभवमें भवभ्रमणके अन्तका ही उपाय करना' यह एक ही जीवनध्येय गुरुदेवका पहलेसे ही था। उस ध्येयको उन्होंने समग्र जीवन समर्पित किया था। उसीके लिये अध्ययन, उसीका मंथन, उसीका प्रयत्न, वही उपदेश, वही बात, वही चर्चा, वही धुन, उसीके स्वप्न, उसीकी भनक,—उनका समस्त जीवन उसी हेतु था। गत अनेक वर्षोंमें जगतमें विविध आन्दोलन आये और गये, अनेक राजकीय, सामाजिक, धार्मिक झंझावात हुए, किन्तु मेरु समान अचल गुरुदेवके ध्येयनिष्ठ जीवनको वे लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर सके। 'इस एक भवके सुखाभासके हेतु कल्पित व्यर्थ प्रयत्नसे क्या लाभ? मुझे तो एक भवमें अनन्त भवोंका अन्त करना है' ऐसे भावपूर्वक, फिर जन्म न हो उसके उपायकी धुनमें वे निज अन्तर्मुख जीवनमें अत्यन्त लीन रहे।भवन्तके उपायके सिवाय अन्य सब उन्हें अत्यन्त तुच्छ लगता था।

पूज्य गुरुदेवका अंतर सदा 'ज्ञायक....ज्ञायक....ज्ञायक, ध्रुव....ध्रुव....ध्रुव, शुद्ध...शुद्ध...शुद्ध, परमपारिणामिकभाव'—इस प्रकार त्रैकालिक ज्ञायकके आलम्बनभावसे निरन्तर–जागृतिमें या निद्रामें—परिणमित हो रहा था। श्री समयसार, नियमसारादिके प्रवचन करते हुए या चर्चा–वार्तामें वे ज्ञायकके स्वरूपका और उसकी महिमाका मधुर संगीत गाते ही रहते थे। अहो! वे स्वतंत्रता और ज्ञायकके उपासक गुरुदेव! उन्होंने मोक्षार्थीयोंको सच्चा मुक्तिका मार्ग बतालाया!

ज्ञायक तणी वार्ता करे, ज्ञायक तणी दृष्टि धरे,
निजदेह–अणुअणुमां अहो! ज्ञातृत्वरस भावे भरे;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

ज्ञायकमहीं तन्मय बनी ज्ञातृत्वने फेलावतो,
काया अने वाणी-हृदय ज्ञातृत्वमां रेलावतो।

—ऐसे ज्ञायकोपासक थे अपने गुरुदेव।

वे द्रव्य-अपेक्षासे 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' ऐसा अनुभवते थे तथापि पर्याय-अपेक्षासे 'हम कब सिद्धपना प्रगट करेंगे!' इस प्रकार भावना भी भाते थे। सिद्धत्वकी तो क्या, किन्तु संयमकी भावनारूप भी वे परिणमते थे। 'कल्पवृक्ष सम संयम केरी अति शीतल जहँ छाया जी, चरणकरणगुणधार महामुनि मधुकर मन लोभायाजी' ऐसे अनेक बार भावविभोर ललकारसे तथा 'अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे? क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जो?...' इस प्रकार हृदयकी गहराईसे दैनिक प्रवचनोमें तथा श्री जिनबिम्ब–प्रतिष्ठामें दीक्षाकल्याणकके प्रासंगिक प्रवचनमें विविध प्रकारसे संयमकी भावना भाते हुए गुरुदेवकी पावन मूर्ति भक्तोंकी दृष्टि समक्ष तैरती है।

'सिद्धसमान अपनेको पूर्ण शुद्ध देखें—मानें तथापि संयमकी भावना भायें?' हाँ; शक्ति-अपेक्षासे परिपूर्ण शुद्ध अपनेको देखते–मानते हुए भी व्यक्ति–अपेक्षासे शुद्ध होनेकी भावना ज्ञानीको अवश्य होती है। गुरुदेव ऐसी शास्त्रोक्त यथार्थ संधिबद्ध सम्यक् परिणतिरूप परिणमित हो रहे थे। वास्तवमें तो शुद्धस्वरूपके दृष्टा सम्यग्दृष्टि जीवको ही सच्ची संयमकी भावना होती है, क्योंकि वह संयमपरिणतिका सच्चा स्वरूप जानता है। मिथ्यादृष्टिको सच्ची संयमकी भावना होती ही नहीं, क्योंकि उसे सच्चे संयमकी खबर नहीं है।

'बहिनश्री के वचनामृत'के ३०८वें बोलमें कहा है कि :—'जिस प्रकार सुवर्णको जंग नहीं लगता, अग्निको दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती।' जिस प्रकार पूज्य गुरुदेव शक्ति-अपेक्षाके इस बोलका बारम्बार उल्लासपूर्वक स्मरण करते थे, उसी प्रकार व्यक्ति–अपेक्षाका सिद्धत्व प्राप्त करनेकी भावनाका ४०१ वाँ बोल भी अनेक बार उल्लसितभावसे याद करके प्रसन्नतापूर्वक कहते थेः—देखो! बहिन कैसी भावना भाती हैं? 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है।...अब हम स्वरूपस्वदेशकी ओर जा रहे हैं। हमें त्वरासे अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे बसना है जहाँ सब हमारे हैं।

ऐसा अनेकान्तसुसंगत यथार्थ संधिवाला पूज्य गुरुदेवका जीवन हमें सच्चा मार्ग बतला रहा है। वह पवित्र जीवन हमें किन्हीं भी शुभ भावोंमें संतुष्ट न होकर ध्रुव तत्त्वके आलम्बनके पुरुषार्थकी प्रबल प्रेरणा दे रहा है; तथा 'मैं ध्रुव हूँ' ऐसी दृढताके साथ साथ 'हम अपने मूल वतनमें जानेके लिये तरस रहे हैं' ऐसी आर्द्रता भी रहना चाहिये, नहीं तो 'ध्रुव तत्त्व'की समझके प्रकारमें ही कुछ भूल है ऐसी चेतावनी देकर, दीपस्तम्भरूप रहकर, हमारी जीवननौकाको चट्टानी मार्गसे बचाकर, हमें सच्चे मार्ग पर लगाते हैं। श्री सद्गुरुदेवकी स्तुतिमें हम गाते हैं न—

भवजलधि पार उतारने जिनवाणी है नौका भली;
आत्मज्ञ नाविक योग बिन वह नाव भी तारे नहीं।

इसकालमें शुद्धात्मविद नाविक महा दुष्प्राप्य है;
मम पुण्यराशी फलि अहो! गुरुकहान नाविक आ मिले॥

—अहा! इस प्रकार परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेवका स्वानुभवविभूषित पवित्र जीवन तथा अध्यात्मोपदेश हमें अत्यन्त उपकारक हो रहे हैं।

वस्तुतः पूज्य गुरुदेवने स्वानुभूति प्रधानताके एक अद्भुत युगका प्रवर्तन किया है। **'मेरो धनी नहि दूर दिसंतर, मोहिमें है मोहि सूझत नीकै'** ऐसा प्रबल सिंहनाद करके गुरुदेवने सर्वज्ञ-वीतरागप्रणीत स्वानुभूतिप्रधान जिनशासनकी मन्द हुई ज्योतिमें नया तेल डालकर आत्मार्थी जीवों पर वास्तवमें महान अनहद उपकार किया है।

ऐसे चमत्कारपूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान-भक्तिके नवयुगका सृजन करनेवाले महान-महान उपकारी परमकृपालु परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीने जीवनके अन्तिम क्षण तक अपने स्वानुभवसमृद्ध ज्ञानभण्डारमेंसे भक्तोंको खूब–खूब दिया; भारतके सुपात्र जीवोंको निहाल कर दिया। ९१ वर्षकी उम्र तक अविरतरूपसे वीतराग–विज्ञानका वितरण किया। अन्तमें भक्तोंके भाग्य क्षीण हुए। वि. सं. २०३७ मगसिर कृष्णा सप्तमी, शुक्रवार (ता. २८–११–१९८०)के दिन भक्तोंके परमाधार गुरुदेवने भक्तोंको निराधार छोड़कर अंतर ज्ञायककी साधनायुक्त समाधिपरिणाममें स्वर्गकी ओर महाप्रयाण किया।

अहो! कृपालु गुरुदेवकी उपकारभरपूर महिमाका तो क्या वर्णन हो!

श्रीमद्राजचन्द्रजीने गुरुमहिमाका वर्णन करते हुए कहा है कि—

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिन्धु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार।

शुं प्रभुचरण कने धरुं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुए आपियो, वर्तुं चरणाधीन।

आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास, दास, हुं दास छुं, तेह प्रभुनो दीन।

परम कृपालु पूज्य गुरुदेवकी अपार उपकारमहिमा, उनकी परम-भक्त प्रशममूर्ति धन्यावतार आत्मज्ञानी पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके विविध प्रसंगो पर बोले गये शब्दोंमें कहकर पूज्य गुरुदेवका 'संक्षिप्त जीवनवृत्त तथा उपकार-गुणकीर्तन' समाप्त करता हूँ :—

"पूज्य कहानगुरुदेवसे तो मुक्तिका मार्ग मिला है। उन्होंने चारों ओरसे मुक्तिका मार्ग प्रकाशित किया है। गुरुदेवका अपार उपकार है। यह उपकार कैसे भूला जाय?

गुरुदेवका द्रव्य तो अलौकिक है। उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारी है।

परमउपकारी गुरुदेवका द्रव्य मंगल है, उनकी अमृतमयी वाणी मंगल है। वे मंगलमूर्ति हैं, भवोदधितारणहार हैं, महिमावन्त गुणोंसे भरपूर हैं।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूज्य गुरुदेवके चरणकमलकी भक्ति और उनका दासत्व निरन्तर हो।''

''तीर्थंकर भगवन्तो द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है ऐसा गुरुदेवने युक्ति-न्यायसे सर्व प्रकार स्पष्टरूपसे समझाया है। मार्गकी खूब छानवीन की है। द्रव्यकी स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्माका शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रतापसे इस काल सत्यरूपसे बाहर आया है। गुरुदेवकी श्रुतकी धारा कोई और ही है। उन्होंने हमें तरनेका मार्ग बतलाया है। प्रवचनमें कितना मथ-मथकर निकालते हैं! उनके प्रतापसे सारे भारतमें बहुत जीव मोक्षमार्गको समझनेका प्रयत्न कर रहें हैं। पंचम कालमें ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवनमें सब उपकार गुरुदेवका ही है। गुरुदेव गुणोंसे भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमलकी सेवा हृदयमें बसी रहे।''

''गुरुदेवने शास्त्रोंके गहन रहस्य सुलझाकर सत्य ढूँढ़ निकाला और हमारे सामने स्पष्टरूपसे रखा है! हमें कहीं सत्य ढूँढनेको जाना नहीं पड़ा। गुरुदेवका कोई अद्भुत प्रताप है। 'आत्मा' शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी गुरुदेवके प्रतापसे। 'चैतन्य हूँ', 'ज्ञायक हूँ',—इत्यादि सब गुरुदेवके प्रतापसे ही जाना है....।''

''...(श्री कहानगुरुदेवने) अपने सातिशय ज्ञान एवं वाणी द्वारा तत्त्वका प्रकाशन करके भारतको जागृत किया है। गुरुदेवका अमाप उपकार है। इस काल ऐसे मार्ग समझानेवाले गुरुदेव मिले वह अहोभाग्य है। सातिशय गुणरत्नोंसे भरपूर गुरुदेवकी महिमा और उनके चरणकमलकी भक्ति अहोनिंश अंतरमें रहो।''

—यह है प्रशममूर्ति भगवती पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके श्रीमुखसे विभिन्न अवसरों पर प्रवाहित, आध्यात्मिक युगपुरुष परम-कृपालु परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीकी उपकारगरिमायुक्त लोकोत्तर महिमा। ऐसे सातिशय महिमावन्त महापुरुषके पावन योगसे भारतवर्षका आध्यात्मिक क्षेत्र उज्वल हुआ है। शुद्धात्मदृष्टिका सुधापान करानेवाले इन तिरते पुरुषके सत्समागमका लाभ लेनेवाले महान भाग्यशाली बने हैं।

परमपूज्य परमोपकारी गुरुदेवके चरणोंमें—उनकी मांगलिक पवित्रताको, पुरुषार्थप्रेरक ध्येयनिष्ठ जीवनको, स्वानुभूतिमूलक सन्मार्ग-दर्शक उपदेशोंको और अनेकानेक उपकारोंको दृष्टि समक्ष रखकर—अत्यन्त भक्तिपूर्वक भावभीनी वन्दना हो। उनके द्वारा प्रकाशित स्वानुभूतिका पावन पंथ जगतमें सदा जयवन्त वर्ते और हमें सत्पुरुषार्थकी प्रेरणाका अमृतपान निरन्तर कराता रहे।

सोनगढ़
सं. २०३६, भाद्रपद कृष्णा दूज
पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी ८४वीं जयंती *—ब्र० चन्दुलाल खीमचन्द झोबालिया*

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

मंगलकारी 'तेज'दुलारी

मंगलकारी 'तेज'दुलारी पावन मंगल मंगल है;
मंगल तव चरणोंसे मंडित अवनी आज सुमंगल है,.....मंगल०

फाल्गुन कृष्णा दशमी मंगल, वांकानेर सुमंगल है,
मंगल मातपिता, कुल मंगल, मंगल धाम रु आंगन है;
मंगल ज्ञानमहोत्सवका यह अवसर अनुपम मंगल है,.....मंगल०

मंगल शिशुलीला अति उज्जवल, मीठे बोल सुमंगल हैं,
शिशुवयका वैराग्य सुमंगल, आतम-मंथन मंगल है;
आतमलक्ष लगाकर पाया अनुभव श्रेष्ठ सुमंगल है,.....मंगल०

सागर सम गंभीर मति-श्रुत ज्ञान सुनिर्मल मंगल है,
समवसरणमें कुंदप्रभुका दर्शन मनहर मंगल है;
सीमंधर-गणधर-जिनधुनिका स्मरण मधुरतम मंगल है,.....मंगल०

शशि-शीतल मुद्रा अति मंगल, निर्मल नैन सुमंगल हैं,
आसन-गमनादिक कुछ भी हो, शांत सुधीर सुमंगल हैं;
प्रवचन मंगल, भक्ति सुमंगल, ध्यानदशा अति मंगल है,.....मंगल०

दिनदिन वृद्धिमती निज परिणति वचनातीत सुमंगल है,
मंगलमूरति-मंगलपदमें मंगल-अर्थ सुवंदन है;
आशिष मंगल याचत बालक, मंगल अनुग्रहदृष्टि रहे,
तव गुणको आदर्श बनाकर हम सब मंगलमाल लहें.....मंगल०

વૈરાગી અંતર્મુખી, મંથન પારાવાર;જ્ઞાતાનું તલ સ્પર્શીને, કર્યો સફળ અવતાર

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ॐ

परमात्मने नमः।

श्री वचनामृत-प्रवचन

[तीसरा भाग]

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके वचनामृतों पर परमपूज्य
सद्गुरुदेव श्रीकानजीस्वामीके प्रवचन

प्रवचन–६१

दिनांक ११-६-७८

वचनामृत–२३२

ज्ञाताका ध्यान करते-करते आत्मा ज्ञानमय हो गया, ध्यानमय हो गया, एकाग्रतामय हो गया। अन्दर चैतन्यके नन्दनवनमें उसे सबकुछ मिल गया, अब बाहर क्यों जाये? ग्रहण करने योग्य आत्माको ग्रहण कर लिया, छोड़ने योग्य सब छूट गया; अब किसलिये बाहर जाये? २३२.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'ज्ञाताका ध्यान करते-करते आत्मा ज्ञानमय हो गया, ध्यानमय हो गया, एकाग्रतामय हो गया।'

भगवान आत्मा स्वयं पुण्य–पापसे भिन्न ज्ञातादृष्टा है और रागसे लेकर शरीरादि पर वस्तुएँ–सारा जगत, उसका ज्ञेय एवं दृश्य है। उस ज्ञाताद्रष्टास्वरूप भगवान आत्माको—त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावको—ध्येय बनाकर, उसका ध्यान करते-करते आत्मा पर्यायमें ज्ञानमय हो गया, ध्यानमय हो गया, एकाग्रतामय हो गया।

प्रश्न :—पर्यायमें ज्ञानमय हो गया,—उसमें पर्याय क्या और द्रव्य क्या?

उत्तर :—त्रैकालिक ज्ञायकवस्तु वह द्रव्य; ज्ञान, सुख आदि त्रैकालिक शक्तियाँ वह गुण; द्रव्य और गुणकी वर्तमान स्थिति, अवस्था, दशा, सो पर्याय। द्रव्यस्वभावका ध्यान करते-करते आत्मा पर्यायमें ज्ञानमय हो गया; मति-श्रुतज्ञानमय अपूर्ण दशा थी, उसका अभाव करके पूर्ण केवलज्ञानमय हो गया। अहा! यह कैसा उपदेश? जैन नामधारी सम्प्रदायमें तो है ही नहीं, परन्तु दिगम्बर सम्प्रदायमें भी सुननेको नहीं मिलता।

प्रभु! यह वीतरागताका मार्ग कोई अलौकिक है। आजकलके उपदेशक तो 'यह करो, वह करो, दया–दान एवं पूजा–भक्ति करो—ऐसे राग तथा परके कर्तृत्वमें धर्म मनवाते हैं; परन्तु भाई! 'करना, वह मरना है'; पर तथा विभावकी कर्तृत्वबुद्धि, वह तो आत्माका भावमरण है। पुण्य–पाप मेरे हैं—ऐसी ममत्वबुद्धि मिथ्यात्वमय भ्रान्ति है, अज्ञान है। भगवान आत्मामें राग करना, दया–दान करना—ऐसी अज्ञानमय कर्तृत्वबुद्धि कहाँसे लाया?–तो फिर यह भगवान आत्मा क्या वस्तु है? क्या करते-करते वह ज्ञानमय हो जाता है? प्रभु! त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ भगवान ऐसा कहते हैं कि ज्ञायकका ध्यान करते-करते आत्मा ज्ञानमय एवं ध्यानमय, एकाग्रतामय हो जाता है। प्रभुका मार्ग ऐसा है।

इस मार्गको समझना कठिन लगता है, इसलिये 'सोनगढ़का धर्म एकान्त है, निश्चयाभास है'—ऐसा कितनोंको लगता है, परन्तु भाई! वीतराग भगवान कथित आत्मधर्म तो ऐसा ही है। रागका कर्ता बनना, वह आत्माका स्वभाव नहीं है, वीतरागका मार्ग नहीं है। तथा लोग कहते हैं कि—सोनगढ़को तीर्थ बना दिया; परन्तु हमने तो किसीसे कहा नहीं कि स्वाध्याय-मन्दिर बनाओ। हम तो अध्यात्मतत्त्वकी बात करते हैं। आँखमें एक रजकण भी खटकता है, वैसे ही ज्ञानस्वरूपी प्रभुमें रागका कण, दया–दानादिके विकल्प खटकते हैं। अरेरे! सर्वज्ञ भगवानका विरह हुआ। प्रभु वहाँ रह गये और हम यहाँ आ पड़े। यहाँ भी सर्वज्ञता उत्पन्न करनेका अभाव है। देवोंका आगमन भी अटक गया, एकमात्र भावश्रुतज्ञानका अस्तित्व है। इसलिये जगतको यह मार्ग कठिन लगता है, परन्तु क्या किया जाय? चौरासीके चक्रमें जन्म–मरण कर-करके थक गया। भाई! नरकके वे भयंकर दुःख!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नरकके एक क्षणके दुःखोंका वर्णन करोड़ों जिह्वाओं द्वारा करोड़ों भवमें नहीं हो सकता—ऐसे तेतीस सागरके भव तूने अनन्त-बार किये हैं। प्रभु! तू वर्तमानमें उन दुःखोंको भूल गया है, इसलिये वे दुःख नहीं थे, ऐसा कैसे कहा जा सकता है? यहाँ जन्म लेने के पश्चात् छह महीनेकी स्थितिका स्मरण नहीं है, इसलिये वह नहीं थी—ऐसा कौन कहेगा? भगवान आत्मा अनादि–अनन्त है, तो वह रहा कहाँ? चारों गतिके अवतारमें। नरक एवं निगोदके अवतार ले–लेकर दुःखी-दुःखी हो रहा है। सन्निपातका रोगी हँसता हो, तो क्या वह सुखी है? उसी प्रकार अज्ञानी, शरीर और रुपया–पैसा आदिसे सन्तुष्ट हो, तो क्या वह सुखी है?–दुःखी ही है। दुःख दूर करनेका उपाय तो भीतर आत्मामें है। अरेरे! सत्यके निर्णयका भी समय नहीं निकाल सकता, वहाँ सुखका सच्चा उपाय कैसे करेगा? यहाँ तो कहते हैं कि भगवान ज्ञाताका ध्यान करते-करते, आत्मा ज्ञानमय, ध्यानमय, एकाग्रतामय हो गया। यही शाश्वत सुखका सच्चा उपाय है।

'भीतर चैतन्यके नन्दनवनमें उसे सब कुछ मिल गया, अब बाहर क्यों जाय?

मेरु पर्वतमें नन्दनवन है; वहाँ अनेक प्रकारके सुन्दर फल–फूल होते हैं। भगवान आत्मा भी ज्ञान, आनन्दादि अनंत रमणीय गुणोंसे भरपूर चैतन्य नन्दनवन है। सम्यग्दर्शन होते ही चैतन्यका नन्दनवन मिल गया, वहाँ मुनिदशा और केवलज्ञानकी तो बात ही क्या? अहा! मुनिदशा किसे कहते हैं? उस दशाको तो अनन्त आनन्दके प्रचुर स्वसंवेदनकी छाप मिल गई है। भाई! वहाँ तो ज्ञान, आनन्द, शान्ति, प्रभुता, स्वच्छता इत्यादिसे चैतन्यका नन्दनवन खिल उठा है। मुनिराज कहते हैं कि भीतर चैतन्यके नन्दनवनमें हमें सबकुछ मिल गया है।

भगवान आत्मा स्वभावसे निरोगी है; रागका रोग भी उसमें नहीं है। केवलज्ञानी भगवानको शरीरमें रोग कैसा और औषधि कैसी? केवली भगवानको रोग होने तथा औषधि लेनेकी मान्यता बिलकुल कल्पित है। असह्य लगता है, किन्तु भाई! क्या किया जाये? आज मानो या कल मानना, अभी मानो या फिर कभी मानना; परन्तु इस सत्यका स्वीकार करना ही पड़ेगा। वीतराग सर्वज्ञ प्रभुको आहार–जलका अभाव है। जहाँ अतीन्द्रिय आनन्दामृतका पूर्ण अनुभव करते हैं, असंख्य आत्मप्रदेशोमें अनन्त गुणरत्न विकसित हुए हैं, उस पूर्ण परमात्मदशामें शरीर सम्बन्धी क्षुधा या रोगका होना नितान्त असम्भव है। अपना पंथ चलानेके लिए कल्पित रचनाएँ की हैं। हम भी उस पंथमें थे; वहाँ हमारा सम्मान–प्रतिष्ठा भी बहुत थी। मैं तो वहाँ की क्रियाओंका भी सख्ती से पालन करता था; परन्तु जब अंतरसे ऐसा लगा कि यह सच्चा साधुपना नहीं है; यह वीतरागकथित जैनधर्म नहीं है, तब मैंने अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीखुशालभाई से, जिन्होंने दो हजार रुपये मेरे दीक्षा समारोहमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वि. सं. १९७०में खर्च किये थे, कह दिया कि भाई! यह मार्ग सच्चा नहीं है। मैं तो इसे छोड़ दूँगा। भाईने कहा–आपकी प्रसिद्धि बहुत है, इसलिये धीरे–धीरे छोड़ना। क्या कहूँ? परिवर्तन किया तो अंतरसे कुछ और ही लगा होगा, तब किया न?

दीक्षा समारोहमें रथयात्राके समय जब मैं हाथी पर चढ़ रहा था, तब मेरी धोती नसैनीमें फँस जानेसे फट गई और मुझे शंका हुई कि यह क्या? इसमें कुछ संकेत अवश्य है.....जो भी हो, वह सच्चा। कुछ ही काल पश्चात् अंतरसे आभास होने लगा कि वस्त्रसहित मुनिपना तीनकालमें नहीं हो सकता। वि. सं. १९८३में एक दिन गुरु पात्रोंको रंग रहे थे। उस कार्यमें कई घण्टे बिगड़ते थे। मैंने कहा—स्वाध्याय छोड़कर घण्टों तक पात्रोंको रंगना, यह कैसी उपाधि? गुरुने सहजभावसे कहा—पात्र बिनाका गुरु–साधु ढूँढ़ लाना। मैंने पात्र बिनाके गुरु ढूँढ़ लिए—कुन्दकुन्दाचार्यदेव।

मुनिको वस्त्र या पात्र कदापि नहीं होते। वस्त्रका टुकड़ा रखकर मुनिपना मनाये, तो वह विपरीत मान्यताके कारण क्रमशः नरक और निगोदमें जायेगा। शान्तिसे कहो, धीरेसे कहो, परन्तु मार्ग तो यह है। अरे, जगतको यह बात बैठना कठिन लगती है।

ज्ञायकका ध्यान करते–करते चैतन्यके असंख्य प्रदेशोंमें अनन्त गुणरत्नोंके कक्ष खुल गये। ज्ञायकमें एकाग्रता करते–करते, जिसकी पर्यायमें अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता प्रगट हों, उसे अरिहन्त कहते हैं। जो बाह्यमें वस्त्र–पात्र-रहित निर्ग्रन्थ तथा अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दमें झूकनेवाले हों, वे गुरु कहलाते हैं। अभी तो जिन्हें देव–गुरु कैसे होते हैं, उनकी भी खबर नहीं है और मानते हैं कि हम धर्म कर रहे हैं। यहाँ कहते हैं कि प्रभु! सुन, जैसे केशरके डिब्बोंके गोदाम भरे होते हैं, वैसे ही आत्माके असंख्य प्रदेशोंमें अनन्त गुणरत्नोंके गोदाम भरे हैं। अरे, यह बात कैसे बैठे? शरीर जड़ है, स्थूल धूल है; कर्म सूक्ष्म धूल है; वे दोनों अमूर्तिक ज्ञायक परमात्मासे भिन्न वस्तु हैं। दया–दानादिके भाव भी विकारी दशा है उनसे भिन्न भगवान आत्मा ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप है; उसका ध्यान करते–करते, उसकी एक–एक शक्तिमें जो अनन्त सामर्थ्य भरा है, वह जहाँ पूर्णरूपसे प्रगट हो गया, वहाँ उन पूर्ण परमात्माको आहार कैसा तथा रोग कैसा? सर्वज्ञ भगवानको आहार तथा रोग कहना, वह सच्चे जैनधर्मकी बात नहीं है; कल्पित है।

अन्तरमें ज्ञायक परमात्माका सम्यग्दर्शन होता है वहाँ भीतर गुणरत्नोंके जो अनन्त कक्ष भरे हैं, उनमेंसे सर्वगुणोंका अंश व्यक्त होता है। स्वरूपरमणतारूप चारित्र प्रगट होने पर, उन गुणांशोंकी व्यक्तितामें उग्र शुद्धि बढ़ती है और पूर्ण परमात्मदशा–केवलज्ञान होने पर आत्माके असंख्य प्रदेशोंमें विद्यमान अनन्तगुणोंके कमरे सम्पूर्ण खुल जाते हैं। 'णमो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरिंहताणं' कहकर जिन्हें नमस्कार करते हैं, ऐसा वह त्रिलोकीनाथ 'अरिहंत भगवान' हो गया। 'भग' अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्दादि अनन्तगुणरूपी लक्ष्मी; 'वान' अर्थात् युक्त; ज्ञायकका ध्यान करते-करते–उसमें एकाग्रता करते-करते, उसे सबकुछ प्राप्त हो गया। अनन्तज्ञान एवं अनन्त आनन्दादि सब अंतरसे मिल गया; अब वह बाहर क्या लेने जाये? केवली परमात्माको अंतरमें पूर्णानन्द प्रगट हो गया; वह अब बाहर—आहारादिके विकल्पमें—क्यों आयें? कदापि नहीं आयेंगे।

'ग्रहण करने योग्य आत्माको ग्रहण कर लिया, छोड़ने योग्य सब छूट गया; अब किसलिये बाहर जाये?

बर्फकी शिलामें जैसे अकेली शीतलता भरी है, वैसे ही भगवान आत्मामें अकेला आनन्द भरा है। वह आनन्दकी शिला जिसे मिल गई, उसने ग्रहण करने योग्य सब ग्रहण कर लिया और त्यागने योग्य सबका उसके त्याग हो गया। अंतरमें आनन्दकी शिला मिल गई, अब वह किसलिये बाहर जाये ? रागादिके विकल्पमें क्यों आये? ग्रहण करने योग्य निज ज्ञायक आत्मा ग्रहण कर लिया, त्यागने योग्य सब त्याग दिया। रागादि विभाव सब छूट गये; अब वह स्वरूपमेंसे बाहर क्यों आये? कदापि नहीं आयेगा।

*

वचनामृत–२३३

अन्दरसे ज्ञान एवं आनन्द असाधारणरूपसे पूर्ण प्रगट हुए, उसे अब बाहरसे क्या लेना बाकी रहा? निर्विकल्प हुए सो हुए, बाहर आते ही नहीं। २३३.

अन्दरसे ज्ञान एवं आनन्द असाधारणरूपसे पूर्ण प्रगट हुए, उसे अब बाहरसे क्या लेना बाकी रहा?

'वचनामृत'के ४३२ बोल हैं। सवा तीन महीनेमें २३२ बोलों पर व्याख्यान हो चुके हैं; २०० बोल बाकी रहे।

जिसे अंतरसे अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द असाधारणरूपसे—अन्यवस्तुमें न हों, ऐसे स्वरूपसे—पूर्ण प्रगट हो गये, उसे अब बाहरसे क्या लेना रहा? त्रिलोकनाथ वीतराग जिनेश्वर परमात्माने अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्दादि असाधारणदशा पर्यायमें स्वयं प्रगटकी, पर्यायमें स्वयं पूर्ण परमात्मा हुए; उसे बाहरसे क्या लेना बाकी रहा?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'निर्विकल्प हुए, सो हुए; बाहर आते ही नहीं।'

सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा रागादिके विकल्पसे रहित भीतर स्वरूपमें जाता है, इसलिये उसे निर्विकल्प आनन्दका अनुभव होता है। निचली भूमिकामें निर्बलता है, इसलिये रागका विकल्प आता है, परन्तु वह दुःखरूप लगता है। व्रतका, भक्तिका विकल्प आये, वह भी धर्मात्माको दुःखरूप लगता है। वह विकल्प तोड़कर जो स्वरूपमें अतिशयरूपसे लीन हुए, वे निर्विकल्प हुए सो हुए, बाहर आते ही नहीं। समयसार-नाटक (सर्वविशुद्धिद्वार; पद्य १०८)में आता है न!—

जैसो निरभेदरूप निहचै अतीत हुतो, तैसो निरभेद अब भेद कौन कहैगो।
दीसै कर्म रहित सहित सुख समाधान, पायो निजथान फिर बाहिर न बहैगो॥
कबहूँ कदाचि अपनो स्वभाव त्यागि करि, राग रस राचिकैं न परवस्तु गहैगो।
अमलान ग्यान विद्यमान परगट भयो, याही भाँति आगम अनंतकाल रहैगो॥

पूर्णानन्दका नाथ जिसके अंतर अनुभवमें आया, वह अंतरमें विशेष रमणता होने से निर्विकल्प हुआ, सो हुआ; कभी बाहर आता ही नहीं। अहा! ऐसी बात है। यह तो बात ही अलग है! दुनियाके साथ इसका जरा भी मेल हो, ऐसा नहीं है। कहा है न!—

आनन्द कहे परमानंदा, मनुष मनुष में फेर;
एक लाखमें न मिलें, एक पैसेके तेर।

प्रभु कहते हैं—तुझमें और मुझमें बात–बातमें फेर है। यहाँ तो कहते हैं कि— स्वरूपमें लीनता होने पर निर्विकल्प हुए सो हुए, बाहर आते ही नहीं।

वचनामृत–२३४

मुझे अभी बहुत करना बाकी है–ऐसा माननेवालेको ही आगे बढ़नेका अवकाश रहता है। अनन्तकालमें 'मुझे आत्माका कल्याण करना है' ऐसे परिणाम जीवने अनेकों बार किये, परन्तु विविध शुभभाव करके उनमें सर्वस्व मानकर वहाँ संतुष्ट हो गया; कल्याण करनेकी सच्ची विधि नहीं जानी।२३४.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मुझे अभी बहुत करना बाकी है—ऐसा माननेवालेको ही आगे बढ़नेका अवकाश रहता है।'

जिसे शरीरसे तथा रागसे भिन्न निज शुद्ध चैतन्य द्रव्यकी यथार्थ प्रतीति होनेसे सम्यग्दर्शन हुआ है, उसका ध्यान करनेसे निर्विकल्प स्वानुभूति हुई है, गृहस्थाश्रममें स्थित सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा ऐसा जानता–मानता है कि मुझे स्वभावमें लीनता करना शेष है, मुझे अभी बहुत करना बाकी है। ऐसा माननेवालेको ही स्वरूपस्थिरतामें आगे बढ़नेका अवकाश रहता है। थोड़ा-सा प्रयत्न करके 'मैंने कुछ किया है' अथवा 'मैंने तो बहुत कर लिया'–ऐसा माननेवाला तो वहींका वहीं रुक जाता है–अटक जाता है; उसे आगे बढ़नेका अवकाश नहीं रहता।

"अनन्तकालमें 'मुझे आत्माका कल्याण करना है' —ऐसे परिणाम जीवने अनेकों बार किये, परन्तु विविध शुभभाव करके उनमें सर्वस्व मानकर, वहाँ संतुष्ट हो गया।"

'मुझे अपना हित करना है'—ऐसी भावना–इच्छा–अभिलाषा जीवने अनंतबार की है। अनादिकालीन परिभ्रमणमें अनन्तबार दिगम्बर जैन द्रव्यलिंगी साधु हुआ, परन्तु दृष्टि बाह्यक्रिया और राग पर रखनेके कारण मिथ्यादृष्टि रहा। 'मुझे आत्मकल्याण करना है'–ऐसे परिणाम तो मिथ्यादृष्टिके होते हैं, मंदकषायके कारण उसके लेश्या भी शुभ होती है; परन्तु विविध शुभभावोंमें सर्वस्व मानकर उन्हींमें सन्तुष्ट हो जाता है; शुभरागसे भी भिन्न त्रिकालशुद्ध ज्ञायकस्वभावका लक्ष्य नहीं करता।

निज शुद्ध ज्ञायकतत्त्वके लक्ष्य बिना साधु हो जाये, पंच महाव्रतादिका निर्दोष पालन करे, परन्तु उससे सम्यक्त्व या चारित्र नहीं होता। 'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो;' बालब्रह्मचारीरूपसे अथवा हजारों रानियोंको छोड़कर मुनिपना लिया, परन्तु आत्मज्ञानके बिना लेशमात्र सुख प्राप्त नहीं हुआ। महाव्रतके परिणाम भी शुभराग, आस्रव एवं दुःखरूप हैं, वह स्वरूपरमणतारूप चारित्र नहीं है। व्रतादिके शुभरागको चारित्र माने, उसे सच्चे महाव्रत कैसे? सम्यग्दर्शन और आत्मज्ञान न हो, तब तक चारित्रदशा और महाव्रत नहीं होते।

मानव होना कठिन है, साधु कहाँसे होय;
साधु हुआ तो सिद्ध हुआ, कहनी रही न कोय।

भाई! महाव्रत लेना, साधु बनना, नग्न वेश लेना सरल है; परन्तु अंतरसे सच्चा साधुपना प्रगट होना, वह कोई अलौकिक वस्तु है। 'मुझे अपना भला करना है'—ऐसे भाव जीवने अनन्तबार किये, परन्तु उन शुभभावोंमें ही सन्तुष्ट हो गया, शुभरागमें ही अटक गया।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मैं त्यागी हूँ, मैंने हजारों रानियाँ छोड़कर साधुपना धारण किया है, करोड़ोंकी आमदनी छोड़ी है'—ऐसा माननेवालेको यदि राग और विकल्पसे भिन्न निज ज्ञायक भगवानका ज्ञान नहीं हुआ, तो उसे कुछ भी त्याग नहीं हुआ है। महाव्रतके परिणाम—जो कि शुभराग हैं—उनका जिसे प्रेम है, उसने निज ज्ञायकका–आत्माका अनादर अर्थात् त्याग किया है। भले बाल ब्रह्मचारी हो, परन्तु ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं? स्त्रीविषयके त्यागका शुभभाव, वह मूल ब्रह्मचर्य नहीं है। ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप आत्मा; उसमें (आत्मामें) चरने, रमनेका नाम ब्रह्मचर्य है। शरीरसे बाह्य ब्रह्मचर्यका पालन करे और माने कि ब्रह्मचारी हो गये, वे शुभभावमें सन्तुष्ट हो गये हैं। मूलवस्तु एक ओर पड़ी रही और बाह्यक्रिया तथा शुभभावमें धर्म मान लिया। बात कुछ कठिन है भाई!

'कल्याण करनेकी सच्ची विधि नहीं जानी।'

परसे भिन्न तथा रागसे रहित 'ज्ञायक' अपनी वस्तु है; उसका अंतर्दृष्टि करके अनुभव करना, यह कल्याणकी सच्ची विधि है। उस विधिको भूल गया और क्रियाकाण्डके विपरीत मार्ग पर चलने लगा। नववें ग्रैवेयक जाये-ऐसी रागकी मन्दता, शुक्ल लेश्या शुक्ल ध्यान नहीं हो, चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तब भी क्रोध न करे ऐसी बहिर्लक्षी समता आदि क्रियाएँ अनन्तबार की, किन्तु वे तो रागकी क्रियाएँ हैं; उनमें आत्मा और उसकी अनुभूति, जो कल्याण करनेकी सच्ची विधि है, वह कहाँसे आयगी? उस बाह्यक्रियामें तथा रागकी मन्दतामें यह जीव अनंतबार संतुष्ट हो गया, परन्तु सहज ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप निज आत्माको लक्ष्यमें नहीं लिया।

देशके लिये शहीद हो, वह भी बालमरण है। देश कहाँ तेरा था? तेरा स्वदेश तो अंतरमें आनन्द एवं ज्ञानादि अनन्तगुणोंका धाम, असंख्यप्रदेशी स्वक्षेत्र है। अपने ज्ञायकदेशको जानता नहीं है और बाहरी देश—धरतीके टुकड़ेके लिये एकत्वबुद्धि तथा ममत्व करके मरे–शहीद हो, उसका भवभ्रमण बना ही रहता है; कल्याणकी सच्ची विधि हाथ नहीं आती। देशसेवकोंको अरुचिकर लगे ऐसी बात है, परन्तु कल्याण करना हो, भवभ्रमणका अभाव करना हो तो आत्मलक्ष के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

*

वचनामृत–२३५

स्वतःसिद्ध वस्तुका स्वभाव वस्तुसे प्रतिकूल क्यों होगा? वस्तुका स्वभाव तो वस्तुके अनुकूल ही होता है; प्रतिकूल हो ही नहीं सकता। स्वतःसिद्ध वस्तु स्वयं अपनेको दुःखरूप हो ही नहीं सकती। २३५.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'स्वतःसिद्ध वस्तुका स्वभाव वस्तुसे प्रतिकूल क्यों होगा?'

इस बोलमें न्याय दिया है। भगवान आत्माका–वस्तुका स्वभाव आत्मवस्तुसे प्रतिकूल कैसे होगा? आत्मस्वभाव तो आत्मवस्तुके अनुकूल ही होगा, इसलिये आत्माका स्वभाव सहज ज्ञान, आनन्द, शान्ति एवं वीतरागता ही होता है। दया–दान अथवा व्यापार–धन्धेके–शुभाशुभरागके परिणाम, अशुद्धभाव होनेके कारण आत्मवस्तुके प्रतिकूल हैं, अशुचि हैं, विपरीत हैं और दुःखके कारण हैं। अरेरे! वणिक बेचारे धन्धेसे निवृत्त नहीं हो पाते। वीतरागताका यह जैनधर्म वणिकोंके हाथ आया और वणिक लग गये धन्धे में। आत्माके आनन्दका अनुभव करना, वह जैनधर्म है। 'अनुभूति सो जैनधर्म है'–ऐसा तो इतिहासकारोंने भी खोज निकाला है। दया–दानादि शुभरागसे भी भिन्न, ऐसे निज शुद्ध ज्ञायक आत्माकी अनुभूति, सो जैनधर्म है। यह समझे बिना लोग दया पालते हैं, दान देते हैं, परन्तु साथ ही शुभभावमें अहंबुद्धि और कर्तृत्वबुद्धि होनेके कारण, उससे पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं बँधेगा, पापानुबन्धी पुण्यबन्ध होगा। यहाँ कहते हैं कि आत्माका स्वतःसिद्ध वस्तुका स्वभाव अपनेको अर्थात् आत्मवस्तुको प्रतिकूल नहीं होता; अनुकूल ही होता है, इसलिये आनन्द एवं ज्ञानादिरूप ही होता है।

'वस्तुका स्वभाव तो वस्तुके अनुकूल ही होता है; प्रतिकूल हो ही नहीं सकता।'

अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि भगवान आत्माका स्वभाव है। स्वभावको छोड़कर पर्यायमें राग और दया–दानादिके विकल्प उठें, वे स्वभावसे विरूद्ध हैं। स्वभावके अवलम्बनसे पर्यायमें जो अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्दादि परिणमित हों, वे ही वस्तुको–आत्माको अनुकूल हैं; रागादि तो प्रतिकूल हैं; इसलिये रागादि भाव आत्माका स्वभाव नहीं हैं।

यह बात थोड़ी सूक्ष्म है, तथापि लोग प्रेमसे–रुचिपूर्वक सुनते हैं। यहाँ तो यह बात चवालीस वर्षसे निरन्तर चल रही है। बीस लाख पुस्तकें छप चुकी हैं और अभी लाखों छपेंगी। उन सबमें बात तो यही है। आत्मा 'वस्तु' है, क्योंकि उसमें ज्ञानादि अनन्त गुणोंका वास है। सब सगे–सम्बन्धियोंको बुलाकर नये मकानका 'वास्तु' मुहूर्त करते हैं न? मकानका वास्तु करते हैं या अध्धर वृक्षके ऊपर करते हैं? वह तो सब रागकी क्रिया है, स्वभावसे विरूद्ध है, वस्तुको प्रतिकूल है। जिसे वस्तुस्वभावका–ज्ञाताद्रष्टा एवं आनन्दमय आत्माका अंतरमें स्वीकार हुआ, उसे पर्यायमें भी शुद्धता ही उत्पन्न होती है। वह ज्ञानानन्दमय शुद्धता ही वस्तुको अनुकूल है। न्याय सूक्ष्म है। भगवान आत्मा जो वस्तु है, उसमें अनन्तानन्त शक्तिरूपसे शुद्ध गुण विद्यमान हैं। उसका जिसे स्वीकार हुआ उसकी पर्यायमें वस्तुका स्वभाव निर्मलरूपसे परिणमन करेगा। वह परिणमन वस्तुके अनुकूल है। देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धाका और पंचमहाव्रतादिका शुभराग तो स्वभावसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विरूद्धभाव है; आत्मवस्तुको प्रतिकूल है। स्वभावकी दृष्टि हुई, तो स्वभावका आदर होगा। राग आये उसका—प्रतिकूल भावोंका—ज्ञाता रहेगा, परन्तु कर्ता नहीं होगा।

'स्वतःसिद्ध वस्तु स्वयं अपनेको दुःखरूप हो ही नहीं सकती।'

स्वतःसिद्ध वस्तु स्वयं अपनेको दुःखरूप हो ऐसा हो ही नहीं सकता। ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा स्वयं अपनेसे दुःखरूप–रागरूप कैसे होगा? कदापि नहीं हो सकता।

स्वरूपके सिवा कार्माण थैलीके निमित्तसे प्रगट होनेवाला समस्त शुभाशुभ परभाव वह बोझारूप और उपाधिरूप है। उसके प्रति कितनीक बार सहजरूपसे विशेष उदासीनता आ जाती है, और उसके प्रति थकावट लगकर—उस प्रवृत्तिसे तथा उस परिणतिसे थकावट लगकर—चैतन्यप्रभु उससे विशेष उदासीन होकर स्वस्वरूपमें सहजरूपसे विशेष स्थित होता है।

अन्तरंग स्थिति ऐसी होनेके कारण कितनीक बार बाह्य संग-प्रसंगके प्रति भी उदासीनता आ जाती है, तथा वे बाह्य संग-प्रसंग उपाधिरूप और बोझारूप लगते हैं। उसमें भी अप्रशस्त परिचय विशेष कर अरुचिकर लगते हैं कारण कि उसे अपनी आत्मस्थितिके साथ मेल नहीं है।

साधकोंकी दशा जगतसे निराली होती है। कोई कोई बार स्वरूपमें सहजरूपसे–निर्विकल्परूपसे स्थिर हो जाते हैं, और फिर बाहर आते हैं तब भी भेदज्ञानकी-ज्ञाताधाराकी—सहज समाधि परिणमती रहती है। स्वरूपमें लीन होते हैं तब आत्माके अचिंत्य अनन्त गुणपरिणमनकी तरंगों वेदते हैं। ऐसा होते होते, साधकधारा बढते बढते मुनिपनेकी दशा प्रगटते, मुनिपना आता है और क्रमसे श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान प्रगटाते हैं, स्वपरप्रकाशक-स्वभाववाला ज्ञान पूर्णरूपसे परिणमता है, आनन्द आदि अनन्त गुण पूर्णरूपसे परिणमते हैं। उस दशाको धन्य है, बारम्बार धन्य है।

सुख और आनन्द स्वरूपमें है, विभाव सब दुःखरूप और उपाधिरूप है।

—पूज्य बहिनश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–६२

दिनांक १२-६-७८

वचनामृत–२३६

मलिनता टिकती नहीं है और मलिनता रुचती नहीं है, इसलिये मलिनता वस्तुका स्वभाव हो ही नहीं सकता। २३६

बड़ी सूक्ष्म बात है भाई! शरीर, वाणी और मन–वह तो परवस्तु है, उसकी तो बात ही क्या? किन्तु भीतर जो आनन्दकन्द ज्ञायक प्रभु है, उसकी वर्तमान पर्यायमें परलक्षसे जो शुभाशुभ विकारीभाव होते हैं, वह मलिनता है। पर्यायमें मलिनता है तो अवश्य, किन्तु वह नित्यस्थायी नहीं है; नित्य निर्मलानन्द भगवान आत्मा अंतरमें नित्य ध्रुवरूप स्थित है। मलिनतारूप पर्याय होकर क्षणमें नष्ट हो जाती है; नित्य स्थित नहीं रहती और त्रैकालिक ध्रुव चैतन्यद्रव्यस्वरूप वस्तु नित्य स्थित है।

मलिनता–रागादि विकाररूप पर्याय जैसे टिकती नहीं है, वैसे ही रुचती भी नहीं है। किसकी बात है? कि––जिसे अंतरमें ज्ञानानन्दस्वभावकी अभिलाषा जागृत हुई है और जिसे अंतरमें निज सच्चिदानंद प्रभुकी––निर्मलानन्द निज चैतन्यभगवानकी––अव्यक्तरूपसे जिज्ञासा हुई है, उसे मलिनता नहीं रुचती।

इस पुस्तक (बहिनश्रीके वचनामृत)के सम्बन्धमें पत्र बहुत आते हैं। पुस्तक पढ़–पढ़कर लोग इतने प्रसन्न होते हैं कि अहा! ऐसी पुस्तक! लोग तो इसके दूसरे भागकी माँग करते हैं। भाई! यह तो बहिनके वचन निकले सो निकले; इसीमें सबकुछ पूरा आ गया है।

तीन बातें : (१) परद्रव्य––कर्म, शरीर एवं लक्ष्मी आदि, वे तो आत्माकी पर्यायमें भी नहीं हैं; (२) पुण्य–पापके मलिनभाव आत्माकी पर्यायमें एक समय पर्यन्त होते हैं, परन्तु नित्यस्थायी नहीं रहते; और (३) जिसे ज्ञानानन्दस्वरूप निर्मलस्वभावके ओरकी अंतरमें जिज्ञासा हुई, उसे मलिनभाव नहीं रुचते। ज्ञानीको शुभभावकी भी रुचि अंतरमें नहीं है। उसे शुद्धोपयोग होता है; उसके साथ पुण्यके अनुभाग–रसकी वृद्धि होती है, परन्तु ज्ञानीको उसकी रुचि नहीं है। बात कुछ कठिन लगेगी, परन्तु परम सत्य बात यही है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पानीका तीव्र प्रवाह जैसे चलता है, वैसे ही अंतरमें यह ध्रुव ज्ञायक.....ज्ञायक..... ज्ञायक—चैतन्यतेजकी आभाका प्रवाह—वह तो सदा निर्मल एवं स्थायी वस्तु है। यह बात सूक्ष्म है, फिर भी लोगोंको रुचती है–जमती है। मार्ग भले कठिन है, परन्तु इस मार्ग पर चलनेमें ही उद्धार है। भाई! अंतरमें नित्यस्थायी ध्रुववस्तु निर्मल है न? दया–दानादिके शुभभाव अथवा काम–क्रोधादिके अशुभभाव, स्थायी नहीं रहते और रुचते भी नहीं हैं। किसे नहीं रुचते? कि जिसे अंतरमें निर्मल ध्रुव ज्ञायकस्वभावमें जाना है, उसे।

पूर्णानन्दस्वरूप मोक्षकी प्राप्तिके लिये मूलवस्तु ही यह है। पूर्णानन्दकी प्राप्तिका कारण चारित्र और चारित्रका कारण सम्यग्दर्शन है। स्वानुभूतियुक्त सम्यग्दर्शनके बिना चारित्र कदापि नहीं होता। त्रैकालिक ध्रुव नित्य निर्मलानन्द ज्ञायक प्रभुका आश्रय वह सम्यग्दर्शनका कारण है।

ज्ञायक अर्थात् आत्मा नित्य उपयोगलक्षण—ज्ञान-दर्शनस्वभाववान—है। उसकी पर्यायमें क्षणिक मलिनता है, परन्तु वह मलिनता कोई स्थायी नहीं है।

अंतरात्माकी खोज करनेवालेको स्पष्ट भासित होता है कि यह शुभ और अशुभ-भावरूप मलिनता स्थायी वस्तु नहीं है और रुचती भी नहीं है। यहाँ लक्ष्मी आदि परद्रव्यकी बात नहीं की है, उसका तो आत्मामें अभाव ही है। जिस प्रकार एक अँगुलीमें दूसरीका अभाव है, उसी प्रकार उपयोगस्वरूप आत्मामें अनुपयोगस्वरूप–जड़स्वरूप पैसा, मकान आदिका अभाव है। आत्माको मात्र पर्यायमें मलिनताका अस्तित्व है; त्रैकालिक ध्रुवस्वरूपमें नहीं। बात सूक्ष्म है, परन्तु यह तो मूल धन है। अरेरे! आत्माकी यह बात न समझें, तो चौरासीके अवतार करके, अरबपति सेठ मरकर पशुपर्याय धारण करते हैं। मांसभक्षणादिके क्रूर परिणाम नहीं होते, इसलिये कदाचित् नरकमें तो नहीं जाते, परन्तु धर्मकी–सम्यग्दर्शनकी खबर नहीं है; इसलिये मिथ्यात्व एवं ममताके परिणामोंसे मरकर पशु होते हैं। वीतराग भगवान आत्माके सम्बन्धमें क्या कहते हैं ? वह सुननेका समय भी नहीं निकालते, उन्हें दूसरी कौनसी गति मिलेगी? सारा दिन 'इतना व्यापार किया, इतनी कमाई की'–उसीकी रुचि—मिठासमें—पापमें बिता देते हैं, परन्तु यह बात तो सुन प्रभु! तेरा अस्तित्व त्रैकालिक ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध है और तेरी वर्तमान पर्यायमें शुभाशुभराग होता है वह मलिनता है।

वह मलिनता नित्य रहनेवाली वस्तु नहीं है, दूसरे ही क्षण नष्ट हो जाती है; इसलिये मलिनता वस्तुका स्वभाव नहीं हो सकता। मलिनता स्थायी नहीं रहती और मलिनता रुचती भी नहीं है, इसलिये मलिनता आत्माका स्वभाव कदापि नहीं हो सकती। अहा! ऐसा है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागमार्ग। जिसको अंतरमें जाना है, उसके लिये लॉजिकसे–न्यायसे यह बात कही गई है। जिसे अन्तरोन्मुख होना है, उसे मलिनता नहीं रुचती; क्योंकि पुण्य–पापके मलिनभाव वस्तुका स्वभाव नहीं है।

यह पुस्तक (बहिनश्रीके वचनामृत) पढ़कर लोगोंको प्रमोद आता है। लोग माँग करते हैं कि–बहिन बोलें तो (वचनामृतों का संग्रह करके) दूसरा भाग प्रकाशित करो। अहा! ऐसी अनुपम वस्तु प्रगट हो गई है। सादी–सरल भाषामें तत्त्वका सार!

क्या कहा? कि—भगवान ज्ञायक चैतन्य है वह त्रैकालिक ध्रुव तत्त्व है और उसकी पर्यायमें जो शुभाशुभ वृत्ति—दया–दानकी या व्यापार–धन्धेकी वृत्ति—उठती है वह मलिनभाव है। वह मलिनभाव स्थायी नहीं रहता और उसमें रहना अच्छा नहीं लगता; इसलिये पुण्य और पापका मलिनभाव आत्माका स्वभाव हो ही नहीं सकता।

*

वचनामृत–२३७

हे आत्मा! यदि तुझे विभावसे छूटकर मुक्तदशा प्राप्त करना हो तो चैतन्यके अभेद स्वरूपको ग्रहण कर। द्रव्यदृष्टि सर्वप्रकारकी पर्यायको दूर रखकर एक निरपेक्ष सामान्य स्वरूपको ग्रहण करती है; द्रव्यदृष्टिके विषयमें गुणभेद भी नहीं होते। ऐसी शुद्धदृष्टि प्रगट कर।

ऐसी दृष्टिके साथ वर्तता हुआ ज्ञान वस्तुमें विद्यमान गुणों तथा पर्यायोंको, अभेद तथा भेदको, विविध प्रकारसे जानता है। लक्षण, प्रयोजन इत्यादि अपेक्षासे गुणोंमें भिन्नता है और वस्तु-अपेक्षासे अभेद है ऐसा ज्ञान जानता है। 'इस आत्माकी यह पर्याय प्रगट हुई, यह सम्यग्दर्शन हुआ, यह मुनिदशा हुई, यह केवलज्ञान हुआ'–इस प्रकार सब महिमावन्त पर्यायोंको तथा अन्य सर्व पर्यायोंको ज्ञान जानता है। ऐसा होने पर भी शुद्धदृष्टि (सामान्यके सिवा) किसी प्रकारमें नहीं रुकती।

ज्ञायक जीवको भूमिकानुसार देव–गुरुकी महिमाके, श्रुतचिन्तवनके, अणुव्रत–महाव्रतके इत्यादि विकल्प होते हैं, परन्तु वे ज्ञायकपरिणति को भाररूप हैं, क्योंकि स्वभावसे विरूद्ध हैं। अपूर्ण दशामें वे विकल्प होते हैं, स्वरूपमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एकाग्र होने पर, निर्विकल्प स्वरूपमें निवास होने पर, वे सब छूट जाते हैं। पूर्ण वीतराग दशा होने पर सर्व प्रकारके रागका क्षय होता है।

—ऐसी साधकदशा प्रगट करने योग्य है। २३७.

'हे आत्मा! यदि तुझे विभावसे छूटकर मुक्तदशा प्राप्त करना हो, तो चैतन्यके अभेद स्वरूपको ग्रहण कर।'

यह बोल ऊँचा है और थोड़ा बड़ा भी है। 'हे आत्मा!' ऐसा कहकर सम्बोधन किया है। यदि तुझे मलिनताके भावसे छूटकर, मलिन पर्याय जो मोह-राग-द्वेष तथा दुःखरूप है, उससे छूटनेरूप सम्पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मदशा प्राप्त करना हो, मुक्तिकी इच्छा हो, विभावका व्यय और परमानन्दरूपी मोक्षदशाका उत्पाद करना हो, तो निर्विकार और निर्विकल्प ऐसे निज चैतन्यके अभेद ध्रुव स्वरूपको ग्रहण कर। आत्मवस्तु—स्थायी वस्तु—जो कि अंतरमें ज्ञायकस्वरूपसे एकरूप विद्यमान है, जिसमें पर्याय और गुण–गुणीका भेद भी नहीं है, जो ज्ञान, आनन्दादि अनन्त ध्रुव गुणोंकी एकतास्वरूप अभेद पदार्थ है, उसे रुचिको अन्तर्मुख करके ग्रहण कर; उस पर दृष्टि स्थिर कर दे। राग पर दृष्टि वह तो मलिनता है। मलिनता स्थायी नहीं रहती और रुचती भी नहीं है, इसलिये वह आत्माका स्वभावभाव नहीं है। भगवान आत्मा जो कि चैतन्यकी आभाका पुंज है, शाश्वत स्थायी एवं रुचती वस्तु है, ज्ञायकके दिव्य तेजसे सदा परिपूर्ण है; उसे ग्रहण कर, निर्मलानन्द ज्ञायकप्रभुकी दृष्टि कर; उसे ध्येय बनाकर अपनी वर्तमान श्रद्धापर्यायका विषय बना दे; उसका अंतरसे आदर–आश्रय कर, तो तेरी अनादिकालीन विभावदशा—दुःखदशा—छूट जायगी और मुक्तिदशा प्राप्त होगी।

'द्रव्यदृष्टि सर्व प्रकारकी पर्यायको दूर रखकर, एक निरपेक्ष सामान्य स्वरूपको ग्रहण करती है; द्रव्यदृष्टिके विषयमें गुणभेद भी नहीं होते। ऐसी शुद्धदृष्टि प्रगट कर।'

द्रव्यदृष्टि—द्रव्य अर्थात् त्रैकालिक ध्रुव चैतन्य वस्तु, भगवान ज्ञायक पदार्थ; दृष्टि अर्थात् ध्रुव ज्ञायक प्रभुका आश्रय लेनेवाली अपने श्रद्धागुणकी वर्तमान निर्मल पर्याय;—सर्व प्रकारकी पर्यायको, विभावपर्याय तथा स्वभावपर्यायको दूर रखकर, एक निरपेक्ष सामान्य ध्रुव ज्ञायकस्वभावको ग्रहण करती है। अहा! यह तो मंत्र है प्रभु! यह कोई कथा–कहानी नहीं है। जीव अनादिकालसे दुःखी–दुःखी हो रहा है। किसीको फाँसी दी गई हो तो जब तक जीव नहीं निकलता, तब तक कैसी पीड़ा होती होगी? भाई! यह जीव अनादिकालसे रागके साथ एकत्वबुद्धिरूप फाँसीसे दुःखी हो रहा है, उसकी उसे खबर नहीं है। दया–दानादिका राग भी मलिनता है। रागरूपी मलिनताको अज्ञानी जीव अपना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव मानता है। परन्तु भाई! अभी पिछले बोलमें ही कहा है कि मलिनता टिकती नहीं है और रुचती भी नहीं है, इसलिये वह भगवान आत्माका स्वभाव नहीं है। जिसे मलिनताका प्रेम है, उसने निज अखण्डानन्द प्रभुको फाँसी दी है; मिथ्या श्रद्धारूप भयंकर भावमरण किया है। उससे छूटना हो, विभावसे छूटकर शाश्वत परमानन्दस्वरूप मुक्तदशा प्राप्त करना हो, तो चैतन्यके अभेद ध्रुवस्वभावका आश्रय कर।

द्रव्यदृष्टि सर्व प्रकारकी पर्यायको—दृष्टि जो कि स्वयं ध्रुव ज्ञायकका आश्रय करनेवाली वर्तमान निर्मल पर्याय है, वह भी उसमें आ गई—दूर रखकर अर्थात् उसका लक्ष्य छोड़कर, एक निरपेक्ष अभेद चैतन्यस्वरूपको ग्रहण करती है; मात्र शुद्धात्मद्रव्यसामान्यका ही आश्रय करती है। भाई! यह तो अध्यात्मकी अनमोल वस्तु है। दृष्टिके विषयमें किसी भी प्रकारकी पर्याय—व्यंजनपर्याय अथवा अर्थपर्याय—नहीं आती; वह तो मात्र एक अभेद निरपेक्ष ज्ञायकसामान्यको ही ग्रहण करती है। द्रव्यदृष्टि स्वयं भी तो श्रद्धागुणकी निर्विकारी पर्याय है, परन्तु वह अपने विषय, आलम्बन तथा आश्रयके रूपमें सर्व पर्यायोंको दूर रखकर, जिसमें कोई भेद नहीं है, जिसमें किसी प्रकारका परिणमन अर्थात् पर्याय नहीं है ऐसे—एकरूप ज्ञायक ध्रुवतत्त्वको—निरपेक्ष अन्वयसामान्यको ग्रहण करती है।

अहा! ऐसी अद्भुत बातें! जीव सांसारिक हर्ष और उत्साहमें मर गया है। चैतन्यकी आभाका–तेजका पुंज जो कि अंतरमें परिपूर्ण विद्यमान है, उसका अनादर करके परमें हर्ष तथा आनन्दोत्साह मानता हुआ, अपने आत्माकी हिंसा करता है। ध्रुव चैतन्य अनन्त गुणोंका पिण्ड वह मैं नहीं हूँ; परन्तु यह ऊपरी पुण्य–पापके भाव सो मैं—ऐसा मानकर पर्यायके प्रेममें अपने ध्रुव ज्ञायक सामान्यका अनादर करता है। स्त्री–बच्चोंके साथ बैठकर आनन्द–प्रमोदकी बातें करता हो अथवा लाखोंकी आमदनी करानेवाले आढ़तिया–दलालके पास बैठकर हर्षसे कमाई की बातें सुनता हो; किन्तु भाई! यह तू क्या कर रहा है? तूने यह सब करके अपने चैतन्यका खून कर दिया; अंतरंग आनन्दके सागरको भूल गया, उसकी उपेक्षा की और बाह्यमें सुखका स्वीकार किया; भाई! यह तुझे क्या हुआ है?

धर्मीकी दृष्टि तो समस्त पर्यायोंका अस्वीकार करके त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकसामान्यका स्वीकार करती है। उसने 'जागता जीव विद्यमान है' उसे जीवित रखा। अहा! जगतके भाग्य हैं कि ऐसी वस्तु—बहिनकी वाणी—अल्प शब्दोंमें प्रगट हुई। दृष्टिका विषय मात्र त्रैकालिक ध्रुव अभेद ज्ञायक ही है, उसमें 'यह आत्मा वह द्रव्य है और ज्ञान, आनन्दादि गुण हैं'—ऐसा गुण–गुणीका भेद भी नहीं होता। भाई! मोक्ष प्राप्त करना हो, संसार पर्यायका–दुःखमय पीड़ाका समूल नाश करना हो, तो यह द्रव्यदृष्टि प्रगट कर; इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। यही सर्वप्रथम करने योग्य है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिस प्रकार पण्डा लोग सात पीढ़ियोंका इतिहास कहते हैं; उसी प्रकार सर्वज्ञ–पण्डा तेरा अनादि–अनन्त इतिहास बतलाते हैं। तेरा इतिहास यह है कि भाई! मलिनताके दुःखमें तूने अनन्तकाल व्यतीत किया है; अब अंतरमें निर्मलानन्द ज्ञायकप्रभुके ऊपर–जिसमें पुण्य–पापके दुःखदायक विकारीभाव नहीं हैं, उस शुद्धात्मा पर दृष्टि दे और विभाव, पर्याय तथा गुणभेदकी दृष्टि छोड़ दे।

'ऐसी दृष्टिके साथ वर्तता ज्ञान, वस्तुमें रहे हुए गुणों तथा पर्यायोंको, अभेद तथा भेदको विविध प्रकारसे जानता है।'

दृष्टिका विषय अभेद द्रव्य है। सम्यग्दर्शन तो मात्र त्रैकालिक ज्ञायकसामान्यका स्वीकार करता है; परन्तु साथमें वर्तता ज्ञान वस्तुमें विद्यमान गुणोंको तथा उसकी पर्यायोंको जानता है। ज्ञान अभेद तथा भेदको, त्रैकालिक ध्रुवतत्त्वको तथा वर्तमान क्षणिक पर्यायोंको—सबको ज्यों का त्यों बराबर जानता है, परन्तु उस समय भी सम्यग्दर्शनका विषय अभेद ज्ञायक ध्रुव द्रव्य ही है। सम्यग्दर्शनके साथ जो सम्यग्ज्ञान हुआ है, वह भेदको भी जानता है और अभेदको भी जानता है।

'लक्षण, प्रयोजन इत्यादि अपेक्षासे गुणोंमें भिन्नता है और वस्तु–अपेक्षासे अभेद है–ऐसा ज्ञान जानता है।'

चैतन्यका लक्षण उपयोग और जड़का लक्षण अनुपयोग—ऐसा ज्ञान जानता है; श्रद्धागुणका लक्षण एवं प्रयोजन प्रतीति है, चारित्रका लक्षण स्वरूपरमणता है, ज्ञानका लक्षण 'जानना' और प्रयोजन स्वपरका भेद-विज्ञान है, सुखका लक्षण अनाकुलता है–इस प्रकार लक्षण, प्रयोजन इत्यादि अपेक्षासे गुणोंमें भिन्नता है और वस्तु–अपेक्षासे अभिन्नता है—ऐसा ज्ञान बराबर जानता है। दृष्टि, लक्षण, प्रयोजनादि भेदोंको नहीं देखती, वह तो मात्र अभेद एकाकार ध्रुव ज्ञायकतत्त्वको ही ग्रहण करती है। उसके साथ जो ज्ञान हुआ, वह अनन्तगुणोंको, उनकी पर्यायोंको, भेदको तथा अभेदको—ऐसे विविध प्रकारसे जानता है; वह ज्ञानका स्वभाव है।

दृष्टिका स्वभाव मात्र एक ध्रुव ज्ञायक परमतत्त्वका आश्रय करना है। अरेरे! यह बात समझे बिना, संसारकी रुचिमें–पापमें तेरा जीवन बीत गया। उत्साहवान! उत्साह मत कर। हे उत्साहवान! परमें और रागमें उत्साहित न हो; उसमें तेरे स्वभावकी हत्या–स्वभावका खून हो जाता है। धर्मीकी दृष्टि निरन्तर ध्रुवस्वभाव पर लगी रहती है, तथापि साथमें रहनेवाला ज्ञान स्वको तथा परको, गुणोंके लक्षणभेद और प्रयोजनभेद आदि सबको ज्यों का त्यों बराबर जानता है।

यदि तुझे दुःखमय विभावसे छूटना हो तथा अतीन्द्रिय परमानन्दमय मोक्षदशा प्राप्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करना हो, तो सर्वप्रथम ज्ञानस्वभाव निज शुद्ध ध्रुव अभेद ज्ञायकतत्त्वका निर्णय करके, उसीका आश्रय कर, उसीका अवलम्बन ले, उसी अभेद ज्ञायकतत्त्व पर दृष्टि स्थिर कर। उसीका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनकी पर्याय भी सम्यग्दर्शनका विषय नहीं है। दृष्टिके विषयमें कोई भी पर्याय या गुणभेद है ही नहीं; उसका विषय तो मात्र अभेद, ध्रुव, निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्य ही है। परन्तु दृष्टिके साथ जो ज्ञान हुआ वह, गुणोंमें लक्षण, प्रयोजनादिकी अपेक्षासे भेद है और द्रव्य-अपेक्षासे अभेद है, ऐसा जानता है।

' 'इस आत्माकी यह पर्याय प्रगट हुई, यह सम्यग्दर्शन हुआ, यह मुनिदशा हुई, यह केवलज्ञान हुआ'–इस प्रकार सर्व महिमावंत पर्यायोंको तथा अन्य सर्व पर्यायोंको ज्ञान जानता है।'

भाई! दुनियाके प्रेमसे हटना पड़ेगा। बाह्यमें जो राग और पर्याय, उसे छोड़कर अंतरमें ध्रुव ज्ञायक आत्माको ग्रहण करना, सो दृष्टि है। उसका विषय अभेद आत्मा है। अभेदकी दृष्टिके साथ ज्ञान भी सम्यक् हुआ। वह ज्ञान 'यह दृष्टिकी पर्याय प्रगट हुई, यह ज्ञानकी पर्याय प्रगट हुई, यह शान्तिकी पर्याय प्रगट हुई'—इस प्रकार समस्त महिमावंत पर्यायोंको तथा अन्य सर्व पर्यायोंको जानता है। ज्ञानका स्वभाव, स्वपरप्रकाशक है, दृष्टिका स्वभाव अभेद ध्रुव तत्त्वका आश्रय करना है। ज्ञान तो भेद तथा अभेद—दोनोंको जानता है।

जिस प्रकार डिब्बीके मखमलकी गहराईमें रखा हुआ हीरा डिब्बीसे पृथक् है; उसी प्रकार शरीर और कर्मरजकणकी गहराईमें रहा हुआ चैतन्य हीरा उससे बिलकुल भिन्न है। उसकी उपस्थिति त्रिकाल एकरूप है; उसपर दृष्टि कर। उसके बिना जन्म–मरणका अंत नहीं आयेगा। करोड़ोंका दान कर या लाखों क्रियाकाण्ड कर, उनसे भवका अन्त नहीं आयेगा; वह तो राग है, संसार है। अहा! गजबकी बात है।

ज्ञान, प्रगट हुई पर्यायको जानता है। सम्यग्दर्शन हुआ, अंतरमें आनन्दकी धारा वृद्धिगत होकर मुनिदशा हुई, अंतरमें ज्ञाताद्रष्टाके ध्रुव प्रवाहमें केलि करते–करते यह केवलज्ञान हुआ—ऐसा ज्ञान सब जानता है। सम्यग्दर्शनका विषय, सम्यग्दर्शनकी पर्याय, मुनिदशा या केवलज्ञान भी नहीं है। सम्यग्दर्शनका विषय–लक्ष्मी, शरीर एवं कर्मसे तो भिन्न, परन्तु रागसे और पर्यायसे भी भिन्न तथा गुणभेदसे भी रहित अभेद चिदानन्द ज्ञायक वस्तु है। उसके आश्रयसे जो दृष्टि प्रगट हुई, वह नहीं जानती; परन्तु साथ वर्तता हुआ ज्ञान सम्यग्दर्शन, मुनिदशा तथा केवलज्ञानादि महिमावन्त पर्यायोंको तथा अन्य गुणोंकी पर्यायोंको–सबको जानता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'ऐसा होने पर भी शुद्धदृष्टि (सामान्यके सिवा) किसी प्रकारमें नहीं रुकती।'

सामान्य क्या और विशेष क्या?—यह सब ज्ञानमें–जाननेमें आता है, परन्तु दृष्टि तो सामान्य ध्रुवतत्त्व पर ही पड़ी है। अंतरमें त्रिकाल एकरूप रहनेवाली ज्ञायक वस्तुको सामान्य कहा जाता है; वह निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्य दृष्टिका विषय है। अरेरे! इस वस्तुके भानके बिना जीव अनादिकालसे जन्म–मरणके दुःख भोग रहा है, परन्तु स्वयंको अपनी दया नहीं आयी। छहकायके जीवोंकी दया पालनेको कहते हैं, परन्तु भाई! छहकायमें तू है या नहीं? तू अपनी दया तो पाल! स्वकी दया पालनेसे–अज्ञान और रागादिसे स्वयंको बचानेसे, परकी दया का पालन सहज ही हो जाता है, करना नही पड़ता। वास्तवमें तो जीव अपने भाव करता है, परकी रक्षा नहीं कर सकता। यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान सर्वको जानता है, तथापि शुद्धदृष्टि सामान्यके अतिरिक्त—त्रैकालिक ज्ञायकभावके अतिरिक्त—अन्य किन्हीं प्रकारोंमें नहीं रुकती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–६३

दिनांक १३-६-७८

वचनामृत–२३७

यह २३७वाँ बोल चल रहा है।

'साधक जीवको भूमिकानुसार देव–गुरुकी महिमाके, श्रुत चिन्तवनके, अणुव्रत–महाव्रतके इत्यादि विकल्प होते हैं, परन्तु वे ज्ञायकपरिणतिको भाररूप हैं क्योंकि स्वभावसे विरुद्ध हैं।'

साधक जीवको रागसे भिन्न और स्वभावसे अभिन्न, ऐसे निज शुद्धात्मद्रव्यकी दृष्टि होनेसे साधकपना प्रगट हुआ है। द्रव्य शब्दके दो अर्थ हैं : (१) निश्चयनयके विषयभूत ध्रौव्यको—त्रैकालिक एकरूप सामान्यको—द्रव्य कहते हैं। (२) पर्याय और ध्रौव्यस्वरूप पूर्ण पदार्थको द्रव्य कहते हैं। द्रव्यदृष्टिमें द्रव्यका अर्थ त्रैकालिक ध्रुव अंश है और जो नित्यानित्य-स्वरूप सम्पूर्ण द्रव्य है, वह प्रमाणज्ञानका विषय है। ज्ञानादि अनन्तगुणात्मक द्रव्यपर्याय-स्वरूप भगवान आत्मामें उसके ध्रुवस्वरूपका—शुद्धनयके विषयभूत द्रव्यसामान्यका—श्रद्धारूप आश्रय करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। वही आत्मधर्मकी प्रथम सीढ़ी है।

अरेरे! यह वीतरागका मार्ग अति दुर्लभ हो गया है। भाई! संसारमें कहीं भी सुखबुद्धि करने जैसा नहीं है। पाँच इन्द्रियोंके विषयमें, अरे! पर्यायमें भी लक्ष करनेसे, जो राग होता है वह दुःख है। दया–दानादिके जो शुभराग आयें, वे भी अपनी वस्तु नहीं हैं। अपनी हो तो नष्ट क्यों हो? शरीर, वाणी, लक्ष्मी सब नाशवान पदार्थ हैं। अरे! इस मनुष्यभवमें दुर्लभ अवसर आया है। बिजलीकी चमकमें मोती पिरोना है, झटसे पिरो लो। अंतरमें रागसे भिन्न, ऐसे नित्यस्वभावकी दृष्टि करनेसे जो अद्भुत अतीन्द्रिय आनन्द आता है, वह इन्द्रके इन्द्रासन या चक्रवर्तीके वैभवमें भी नहीं है।

जिसे रागसे भिन्न निज चैतन्यस्वरूपका भेदज्ञान हुआ, निज अभेद ज्ञायककी साधना प्रारम्भ हुई, उसे तभी से साधक कहा जाता है। उस साधक जीवको भूमिकानुसार देव अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग अरिहंत, गुरु अर्थात् सम्यग्दृष्टि भावलिंगी निर्ग्रन्थ संत—उनकी महिमाके, उनके कहे हुए शास्त्रोंके चिन्तवनके, श्रावकोचित अणुव्रतके तथा श्रमणोचित महाव्रतके इत्यादि विकल्प होते हैं, परन्तु वे ज्ञायकपरिणतिको बोझरूप हैं। पवित्र परिणतिको

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपवित्रता बोझरूप है; क्योंकि वह स्वभावसे विरूद्ध है।

समयसारके निर्जरा अधिकारमें कहा है—कोई जीव तो अति दुष्कर और मोक्षसे पराङ्मुख, ऐसे कर्मों द्वारा स्वयमेव क्लेश पाते हैं तो पायें और अन्य कोई जीव महाव्रत और तपके भारसे दीर्घकाल तक भग्न होते हुए (टूट मरते हुए) क्लेश पाते हैं तो पाओ..... क्या क्लेशको कारण बनाकर आत्माका सम्यग्दर्शन होगा? अहा! ऐसा सर्वज्ञ वीतरागके मार्ग पर चलनेवाले दिगम्बर संतोंका स्पष्ट कथन है; उनके अनुयायी सम्यक्त्वी भी ऐसा ही कहते हैं। भाई! तू धीर होकर सम्यग्ज्ञानकी तीक्ष्ण बुद्धिसे अंतरमें जो ध्रुव ज्ञायकतत्त्व विद्यमान है उसे ग्रहण कर। उपयोगको परमें, रागमें तथा पर्यायमें जकड़ रखा है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। उसे छोड़कर, जरा सूक्ष्मबुद्धि करके अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दकन्द ज्ञायकको ग्रहण कर ले। अहा! ऐसा मार्ग दिगम्बर सन्तोंके सिवा और कहाँ है?

धर्मी जीवको भी जिनमन्दिर बनवानेके, पूजा–भक्ति आदिके विकल्प तो आते हैं, परन्तु वे अंतरसाधनापरिणतिको भाररूप लगते हैं। कोमल रुईके उपर लोहेका मन (वजन) रख दे, तो वह दब जाती है, भार लगता है; उसी प्रकार जिसने अपना साधकस्वभाव प्रगट किया है, ऐसे भगवान आत्माको भूमिकानुसार देव–गुरुकी महिमाका, शास्त्र-स्वाध्यायका, अणुव्रत–महाव्रतका शुभराग आता है, परन्तु वह ज्ञायकपरिणतिरूप हलकी वस्तुको भाररूप लगता है। अहा! ऐसा मार्ग है। ऐसी बातें दिगम्बर सन्तोंके सिवा अन्यत्र नहीं हैं। अरे! आज तक तो जो दिगम्बर सम्प्रदायमें हैं, उन्हें भी कहाँ खबर है? यहाँ कहते हैं कि साधक जीवको भूमिकानुसार विकल्प होते हैं, परन्तु वे साधनापरिणतिको—ज्ञायक-परिणतिको—भाररूप हैं; क्योंकि स्वभावसे विरूद्ध हैं।

'अपूर्णदशामें वे विकल्प होते हैं; स्वरूपमें एकाग्र होने पर, निर्विकल्प स्वरूपमें निवास होने पर, वे सब छूट जाते हैं।'

पूर्ण निर्विकल्पता न हो, तब तक रागकी वृत्ति उठती है। ध्रुव ज्ञायक स्वभावमें एकाग्रता होनेसे जहाँ भीतर स्वरूपमें जाता है–अनन्त आनन्दके महलमें निवास करता है, वहाँ समस्त विकल्प छूट जाते हैं। साधक जीव चौथे गुणस्थानमें हो अथवा पाँचवें में, भले ही उसे मुनि समान शुद्धोपयोग न हो, किन्तु जब विकल्प छोड़कर अंतर-स्थिरता करता है, तब उसे भी अपनी भूमिकाके योग्य शुद्धोपयोग हो जाता है। अहा हा! जन्म–मरणसे रहित होनेकी वस्तु—सम्यग्दर्शन—कोई अलौकिक वस्तु है। वह अति दुर्लभ है, किन्तु असम्भव नहीं है। अपनी वस्तुको प्राप्त करना असम्भव क्यों होगा? परमाणु और राग, जो कि परद्रव्य तथा परभाव हैं, उन्हें अपना बनाना चाहे, किन्तु वे हो नहीं सकते। जब तक अपूर्ण दशा होती है, तब तक व्रतादिके विकल्प आते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं; परन्तु भीतर स्वरूपमें स्थिर हो जाये, तो समस्त विकल्प छूट जाते हैं।

'पूर्ण वीतरागदशा होने पर, सर्व प्रकारके रागका क्षय होता है।'

अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दमें केलि करते–करते वीतरागता होती है; रागकी क्रियासे वीतरागता नहीं होती। सम्पूर्ण वीतरागता होनेसे सर्व प्रकारके रागका नाश हो जाता है। सम्यग्दर्शन होने पर साधकपनेमें विकल्प भाररूप लगते हैं, परन्तु ज्यों ही अन्तर्मुख हुआ, वहाँ विकल्प छूट जाते हैं। अभी पूर्ण वीतराग नहीं हुआ है, इसलिये विकल्पोंका क्षय नहीं होता। पूर्ण वीतरागदशा होते ही सर्व प्रकारके रागका क्षय हो जाता है। लोगोंको लगता है कि–ऐसा मार्ग? मार्ग तो यही है। भाई! सुननेका प्रेम तो होना चाहिये न?

'–ऐसी साधकदशा प्रगट करने योग्य है।'

अंतरमें आनन्दस्वभावको जागृत करके अंतरकी आनन्ददशा–साधकदशा प्रगट करने योग्य है। ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि करके, विकल्प छोड़कर निर्विकल्प हो, पश्चात् वीतरागता होती है। व्रत पालने या बाह्यक्रिया करनेसे कल्याण होगा–ऐसा इसमें नहीं आया। समाधि-शतकमें धूपको छोड़कर छायामें वाट (प्रतीक्षा) देखनेको कहा है। अव्रतमें रहना वह धूप-समान है और व्रतमें जाना वह छाया समान है। अंतरमें स्वरूपकी दृष्टि प्रगट करके विशेष स्थिरता हुई, वहाँ व्रतोंका जो विकल्प आये, उसे 'छाया' कहा जाता है। अकेले व्रतोंका विकल्प आये, किन्तु अंतरमें दृष्टि और स्थिरता साथ नहीं है तो वह 'छाया' नहीं कही जाती। चतुर्थ गुणस्थानकी अपेक्षा जिसने अंतरमें स्वरूपका विशेष आश्रय लिया, उसके व्रतोंको 'छाया' कहा है। वास्तवमें तो उस काल अंतरमें जो शान्तिका परिणमन हुआ है वही सच्ची 'छाया' है; व्रतादिके विकल्पको उपचारसे 'छाया' कहा जाता है।

*

वचनामृत–२३८

यदि तुझे अपना परिभ्रमण मिटाना हो तो अपने द्रव्यको तीक्ष्णबुद्धिसे पहिचान ले। यदि द्रव्य तेरे हाथमें आ गया तो तुझे मुक्तिकी पर्याय सहज ही प्राप्त हो जायेगी। २३८.

'यदि तुझे अपना परिभ्रमण मिटाना हो तो अपने द्रव्यको तीक्ष्णबुद्धिसे पहिचान ले।'

'यदि तुझे अपने भवभ्रमणका अन्त करना हो'—यह शर्त है। आठ वर्षकी कन्या हो अथवा हजार योजनकी कायावाला मगरमच्छ हो, वह भी अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्राप्त करता है; इसलिये यदि तुझे अपना कल्याण करना हो, जन्म–मरणका दुःख टालना हो, परिभ्रमण मिटाना हो, तो वर्तमान ज्ञानकी पर्यायमें अपने त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकतत्त्वको ग्रहण कर ले।

'यदि द्रव्य तेरे हाथमें आ गया तो तुझे मुक्तिकी पर्याय सहज ही प्राप्त हो जायेगी।'

प्रश्न:—यहाँ 'द्रव्य' अर्थात् क्या?

उत्तर:—वस्तुका त्रैकालिक ध्रुव अंश। प्रवचनसारमें वस्तुको उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य–ऐसे तीन अंशोंवाली कहा है। उत्पाद और व्यय, वे वस्तुके पलटते अंश होनेसे, उन्हें पर्याय कहा जाता है। वस्तुके स्थायी अंशको—ध्रौव्यको—द्रव्य कहा जाता है। पर्यायमें मलिनता हो, अंशतः निर्मलता हो या पूर्ण निर्मलता हो, परन्तु वस्तु—नित्य स्थायी रहनेवाली वस्तु—तो भीतर ज्योंकी त्यों विद्यमान है।

त्रिकाल ध्रुव निर्मलानन्द ज्ञायकको 'द्रव्य' कहा जाता है। निज ज्ञायक द्रव्यको सूक्ष्म उपयोग करके–अन्तर्मुख होकर जान ले, तो वह तेरे हाथमें आ जायेगा। यदि ध्रुव ज्ञायकद्रव्य तेरे हाथमें आ गया अर्थात् उसकी अंतरमें प्रतीति हो गई, द्रव्यमें जितना पूर्ण सामर्थ्य भरा है उसकी ज्ञानकी पर्यायमें प्रतीति आ गई, 'अहो! मेरा भगवान आत्मा पूर्णानन्दसे सदा परिपूर्ण है'–ऐसा अपना त्रैकालिक द्रव्य दृष्टिगत हो गया, तो तुझे मुक्तिकी पर्याय सहज ही प्राप्त हो जायेगी। त्रैकालिक मुक्तस्वरूप निज ज्ञायक द्रव्यका अनुभव करनेसे मोक्षकी पर्याय—पूर्ण परमानन्ददशा—अनुक्रमसे सहज ही प्रगट हो जायगी।

*

वचनामृत–२३६

शुभका व्यवहार भी असार है, उसमें रुकने जैसा नहीं है। कोई मनुष्य नगरका ध्येय बनाकर चलने लगे तो बीच–बीचमें ग्राम, खेत, वृक्षादि सब आते हैं, परन्तु वह सब छोड़ता जाता है; उसी प्रकार साधकको यह शुभादिका व्यवहार बीचमें आता है, परन्तु साध्य तो पूर्ण शुद्धात्मा ही है। इसलिये वह व्यवहारको छोड़ता हुआ पूर्ण शुद्धात्मस्वरूपमें ही पहुँच जाता है। २३६.

'शुभका व्यवहार भी असार है, उसमें रुकने जैसा नहीं है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतराग देव–शास्त्र–गुरुके प्रति जो भक्ति आदि शुभभाव, वे भी असार हैं। वे धर्म हैं अथवा मुक्तिका कारण हैं–ऐसा मानकर उनमें रुकने जैसा नहीं है; वहाँ अटक नहीं जाना। शुभभावमें नहीं रुकना, यह समझानेके लिये दृष्टान्त देते हैं :—

'कोई मनुष्य नगरका ध्येय बनाकर चलने लगे तो बीच–बीचमें ग्राम, खेत, वृक्षादि सब आते हैं, परन्तु वह सब छोड़ता जाता है; उसी प्रकार साधकको यह शुभादिका व्यवहार बीचमें आता है, परन्तु साध्य तो पूर्ण शुद्धात्मा ही है।'

कोई यात्री नगरका ध्येय बनाकर—वहाँ जाना है ऐसा निर्णय करके—चलने लगे; मार्गमें अनेक ग्राम, नगर, खेत, उद्यान आदि बहुत आते हैं, किन्तु उन्हें छोड़ता जाता है; उसी प्रकार साधक जीवको सच्चे देव–शास्त्र–गुरुके प्रति भक्ति आदिका—पर सन्मुखताका—भाव आये, वह सब शुभराग है। शुभभावरूप व्यवहार बीचमें आये, परन्तु साध्य तो शुद्धात्मा ही है, पहुँचना तो आत्माकी परिपूर्ण शुद्धदशामें है। अहा! 'वचनामृत'की भाषा सरल और सादी है। एक व्यक्ति अपने पत्रमें लिखता है कि–"बहिनश्रीके वचन ऐसे सरल और सादे हैं! आत्मधर्ममें 'आत्मा चैतन्यकी आभाका पुंज है'–ऐसा पढ़कर जो आनन्द आया, उसका क्या वर्णन करूँ!"

साधक जीवको साध्य तो पूर्ण शुद्धात्मा ही है। वर्तमान शुद्धात्मा–सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चरित्रकी निर्मलदशा प्रगट हुई, वह साधकभाव है; साध्यदशा नहीं है। साध्यदशा तो पूर्ण शुद्धात्मा ही है। साधकपना प्रगट हुआ, शुद्धोपयोग आया वह साध्य नहीं है; साध्य तो पूर्ण शुद्धात्मा ही है।

'इसलिये वह व्यवहारको छोड़ता हुआ, पूर्ण शुद्धात्मस्वरूपमें ही पहुँच जाता है।'

साधकपना प्रगट होनेके पश्चात् भी देव-गुरुकी भक्ति आदिका शुभराग आता है, परन्तु उसमें वह रुकता नहीं है। उसका हर्ष या उत्साह नहीं है, खेद है; इसलिये वह शुभस्वरूप व्यवहारको छोड़ता हुआ, पूर्ण शुद्धात्मस्वरूपमें ही पहुँच जाता है। दृष्टि अन्तर्मुख होकर जो सम्यक्त्व हुआ, निज शुद्ध ज्ञायकतत्त्वका अनुभव हुआ वह निश्चय और बीचमें जो राग आता है वह व्यवहार है; वह दुःखरूप है। जब तक सम्पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक वह आता है, परन्तु वह हेय है—छोड़ने योग्य है—ऐसा भगवान कहते हैं। मोक्षपाहुडकी १६वीं गाथामें 'परदव्वादो दुग्गइ' कहा है। वीतराग भगवान, वीतरागकी वाणी और वीतरागके शास्त्र ऐसा कहते हैं कि–'हम तेरे लिये परद्रव्य हैं, हमारी ओर भी यदि तेरा लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग होगा। राग होना, यह चैतन्यकी सुगति नहीं है, दुर्गति है।' अहा! ऐसा मार्ग—पुकार है वीतरागकी! इसलिये साधक जीव शुभरागके व्यवहारको छोड़कर पूर्ण शुद्धात्मस्वरूपमें ही पहुँच जाता है। *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–२४०

अरे जीव! अनन्त–अनन्त काल बीत गया, तूने परका तो कभी कुछ किया ही नहीं; अंतरमें शुभाशुभ विकल्प करके जन्म–मरण किये हैं। अब अनन्त गुणोंका पिण्ड ऐसा जो निज शुद्धात्मा उसे बराबर समझकर, उसीमें तीक्ष्ण दृष्टि करके, प्रयाण कर; उसीका श्रद्धान, उसकी अनुभूति, उसीमें विश्राम कर। २४०.

'अरे जीव! अनन्त–अनन्तकाल बीत गया, तूने परका तो कभी कुछ किया ही नहीं; अंतरमें शुभाशुभ विकल्प करके जन्म–मरण किये हैं।'

अरे जीव! इस भववनमें भ्रमण करते–करते अनन्तकाल बीत गया, तूने परका–परमाणुसे लेकर लक्ष्मी या मकानादि स्कंधोंका, निगोदसे लेकर स्त्री–पुत्रादि अन्य जीवोंका अथवा अपने साथ एकक्षेत्रावगाह स्थित कर्म और शरीरके पुद्गलोंका भी कभी कुछ किया ही नहीं है; एक द्रव्यसे अन्य द्रव्यमें कभी कुछ किया ही नहीं जा सकता। आत्मा परद्रव्यकी क्रिया क्यों करेगा? अपने द्रव्यमें अपने विकारी या अविकारी भाव करता है; परद्रव्यमें कुछ नहीं करता। मन्दिर बनवाना, शास्त्र लिखना, व्याख्यान देना, पूजामें 'स्वाहा' बोलना इत्यादि परकी—शरीर या वाणीकी—कोई भी क्रिया जीव कभी भी नहीं कर सकता। उस समय मात्र अपने भाव–परिणाम करता है।

पण्डितोंकी परिषदमें एक बार एक दिगम्बर जैन पण्डितने कहा था कि : 'जीवको परद्रव्यका कर्ता न माने तो वह दिगम्बर जैन ही नहीं है।' अरे भाई! एक तिनकेके दो टुकड़े भी आत्मा नहीं कर सकता; भाषा बोली जाती है वह भी आत्मा नहीं कर सकता। उस समय आत्मा मात्र अपने भाव–परिणाम करता है। 'परकी क्रिया–व्यापारकी क्रिया, पैसा लेने–देनेकी क्रिया मैं करता हूँ'–ऐसा अज्ञानी मानता है, परन्तु जीव अज्ञानभावसे भी परकी क्रिया नहीं कर सकता। अनन्त काल बीत गया, किन्तु जीवने अपने भावोंके अतिरिक्त परमें कुछ किया ही नहीं है। भाई! तेरा भगवान आत्मा, तेरे अपनेमें भावोंकी उलटी–सीधी क्रिया करता है। परजीवकी दया पालना, जिनेन्द्र भगवानकी स्थापना करना, जिनमन्दिर बनवाना आदि कुछ भी तूने कभी किया ही नहीं है। तूने अपने अंतरकी वस्तुको पहिचाने बिना—निज शुद्ध ज्ञायक प्रभुकी अनुभूति बिना—मात्र शुभाशुभभाव करके, जन्म–मरण किये हैं, नरक–निगोदके अथवा देवादिके भवोंमें दुःखमय परिभ्रमण किया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'अब अनन्त गुणोंका पिण्ड ऐसा जो निज शुद्धात्मा, उसे बराबर समझकर, उसीमें तीक्ष्ण दृष्टि करके प्रयाण कर; उसीका श्रद्धान, उसकी अनुभूति, उसीमें विश्राम कर।'

भगवान आत्मा ज्ञानादि अनन्त गुणोंका त्रैकालिक ध्रुव पिण्ड है, परन्तु अंतरमें उसकी प्रतीति तथा महिमा नहीं होनेसे जीवकी दृष्टि अनादिसे पर्याय पर ही है। साधु हुआ, तथापि पर्यायदृष्टि—पर्यायका लक्ष नहीं छोड़ा। पर्यायके पीछे पूर्ण त्रैकालिक तत्त्व—पूर्णानन्दका नाथ ज्ञायक प्रभु विद्यमान है, उस पर दृष्टि नहीं की। जो वर्तमान पर्यायमें होनेवाले शुभाशुभभावों पर ही लक्ष है, तो वह पर्यायदृष्टि है। उनपर जिसकी दृष्टि है, उसे अंतरमें जो द्रव्यस्वभाव—आत्मपदार्थरूप माल भरा पड़ा है, उसकी खबर नहीं है। पर्याय तो व्यवहारनयसे, अभूतार्थनयसे आत्मा है, वह परमार्थ शुद्ध ध्रुव आत्मा नहीं है।

अहाहा! चैतन्यऋद्धिसे भरपूर विशाल महल, ज्ञान–आनन्दादि अनन्तानन्त गुणोंका भण्डार, अनन्त शक्तियोंका सागर—ऐसे त्रैकालिक भगवान आत्माको—भगवानका आत्मा नहीं भाई! वह तो भगवानके पास रहा, परन्तु निज शुद्ध ज्ञायक पदार्थको यथार्थ लक्ष्यमें लेकर, ध्यानमें ध्येय नहीं बनाया। प्रथम तो निजशुद्धात्माको जैसा है, वैसा जानकर उसीमें तीक्ष्ण दृष्टि करके प्रयाण कर।

प्रश्न:—आपकी बात बराबर है, परन्तु उसका कुछ साधन तो होना चाहिये न?

उत्तर:—भाई, स्वसन्मुख लक्ष्य किये बिना, बाह्य साधन वह वास्तवमें साधन ही नहीं है। 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन करिये सोई।' अंतरमें निश्चयका—परमार्थका ज्ञायक तत्त्वका—लक्ष किया हो, तो देव–गुरु आदिको व्यवहारसे साधन कहा जाता है। रागसे भिन्न निज ध्रुव ज्ञायक स्वभावकी दृष्टि करना वही सच्चा साधन है। प्रज्ञाछैनी, ज्ञानकी दशा, भेदज्ञानकी तीक्ष्णता ही साधन है।

जो अनन्त सम्पदाओंका स्वामी है, ऐसे निज चैतन्यप्रभुमें प्रयाण कर; उसीका श्रद्धान कर, उसीका अनुसरण करके अंतरआनन्दका अनुभव कर और उसीमें विश्राम कर। श्रीमद्ने कहा है कि–

सुखधाम अनन्त सुसन्त चही, दिनरात रहें तद् ध्यान महीं;
प्रशान्ति अनन्त सुधामय जे, प्रणमुं पद ते वर ते जयते।

शुभाशुभ विकल्पोंसे पार, अरे! पर्यायसे भी पार अंतरमें जो अभेद ज्ञायक ध्रुव भगवान आत्मा है, वही विश्रामस्थान है। उसका आश्रय लेकर वहीं विश्राम कर, तो अनादि परिभ्रमणकी थकान उतर जायेगी, भवभ्रमणका दुःख दूर हो जायगा। भवका अन्त करनेके लिये उसीमें विश्राम कर। *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–२४१

ओहो! यह तो भगवान आत्मा! सर्वाङ्ग सहजानन्दकी मूर्ति! जहाँसे देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द। जैसे मिश्रीमें सर्वांग मिठास वैसे ही आत्मामें सर्वाङ्ग आनन्द। २४१.

'ओहो! यह तो भगवान आत्मा! सर्वाङ्ग सहजानन्दकी मूर्ति! जहाँसे देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द।'

अंतरमें 'जानना.....जानना'—ऐसे ज्ञातारूपसे, शरीरादि परसे भिन्न तथा रागादिसे पृथक् जो लक्ष्यमें आता है, वह तो भगवान आत्मा है। वह तो सर्वाङ्ग सहजानन्दकी मूर्ति है। आत्माके असंख्य प्रदेशोंमें जहाँ देखो, वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द है।

अपने यहाँ 'सहजानन्दी शुद्धस्वरूपी, अविनाशी मैं आत्मस्वरूप'की धुन बोली जाती है; वह सुनकर एक बहिनको प्रश्न उठा कि–हम जैनोमें सहजानन्द होता है? अरेरे! सहजानन्दके अर्थकी भी खबर नहीं है! अपना आत्मा स्वयं ही सहज आनन्दकी मूर्ति, अनाकुल आनन्दस्वरूप है। उसे जिधरसे देखो उधर, ऊपर–नीचे या मध्यमें–सर्व प्रदेशोमें आनन्द, आनन्द और आनन्द है।

'जैसे मिश्रीमें सर्वाङ्ग मिठास, वैसे ही आत्मामें सर्वाङ्ग आनन्द।'

जिस प्रकार मिश्रीकी डलीके सर्वाङ्गमें मिठास भरी है, उसी प्रकार भगवान आत्मामें सर्वाङ्ग आनन्द भरा है। जहाँ से देखो, वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द। 'आनन्द' शब्द तीन बार लिया है–द्रव्यमें आनन्द, गुणमें आनन्द और पर्यायमें आनन्द।

अहा! ऐसा मार्ग है। लोगोंको कठिन लगे। उनसे तो बाहरकी बातें करो—ब्रह्मचर्य पालो, रागकी क्रिया करो आदि, तो अच्छा लगता है; किन्तु भाई! शरीरसे ब्रह्मचर्यका पालन करना, वह तो जड़की क्रिया है; आत्माकी नहीं है। साधकदशामें भी बीचमें ऐसे विकल्प आते हैं, परन्तु वे हैं तो दुःखमय तथा छोड़ने योग्य। वर्तमानमें ऐसा उपदेश मिलना कठिन हो गया है।

मिश्रीमें नीचे–ऊपर, सर्वत्र मिठास भरी है; वैसे ही भगवान आत्मामें सर्वत्र आनन्द भरा है। प्रथम परमानन्दमूर्ति भगवान आत्माका निर्णय करे पश्चात् प्रयोग होता है। 'मार्ग यह है'–ऐसा अभी निर्णय भी नहीं किया है, तो बिना निर्णयके भीतर–अंतरमें कैसे जा सकेगा? मिश्रीमें ऊपर, मध्यमें, नीचे जहाँ देखो वहाँ सर्वत्र मिठास है; उसी प्रकार आत्माके—द्रव्य, गुण और पर्यायमें—असंख्य प्रदेशोंमें सर्वत्र आनन्द भरा है। *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–६४

दिनांक १४-६-७८

वचनामृत–२४२

चैतन्यदेवकी ओट ले, उसकी शरणमें जा; तेरे सब कर्म टूटकर नष्ट हो जायेंगे। चक्रवर्ती मार्गसे निकले तो अपराधी लोग काँप उठते हैं, फिर यह तो तीन लोकका बादशाह—चैतन्य चक्रवर्ती! उसके समक्ष जड़कर्म खड़े ही कैसे रह सकते हैं? २४२.

'चैतन्यदेवकी ओट ले, उसकी शरणमें जा; तेरे सब कर्म टूटकर नष्ट हो जायेंगे।'

बाह्यमें शरीर, वाणी, लक्ष्मी तथा स्त्री–पुत्रादि संयोगोंसे और अंतरमें रागादि विभावभावोंसे भिन्न, अंतरमें जो त्रैकालिक ध्रुव चैतन्य ज्ञायकदेव विराजता है, उसकी ओट ले, उसकी शरणमें जा, तो तेरे सब कर्म टूटकर नष्ट हो जायेंगे। कर्म तो जड़ वस्तु हैं, कहीं आत्माको हैरान नहीं करते और आत्मा उनका नाश भी नहीं कर सकता। स्वयं स्वरूपसे च्युत होकर अशुद्धता करता है, तो कर्मको विभावमें निमित्त कहा जाता है और स्वयं ज्ञायकदेवकी ओट लेकर—आश्रय करके—शुद्धता प्रगट करे, तो कर्म अपने आप नष्ट हो जाते हैं।

'चक्रवर्ती मार्गसे निकले तो अपराधी लोग काँप उठते हैं, फिर यह तो तीन लोकका बादशाह—चैतन्य चक्रवर्ती! उसके समक्ष जड़कर्म खड़े ही कैसे रह सकते हैं?'

छह खण्डको साधनेवाला चक्रवर्ती मार्गसे निकल रहा हो, तो अपराधी मनुष्य भयसे काँपने लगते हैं, वे उस मार्गपर चलनेका साहस नहीं कर सकते; छुपते फिरते हैं। ऐसे ही यह भगवान ज्ञायक आत्मा तो तीनलोकका सम्राट, पूर्णानन्दका नाथ चैतन्यचक्रवर्ती है; उसकी जिसे दृष्टि एवं अनुभव हुआ, उसके समक्ष जड़कर्म खड़े ही कैसे रह सकेंगे? नहीं रह सकते। 'जड़कर्म रह नहीं सकते' यह निमित्तका कथन है, वास्तवमें तो अंतरमें जहाँ ज्ञायक चक्रवर्ती अपने सामर्थ्यसहित प्रगट हुआ, वहाँ अशुद्धता–विभावभाव कैसे रह सकेंगे? विभावोंका नाश ही हो जायेगा। अंतरमें जहाँ ज्ञायकदेवकी शरण ली–वीतराग परिणति

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हुई, वहाँ अशुद्धता काँप उठती है, उसका नाश हो जाता है और उसके निमित्तसे जड़कर्म भी खिर जाते हैं। जीवके शुद्धभावसे कर्म खिर जाते हैं वह निमित्तका कथन है; वास्तवमें तो जड़की पर्यायका रहना या जाना, वह तो उसके अपने स्वतन्त्र परिणमनके आधारसे है। आया कुछ समझमें?

*

वचनामृत–२४३

ज्ञायक आत्मा नित्य और अभेद है; दृष्टिके विषयभूत ऐसे उसके स्वभावमें अनित्य शुद्धाशुद्ध पर्यायें या गुणभेद कुछ हैं ही नहीं। प्रयोजनकी सिद्धिके लिये यही परमार्थ-आत्मा है। उसीके आश्रयसे धर्म प्रगट होता है। २४३.

'ज्ञायक आत्मा नित्य और अभेद है; दृष्टिके विषयभूत ऐसे उसके स्वरूपमें अनित्य शुद्धाशुद्ध पर्यायें या गुणभेद कुछ हैं ही नही।'

द्रव्यस्वभावकी अपेक्षासे भगवान आत्मा नित्य और अभेद है; पर्याय-अपेक्षासे उसमें अनित्य शुद्धाशुद्ध पर्यायें तथा गुणभेद हैं अवश्य, परन्तु दृष्टिके विषयभूत ऐसे उसके सामान्य स्वरूपमें अनित्य—सम्यक्त्वादि शुद्ध तथा रागादि अशुद्ध—पर्यायें तथा ज्ञान-दर्शनादि गुणभेद, कुछ हैं ही नहीं।

सम्यक्त्व अर्थात् दृष्टिका विषय त्रिकाल एकरूप ध्रुव अभेद ज्ञायकतत्त्व है। सम्यक्त्वीको जब तक अभेद द्रव्यस्वभावके आश्रयसे पर्यायमें पूर्ण वीतरागता प्रगट न हो, तब तक उसे वीतराग देव–शास्त्र–गुरुकी भक्तिके, अणुव्रत–महाव्रतादिके शुभरागरूप व्यवहार भूमिकानुसार बीचमें आते हैं, परन्तु वे भाव पुण्यबंधका कारण हैं; धर्मका–कर्मक्षयका कारण नहीं हैं।

कोई कहे कि–जिनप्रतिमाको पूजनेके भाव तो जब तक मिथ्यात्व हो तब तक होते हैं; सम्यक्त्व होनेके पश्चात् नहीं होते, इसलिये जिनप्रतिमाकी पूजादिके भाव झूठे हैं, व्यर्थ हैं। भाई! तेरी यह बात झूठ है। सम्यक्त्वी ज्ञानीको ही जिनप्रतिमाके दर्शन–पूजन–भक्तिके सच्चे भाव आते हैं। पं. बनारसीदासजीने कहा है कि–

कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी,
सोई जिन-प्रतिमा प्रवांनै जिन सारखी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो सम्यग्दृष्टि जीव है, उसे जिनप्रतिमा जिन समान लगती है। व्यवहार भी है न? निश्चय तो भीतर अपना भगवान आत्मा है, तो उसके प्रतिबिम्बरूप भगवानकी प्रतिमाकी पूजा आदि समस्त व्यवहार भी है; निचली भूमिकामें बीचमें व्यवहार आये बिना नहीं रहता। जिनप्रतिमाकी पूजा आदिके शुभभाव पुण्यबंधका कारण हैं; धर्मका नहीं। जिनप्रतिमाको मानना, वह स्थापना-निक्षेप है। सच्चा स्थापना-निक्षेप कब होगा? जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ हो, आत्माका निर्विकल्प अनुभव हुआ हो, उसे जो भावश्रुतज्ञान प्रगट हुआ है, उसके भेद नय हैं। ज्ञानीको ही निश्चय और व्यवहारनय होते हैं। स्थापना-निक्षेप वह व्यवहार है; उस ओरका उठनेवाला भाव शुभराग है, वह भी व्यवहार है; धर्म नहीं है। धर्म नहीं है तो आता क्यों है? भाई! निचली भूमिकामें ऐसे भाव आये बिना नहीं रहते।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने भी प्रवचनसारमें कहा है कि—जिनेन्द्रपूजाके उपदेशकी प्रवृत्ति शुभोपयोगी मुनियोंको भी होती है।

उपदेश दर्शनज्ञाननो, पोषण–ग्रहण शिष्यो तणुं,
उपदेश जिनपूजा तणो–वर्तन तुं जाण सरागनुं।

जो मुनि हैं, सच्चे सन्त हैं, आत्मानुभवी हैं, तीन कषायोंका नाश करके छठवें–सातवें गुणस्थानमें झूलनेवाले हैं, वे भी अरिहंतादिकी पूजाका उपदेश देते हैं। ज्ञानीको भी जब तक शुद्धस्वरूपमें एकाकार स्थिर हो जानेकी स्थिति प्रगट न हुई हो, तब तक जिनेन्द्र-पूजादिका शुभभाव आता है। यदि शुभभाव–व्यवहार न आये तो क्या करे? अशुभमें जाये? अशुभसे बचनेके लिये निचली दशामें पूजादिके शुभभाव आते हैं, परन्तु ज्ञानी उसे धर्म—संवर–निर्जरा—नहीं मानते।

जैसे प्रतिमा जड़ है, वैसे ही वाणी भी जड़ है; तथापि शास्त्रमें जिनवाणीको भी पूजनीय कहा है न? वैसे ही प्रतिमा भी पूजनीय है। जैसे वाणी भगवान आत्माका स्वरूप समझनेमें निमित्त होती है, वैसे ही जिनप्रतिमा भी स्वरूप समझनेमें निमित्त बनती है। पं. बनारसदासजीने कहा है—

मुद्रा देखि केवलीकी मुद्रा याद आवे जहाँ,
जाके आगे इन्द्रकी विभूति दीसै तिनसी॥

*

कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
सोहै जिनकी छबि सुविद्यमान जिनसी॥

जिनप्रतिमाके दर्शन करते हुए केवली भगवानकी मुद्राका स्मरण होता है। सम्यक्त्वीको भी ऐसे शुभभाव आये बिना नहीं रहते। जब तक अंतरमें रागसे पूर्ण विरक्ति नहीं हुई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, तब तक ज्ञानधारा और रागधारा, दोनों धाराएँ चलती हैं। यह बात समयसार–कलशटीका (कलश–११०)में स्पष्टरूपसे समझायी है।

भावपाहुड़की ८३वीं गाथामें कहा है कि—पूजा, व्रत, वैयावृत्य आदि जैनधर्म नहीं हैं, परन्तु अंतरमें मोह और क्षोभके अभावरूप निर्मल परिणाम वे जैनधर्म हैं। स्वभावकी दृष्टि और अनुभव हुआ है ऐसे ज्ञानीको भी—मुनिको भी—ऐसा राग तो आता है।

आनन्दघनजी कहते हैं :—

बोलूँ जिसका पक्ष ले, हो प्रसन्न मनमांहिं;
छोड़ूँ जिसके पक्षको, खेद करे मनमांहिं।

प्रतिमाकी बात आये, वहाँ प्रतिमा नहीं माननेवालोंको विरोध लगता है। किन्तु भाई! मोक्षमार्गप्रकाशकमें कहा है कि—भाई! ऐसा कौनसा उपदेश है, जिससे सब प्रसन्न हों? सब प्रसन्न हों, ऐसा तो कोई उपदेश है नहीं। उपदेश तो निश्चय और व्यवहार–दोनोंका आता है। पूजादिका जो निषेध करते हैं, उन्हें व्यवहारका भी ज्ञान नहीं है और इसलिये उन्हें निश्चयका भी यथार्थ ज्ञान नहीं होता।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि–दृष्टिके विषयभूत ऐसे त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक आत्माके स्वरूपमें अनित्य शुद्धाशुद्ध पर्यायें अथवा गुणभेद, कुछ है ही नहीं। पर्याय या गुणभेद दृष्टिका विषय नहीं है, परन्तु दृष्टिके साथ जो ज्ञान है वह सबको जानता है—निमित्तको जानता है, रागको जानता है, गुणभेदको जानता है, अभेदको जानता है और व्यवहार कैसा होता है उसे भी ज्ञान यथार्थ जानता है। अहा! ऐसा मार्ग है।

यहाँ जब निश्चयकी बात चलती हो, तब उसे सुनकर कोई जीव व्यवहारको सर्वथा उड़ा देते हैं; किन्तु भाई! यहाँ तो ऐसा कहा जाता है कि–व्यवहार आता तो अवश्य है, परन्तु वह धर्म नहीं है। व्रत–तपादि क्रियाके शुभभाव—चरणानुयोगका व्यवहार—अंतरमें स्वरूपरमणतामें झुकनेवाले भावलिंगी मुनिराजोंको भी आता हैं। सम्यक्त्वी जीवको भाव-श्रुतज्ञान होता है और इसलिये उसके नय होते हैं; जिनप्रतिमा और उसकी पूजनरूप सच्चा व्यवहार भी उसीको होता है। मिथ्यादृष्टिको भावश्रुत नहीं है, इसलिये उसको नय नहीं है, और इसलिये उसको स्थापना-निक्षेपरूप सच्चा व्यवहार भी नहीं हो सकता।

एक सम्प्रदाय पूजाको उड़ाता है और एक सम्प्रदाय पूजासे मोक्ष मनवाता है; एक व्यवहारका सर्वथा उच्छेद करता है और एक व्यवहारसे मोक्ष होनेकी बात करता है–वे दोनों अभिप्राय मिथ्या हैं।

प्रश्न:—व्यवहारसे परम्परा-मोक्ष होता है, ऐसा शास्त्रमें आता है न?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर:—भाई! परम्पराका अर्थ क्या? जिसे रागसे तथा व्यवहारसे भिन्न निज शुद्ध ज्ञायककी प्रतीति एवं अनुभूति हुई है, उसे निचली भूमिकामें मन्द शुद्धिके साथ जो पूजा–भक्ति, स्वाध्याय तथा व्रतादिके शुभभाव आते हैं, वह परम्परासे–व्यवहारसे मोक्षके साधन कहे जाते हैं। वास्तवमें तो उस समय अंतरमें स्वभावके आश्रयसे वर्तती जो मन्द शुद्धि है, वही साक्षात् कारणरूप होकर—उग्र शुद्धिरूप होकर—मोक्ष होता है। शुभराग भी आस्रव है। आस्रवको रखकर परम्परासे मोक्ष होगा–ऐसा है ही नहीं। जिसको स्वभावकी दृष्टि एवं अनुभूति प्रगट हुई, ऐसे ज्ञानीको शुभभावमें आने पर प्रथम अशुभका अभाव होता है और पश्चात् शुद्धोपयोगमें आने पर शुभका भी अभाव होगा; इसलिये 'परम्परासे' कहा जाता है।

साधक जीवको शुद्धाशुद्ध पर्यायें होती हैं, परन्तु वे सम्यग्दर्शनका विषय नहीं हैं। सम्यग्दर्शनका विषय त्रैकालिक अभेद ज्ञायकभाव है। दृष्टिमें आश्रय करनेकी शक्ति है, जाननेकी शक्ति नहीं है; जाननेकी शक्ति ज्ञानमें है। वह सम्यग्दर्शनको, उसके विषयको, शुद्धाशुद्ध पर्यायको, गुणभेदको–सबको यथार्थ जानता है। ज्ञानमें वह सब ज्ञात होने पर भी वह सम्यग्दर्शनका विषय–आश्रय–अवलम्बन नहीं है।

'प्रयोजनकी सिद्धिके लिये यही परमार्थ-आत्मा है।'

आत्माके पूर्ण परमानन्दकी प्राप्ति तथा दुःखसे सम्पूर्ण मुक्ति वह प्रयोजन है। उस प्रयोजनकी प्राप्ति भगवान आत्माके—त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकके—आश्रयसे होती है। वीतराग देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धाका, सत्श्रवण–स्वाध्याय–विचारका तथा दया–दान या व्रत–तपादिका शुभभावरूप व्यवहार बीचमें आता है, तथापि उससे प्रयोजनकी सिद्धि—धर्म या मुक्ति—नहीं होती।

प्रश्न:—तो फिर उसे करना किसलिये?

उत्तर:—भाई! सुन तो सही! जब तक अंतरमें पूर्ण वीतरागता नहीं हुई, तब तक ऐसा व्यवहार बीचमें आये बिना नहीं रहता। जिनके अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दमुद्रित प्रचुर स्वसंवेदन निरन्तर वर्त रहा है, ऐसे अन्तर्मुहूर्तमें छठवें–सातवें गुणस्थानमें झूलनेवाले वीतरागी सन्त भी जब वे छठवें गुणस्थानमें–प्रमादमें आते हैं, तब शुभोपयोगरूप व्यवहारकी प्रवृत्ति आती है। जिनपूजा या व्रतादिके उपदेशका, सन्तोंकी वैयावृत्यका आदि शुभभाव जिनके वर्तता है, वे मुनि सास्रवी हैं और जो मुनि अंतरमें निर्विकल्प शुद्धिमें स्थिर हो गये हैं, वे निरास्रवी हैं। छठवें गुणस्थानमें मुनि सर्वथा सास्रवी हैं ऐसा नहीं है; वहाँ भी तीन कषायका अभाव होकर जितनी वीतरागता प्रगट हुई है उतने निरास्रव हैं। उनको भी शुभोपयोगके–उपदेशादिके भाव आते हैं। परन्तु प्रयोजनकी सिद्धिके लिये ध्रुव ज्ञायक ही परमार्थ-आत्मा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'उसीके आश्रयसे धर्म प्रगट होता है।'

समाधिशतकमें कहा है कि मुनियोंको उपदेशका शुभभाव आये, वह भी उन्माद है। वह उन्माद अस्थिरताका—चारित्र अपेक्षाका—है। तत्त्वार्थसूत्रके प्रथम अध्यायमें 'सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्' कहा है, वह दर्शनमोहजनित उन्माद है। अस्थिरताका राग मुनियोंको भी आये बिना नहीं रहता, तथापि है वह उन्माद। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवको भी "तं एयत्तविभत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण" ऐसा विकल्प आया था न? यहाँ तो कहते हैं कि–धर्मीको ऐसे व्यवहारके विकल्प आते हैं, परन्तु उसकी दृष्टि उन पर नहीं है; उसकी दृष्टि तो अंतरमें जिसमें अनन्त गुणोंके भण्डार भरे हैं ऐसे निज ध्रुव ज्ञायक परमात्माके ऊपर सतत लगी है। उस ध्रुव ज्ञायकके ही आश्रयसे धर्म–अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है।

*

वचनामृत–२४४

ओहो ! आत्मा तो अनन्त विभूतियोंसे भरपूर, अनन्त गुणोंकी राशि, अनन्त गुणोंका विशाल पर्वत है। चारों ओर गुण ही भरे हैं; अवगुण एक भी नहीं है। ओहो! यह मैं? ऐसे आत्माके दर्शनके लिये जीवने कभी सच्चा कौतूहल ही नहीं किया। २४४.

'ओहो! आत्मा तो अनन्त विभूतियोंसे भरपूर, अनंत गुणोंकी राशि, अनन्त गुणोंका विशाल पर्वत है!'

भगवान आत्मा ज्ञान–आनन्दादि अनन्त विभूतियोंसे भरपूर, ऐसी कोई यथार्थ वस्तु है कि जिसके दर्शनमात्रसे अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका प्रारम्भ हो जाये, परन्तु जीवने अनादिकालसे,—भले ही अनन्तबार दिगम्बर साधु हुआ, व्रत पाले, भक्ति की, पूजा की, 'वह साधन बार अनन्त कियो'–सब कुछ किया; परन्तु परका लक्ष तथा पर्याय एवं रागदृष्टि नहीं छोड़ी। पर्यायके समीप अनन्तानन्त ज्ञानादि विभूतियों से परिपूर्ण ज्ञायक महाप्रभु अंतरमें विद्यमान है, उस पर कभी दृष्टि नहीं डाली। ज्ञायक प्रभु तो अनन्त गुणोंकी महाराशि, अनन्तानन्त शक्तियोंका विशाल पर्वत है कि जिसके ध्रुव.....ध्रुव....ध्रुवस्वभावमें परिणाम सम्बन्धी कोई हलचल भी नहीं है।

'चारो ओर गुण ही भरे हैं; अवगुण एक भी नहीं है।'

ज्ञायक प्रभुमें–आत्मामें चारों ओर गुण ही भरे हैं; कोई शुभराग या अशुभरागरूप दोष–अवगुण आत्माके स्वभावमें है ही नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्तुतिमें आता है न—'हुं तो दोष अनन्तनुं भाजन छुँ, करुणाल'.....'नाहीं एक सद्गुण, पण मुख बताऊं शुं य?' यह तो शिष्यका विनयभाव है। सत्की जिज्ञासावानको ऐसी नम्रताके भाव होते हैं। पर्यायमें दोष है, ऐसा वहाँ बतलाना है। मेरी पर्यायमें दोष है–ऐसा जाने–माने नहीं, तो दोषरहित निजज्ञायक भगवानको कैसे जाने–मानेगा? यहाँ तो पर्यायमें अपने कारण दोष है, ऐसा जो स्वीकारता है उससे कहते हैं कि भगवान आत्मा स्वभावसे तो दोषका आयतन है ही नहीं; वह तो चारों ओर अनन्त गुणोंका ही आयतन है। श्रीमद्ने एक जगह इस आशयका लिखा है कि–प्रभु सर्वगुणसम्पन्न है, परन्तु उसके अपलक्षणोंका पार नहीं है.....यहाँ ऐसा कहना है कि तू अपनी वस्तुको—त्रैकालिक परिपूर्ण प्रभुताको—नहीं मानता और पर्याय तथा रागादि जितना ही अपनेको मानता है, यह तेरा अपलक्षण है। अहा! ऐसा मार्ग है; परन्तु अरेरे! जीव अनादिकालसे लुट रहा है। उस रागरसिकको प्रथम तो अपने वस्तुस्वरूपकी खबर नहीं है, सांसारिक जंजालके कारण सुननेका भी अवकाश नहीं मिलता। निवृत्त होकर मुश्किलसे सुनने जाये, वहाँ कुगुरु उसका समय बर्बाद कर देतें हैं। वहाँ उसे अन्तर्दृष्टि करनेकी बात तो सुननेको नहीं मिलती और व्यवहारसे—दान–दया–पूजा या व्रतादि करनेसे—कल्याण होगा, ऐसी बाह्य क्रियाकाण्डकी दृष्टिका पोषण मिलता है। कुगुरुने उसका समय लूट लिया!

'ओहो! यह मैं!–ऐसे आत्माके दर्शनके लिये जीवने कभी सच्चा कौतूहल ही नहीं किया।'

कोई व्यक्ति हाथीका या अश्वका रूप बनाकर आये, वेशपरिवर्तन करे, तथापि देखनेवालोंको कुतूहल उत्पन्न होता है; परन्तु जीवने अपने त्रैकालिक ज्ञायक भगवानके दर्शन हेतु कभी भी सच्चा कुतूहल किया ही नहीं। कुतूहल अर्थात् कौतुक, जिज्ञासा, आश्चर्य, महिमा। अहा! रागके परदेमें यह त्रिलोकीनाथ ज्ञायक बादशाह क्या वस्तु है ? उसे प्रेमपूर्वक देखनेका सच्चा कुतूहल ही जीवने कभी नहीं किया, वर्तमान पर्यायमें त्रेकालिक ध्रुव भगवानका विस्मय ही कभी नहीं आया!

चैतन्य–चिन्तामणि प्रभु आत्मा अंतरमें अमृतका कूप भरा है। उसे शुभभाव आते हैं, परन्तु वह विषकुम्भ है। ज्ञानीको भी शुभराग आता तो है, परन्तु वह उसका अवलम्बन–आश्रय नहीं लेता, उसे उपादेय नहीं मानता। भाई! तेरी दृष्टि अनादिसे बाहर—इसका करूँ, उसका करूँ, बच्चोंको सम्हालूँ, व्यापारमें वृद्धि करूँ, दया–दानादि पुण्यकार्य करूँ आदिमें—भटकती है, उसे बदल दे; दृष्टिको अन्तरोन्मुख करके चारों ओर अतीन्द्रिय आनन्दसे भरपूर–अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण निज ज्ञायक प्रभुमें दृष्टि लगा। मिश्री चारों ओर (सर्वांग) मिठाससे भरपूर है, उसीप्रकार यह ज्ञायक चारों दिशाओंमें फैला अमृतका सागर है। प्रभु! उसे देखनेका एकबार अंतरसे कुतूहल तो कर!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तेरी मति–श्रुतज्ञानकी पर्याय जो पराङ्मुख है, उसे प्रथम श्रुतज्ञानके बलसे ज्ञानस्वभावी आत्माका दृढ़ निर्णय करके, जहाँ परमात्मस्वरूप प्रभु विराजमान है वहाँ स्वोन्मुख कर। ऐसा करनेसे तुझे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होगा। भाई! पहले तो भवका डर होना चाहिये। भवभीत जीवसे ज्ञानी गुरु कहते हैं : भाई! तेरी वस्तु पुण्य–पापके विकल्पोंसे रहित ज्योंकी त्यों भीतर विद्यमान है। एक बार प्रसन्न होकर देख कि–अहा! ऐसी वस्तुको मैंने कभी दृष्टिमें नहीं लिया था। पर्यायके समीप भीतर प्रभु विराज रहा है, वहाँ दृष्टिको—मति–श्रुतकी पर्यायको—ले जा, त्रैकालिक ध्रुवको ध्येय बना दे, तो तुझे आत्माके दर्शन होंगे तथा तुझे विस्मय होगा कि–'ओहो! यह मैं? ऐसे आत्माके दर्शनहेतु मैंने कभी यथार्थ कुतूहल ही नहीं किया।'

'विभावसे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ;'—इस प्रकार स्वभावको पहिचानकर अंतरमें चैतन्य पर दृष्टि दे, उसका ज्ञान कर तथा उसमें लीनता कर, तो निर्विकल्प स्वानुभूति हो। वह सब मार्ग पूज्य गुरुदेवने दरशाया है। गुरुदेवका असीम उपकार है।

—बहिनश्री चम्पाबेन.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–६५

दिनांक १५-६-७८

वचनामृत–२४५

'मैं मुक्त ही हूँ। मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं तो परिपूर्ण द्रव्यको पकड़कर बैठा हूँ'—इस प्रकार जहाँ अंतरमें निर्णय करता है, वहाँ अनन्त विभूति अंशतः प्रगट हो जाती है। २४५.

मैं मुक्त ही हूँ, राग और उसके सम्बन्धमें बंधपना मुझमें है ही नहीं। समयसारकी १४वीं गाथामें कहा है : जो आत्माको अबद्धस्पृष्टादि भावोंरूप अर्थात् मुक्तस्वरूप देखता है–अनुभवता है, उसे शुद्धनय जानना। कर्म तो पर वस्तु है, उसके साथ तो जीवको परमार्थतः सम्बन्ध है ही नहीं, परन्तु रागादि विभावोंके साथ भी वास्तवमें सम्बन्ध नहीं है। आत्मा तो रागादिके सम्बन्धरहित अबन्ध वस्तु है। अबन्ध कहो या मुक्त कहो। अहा! दृष्टिने जब द्रव्यको लक्ष्यमें लिया, तब 'मैं मुक्त ही हूँ'–ऐसा अनुभव हुआ।

अहा! महाराष्ट्रसे किसीने एकसाथ बेनके 'वचनामृत'की चार सौ प्रतियाँ मँगवायी हैं। अपने यहाँ अभी तक बीस लाख पुस्तकें छप चुकी हैं, परन्तु यह पुस्तक तो कोई अलग प्रकारकी है। भाई! जरा मध्यस्थ होकर पढ़े और विचार करे, तो मूल वस्तु क्या है, वह हाथ लग जाये। भगवान आत्माकी यह बात आजकल कहीं चलती नहीं है; आजकल तो 'यह करो और वह करो—क्रिया करो और दान दो'—ऐसी बातें चलती हैं। किन्तु भाई! त्रिलोकनाथ जिनेश्वर परमात्मा कहते हैं कि–बाह्यसे मन्द कषाय और क्रियाकाण्ड कर–करके मर गया, 'वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।' भगवान आत्मा परमार्थ दृष्टिसे दया–दानादि रागका कर्ता तथा हर्ष–शोकका भोक्ता है ही नहीं; वह तो सदा मुक्तस्वरूप ही है। समयससार की 'आत्मख्याति' टीकामें (१९८वें कलशमें) आता है न–

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम्।
जानन्परं करणवेदनयोरभावाच्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव॥

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानी कर्मको करता नहीं है तथा वेदता भी नहीं है, कर्मके स्वभावको वह मात्र जानता ही है। इस प्रकार मात्र जानता हुआ, करने और भोगनेके अभावके कारण शुद्ध स्वभावमें निश्चल ऐसा वह, वास्तवमें मुक्त ही है। ज्ञानावरणीयादि आठ प्रकारके कर्म हैं, परन्तु वे जड़–पुद्गल हैं; तेरी वस्तुमें वे कहाँ हैं? जीवमें अजीव कैसे होगा? वह तो ठीक, परन्तु दया–दान–पूजा–भक्ति एवं व्रत–तपादिका शुभराग भी जीवके स्वरूपमें कहाँ है? भगवान ज्ञायकदेव तो रागसे सदा मुक्त है। अहा! कैसे बैठे यह बात! शरीर, लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र तथा कुटुम्ब और उनकी ममताका पापराग–वे तो कहीं रह गये; अरे, देव–शास्त्र–गुरुके प्रतिका शुभराग भी आत्माका स्वरूप नहीं है। आत्मा शुभ और अशुभरागसे मुक्त ही है; मुक्त न हो तो मुक्तिकी पर्याय आयेगी कहाँ से? अहा! त्रिलोकीनाथ परमात्माकी वाणीका सार यह है कि–आत्मा सदा मुक्त ही है। यह राग तथा वर्तमान पर्यायकी दृष्टि छुड़ाकर, द्रव्यदृष्टि—त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक स्वभावकी दृष्टि—करानेकी बात है।

प्रभु! राग तो अनात्मा है; आत्मा उससे भिन्न ही है, भिन्न ही रहा है। अरे, प्रभु! तुझे अपने मुक्तस्वरूपकी खबर नहीं है। कर्म तो सूक्ष्म मिट्टी–धूल है, जड़ है, और हिंसा–झूठ–चोरीके पापविकल्प तथा व्रतादिके शुभविकल्प आत्माके स्वरूपमें नहीं हैं। आत्मतत्त्व उनसे भिन्न है। भाई! मुक्तस्वरूप भगवान आत्माकी ओर उन्मुख होकर एकबार प्रसन्न तो हो, तुझे कोई अनुपम आनन्द प्रगट होगा। यह तो अभी श्रावक और मुनि होनेसे पूर्व सम्यक्त्वकी—धर्मकी प्रथम सीढ़ीकी—बात है।

भगवान आत्मा द्रव्य-अपेक्षासे वर्तमानमें–इसी समय मुक्तस्वरूप है; कर्मसे तथा विभावसे भिन्न निर्लिप्त वस्तु है। ऐसा न हो तो पर्यायमें निर्लिप्तता कहाँसे आयगी? जिस प्रकार स्फटिकमें रंगकी झांई दिखने पर भी स्फटिक उसी काल स्वभावसे निर्मल है; उसी प्रकार जीवकी पर्यायमें विभाव ज्ञात होने पर भी जीव उसी समय स्वभावसे निर्मल है–निर्लेप है। 'यह सब जो शुभाशुभ विभाव ज्ञात होते हैं, वे ज्ञेय हैं; मैं उनसे बिलकुल पृथक् ज्ञायक हूँ'—ऐसा जाने–परिणमन करे, तो पर्यायमें प्रगट निर्लिप्तता होती है। ज्ञानी जानता है कि–'मेरा आत्मा कर्म एवं विभावोंके लेपरहित, शुद्ध चैतन्यदेव है। वह तो द्रव्य–क्षेत्र–काल-भावसे चाहे जैसे उदयमें सदा निर्लिप्त–अलिप्त ही है।' मूलतत्त्वमें तो अन्य कुछ प्रविष्ट हो ही नहीं सकता। फिर चिन्ता काहे की?

'अहा! मैं तो मुक्त ही हूँ। मुझे और कुछ नहीं चाहिये। शरीर, लक्ष्मी, स्त्री परिवार तो नहीं, किन्तु भीतर पर्यायमें जो शुभाशुभरागकी वृत्ति उठे, उसकी भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह मेरी मूल वस्तु नहीं है।' आया कुछ समझमें? ऐसी बात लोगोंको जमना कठिन लगती है। उन्हें ऐसा लगता है कि–भगवानका मार्ग ऐसा होगा? अभी तक तो ऐसा सुनते थे कि—कन्दमूल नहीं खाना, रात्रि भोजन नहीं करना, सामायिक तथा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रातःसायंकाल प्रतिक्रमण करना–यह धर्म है। भाई! सच्ची बात सुन तो सही! करना.....करना–यह सब अज्ञानभाव है। 'करना सो मरना' है। परका तथा विभावका कर्ता होकर आत्माके ज्ञाता स्वभावको चूक गया–आत्माकी हत्या कर दी। मुक्तस्वरूप भगवान ज्ञायकको रागके कर्तारूप मानना, वह जैनधर्म नहीं है; वह तो मिथ्या दृष्टि है। समयसारकी पन्द्रहवीं गाथामें कहा है न–आत्माको अबद्धस्पृष्टस्वरूप अर्थात् मुक्तस्वरूप अनुभवना, सो जैनशासन है–जैनधर्म है।

देव–शास्त्र–गुरुकी पूजा–भक्तिका, सत्श्रवणका, दया–दानादिका शुभविकल्प आता अवश्य है, परन्तु ज्ञानी तथा आत्मार्थी ऐसा मानते हैं कि–मै मुक्तस्वरूप ही हूँ, मुझे यह शुभभावादि अन्य कुछ ही नहीं चाहिये। मैं तो परिपूर्ण ज्ञायकद्रव्यको ग्रहण करके बैठा हूँ। अहा! यह वीतराग जिनेश्वरका कहा हुआ मार्ग है। भाई! जिनेश्वरका मार्ग तूने कभी सुना नहीं है, बाहरके उत्साहमें–रुचिमें पड़कर तूने आत्माकी हत्या कर दी; तुझे स्वयंकी रुचि–प्रीति नहीं हुई। बाहरकी प्रीतिमें तेरी वस्तु लुट गई। दुनियाकी मजदूरी कर–करके मर गया। मजदूर तो आठ घन्टे काम करते हैं, किन्तु इसे तो, भले ही दो–चार करोड़ रुपये हों, 'यह करूँ और वह करूँ'–इस प्रकार दिनभर संकल्प–विकल्पोंकी मजदूरी!

प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? कैसा है? तेरा सत्यस्वरूप क्या है?–ऐसा विचार करके अन्तर्मुख होनेसे तुझे भासित होगा कि–'मैं मुक्त ही हूँ, मुझे किसीकी आवश्यकता नहीं; मैं तो परिपूर्ण द्रव्यको ग्रहण करके बैठा हूँ।' ऐसा निर्णय जहाँ अंतरमें करता है, वहाँ अनन्त विभूति अंशतः प्रगट हो जाती है। सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर आत्माके जितने अनन्त गुण हैं, उन सबका पर्यायमें अंशतः वेदन होता है। अरे रे! अभी तो पर्याय क्या? और द्रव्य क्या? यह शब्द भी सुने न हों, सारा जीवन पापकी मजदूरीमें बिता दिया हो; उसे तो यह बात ग्रीक और लेटिन जैसी लगेगी भाई! यह पैसा, बँगला और फर्नीचर–वह तेरा वैभव नहीं है, वह तो धूलका ढेर है; तेरा सच्चा वैभव तो भीतर आत्मामें है। भीतर ज्ञायकद्रव्यको बराबर ग्रहण करके उसका अनुभव होने पर पर्यायमें अनन्त गुणोंकी अंशतः निर्मलतारूप जो अद्भुत दशा प्रगट होती है, वह सच्चा वैभव है। आत्मानुभूति होने पर अनन्त गुणोंकी जो अंशतः निर्मल विभूति प्रगट होती है, उसे श्रीमद्ने 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'–ऐसा कहा है।

सम्यग्दर्शन अर्थात् धर्मकी प्रथम सीढ़ी। 'मैं पूर्णानन्दका नाथ विभावसे मुक्त ही हूँ, मुझे और कुछ नहीं चाहिये'–ऐसा परिपूर्ण निज ज्ञायक द्रव्यस्वभावका प्रतीतिमें आश्रय करनेसे, वह प्रगट होता है। वह प्रगट होने पर—निज ज्ञायकभावका अनुभव होने पर—आत्माके जो अनन्त गुण हैं, वे सब वर्तमान पर्यायमें अंशतः प्रगट हो जाते हैं। अहा! यह किस प्रकारकी भाषा? लोगोंको ग्रीक और लेटिन जैसी कठिन लगेगी। भाई!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागका मार्ग कोई भिन्न है। सम्प्रदायमें आज तक यह बात नहीं चलती। वहाँ तो 'यह करो और वह करो; व्रत पालो और तप करो'—ऐसी बाह्य क्रियाकाण्डकी बातें चलती हैं, किन्तु भाई! वे तो मिथ्यात्वके पोषणकी बातें हैं।

भाई! परका कौन कर सकता है? यहाँ तो कहते हैं कि–रागसे भी मुक्त, ऐसे निज चैतन्य द्रव्यका अनुभव होने पर, आँखमें खटकनेवाले कणकी भाँति, शुभरागका अंश भी खटकता है। मन्दिर बनवाना, प्रतिष्ठा करवाना–यह भाव शुभराग है; धर्म नहीं है। सम्प्रदायमें तो—देव–शास्त्र–गुरुको मानो, जाओ, तुम्हें हो गया सम्यक्त्व! व्रत ले लो, हो गया धर्म। भाई! यह तो धूलमें भी धर्म नहीं है। ऐसा करने जायेगा, तो भटक मरेगा। अंतरमें अमृतका सागर भगवान ज्ञायकदेव जो कि निज विश्रामस्थान है, वहाँ दृष्टि कर। उस पूर्णानन्दमूर्ति, अबद्ध एवं मुक्त—ऐसे निज भगवान आत्माका सम्यक्दर्शन होने पर, आत्मामें संख्यासे जितने गुण हैं, उन सबका पर्यायमें अंशतः वेदन आता है; उसे 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' कहा जाता है।

अहा! यह तो कोई भिन्न मार्ग है। तीन लोकके नाथ वीतराग परमात्मा महाविदेहक्षेत्रमें इन्द्रों और नरेन्द्रोंके समक्ष वर्तमानमें यह बात कह रहे हैं। आया कुछ समझमें? 'मैं परिपूर्ण ज्ञायक द्रव्य हूँ'–ऐसा जहाँ अंतरसे निर्णय करता है, वहाँ अनन्त वैभव अंशतः वेदनमें प्रगट हो जाता है।

*

वचनामृत–२४६

आयुधशालामें चक्ररत्न प्रगट हुआ हो, फिर चक्रवर्ती आरामसे बैठा नहीं रहता; छह खण्डको साधने जाता है, उसी प्रकार यह चैतन्यचक्रवर्ती जागृत हुआ, सम्यग्दर्शनरूपी चक्ररत्न प्राप्त हुआ; अब तो अप्रमत्त भावसे केवलज्ञान ही लेगा। २४६.

'आयुधशालामें चक्ररत्न प्रगट हुआ हो, फिर चक्रवर्ती आरामसे बैठा नहीं रहता; छह खण्डको साधने जाता है।'

जिसकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हो, वह चक्रवर्ती सम्राट होता है। श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ—ये तीन, तीर्थंकर, चक्रवर्ती तथा कामदेव—ऐसी तीन पदवीके धारक थे। चक्ररत्न आयुधशालामें प्रगट होनेके पश्चात् वह चक्रवर्ती आरामसे बैठा नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहता, छह खण्ड पर विजय प्राप्त करनेको निकल पड़ता है। चक्ररत्नकी एक हजार देव सेवा करते हैं–रक्षा करते हैं। भरत चक्रवर्तीको एक साथ तीन शुभ समाचार मिले: (१) पिताश्री ऋषभदेव भगवानको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई, (२) आयुधशालामें चक्ररत्न प्रगट हुआ, और (३) ज्येष्ठ पुत्रका जन्म हुआ। सर्व प्रथम महाराज भरत केवलज्ञान प्राप्त श्री ऋषभदेव भगवानकी वन्दना करने जाते हैं। श्रीशान्तिनाथ, श्रीकुन्थुनाथ और श्री अरहनाथ भगवान आत्मज्ञानी थे; मति, श्रुत एवं अवधि–तीन ज्ञान साथ लेकर माताके गर्भमें आये थे; उन्हें रागसे भिन्न निज ज्ञायकतत्त्वका अनुभव वर्तता था, तथापि छह खण्ड साधनेका राग आता है। चक्रवर्तीको चक्ररत्न देखकर छह खण्ड जीतनेके भाव आते हैं और उन पर विजय प्राप्त करनेके लिये निकल पड़ते हैं। यह तो दृष्टान्त हुआ, अब सिद्धान्त कहते हैं।

'उसी प्रकार यह चैतन्यचक्रवर्ती जागृत हुआ, सम्यग्दर्शनरूपी चक्ररत्न प्राप्त हुआ; अब तो अप्रमत्त भावसे केवलज्ञान ही लेगा।'

जिसे परसे तथा रागादि विभावसे भिन्न निज ज्ञायक प्रभुका भेदज्ञान हुआ, निज भगवान आत्माका सम्यग्दर्शन हुआ, अंतरसे चैतन्यचक्रवर्ती जागृत हुआ; वह अब आगे बढ़कर स्वरूपमें निर्विकल्प स्थिरता बढ़ाकर केवलज्ञान ही लेगा न? जीवोंसे अभी भगवान कहो तो भड़क उठते हैं कि–'अरे! हम भगवान?' भाई, सुनो तो सही। तुम्हारी वस्तु–आत्मा अंतरमें शक्तिसे तो भगवानस्वरूप ही है, परन्तु तुम्हें उसकी खबर नहीं है; देहाध्यास और पर्यायबुद्धिके कारण तुमने उसे परदेमें डाल दिया है। जहाँ राग और विचार आदिकी पर्याय है वहीं त्रैकालिक ध्रुव आत्मतत्त्व भीतर भगवान स्वरूपमें विराज रहा है। अरे रे! यह बात कैसे बैठे? किस गज से नापे? परीक्षा करनेका सच्चा गज ही नहीं मिलता, तो क्या करें?

जिस प्रकार चक्रवर्तीको चक्ररत्न उत्पन्न होने पर, फिर वह आरामसे नहीं बैठ रहता; छह खण्ड साधनेके लिये जाता है; उसी प्रकार जिसे सम्यग्दर्शनरूपी चक्ररत्न प्राप्त हुआ, 'मैं पूर्णानन्द एवं मुक्तस्वरूप ज्ञायक आत्मा हूँ'–ऐसा सच्चा निर्णय, दृष्टि और अनुभव हुआ, वह अब आगे बढ़कर स्वरूपमें लीनता बढ़ाकर, अंतरमें मुनिपना प्रगट करके अप्रमत्तभावसे केवलज्ञान ही लेगा।

प्रश्न:—ऐसी बात है! परन्तु इसमें करना क्या आया?

उत्तर:—भाई! यह जो कहा जा रहा है, वही तो करना है; सर्वप्रथम सच्ची समझ करना है। त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ परमात्माके बतलाये हुए अंतर ज्ञायकतत्त्वको, ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुणोंके दैदीप्यमान पिण्डको जिसने सम्यग्दर्शन द्वारा ग्रहण कर लिया

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, धर्मका प्रारम्भ जिसके हो गया है; वह अब स्वरूपरमणतामें आगे बढ़कर अप्रमत्तभावसे पूर्ण परमात्मपद प्रगट करेगा, केवलज्ञान प्राप्त करेगा ही।

यह बात लोगोंको सूक्ष्म लगती है, परन्तु भाई! प्रथम तो शास्त्रकी भाषाका थोड़ा-बहुत अभ्यास होना चाहिये। द्रव्य क्या? गुण क्या? पर्याय क्या? विकार क्या और स्वभाव क्या? नवतत्त्वोंका स्वरूप आदिका थोड़ा–बहुत अभ्यास होना चाहिये। अभी तो 'आत्मा स्वभावसे अबद्ध है, मुक्त है', यह बात आये, वहाँ भड़कता है–यह किस देशकी भाषा है? क्या जैनधर्म ऐसा होगा? जैनधर्ममें तो सामायिक, प्रोषधोपवास और प्रतिक्रमणादि करना, कन्दमूल नहीं खाना, छह–पर्वी ब्रह्मचर्य पालना, चउविहार करना—ऐसा सुना है। भाई! यह सब तो रागकी क्रिया है और राग वह संसारकी वृद्धिका कारण है। रागसे भिन्न अंतरमें पूर्णानन्द प्रभु भगवान आत्माकी यथार्थ दृष्टि, ज्ञान और अनुभव प्रगट होना वह वीतराग कथित सच्चा जैनधर्म है। अरे रे! वर्तमानमें तो लोगोंने जिनेश्वरके वीतरागमार्गका लोप कर दिया है और अपनी मतिकल्पना अनुसार मान बैठे हैं कि–हम जैन हैं। धूल भी जैन नहीं हैं; जैन किसे कहा जाता है, उसकी उन्हें खबर नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि जिसे निज ज्ञायक भगवानका सच्चा दर्शन हुआ, भेदज्ञान हुआ, आत्मानुभूति हुई वह सच्चा जैन है और वह आगे स्वरूपस्थिरतामें वृद्धि करके, पूर्ण परमात्मपदको प्राप्त करेगा ही।

*

वचनामृत–२४७

आत्मसाक्षात्कार ही अपूर्व दर्शन है। अनन्त कालमें न हुआ हो ऐसा, चैतन्यतत्त्वमें जाकर जो दिव्य दर्शन हुआ, वही अलौकिक दर्शन है। सिद्धदशा तककी सर्व लब्धियाँ शुद्धात्मानुभूतिमें जाकर मिलती हैं। २४७.

'आत्मसाक्षात्कार ही अपूर्व दर्शन है।'

जिनेन्द्रभगवानके दर्शन, गुरुके दर्शन, ये सब तो शुभभाव हैं, पुण्यबन्धका कारण है;, धर्म नहीं है। शुद्ध चैतन्यघन भगवान आत्माका वर्तमान पर्यायमें साक्षात्कार होना ही अपूर्व है। जीवने आत्मदर्शन पूर्वकालमें कभी नहीं किया, इसलिये वह अपूर्व है। वैसे अन्य सब—शास्त्र पठन, दया–दान तथा व्रत–पूजा–भक्ति आदि—अनन्तबार किया है; वह कुछ अपूर्व नहीं हैं। धर्म नहीं है; रागसे भिन्न और पूर्णानन्दस्वरूप ऐसे निज ज्ञायक प्रभुका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यक् श्रद्धासहित अनुभव होना–आत्मसाक्षात्कार होना, वही अपूर्व दर्शन है, धर्मका प्रथम सोपान है।

'अनन्त कालमें न हुआ हो ऐसा, चैतन्यतत्त्वमें जाकर जो दिव्य दर्शन हुआ, वही अलौकिक दर्शन है।'

ऐसे तो भगवानके दर्शन अनन्तबार किये, तीनलोकके नाथ साक्षात् तीर्थंकर भगवानके समवसरणमें भी अनन्तबार हो आया। जहाँ तीर्थंकर भगवान सदा विद्यमान होते हैं, उस महाविदेहक्षेत्रमें अनन्तबार जन्म ले चुका है, परन्तु उससे क्या? तीर्थंकर भगवानके दर्शनका भाव वह तो शुभाशुभ है; धर्म नहीं है। जिनेन्द्रदेवके, सरस्वती जिनवाणी–शास्त्रके तथा ज्ञानी गुरुके दर्शनोंके शुभभाव किये, उसमें आत्माका क्या हुआ? वह कहीं आत्मदर्शन नहीं है; अंतरमें ज्ञायकतत्त्वकी गहराईमें जाकर शुद्धात्मानुभूति सहित दिव्यदर्शन होना, वही अलौकिक आत्मदर्शन है।

'सिद्धदशा तककी सर्व लब्धियाँ शुद्धात्मानुभूतिमें जाकर मिलती हैं।'

सिद्धदशा तककी सर्व लब्धियाँ अर्थात् क्या? कि उसे शुद्धात्मसाक्षात्कार हुआ है, रागसे भिन्न निज ज्ञायकके अपूर्व तथा अलौकिक दर्शन हुए हैं; उसको फिर मुनिपना, शुद्धिकी गुणश्रेणी, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, क्षायिक दान–लाभ–भोग–उपभोग–वीर्य, पूर्ण सिद्धदशा आदि समस्त लब्धियाँ शुद्धात्मानुभूतिमें जाकर मिलती हैं।

त्रिकाल मुक्तस्वरूप भगवान शुद्ध आत्माकी अनुभूतिमें सिद्धदशा तककी सर्व निर्मल पर्यायोंका समावेश हो जाता है; शुद्ध आत्माका अनुभव करते–करते सिद्धपद हो जाता है। सिद्धदशा तककी सर्व लब्धियाँ शुद्धात्माके अनुभवसे होंगी या रागसे होंगी? –यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि आत्मदर्शनसे लेकर सिद्धदशा तककी सर्व लब्धियाँ आत्मदर्शनमें जाकर मिलती हैं।

वचनामृत–२४८

विश्वका अद्भुत तत्त्व तू ही है। उसके अन्दर जाने पर, तेरे अनन्त गुणोंका बगीचा खिल उठेगा। वहीं ज्ञान मिलेगा, वहीं आनन्द मिलेगा; वहीं विहार कर। अनन्त कालका विश्राम वहीं है। २४८.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'विश्वका अद्भुत तत्त्व तू ही है।'

एक समयकी पर्यायसे भी दूर, ऐसा इस विश्वका जो अद्भुत त्रैकालिक ज्ञायक तत्त्व, वह तू ही है। अहा! 'वचनामृत'की भाषा कितनी सरल और सादी है? आज महाराष्ट्रसे एक दिगम्बर मुनिका पत्र आया है। वे लिखते हैं कि–'बहिनश्रीके वचनामृत'की चार सौ पुस्तकें भिजवाओ। अहा! यह पुस्तक तो दिगम्बर मुनियोंके भी पढ़ने योग्य है; पढ़ें तो उन्हें भी खबर पड़े कि सच्ची मुनिदशा किसे कहते हैं। आजकल तो सब सम्प्रदाय बनाकर बैठे हैं। भाई! सत्य कभी सुना नहीं है न? इसलिये यह बात कठिन लगती है।

अतीन्द्रिय आनन्दामृतका सागर ऐसा भगवान ज्ञायक आत्मा ही संसारमें अद्भुत एवं उत्तम तत्त्व है। अरे रे! अज्ञानीका गज ही जहाँ सच्चा न हो, वहाँ सच्चा माप कैसे आयेगा? पिता पचास हाथ कपड़ा खरीदकर लाया था। आठ वर्षका पुत्र अपने हाथसे नापकर कहने लगा कि–पिताजी! यह कपड़ा पचास नहीं, सौ हाथ है। पिताने कहा–बेटा! नापनेमें तेरा हाथ काम नहीं आयेगा। वैसे ही अज्ञानी जीव अपनी मति-कल्पनासे आत्माका तथा धर्मका माप करता है, परन्तु उससे सच्चा माप नहीं आ सकता। दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत और तपादि शुभरागको आत्मा—धर्म मानना अथवा तो वह सब करते–करते भगवान आत्माकी प्राप्ति होगी ऐसा मानना, वह झूठे गजका नाप है।

'उसके अन्दर जाने पर तेरे अनन्त गुणोंका बगीचा खिल उठेगा।'

प्रभु! विश्वका अद्भुत तत्त्व तू ही है, तुझमें सहजज्ञान, सहजदर्शन और सहज आनन्दादि अनन्तानन्त गुण विद्यमान हैं। जैसे लाख पंखुरियोंका कमल खिल उठता है, वैसे ही निज भगवान आत्माके समीप जानेसे—भीतर ज्ञायकके तलमें गहरे उतरनेसे—तेरा अनन्त गुणोंका बगीचा पर्यायमें खिल उठेगा। आत्माके अनन्त गुणोंकी पर्याय अंशतः विकसित होना उसे 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' कहते हैं और वही धर्मका प्रथम सोपान है।

'वहीं ज्ञान मिलेगा, वहीं आनन्द मिलेगा; वहीं विहार कर।'

शास्त्रमें ढूँढ़ने जाये, परन्तु वहाँ ज्ञान कहाँ है? ज्ञान तो अंतरमें निजात्मामें है। जहाँ ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है, वहीं तुझे आनन्द प्राप्त होगा। स्त्री, पुत्रादि परिवार और पैसेमें–धूलमें जो आनन्द माना है, हर्ष माना है; वह मान्यता मिथ्या है, भ्रम है। सच्चा आनन्द तो अंतरमें ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मामें है। जैसे अपनी नाभिमें कस्तूरी है, उसकी कस्तूरी-मृगको खबर नहीं है; वैसे ही अपने भगवान आत्मामें भरपूर आनन्द है, उसकी अज्ञानी जीवोंको खबर नहीं है। अहा! आत्माके भीतर ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंका उद्यान है—यह बात कैसे बैठे? भाई! अंतरमें जा, अंतरमें दृष्टि कर, तो वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उद्यान नन्दनवनकी भाँति खिल उठेगा, वहीं ज्ञान और वहीं आनन्द मिलेगा; इसलिये वहीं विहार कर।

भीतर ज्ञायक आत्मामें ही विहार कर, वहीं गति कर, वहीं विचरण कर। समयसारकी ४१२वीं गाथामें आता है न!—

तूं स्थाप निजको मोक्षपथमें, ध्या, अनुभव तू उसे।
उसमें हि नित्य विहार कर, न विहार कर परद्रव्यमें॥

अतीन्द्रिय पूर्णानन्दका नाथ, अनन्त गुणोंका सागर—ऐसा तेरा भगवान आत्मा भीतर विराजमान है, वहाँ जा न ! शरीर, स्त्री, पुत्र, पैसादिमें बाहर कहाँ ज्ञान और आनन्द है? ज्ञान और आनन्द जहाँ भरपूर है, वहाँ भीतर विहार कर न! अंतरमें ही तुझे ज्ञान और आनन्दकी प्राप्ति होगी।

'अनन्त कालका विश्राम वहीं है।'

भाई! चौरासी लाख योनियोंके अवतारमें अनादिकालीन परिभ्रमणकी थकान उतारना हो तो नित्यस्थायी विश्रामस्थान वहीं है—तेरा अद्भुत तत्त्व ही है। जैसे कोई बहुत चल–चलकर थक गया हो, वह फिर 'हे भगवान.....' कहकर खाट पर लेट जाता है, उसी प्रकार चौरासीके जन्म–मरणके फेरोंमें प्रभु! तू थक गया है न? वह थकान उतारनेका स्थान तो अंतरमें ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणस्वरूप भगवान आत्मा है, वहाँ विश्राम कर; वहाँ दृष्टि करके स्थिर होना—स्वरूपरमणता करना ही विश्राम है।

*

वचनामृत–२४६

तू अंतरमें गहरे–गरहे उतर जा, तुझे निज परमात्माके दर्शन होंगे। वहाँसे बाहर आना तुझे सुहायेगा ही नहीं। २४६.

'तू अंतरमें गहरे–गहरे उतर जा, तुझे निज परमात्माके दर्शन होंगे।'

जहाँ पर्यायकी अपेक्षासे ऊपरी सतह पर यह शुभाशुभ राग दिखायी देता है, वहीं अंतरमें गहरे–गहरे आनन्दसागर प्रभु चैतन्य विराजता है। उस ऊपरी राग और पर्यायका लक्ष छोड़ और भीतर ध्रुव ज्ञायकतत्त्वमें गहरे उतर जा, तो तुझे निज चिदानन्दमय प्रभुके दर्शन होंगे। जिसप्रकार भोंहरेमें गहरे उतरने पर वहाँ विराजमान जिनप्रतिमाके दर्शन होते हैं; उसी प्रकार वर्तमान पर्यायको ऊपरी विभावोंसे विमुख करके भीतर ध्रुव ज्ञायककी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गहराईमें ले जा, वहाँ तुझे अपने परमात्मस्वरूप भगवानके कोई अनुपम दर्शन होंगे।

अहा! कैसे होंगे वह दर्शन ? लोग तो प्रातःकाल मन्दिर जाते हैं और मानते हैं कि हो गये भगवानके दर्शन; किन्तु भाई! वहाँ बाह्यमें तेरा आत्मा है? भीतर जहाँ आत्मा विराजता है, वहाँ तेरी दृष्टि कार्य नहीं करती। परका तथा पर्यायका लक्ष छोड़कर भीतर गहराईमें गये बिना, निज ज्ञायक परमात्माके दिव्यदर्शन नहीं होंगे।

भेदज्ञानके निर्मल अभ्यास द्वारा विभावसे पृथक् होकर अंतरमें—ज्ञायकमें—गहरे उतर जा। अंतरमें जो ज्ञायक वस्तु है, वह किसी बाह्य लक्ष्यसे नहीं, किन्तु अंतरके ध्यानसे प्राप्त हो ऐसी है। भीतर ध्रुव ज्ञायकमें एकाग्रता हो तो उस ध्यानकालमें निज परमात्माके दर्शन होंगे। अहा! यह बात जीवको कठिन लगे, परन्तु सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी यही रीति है।

'वहाँसे बाहर आना तुझे सुहायगा ही नहीं।'

क्या कहते हैं? कि—अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दकन्द, ज्ञानादि गुणोंका भण्डार, अनन्त शक्तियोंका संग्रहालय–ऐसा जो भगवान आत्मा विराजता है, उसमें गहरे उतर जा, तो तुझे वहाँसे बाहर निकलना अच्छा लगेगा ही नहीं। अरे! जिसका अभी एक बीड़ीके बिना नहीं चलता, पाव–डेढ़ पाव चाय पिये, तब मुश्किलसे व्याख्यान सुननेमें दिमाग ठीक रहता है, उसे यह परसे और रागसे भिन्न परमात्माकी बात किस प्रकार बैठेगी? यहाँ तो कहते हैं कि–आनन्दसागर निज ज्ञायक प्रभु अंतर अनुभवमें आने पर, वहाँसे बाहर आना नहीं सुहायेगा–रुचेगा नहीं। अहा! ऐसी वह कोई अद्भुत वस्तु—परमानन्दका धाम—भीतर सदा विद्यमान है। परमानन्दस्वरूप प्रभुके दर्शन अंतरमें होने पर, उसका वेदन होने पर वहाँसे बाहर निकलना दुःखमय लगेगा। दया–दान और व्रत–तपके विकल्प आयेंगे, परन्तु वे तुझे दुःखमय लगेंगे। भीतर स्वरूपमें जानेसे तुझे आनन्द होगा और वहाँसे बाहर आना तुझे सुहायेगा ही नहीं।

*

अपनेको तो यह भावी तीर्थंकर भगवान मिल गये; वर्तमान भगवानकी भाँति ही उनकी वाणीके श्रवणका सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरुदेवने वर्षो तक वाणी बरसायी, उसके श्रवण जैसा सौभाग्य कौन सा?

—बहिनश्री चम्पाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–६६

दिनांक २१-६-७८

वचनामृत–२५०

मुनियोंको अंतरमें पग-पग पर—पुरुषार्थकी पर्याय-पर्यायमें—पवित्रता झरती है। २५०.

इस बोलमें मुनिराजकी पवित्रताके सम्बन्धमें बात कही है। आता है न!—मुनिराजको तो निरन्तर आनन्दझरता प्रचुर स्वसंवेदन होता है। सच्चे मुनिको–भावलिंगी मुनिराजको–अंतरमें पग–पग पर अर्थात् स्वसन्मुखताके पुरुषार्थकी प्रत्येक पर्यायमें पवित्रता—शुद्धिकी वृद्धि—झरती है। जिनके अंतरमें चारित्र सहित आत्माके ध्यानकी दशा प्रगट हुई है, अंतरमें जाने पर जिन्हें आनन्दधाम ज्ञायकके उग्र अवलम्बनके बलसे प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ है, जिनके ध्रुव चैतन्यका उग्र आश्रय करनेसे चारित्र दशामें निरन्तर शुद्धि बढ़ती जाती है ऐसे मुनिराजको तो अंतरमें पुरुषार्थकी प्रत्येक पर्यायमें पवित्रता झरती है–आनन्द झरता है।

अहा! ज्ञायक आत्मद्रव्यके तलमें गहरे उतरनेसे सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, फिर भीतर उग्र आश्रय करनेसे जो चारित्रदशा प्रगट हुई, उसमें जो शुद्धि है वह स्वसन्मुखताके पुरुषार्थसे प्रत्येक पर्यायमें बढ़ती रहती है। अहा! ऐसी दशाको मुनिपना कहा जाता है और जो भीतर ध्रुव ज्ञायकके तलमें जाकर स्वभावका निधान खोले—तलमेंसे पातालका पानी लाये—उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। जिस प्रकार कोई गहरे कुएँमें कूदकर, नीचे तलमें जाकर थाँह–रेत ले आता है, उसी प्रकार प्रभु! भीतर आनन्दका पाताल कुआँ है, उसके तलमें जाकर आनन्दझरती निर्मल पर्यायको बाहर ला न!

भाई! तू अंतरमें गहरे उतर जा, तुझे बाहर निकलना अच्छा नहीं लगेगा। यहाँ तो मुनिदशाकी बात है। मुनिराजको तो अंतरमें निरन्तर आनन्दकी धारा बहती है, पवित्रता झरती है, महाव्रतादि रागका विकल्प आता है; परन्तु वह शुभभाव तो ऊपर–ऊपर सतह पर तैरता है तथा स्वभावसे विपरीतरूप वेदनमें आता है; उनके तो ध्रुव ज्ञायकतत्त्व ही मुख्य रहता है, इसलिये उसीके आश्रयसे अंतरमें प्रत्येक पर्यायमें पवित्रता बढ़ती ही जाती है। *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–२५१

द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्यके लिये दूसरे साधनोंकी राह न देखना पड़े। २५१.

अहा! बहिनने डेढ़ पंक्तिके इस बोलमें महा सिद्धान्त कह दिया है। द्रव्य अर्थात् पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा उसे कहा जाता है कि जिसके सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रादि कार्यके लिये, निर्मल साधन और साध्यदशा प्रगट करनेके लिये, अन्य साधनोंकी राह नहीं देखना पड़े। रागकी मन्दता और बाह्यमें देव–शास्त्र–गुरु तथा शरीरका दृढ़ संहननादि अन्य साधनोंसे आत्मकल्याण होगा—ऐसी वहाँ (द्रव्यस्वभावको) आवश्यकता नहीं है।

अहा! चैतन्यका वज्रबिम्ब भगवान आत्मा—अंतरमें पूर्ण सामर्थ्यसे परिपूर्ण विद्यमान है न! उसे अपने कार्य हेतु अन्य किन्हीं साधनोंकी राह क्यों देखना पड़े? भाई! तेरे हितकी यह बात अति सूक्ष्म है; इसे समझे बिना दूसरा सब करके यों ही मरता रहा।

निज ज्ञायक द्रव्यकी दृष्टि होना, वह धर्मका प्रारम्भ है; धर्मकी पहली इकाई है। वह द्रव्य किसे कहते हैं?—कि जिसके धर्मरूप कार्यके लिये पर साधनोंकी प्रतीक्षा नहीं करना पड़े। बाह्यमें इतनी निवृत्ति हो, खाने–पीनेकी सुविधा हो, पुस्तकें आदि साधन हों, तभी आत्माका कार्य हो—ऐसा नहीं है। अरे रे! यह बात उसने अंतरंग रुचिपूर्वक कभी सुनी नहीं है और अनादिसे चौरासीके अवतार-प्रवाहमें बहकर मरता रहा। सारा दिन पाप, पाप और पाप–पापकी गठरी; धर्म तो है नहीं, किन्तु अच्छा पुण्य भी नहीं है। मनुष्य हुआ तो दिनभर कमाना, स्त्री–पुत्रादिका पालन–पोषण करना—ऐसे पाप कार्योंमें उसे किंचित् अवकाश नहीं मिलता। यदि थोड़ा समय निकालकर दो–चार घन्टे सत्समागम करे, श्रवण–मनन करे तो उसे उस शुभभावमें पुण्य ही होगा, धर्म नहीं। अहा! धर्मके लिये अर्थात् आत्मद्रव्यकी निर्मल साधना हेतु, पर द्रव्यके साधनोंकी राह नहीं देखनी पड़ती।

भगवान कहते हैं–प्रभु! तू शक्तिरूपसे परमात्मा है; तुझे परमात्मस्वरूपकी पर्याय प्रगट करने हेतु अन्य द्रव्योंकी—देव–शास्त्र–गुरु मिलें तभी कार्य हो—ऐसी राह नहीं देखना पड़ती। अखण्ड स्वतन्त्रतासे शोभायमानपना जिसका स्वरूप है, ऐसी अद्भुत प्रभुत्व शक्तिसे परिपूर्ण तू भगवान है, वस्तु है, द्रव्य है कि जिसकी निर्मल पर्यायरूप कार्यके लिये अन्य द्रव्योंकी, अन्य तत्त्वोंकी अथवा अन्य साधनोंकी आवश्यकता नहीं होती। अहा! ऐसी बात है। आता है कुछ समझमें? भाई! पहले श्रद्धामें निर्णय तो कर कि 'मार्ग तो यह है।'

जहाँ तीनलोकके नाथ श्री तीर्थंकर भगवान सदा विराजते हैं, उस विदेहक्षेत्रमें इस जीवने अनन्तबार जन्म धारण किया है, अनन्तबार समवसरणमें हो आया; परन्तु भाई!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतर आत्मप्राप्तिके कार्यमें वे बाह्य निमित्त क्या कर सकते हैं? अन्तरंग कार्यके लिये बाह्य साधनोंकी प्रतीक्षा नहीं करना पड़ती। अंतरमें आत्मवस्तु जो कि स्वयं ही कारण-अपेक्षासे परमात्मा है, उसीमेंसे कार्य–अपेक्षाकी परमात्मदशा प्रगट होती है। अंतरमें वस्तु है, उसका अन्तर्मुख होकर स्वीकार करनेसे, उस निर्मल पर्यायरुप कार्यके लिये किन्ही बाह्य कारणोंकी आवश्यकता नहीं होती। अहा! यह बात कठिन लगती है; किन्तु भाई! वीतरागताका कहा हुआ मार्ग तो यही है।

प्रश्न:—पेटमें पिल्ले बोलते हों–भूखा हो, वह किस प्रकार धर्म करेगा? इसलिये पहले रोटी कैसे मिले, उसका उपदेश देना चाहिये।

उत्तर:—भाई! क्या रोटी आदि बाह्य वस्तुओंसे धर्म होता है? रोटी मिल जाये तो फिर कहोगे कि वह पचनेके बाद धर्म करूँगा; तो पच जाने पर फिर भूख लगेगी, तब कहोगे कि फिरसे रोटी मिले, तब धर्म करूँगा,—इस प्रकार रोटीकी माँगका चक्र चलता ही रहेगा; तो तब तक जीवको क्या करना? भूखा हो तो आत्माका कार्य नहीं कर सके और पेट भरा हो तभी भीतर आत्मकार्य—सम्यग्दर्शन—हो सकेगा ऐसा है ही नहीं। तेतीस–तेतीस सागरोपम वर्षों तक जिसे आहारका एक कण और पानीकी एक बूँद नहीं,—भीतर भूखकी पीड़ा इतनी कि 'तीन लोककौ नाज जु खाय, मिटै न भूख, कणा न लहाय' और प्यास इतनी कि 'सिन्धुनीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय'—जन्मे तबसे जिसे सोलह महा व्याधियाँ होती हैं, अरे! पहले, दूसरे और तीसरे नरकमें परमाधामी नारकी जीवको बुरी तरह बाँधते हैं, बाँधकर लोहेकी धधकती हुई सलाखें भोंकते हैं; उस समय वह साधन अनुकूल नहीं है इसलिये आत्माका कार्य नहीं हो सकता—ऐसा नहीं है भाई! उस समय भी जीव अंतरमें उतर जाये, तो सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है। वेदनाके कारण भी सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है—ऐसा शास्त्रोमें कथन है न? वेदनाके समय लक्ष है बाहरकी पीड़ाका, परन्तु कोई जीव उस समय वेदनाका लक्ष छोड़कर अंतरमें निमग्न हो जाये, तो उसे वेदनासे सम्यक्त्व हुआ–ऐसा कहा जाता है। अहा! ऐसी स्थिति! ऐसे दुःख! —सहे भी ना जायँ और सुने भी न जायँ। उस काल भी आत्मा अन्तर्मुख हो सकता है। भाई! बाह्यमें सर्व प्रकारकी अनुकूलता हो, अनुकूल साधन हों, तभी हो सकता है–ऐसा नहीं है। यहाँ तो बहिन कहती हैं कि–द्रव्य अर्थात् परमात्मस्वरूप आत्मा उसे कहते हैं कि जिसके कार्यके लिये–निर्मल धर्मरूप अपनी पर्यायके लिये अंतरका आश्रय लेनेसे, पर साधनकी बिलकुल आवश्यकता नहीं पड़ती।

प्रश्न:—जब लों न रोग जरा गहै, तब लों झटिति निज हित करो'–ऐसा शास्त्रमें आता है न?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर:—हाँ, शास्त्रमें कहा है कि–शरीरमें जब तक वृद्धावस्था न आये, इन्द्रियाँ शिथिल न हों, व्याधियाँ उपद्रव न करें, उससे पहले ही आत्मका हित कर लेना। यह तो पामर प्राणियोंको प्रमाद छोड़नेके लिये तथा धर्मोन्मुख करनेके लिये कहा है; परन्तु ऐसी प्रतिकूलताके प्रसंगमें—अरे! परमाधामी नारकियोंकी आँखोंमें तेजाब छिड़कते हों ऐसे समय—बाह्य साधन ऐसा है, इसलिये अन्तर्मुखता नहीं हो सके, सम्यग्दर्शन नहीं हो सके ऐसा है ही नहीं। आत्मा स्वतन्त्र वस्तु है, उसे अपने कार्यके लिये बाह्य साधनोंकी प्रतीक्षा करनी पड़े–ऐसा वस्तुस्वरूपमें ही नहीं है।

प्रभु! तू तो ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्तानन्त शक्तियोंका सागर है न! तेरे साधनारूपी कार्यके लिये अन्य कारण या सहायताकी किंचित् आवश्यकता नहीं है। अन्य प्रकारसे कहें तो आत्मामें सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप निश्चयरत्नत्रय, व्यवहार–रत्नत्रयरूप कारण हो तो होगा–ऐसा भी नहीं है। अरे! इस बात पर कैसे विश्वास आये?

बड़े शहरोंमें दुष्ट लोग बच्चोंको चुरा ले जाते हैं, उनके हाथ–पाँव काट देते हैं, आँखें फोड़ देते हैं और उनसे भीख मँगवानेका धंधा कराते हैं। भाई! भले ही आँखें फोड़ दीं, प्रतिकूलता आयी; परन्तु तू अंतरमें चैतन्यज्योति है न? तू तो इन्द्रियोंसे बिलकुल भिन्न पदार्थ है। अन्तर्मुख हो जा न! तेरे धर्मकार्यके लिये, अन्तरंग शान्ति हेतु किसी भी बाह्य साधन की प्रतीक्षा करना पड़े–ऐसा है ही नहीं। बाह्य साधनोंकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है। अहा! यह महान सिद्धान्त है।

*

वचनामृत–२५२

भेदज्ञानके लक्षसे विकल्पात्मक भूमिकामें आगमका चिन्तवन मुख्य रखना। विशेष शास्त्रज्ञान मार्गकी चतुर्दिशा सूझनेका कारण बनता है; वह सत्-मार्गको सुगम बनाता है। २५२.

'भेदज्ञानके लक्षसे विकल्पात्मक भूमिकामें आगमका चिन्तवन मुख्य रखना।'

जब निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशा हो, तब देव–शास्त्र–गुरु अथवा श्रवण–पठन–विचारादि किसी प्रकारका–बुद्धिपूर्वकका विकल्प नहीं होता; परन्तु विकल्पात्मक भूमिकामें स्व–परके तथा स्वभाव–विभावके, भेदज्ञानके लक्षसे—परसे तथा रागसे भिन्न, निज शुद्ध ज्ञायकतत्त्वके लक्षसे—आगमका चिन्तवन मुख्य रखना। त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ परमात्मा, उनके अनुयायी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागी सन्त तथा स्वानुभूति-सम्पन्न ज्ञानी आत्माका स्वरूप, उसकी प्राप्तिका—भेदज्ञानका—उपाय क्या बतलाते हैं? उसे समझनेके लिये, समझनेके विकल्पवाली भूमिकामें सर्वज्ञ परमात्माकी वाणीमेंसे आये हुए परमागमका चिन्तवन–मनन–मंथन मुख्य रखना।

प्रवचनसारमें आता है न!—द्रव्य–गुण–पर्यायस्वभावसे अरिहंतके ज्ञान द्वारा होनेवाला निज आत्माका उस प्रकारका ज्ञान जोकि मोहके नाशका उपाय है वह उपायान्तरकी अपेक्षा रखता है। कौनसा उपायान्तर? जो परिणाम भावज्ञानके अवलम्बन द्वारा दृढ़ीकृत हो, ऐसे परिणामसे द्रव्यश्रुतका अभ्यास करना—भेदज्ञानके लक्ष्यसे परमागमका चिन्तन रखना—वह मोक्षक्षयका तथा आत्मप्राप्तिका उपायान्तर है। श्रीमद्ने भी कहा है—

आत्मादि अस्तित्वके, जेह निरूपक शास्त्र;
प्रत्यक्ष सद्गुरु योग नहीं, तहाँ आधार सुपात्र।
अथवा सद्गुरुने कहे, जो अवगाहन काज;
उनको नित्य विचारना, करी मतान्तर त्याग॥

प्रभु! तूने रागके साथ एकताके ताले लगाये हैं; भेदज्ञानके अभ्यास द्वारा उन तालोंको तोड़ और अंतरका निधान खोल दे। उन्हें खोलनेमें किसीकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है। हाँ, विकल्पकी भूमिकामें हो, तब भेदविज्ञानका उपाय बतलानेवाले आगमका चिन्तवन मुख्य रखना। कौनसे आगमका ? भगवानके कहे हुए; दूसरोंके नहीं। वीतराग दिगम्बर सन्तोंके कहे हुए हैं, वही सच्चे आगम हैं। भगवानके नाम पर चढ़ाये गये बत्तीस या पैंतालीस, वे आगम ही नहीं हैं; कल्पित रचे गये हैं। मुश्किल काम! कठिन बात! क्या किया जाये भाई? त्रिलोकनाथ वीतराग–सर्वज्ञकी दिव्यध्वनिके आधार पर रचे गये जो समयसार, प्रवचनसार और नियमसार आदि शास्त्र—वीतराग दिगम्बर सन्तोंकी वाणी—वे ही सच्चे आगम हैं।

निर्विकल्प अनुभवमें लगा हो, तब तो चिन्तनादि कुछ है नहीं; परन्तु विकल्प आये उस कालमें भेदज्ञानका–स्वका–लक्ष रखकर, परमागमका चिन्तन मुख्य रखना। अरे! ऊपर–ऊपरसे तो आगमका अभ्यास अनन्तबार किया। आचाराङ्ग सूत्रके अठारह हजार पद और एक–एक पदके इक्यावन करोड़ श्लोक—ऐसे ग्यारह अंग अनन्तबार पढ़ गया, परन्तु उससे क्या? भाई! शरीर और रागसे भिन्न निज चैतन्य भगवानका अन्तर्लक्ष करके विकल्पकी भूमिकामें, चैतन्यका मार्ग बतलानेवाले परमागमका चिन्तवन मुख्य रखना। चिन्तवनका भाव है तो शुभराग, परन्तु अंतरमें लक्ष्य तो बनाया है चैतन्यको।

'विशेष शास्त्रज्ञान मार्गकी चतुर्दिशा सूझनेका कारण बनता है; वह सत्-मार्ग को सुगम बनाता है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विशेष शास्त्रज्ञान यदि वह आत्माके लक्षसे किया जाय तो वह, मार्गके चारों पक्ष सूझनेका, अंतरमें निर्मलताका कारण बनता है। वह ज्ञान है तो विकल्पयुक्त, किन्तु साथ ही अंतरमें स्वलक्ष होनेसे उस ज्ञानमें उस प्रकार की–मार्गके चारों ओरके पक्ष सूझने की–विशेषता है न? मोक्षमार्ग प्रकाशकमें शास्त्रका उद्धरण दिया है न!—

"सामान्य शास्त्रतो नूनं विशेष बलवान् भवेत्।

सामान्य शास्त्रकी अपेक्षा—सामान्य शास्त्रज्ञानकी अपेक्षा—विशेष शास्त्रज्ञान बलवान है, क्योंकि विशेष शास्त्रज्ञानसे मार्गके चारों पक्षोंका भलीभाँति निर्णय हो सकता है; वह सत्-मार्गको सुगम करता है। इसलिये भेदज्ञानके लक्षसे आगमका अभ्यास करना योग्य है। शास्त्रज्ञानमें साथ ही जो विकल्प हैं वे कहीं बलवान अर्थात् शुद्धि का कारण नहीं हैं, किन्तु अंतरमें भेदज्ञानका लक्ष होनेसे, उस काल आत्माके आश्रय से जो संस्कार दृढ़ हो जाते हैं वही बलवान हैं और वे ही शुद्धिका कारण हैं। आत्मा के लक्षसे विशेष शास्त्रज्ञानसे मार्गकी चौदिशा का–चारों ओरके पक्षों का–ख्याल आता है उसके द्वारा मार्ग सुगम बनता है। मार्गका अविरोध पूर्वक सच्चा ख्याल सरलता से आता है। मार्गको सुगम रीतिसे बराबर समझनेमें शास्त्रज्ञान निमित्त तो है न? आया कुछ समझमें?

*

वचनामृत–२५३

आत्माको तीन कालकी प्रतीति करनेके लिये ऐसे विकल्प नहीं करना पड़ते कि 'मैं भूतकालमें शुद्ध था, वर्तमानमें शुद्ध हूँ, भविष्यमें शुद्ध रहूँगा'; परन्तु वर्तमान एक समयकी प्रतीतिमें तीनों कालकी प्रतीति समा जाती है–आ जाती है। २५३.

क्या कहते हैं? कि—वर्तमान एक समयमें जो त्रैकालिक सम्पूर्ण ध्रुव ज्ञायकवस्तु है—वर्तमान एक समयमें वस्तु उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्यस्वरूप है न? –उसकी प्रतीति करनेके लिये 'मैं शुद्ध था, शुद्ध हूँ और शुद्ध रहूँगा'–ऐसे भेदोंकी उसे आवश्यकता नहीं है। अहा! त्रैकालिक तत्त्वको तीनकालमें रखकर प्रतीति करना पड़े–ऐसा नहीं है। त्रैकालिक तत्त्व वर्तमानमें ही पूर्ण है। मोक्षशास्त्रमें कहा है न! –'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'। द्रव्य एक समयमें ही त्रिपटा 'सत्' है, एक समयमें तीनों हैं। वस्तुमें जो उत्पाद–व्यय हैं वे एक समयके परिणाम हैं और ध्रौव्य तीनोंकाल रहनेवाला द्रव्य है। वर्तमानमें जो वस्तु है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह तीनोंकाल रहनेवाली है इसलिये ध्रुव है। उसके ध्रुवस्वभाव की प्रतीति करनेके तीनकालकी ओर दृष्टि नहीं ले जाना पड़ती। वर्तमान एक समय की प्रतीतिमें तीनोंकालकी प्रतीतिका समावेश हो जाता है। ध्रौव्यकी प्रतीतिमें तीनोंकाल उसमें आ जाते हैं, उन्हें पृथक् नहीं करना पड़ता।

अहा! यह तो भटकते हुए प्राणीको किसका आश्रय लेना? कैसे लेना? –उसकी बात है भाई! दुनिया माने या न माने–उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्माको वर्तमान एक समयमें त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक तत्त्वकी प्रतीति करनेके लिये तीनकाल का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान एक समयमें ही पूर्ण ध्रौव्यकी प्रतीति आ जाती है। अहा! यह बात बहुत ऊँची और सूक्ष्म है! अरे रे! जीवने एक दिन भी आत्महित कैसे हो इस बातकी दरकार नहीं की। उसने तो बाहरकी उमंग और हर्ष किया। प्रभु! तू तो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक है न? तेरे ध्रौव्य में 'था, है और रहेगा' ऐसे तीनकालके भेद करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जरा कठिन लगे ऐसी बात है।

आत्मद्रव्य वर्तमान उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यात्मक है। उसमें ध्रौव्यकी प्रतीतिमें तीनों कालकी प्रतीतिका समावेश हो जाता है। जो त्रिकाल रहनेवाला पदार्थ है वह एक समय की प्रतीतिमें आ जाता है। एक समयकी पर्यायमें त्रैकालिक सम्पूर्ण वस्तु भले न आ जाय, अर्थात् त्रैकालिक वस्तु वर्तमान पर्याय जितनी न हो जाये, परन्तु वह एक समयकी प्रतीति एवं ज्ञानका विषय होती है–ध्रुवका सम्पूर्ण सामर्थ्य प्रतीति एवं ज्ञानमें आ जाता है। एक समयकी पर्यायमें ध्रौव्यकी प्रतीति की उसमें सब आ गया। अहा! यह तो बहुत कठिन लगेगा। अरे रे! ऐसी बात सुनने को भी नहीं मिले, तो बेचारे क्या करें? मजदूरी कर–करके मर गये—एक तो संसार की मजदूरी, और कभी दया, दान, पूजा, भक्ति, अरे! श्रवण करनेका राग करते हैं–वह भी मजदूरी है। भाई! इस पूर्ण और नित्य ऐसे ज्ञानानन्दके ध्रुवधामको–भगवान निज ज्ञायक ध्रुव आत्माको–अंतरमें देख न! वह एक समयमें परिपूर्ण है, उसकी एक समयमें प्रतीति करनेसे 'मैं भूतकालमें शुद्ध था, वर्तमानकालमें शुद्ध हूँ और भविष्यकालमें शुद्ध रहूँगा'–ऐसी तीनोंकालकी प्रतीति उसमें एकसाथ आ जाती है, त्रिकालकी प्रतीति के लिये ऐसे विकल्प नहीं करना पड़ते।

त्रैकालिक तत्त्वको चूककर मात्र वर्तमान पर्याय तथा राग का विश्वास है वह तो पर्यायबुद्धि होनेसे मिथ्यादृष्टि है। वर्तमान पर्यायका लक्ष छोड़कर अंतरमें ध्रुवतत्त्वके सन्मुख होने से—अंतरमें त्रैकालिक सत्–स्वामी प्रभु है उस पर दृष्टि करने से—एक समयकी प्रतीतिमें पूर्ण त्रैकालिक ध्रुवतत्त्व आ जाता है, समा जाता है। अहा! यह तो कोई पुस्तक है! अभी तो आगे जायगी, वहाँके लोग पढेंगे। ज्यों-ज्यों पढेंगे त्यों–त्यों धीरे–धीरे इसका मूल्यांकन होता जायगा कि–अहा! यह तो अलौकिक पुस्तक है! आया कुछ समझ में?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक भाईका पत्र आया है कि–इस पुस्तकका नाम 'बहिनश्रीके वचनामृत' है उसकी जगह 'दिव्यध्वनिके वचनामृत' होना चाहिये; क्योंकि यह तो दिव्यध्वनि ही है।

यहाँ क्या बात चल रही है? कि—त्रैकालिक ध्रुव अभेद ज्ञायकवस्तु पहले शुद्ध थी, वर्तमानमें शुद्ध है और अब आगे भी शुद्ध रहेगी–ऐसे त्रिकालके विकल्पकी उसे प्रतीतिमें आवश्यकता नहीं है। वर्तमान एक समयमें ही जो पूर्ण त्रैकालिक ध्रौव्य विद्यमान है उसे त्रिकालकी अथवा ऐसी अन्य कोई अपेक्षा नहीं है। अरे रे! तत्त्वकी बातमें आजकल बड़ा फेरफार हो गया है। यह सत्य बात लोगोंके कानों तक कहाँ पहुँचती है? अहा! महाविदेह क्षेत्रमें तो वर्तमानमें भी भगवानके समवसरणमें लाखों–करोड़ों लोग आत्मा की बात सुनते हैं, अरे! तिर्यंच—सिंह, वाघ, गाय, घोड़े, बकरी तथा अन्य पशु—भी रुचिपूर्वक सुनते हैं। आता है कुछ समझमें?

वर्तमान एक समयकी प्रतीतिमें तीनोंकाल भी प्रतीतिका समावेश हो जाता है अर्थात् त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकतत्त्व है वह एक समयकी पर्यायमें प्रतीतिरूपसे आ जाता है। उसकी प्रतीतिके लिये उसे तीनकालमें लंबानेकी जरूरत नहीं है। उत्पाद–व्यय का वर्तमान जो काल है उसी कालमें त्रैकालिक ध्रुवतत्त्व अंतरमें साथ ही विद्यमान है न? इस प्रकार एक समयकी प्रतीतिमें त्रैकालिक पूर्ण तत्त्व श्रद्धा में आ जाता है, ऐसा बतलाकर यह कहना है कि–'पर्यायका सामर्थ्य भारी है', परन्तु पर्यायमें 'वर्तमान ध्रुव है अथवा तो त्रिकाल रहनेवाला है' ऐसा भेद—विकल्प—नहीं करना है। अहा! वीतरागका मार्ग ऐसा है, विचार करे तो बैठ सकता है। प्रभु! तेरा स्वभाव ही ऐसा है कि वर्तमान एक समयमें ही त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकरूप रहना। उसकी वर्तमान एक समयकी प्रतीतिमें त्रिकालकी प्रतीति समा जाती है–साथ आ जाती है। कुछ समझमें आया?

*

वचनामृत–२५४

जिसप्रकार जीवको अपनेमें होनेवाले सुख-दुःखका वेदन होता है वह किसीसे पूछने नहीं जाना पड़ता, उसी प्रकार अपनेको स्वानुभूति होती है वह किसीसे पूछना नहीं पड़ता। २५४.

सांसारिक कल्पनामें जो सुख या दुःख हो उसका वेदन किसीसे पूछने जाना पड़ता है? वैसे ही त्रैकालिक ज्ञायक भगवान जैसा है वैसा दृष्टि और ज्ञानमें आने पर वर्तमानपर्यायमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो निर्मल निर्विकल्प अनुभव हुआ, स्वानुभूति हुई वह किसीसे पूछने नहीं जाना पड़ता। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दर्शन होनेकी स्वयंको खबर नहीं पड़ती, किन्तु भाई! इस अतीन्द्रिय स्वानुभूतिकी खबर पड़ती है तो उसके साथ सम्यग्दर्शन आ गया अथवा नहीं? अरे रे! क्या किया जाय? लोगोंने मार्गको छिन्नभिन्न कर दिया है। अनुभूति तो साधकका मुख्य लक्षण कहा है। सम्यक्त्वका लक्षण तो निज-शुद्धात्म-प्रतीति है, परन्तु जहाँ स्वानुभूति प्रगट हुई वहाँ वह साथ होती ही है; सम्यक्त्व होते ही साथमें स्वानुभूति होती है। अहा! वह अपूर्व एवं अनुपम स्वानुभूति होती है, वह किसी से पूछने नहीं जाना पड़ता। वह अपने अनुभवमें–वेदनमें आती है, उसे जाना जा सकता है। नहीं जाना जा सके–ऐसा है ही नहीं।

स्वानुभूति ही मोक्षमार्ग है। ज्ञायककी अनुभूतिकी दूज ऊगे तो अवश्य पूनम होगी ही। गुरुदेवके प्रतापसे चारों तरफ 'अनुभूति करो, अनुभूति करो', ऐसा हो गया है। पहले तो सब लोग क्रियाकांडमें पडे थे। वर्तमानमें ऐसे विषमकालमें ऐसे गुरु मिले और उन्होंने बाह्य क्रिया नहीं परन्तु अन्तर अनुभूति की क्रियाका रहस्य बतलाया। जीव अनन्त कालमें सब कुछ कर चुका है--त्याग किया, अथाह वैराग्य लिया, परन्तु मुक्तिका मार्ग नहीं मिला। अंतरके उस मार्गको प्राप्त करनेके लिये अन्तरमें ज्ञायककी समीपता कर, ज्ञाताधाराकी उग्रता कर, द्रव्यदृष्टि प्रगट कर। एक बार विभावको पीठ दी सो दी। विभावको श्रद्धामें संपूर्ण तिलांजलि देकर द्रव्यका परिपूर्ण जोर ला। थोड़ी भी कमी होगी तो अन्दर निर्विकल्पता प्रकट नहीं होगी। अन्दरमें विभाव जरा भी पोषाता नहीं। विभावके साथ अंशमात्र भी एकत्व तुझे अन्दर जानेसे रोक देगा। तेरे नयनके आलससे तू रुका है। हरि अर्थात् परमात्मा अपने पास ही है, स्वयं ही है। ज्ञान और आनन्दसे भरा हुआ चैतन्यदेव अखूट भण्डार है, रत्नोंसे भरा हुआ पर्वत है, अनुपम है; तुझे जो भी चाहिये वह सब इसमेंसे ही मिलेगा। ज्ञान भी इसमेंसे और आनंद भी इसमें से ही प्रकट होगा। वह ज्ञानादि बाहर आयेगा तो तुझे स्वयंको आश्चर्य होगा—अहो, ऐसा ज्ञान! ऐसा आनंद!

—बहिनश्री चम्पाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–९७

दिनांक २२-९-७८

वचनामृत–२५५

अंतरका अपरिचित मार्ग; अंतरमें क्या घटमाल चलती है उसका आगम एवं गुरुकी वाणीसे ही निर्णय किया जा सकता है। भगवानकी स्याद्वाद-वाणी ही तत्त्वका प्रकाशन कर सकती है। जिनेन्द्रवाणी और गुरुवाणीका अवलम्बन साथ रखना; तभी तू साधनाके डग भर सकेगा। २५५.

'अंतरका अपरिचित मार्ग; अंतरमें क्या घटमाल चलती है, वह आगम एवं गुरुकी वाणीसे ही निर्णय किया जा सकता है।'

भगवान आत्मा जो कि ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, उसकी सम्यक् प्रतीति, ज्ञान और रमणता जीवको अनादिसे अपरिचित है। अंतरमें क्या घटमाल चलती है—धर्मात्मा को भी भीतर देव-शास्त्र–गुरु की भक्ति तथा तत्त्वश्रवण–पठन–विचारका राग आता है, विकल्पोंकी घटमाल चलती है—उसका आगम अर्थात् वीतरागकी वाणी तथा तत्कालबोधक गुरुकी वाणीसे ही निर्णय हो सकता है। इसलिये यथार्थ निर्णय हेतु देव-गुरुकी वाणीको साथ रखना, अपने स्वच्छन्दसे–निज मतिकल्पनासे–निर्णय नहीं करना।

'भगवान की स्याद्वाद-वाणी ही तत्त्वका प्रकाशन कर सकती है।'

भगवानकी वाणी स्याद्वाद है, वस्तुके स्वरूपका अपेक्षा पूर्वक कथन करनेवाली है। उसमें किस स्थान पर किस अपेक्षासे कथन किया है वह गुरुगमसे बराबर समझना चाहिये। शास्त्रमें एक स्थान पर ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीवको बंध है ही नहीं, और दूसरे स्थान पर ऐसा कहते हैं कि जबतक यथाख्यातचारित्र—पूर्णचारित्र—न हो तबतक, दसवें गुणस्थान तक, मोहभाव के—लोभ के—सूक्ष्म अंशका सद्भाव अवश्यंभावी होनेसे ज्ञानीको भी बंध होता है। इसलिये जहाँ जो अपेक्षा हो वहाँ उसे बराबर समझना चाहिये। चौथे गुणस्थानमें सम्यग्दृष्टिको बंध नहीं होता; किस अपेक्षासे? मिथ्यात्व एवं अनन्तानुबंधी कषायके अभावकी अपेक्षासे। वहाँ अस्थिरता-अपेक्षासे भी सर्वथा बंध

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं है ऐसा यदि कोई मानता है तो वह अज्ञानी है।

शास्त्रमें ऐसा भी आता है कि 'ज्ञानीका भोग निर्जराका हेतु है।' भोगका भाव तो राग है, दुःख है, वह कहीं निर्जराका हेतु होगा? वहाँ दृष्टिका जोर बतलाना है। जिसकी दृष्टि निरन्तर त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायक द्रव्यस्वभावमें वर्त रही है उसे उदयके योगसे भूमिकानुसार जो भोगका भाव आता है वह, वैसे बंधका कारण नहीं होता इसलिये, अल्पबंध होने पर भी उसकी गिनती न करके, दृष्टिकी प्रधानतासे निर्जराका हेतु है ऐसा कहा है। व्यापारीको एक वस्तुमें बहुत लाभ और दूसरी किसी वस्तुमें थोड़ी हानि होती हो तो वहाँ कमाई ही कही जाती है; वैसे ही ज्ञानी को दृष्टिके जोर से बहुत शुद्धि बढ़ती जाती है वहाँ अस्थिरताके रागके कारण अल्प बंध होता है, तथापि उसे निर्जरा—शुद्धि की कमाई—ही कही जाती है।

सर्वज्ञ वीतरागकी वाणी वस्तु और वस्तुके स्वरूपकी प्राप्तिके उपायका स्वरूप किस प्रकार, किस अपेक्षासे कहती है उसे बराबर न समझे और एकान्त खींचे तो उसकी दृष्टिमें विपरीतता है। श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव जैसे महान सन्त स्वयं समयसारकी 'आत्मख्याति' टीका प्रारम्भ करते हुए कहते हैं—मेरी अनुभूति—परिणति जोकि परपरिणतिके हेतुभूत मोहके अस्थिरता-अपेक्षासे अल्पवश होनेके कारण, निरन्तर कल्माषित–मैली है उसकी, यह समयसार व्याख्या करनेसे, परम विशुद्धि होओ। 'मैं' कैसा हूँ? शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ। एक ओर कहते हैं कि 'शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ' और दूसरी ओर परिणतिमें पूर्ण शुद्धि होनेकी भावना करते हैं। द्रव्यस्वभावसे शुद्ध है और पर्यायमें अल्प कलुषता भी है। दोनों अपेक्षाएँ बराबर समझना चाहिये।

आत्मा स्वभावसे परिपूर्ण शुद्ध होने पर भी ज्ञानीको भी जब तक पर्यायमें अपूर्णता है तब तक वीतराग देव–शास्त्र–गुरुकी भक्तिका भाव, शास्त्र पठन तथा उपदेशका विकल्प आता है। समाधिशतकमें उपदेशके विकल्पको उन्माद कहा है, क्योंकि वह राग है, चारित्रका दोष है, दुःख है। 'यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।' शुभ एवं अशुभ भाव रागरूपी अग्नि है, अग्नि कहो या दुःख कहो; उसे छोड़कर अंतरमें समामृतका सेवन कर—वीतरागभावकी आराधना कर। वीतराग भाव कहो अथवा सुख कहो। इस प्रकार वीतरागकी स्याद्वाद-वाणी ही तत्त्वका प्रकाशन कर सकती है।

'जिनेन्द्रवाणी और गुरुवाणीका अवलम्बन साथ रखना; तभी तू साधनाके डग भर सकेगा।'

स्वच्छन्दपूर्वक नहीं चलना; भगवानकी तथा गुरुकी वाणीका अवलम्बन साथ रखना। त्रिलोकीनाथ जिनवर परमात्माकी वाणी—ॐकार दिव्यध्वनि तथा उसके अनुसरणपूर्वक रचे गये शास्त्र—तत्त्वका स्वरूप क्या कहते हैं उसका लक्ष करना सो आलम्बन है। देव–

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शास्त्र–गुरु मार्ग बतलाकर पृथक् रहते हैं; परन्तु मार्ग बतलाते हैं कि–अंतरमें जा! अंतरमें आत्माका सुख भोग करना हो तो ज्ञान और वैराग्यकी सामग्री लेकर अंतरमें जा। समयसारमें आता है न!—सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः।' सम्यग्दृष्टि रागसे भिन्न हुआ है, तथापि पर्यायमें अस्थिरताजनित राग है, आसक्ति है। निश्चयसे वह रागका स्वामी नहीं है परन्तु पर्याय-अपेक्षासे, अपना परिणमन होनेसे, स्वामी है, अधिष्ठाता है। प्रवचनसारके परिशिष्टमें नय-अधिकारमें कर्तृनयसे आत्माको रागादि परिणामोंका कर्ता कहा है। भगवानकी वाणीमें एक ओर ऐसा कहते हैं कि—आत्मा शुद्ध आनन्दघन ज्ञायक है, तथा दूसरी ओर ऐसा कहते हैं कि—मुनिको भी पंचमहाव्रतके शुभभाव आते हैं। भाई, किस अपेक्षासे कहा है वह बराबर समझना चाहिये, एकान्तकी खींच नहीं होना चाहिये। अहा! सर्वज्ञ प्रभुकी यह वाणी गुरुगम बिना समझना कठिन लगती है। इसलिये यहाँ बहिन कहती हैं : जिनेन्द्रवाणी और गुरुवाणीका अवलम्बन साथ रखना; तभी तू साधनाके डग भर सकेगा। जिनेन्द्रदेव क्या कहते हैं, गुरु क्या कहते हैं—वह लक्षमें रखना; तभी अपनी साधनाको अंतरमें दृढ़ रख सकेगा, तू अंतरमें जा सकेगा, जिससे पर्याय निर्मल होगी और स्वच्छन्द नहीं होगा। बेनने बहुत संक्षिप्त और सादी भाषामें बात कही है।

*

वचनामृत–२५६

साधकदशाकी ऐसी साधना कर कि जिससे तेरा साध्य पूरा हो। साधकदशा भी अपना मूल स्वभाव तो है नहीं; वह भी प्रयत्नरूप अपूर्ण दशा है, इसलिये वह अपूर्ण दशा भी रखने योग्य तो है ही नहीं। २५६.

'साधकदशाकी ऐसी साधना कर कि जिससे तेरा साध्य पूरा हो।'

प्रभु! तू पूर्णानन्दका नाथ—सच्चिदानन्द प्रभु—आत्मा है न! पर्यायमें रागादि हों, परन्तु वस्तु मूल स्वरूपसे ऐसी नहीं है। वह निज पूर्णानन्द प्रभुकी साधना—परमानन्द स्वरूपमें एकाग्रतारूप साधकदशाकी साधना—ऐसी कर कि जिससे तेरा साध्य—मोक्ष—पूर्ण हो जाय। साध्यका स्वरूप आगे कहेंगे।

'साधकदशा भी अपना मूलस्वभाव तो है नहीं।'

क्या कहते हैं? कि—शुद्ध चैतन्य ज्ञायक प्रभुकी दृष्टि और अनुभव वह साधक दशा है; उससे पूर्ण साध्यदशा प्रगट होगी। साधकदशा है तो निर्मल ज्ञानधारा, परन्तु वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी आत्माका मूल स्वभाव नहीं है, क्योंकि वह उद्यमरूप अपूर्ण पर्याय है। 'परमात्मप्रकाश'में भी आता है कि निर्विकल्प समाधि जोकि मोक्षका मार्ग है वह भी आत्माका स्वभाव नहीं है, क्योंकि वह अपूर्ण पर्याय है। अंतरमें तू पूर्णानन्दका नाथ सच्चिदानंद प्रभु है; तुझमें सत् एवं शाश्वत ऐसे ज्ञान और आनन्दादि रत्नोंके भण्डार भरे हैं। प्रभु! ज्ञान और वैराग्य लेकर तू अपने अंतरमें जा, वहाँ तुझे अतीन्द्रिय आनन्दादि सब प्राप्त होंगे। अहा! ऐसी बातें बड़ी कठिन लगती हैं। लोग धर्मका स्वरूप कुछका कुछ मान बैठे हैं। भाई! धर्म कोई अपूर्व वस्तु है। अनादि कालमें पहले अनन्तबार मुनिव्रत धारण किये, नववें ग्रैवेयक गया, परन्तु एक क्षण भी आत्मानुभूति स्वरूप धर्म नहीं हुआ—साधकदशा प्रगट नहीं की।

साधकदशा तो अंतरमें त्रैकालिक ज्ञायक द्रव्यस्वभावके आश्रयसे प्रगट होनेवाली सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी एकतास्वरूप वीतरागी पर्याय है, त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य नहीं है। अतीन्द्रिय पूर्णानन्दका रसकन्द ज्ञायक प्रभु देहादिक परपदार्थोंसे तो बिलकुल भिन्न है ही, किन्तु शुभाशुभ विभावोंसे भी भिन्न है,—इस प्रकार अंतरमें दृष्टि करके साधकपना ऐसा प्रगट कर जिससे तेरी साधकदशा परिपूर्ण प्रगट हो जाय।

साधकदशा भी अपूर्ण दशा है, वह भी आत्माका मूल स्वभाव नहीं है। जब तक पूर्ण साध्यदशा प्रगट नहीं हुई है तब तक पर्यायमें ज्ञानधाराके साथ अंतरमें कर्मधारा—रागधारा चलती है; परन्तु वहाँ रागधारासे निरपेक्ष ऐसी ज्ञानधारा ही—सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी निर्मलधारा ही—मोक्षका कारण है, साथ ही राग है वह तो बंधका कारण है।

भगवान आत्मा आनन्दस्वभावमें क्रीड़ा करे वह अपनी शुद्धदशा और ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीवको भी जितने कहने, सुनने, भक्तिके स्वाध्यायादिके विकल्प उठें वह शुभराग है। अशुभकी तो बात ही कहाँ है, परन्तु शुभराग भी हमारा देश नहीं है; उसमें आना हमें अच्छा नहीं लगता परन्तु आना पड़ता है, वह ज्ञानीको ऐसे लगता है जैसे परदेशमें आ गये हों। यह बात बेनने ४०१ वें बोलमें की है।

एक बार ऐसा कहे कि—व्यवहारकी क्रियासे रागका अधिष्ठाता आत्मा है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीवको भी भूमिकानुसार पर्यायमें ऐसा राग आता है न? तथा दूसरी ओर ऐसा कहे कि–राग आये वह हमारा देश नहीं हैं, परदेश है। दोनों बातें आती हैं परन्तु उनकी अपेक्षा समझना चाहिये। द्रव्यदृष्टिके हिसाबसे रागका—सर्व विभावोंका—स्वामी आत्मा नहीं है, परन्तु पर्याय नयके हिसाबसे राग मेरी पर्यायमें मुझसे हुआ है इसलिये उसका स्वामी मैं हूँ। प्रवचनसारके परिशिष्टमें (४७ नयमें) आता है कि—आत्माका कर्तानयसे रागादि विभावपरिणामोंका कर्ता है। अकर्तानयसे आत्मा मात्र साक्षी है, रागादिका कर्ता नहीं है। इसलिये जहाँ जो अपेक्षा हो वह बराबर समझना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मैं रागादि विभावोंसे भिन्न शुद्ध पूर्ण ज्ञायक हूँ—ऐसी साधकदशा भी वर्तमान प्रयत्नरूप अपूर्ण दशा है। साध्यदशा पूर्ण और साधकदशा अपूर्ण, परन्तु वे दोनों पर्याय हैं, त्रैकालिक ध्रौव्य नहीं हैं। एक समयकी पर्याय जितना आत्मा नहीं है। परमात्मप्रकाशके प्रथम अधिकारके ६८वें दोहेमें कहा है कि—हे योगी! परमार्थ जीव उपजता भी नहीं है, मरता भी नहीं है और बन्ध–मोक्ष भी नहीं करता—ऐसा श्री जिनवर कहते हैं। जीव मोक्षको तथा मोक्षके मार्गको नहीं करता वह किस अपेक्षासे? त्रैकालिक ध्रुव सच्चिदानंद ज्ञायक प्रभुमें बन्ध-मोक्ष नहीं होते, बन्ध-मोक्ष तो आत्माको पर्याय-अपेक्षासे है। सच्चिदानंद पूर्ण ध्रुव प्रभु परका और रागादिका तो नहीं किन्तु शुद्ध साधकदशाका भी कर्ता नहीं है; ध्रौव्य क्या करेगा? बात सूक्ष्म है। समझनेके लिये मस्तिष्क होना चाहिये। परद्रव्य तो भिन्न ही है, किन्तु अंतरमें विभाव तथा अपूर्णदशा भी रखने योग्य नहीं है। आत्मा स्वयं पूर्णानन्दका नाथ वह द्रव्य, और जो साधनामय दशा प्रगट हुई वह अपूर्ण पर्याय। वह अपूर्ण पर्याय भी आश्रय करने योग्य या रखने योग्य नहीं है। आश्रय तो सदैव त्रैकालिक एक शुद्ध परिपूर्ण ज्ञायक द्रव्यस्वभावका ही होता है। उसके आश्रयसे ॐ साधक और साध्यदशा प्रगट होती है। अहा! माल ही मालकी बात आयी है। यह माल है भाई!

*

वचनामृत–२५७

शुद्ध द्रव्यस्वभावकी दृष्टि करके तथा अशुद्धताको ख्यालमें रखकर तू पुरुषार्थ करना, तो मोक्ष प्राप्त होगा। २५७.

त्रैकालिक निज शुद्ध ज्ञायक द्रव्यस्वभावका अंतरमें लक्ष करके तथा पर्यायमें अशुद्धता–मलिनता है, मलिनता सर्वथा नहीं है—ऐसा नहीं है, ऐसा ख्याल रखकर तू अंतर्मुखताका पुरुषार्थ करना, उससे तुझे परमानन्दस्वरूप मोक्षकी प्राप्ति होगी। समयसारकी १४वीं गाथामें आत्माको अबद्धस्पृष्टादि कहा है। वहाँ टीकाकार श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने कहा है:—पर्यायमें अशुद्धता–बद्धस्पृष्टत्वादि हैं या नहीं? इसलिये पर्यायमें अशुद्धता है वह ख्यालमें रखकर वहाँ अबद्धस्पृष्टस्वरूप आत्माका लक्ष करना कहा है।

भगवान ज्ञायक आत्मा शुद्ध है ऐसा कहकर पर्यायमें जो अशुद्धता है उसका ज्ञान करना भूल जाय, अशुद्धता सर्वथा है ही नहीं ऐसा माने, उसे तो पर्यायमें शुद्धता साधकर अशुद्धता नष्ट करना रहेगा नहीं। चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थानमें साधकदशा प्रगट हुई है, तथापि पर्यायमें अभी अशुद्धता है। अशुद्धताको ख्यालमें न रखे तो उसे टालनेका उद्यम आयगा कहाँसे?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! ऐसा मार्ग! इससे तो—दया पालना और 'मिच्छामि दुक्कडं'—सरल था। हाँ, सरल था—भटकना। अरे, भाई! तुझे चौरासीके अवतारकी थकान और भय लगा है?—अकेले नरक-पशुके दुःखोंका नहीं, किन्तु चारों गतिके दुःखोंका। आनन्द स्वभाव निज ज्ञायक भगवानकी प्रतीतिके बिना भले ही स्वर्गका देव या अरबपति सेठ हो—सब दुःखी ही हैं।

भगवान चैतन्यप्रभु, हीरेमें जिस प्रकार पहल होते हैं, उसीप्रकार अनंतगुणोंके पहलुओं से भरपूर है—ऐसी दृष्टि करके पर्यायमें दुःख है वह, साथ ही ख्यालमें रखना। यदि पर्यायमें दुःख न हो तो पूर्णनन्द प्रगट प्राप्त होना चाहिये। जिनको तीन कषायका अभाव हुआ है और जो छठवें–सातवें गुणस्थानमें झूल रहे हैं ऐसे मुनिवर अमृतचन्द्राचार्यदेव भी 'आत्मख्याति' टीकाका प्रारम्भ करते हुए प्रतिज्ञाके कलशमें कहते हैं कि–मेरी परिणति जो निरन्तर कल्माषित, मैली है—मुझमें अशुभभाव तो हैं नहीं परन्तु टीका रचनेका शुभभाव आया वह भी कल्माषित भाव, दुःखरूप भाव है—उसकी इस टीका रचनेके कालमें परम विशुद्धि होओ। पर्यायमें मुझे अभी अशुद्धता है, मैं अभी सम्पूर्ण वीतराग नहीं हुआ हूँ, इसलिये अंतरमें द्रव्यस्वभावके आश्रयका जोर बढ़कर अशुद्धताका सम्पूर्ण नाश हो जाओ।

पर्यायमें अशुद्धता है, उसका ख्याल रखकर उसका नाश करनेके लिये तू शुद्ध द्रव्यस्वभावके आश्रयका पुरुषार्थ कर। यदि पर्यायमें अशुद्धता और दुःख है ही नहीं तो स्वभावसन्मुख पुरुषार्थ करना नहीं रहता। अहा! एक ओर कहते हैं कि सम्यग्दृष्टिको राग नहीं है और दूसरी ओर कहते हैं कि भावलिंगी मुनिराजको भी पर्यायमें मलिनता है; वहाँ किस अपेक्षासे कथन है वह समझना चाहिये न? सम्यग्दृष्टिको राग नहीं है वह तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायका अभाव हुआ है उस अपेक्षासे है, और मुनिकी अवस्था कल्माषित है वह संज्वलन कषायकी—प्रमादकी—परिणति पुरुषार्थकी अशक्तिके कारण अभी वर्त रही है उस अपेक्षासे है। अशुद्धताको ख्यालमें रखकर अंतर्मुख स्वभावका पुरुषार्थ करनेसे विभावका नाश तथा पूर्ण शुद्ध दशाकी प्राप्ति होती है।

अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति ज्ञायक तत्त्वकी दृष्टि होनेपर भी पर्यायमें जबतक पुरुषार्थकी कचास है तबतक अशुद्धता और दुःख है, वह ख्यालमें रखना। ज्ञानीको सर्वथा दुःख होता ही नहीं—यह दृष्टि बिल्कुल विपरीत है। ऐसी दृष्टिवालेको दुःखकी भी खबर नहीं है और आनन्दकी भी खबर नहीं है। 'हम परदेशी पंछी साधु आरे देशके नाहीं;' विकल्प हमारा देश नहीं है, आता है वह ख्यालमें है अवश्य। वह ख्यालमें न हो तो अतीन्द्रिय आनन्दकी ओर ढलनेका प्रयत्न निरर्थक जाता है। पर्यायमें दुःख हे तो वहाँसे हटकर स्वभावसन्मुख होना है। स्वभावसन्मुखताका पुरुषार्थ करनेसे पर्यायमें जो अशुद्धता है उसका नाश होगा और पूर्ण परमानन्दमय मोक्षदशा प्राप्त होगी। *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत—२५८

तू विचार कर, तेरे लिये दुनियामें एक आत्माके सिवा और कौन आश्चर्यकारी वस्तु है?—कोई नहीं। जगतमें तूने सब प्रकारके प्रयास किये, सब देखा, सब किया, परन्तु एक ज्ञानस्वरूप, सुखस्वरूप, अनन्त गुणमय ऐसे आत्माको कभी पहिचाना नहीं, उसे पहिचान। बस, यही एक करना बाकी रह जाता है। २५८.

'तू विचार कर, तेरे लिये दुनियामें एक आत्माके सिवा और कौन आश्चर्यकारी वस्तु है?—कोई नहीं.'

विचार तो कर प्रभु! लक्ष्मी मिले या स्वर्ग मिले, वह क्या आश्चर्यकारी है? यह सब तो अनन्तबार प्राप्त हुआ है। तेरे लिये आत्माके सिवा अन्य कौनसी आश्चर्यकारी वस्तु है? सच्चिदानंद स्वरूप भगवान आत्मा एक ही तेरे लिये 'अद्भुताद्भुतं'—आश्चर्यकारी वस्तु है। एक समयकी पर्याय भी तेरे लिये आश्चर्यकारी नहीं है। सुन्दर शरीर, अनुकूल स्त्री तथा लक्ष्मी आदि मिलें तो जीवको जो विस्मयता और संतुष्टि हो जाती है वह मूढ़ता है। प्रभु! ज्ञानानन्दादि अनन्त गुणोंका भण्डार ऐसे निज ज्ञायक भगवानके भान बिना—परमाश्चर्यकारी निज वस्तुस्वभावके लक्ष बिना—अनादिसे तुझे परमें और विभावमें विस्मयता लगी है, परन्तु तेरे लिये वास्तवमें परम अद्भुत आश्चर्यकारी निजस्वभावके सिवा जगतमें अन्य कुछ है ही नहीं। ज्ञान एवं सुख देनेवाली परम आश्चर्यकारी वस्तु तू स्वयं ही है।

'जगतमें सब प्रकारके प्रयास किये, सब देखा, सब किया, परन्तु एक ज्ञानस्वरूप, सुखस्वरूप, अनन्तगुणमय ऐसे आत्माको कभी पहिचाना नहीं, उसे पहिचान। बस, वही एक करना बाकी रह जाता है।'

जगतमें आत्माको जाने बिना तूने अन्य सर्व प्रकारके उद्यम किये; वहाँ पर पदार्थकी क्रियामें तो आत्मा कुछ भी हेरफेर–परिवर्तन कर नहीं सकता; बहुत करेगा तो अपनी पर्यायमें परके कर्तृत्वका अज्ञानभाव अथवा शुभाशुभ विकारीभाव करेगा। शुभाशुभ रागका प्रयास जीवने अनादिसे अनन्तबार किया है, परन्तु भगवान ज्ञायकतत्त्व तो उन शुभाशुभ विभावोंसे भिन्न है, उनकी उसे खबर नहीं है। अरे! दया, दान, व्रत, जप–तपादिमें उसे आश्चर्य लगता है परन्तु वह तो शुभराग है, वह कहीं आत्मा नहीं है। उस विभावभावमें क्या आश्चर्य जैसा है? ऐसा तो तूने अनन्तबार किया है; वे सर्व प्रयास आत्मशान्ति हेतु व्यर्थ हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'यह करूँ, यह करूँ' ऐसी मान्यता अज्ञानी करता है, परन्तु वह परका कुछ कर नहीं सकता। अँगुली हिलती है वह भी जड़की क्रिया है और वह जड़के कारण होती है। परमें कुछ भी नहीं किया जा सकता तथापि 'मैं परका करता हूँ' ऐसा अज्ञान तथा रागमय प्रयास तो जीवने अनन्तबार किया है, परन्तु स्वयंको पहिचाननेका प्रयास कभी नहीं किया। जहाँ–जहाँ जन्म धारण किया वहाँ शरीर, वाणी, मन, अनेक प्रकारके भवभाव—सब देखा; परन्तु देखनेवाले—ज्ञायकस्वभावको—नहीं देखा। व्यापार–धंधा, वकालत आदिकी पढ़ाई इत्यादि सब देखा, परन्तु अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दके नाथको—चैतन्यप्रभुको, देखनेवालेको—नहीं देखा, प्रतीतिमें नहीं लिया, उसका स्वानुभव नहीं किया।

सब देखा, सब किया। परमें क्या किया? परमें तो कुछ कर नहीं सकता, परन्तु 'मैंने लाखों रुपयोंका दान दिया, करोड़ोंका व्यापार किया'—ऐसी कल्पनाका राग किया है, पुण्य–पापके भाव किये हैं। यह सब तो जीवने अनन्तबार किया है, परन्तु शरीरादि परसे बिलकुल भिन्न और शुभाशुभ विभावसे रहित निज ज्ञानानन्दरूप एक भगवान आत्माको कभी नहीं पहिचाना। जैनेतरमें नरसी महेताने भी कहा है कि—

जहाँतक आतमातत्त्व जाना नहीं, वहाँतक साधना सर्व झूठी;
मानव जनम तेरा ऐसे चला गया, जैसे होती महावटकी वृष्टि बूठी।
क्या हुआ तप और तीरथ भ्रमण किये, क्या हुआ जाप किये माला फेरी;
क्या हुआ तिलक और तुलसी धारण किये, क्या मिला गंगाजल पान करके।
यह तो प्रपंच सब पेट भरनेके हैं, यदि न आतमराम परब्रह्म जोया;
कहे 'नरसी भगत' तत्त्वदर्शन बिना, रत्नचिन्तामणि-सा जन्म खोया।

जिस प्रकार मिश्री सफेदी और मिठाससे भरी हुई है उसी प्रकार प्रभु ज्ञायक आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दसे भरपूर है।

प्रश्न:—इन्द्रियोंका आनन्द कैसा होगा?

उत्तर:—इन्द्रियोंमें तथा उनके विषयोंमें धूल भी आनन्द नहीं है। स्त्रीके शरीरका उपभोग आत्मा नहीं कर सकता, वह तो हड्डी–मांस और चमड़ेका पुतला है, धूल है और आत्मा तो अरूपी चैतन्य है। उपभोगके कालमें यह जीव 'यह अच्छा है'—ऐसा राग करता है—भोगता है, परन्तु स्त्रीके शरीरको नहीं। अरूपी भगवान रूपीको कैसे भोगेगा? अमृतस्वरूप भगवान अपनेको भूलकर 'मुझे विषयमें आनन्द आता है'–ऐसे रागरूपी विषको भोगता है। अरेरे! जीवने जगतकी सर्व काम-भोगकी कथाएँ सुनी हैं, देखी और अनुभवी हैं, परन्तु सहज ज्ञान और सहज सुखादि अनन्त गुणस्वरूप ऐसे अपने आत्माको कभी नहीं पहिचाना। बाह्यमें सब किया, शास्त्रोंका ज्ञान भी अनन्त बार किया, परन्तु भीतर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा क्या वस्तु है उसकी अंतरमें गहरे उतरकर कभी खोज नहीं की—पहिचाननेका प्रयत्न नहीं किया। श्रीमद् राजचन्द्रने कहा है—

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो;
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।
सब शास्त्रनयके नय धारि हिये, मतमंडन खण्डन भेद लिये;
वह साधनवार अनन्त कियो तदपि कुछ हाथ हजु न पर्यो।
अब क्यों न विचारत हैं मनसें, कछु और रहा उन साधनसें;
बिन सद्गुरु कोई न भेद लहै, मुख आगल है कह बात कहै?

अरेरे! जीवने अपने आत्माकी परवाह नहीं की, उसे नहीं पहिचाना; इसलिये प्रथम उसे पहिचान। बस, वही एक करने जैसा कार्य है। अनादिसे दूसरा सब किया—पुण्य–पाप अनन्त बार किये, मन्दिर अनन्तबार बनवाये, करोड़ोंका दान दिया, परन्तु वह कोई आत्माकी वस्तु नहीं है। अंतरमें ध्रुव चैतन्य प्रभु साक्षात् विराजमान है उसे परसे भिन्न और विभावसे रहित ऐसे शुद्ध स्वभावसे पहिचान; बस वही एक करने योग्य कार्य रह गया है।

गुरुदेवसे सुशोभित धन्य यह सुवर्णपुरी! गुरुदेव परम पुरुष थे। उनकी वाणी चैतन्यको जगानेवाली थी। गुरुदेवके चैतन्यकी शोभाका क्या कहना! उनके पुण्यकी शोभा भी कोई निराली थी! भरत क्षेत्रका सौभाग्य है कि गुरुदेवने यहाँ जन्म लिया। *—बहिन श्री चम्पाबेन*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–६८

दिनांक २३-६-७८

वचनामृत–२५६

किसी प्रकारकी प्रवृत्तिमें खड़ा रहना वह आत्माका स्वभाव नहीं है। एक आत्मामें ही रहना वह हितकारी, कल्याणकारी और सर्वस्व है। २५६.

'किसी प्रकारकी प्रवृत्तिमें खड़ा रहना वह आत्माका स्वभाव नहीं है।'

क्या कहते हैं? आत्मार्थके कार्यके सिवा संसारके किसी भी कार्यमें—स्त्री–पुत्र–परिवार या देव–शास्त्र–गुरु सम्बन्धी कार्यमें अथवा किसी भी अन्य प्रकारकी प्रवृत्तिमें—खड़ा रहना, लगा रहना वह आत्माका स्वभाव नहीं है।

प्रश्न:—देव–शास्त्र–गुरु सम्बन्धी प्रवृत्तिको तो धर्मानुराग कहा जाता है न?

उत्तर:—धर्मानुराग भी शुभभाव है, प्रशस्त राग है। ज्ञानीको भी शुभराग आता अवश्य है, परन्तु अशुभ या शुभ किसी भी प्रकारके रागमें खड़ा रहना वह आत्माका स्वभाव नहीं है। आत्माका स्वभाव प्रवृत्ति नहीं किन्तु निवृत्तिमय है, राग नहीं किन्तु अराग–वीतराग है। जिसे दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत और तपादि भावोंका प्रेम है उसे अरागस्वरूप भगवान ज्ञायक आत्माका प्रेम नहीं है। कठिन बात है भाई! एक म्यानमें दो तलवारें साथ नहीं रह सकतीं, उसी प्रकार रागका और वीतराग तत्त्वका प्रेम एक साथ नहीं रह सकता। जिसने शुभाशुभ भावको उपादेय माना, अच्छा माना उसने भगवान आत्माको हेय माना है।

अहा! भगवान आत्मामें तो ज्ञान, आनन्दादि अनंत गुणोंके भण्डार भरे हैं। क्या कहते हैं? कि—यह ज्ञानस्वरूप आत्मा अंतरमें अपार एवं अद्भुत सम्पत्तिसे भरपूर है। वह उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यस्वरूप है, इसलिये वह नित्य स्थायी रहकर पलटता है। वह प्रतिसमय नई-नई अवस्थारूपसे उत्पन्न होता है, पुरानी–पुरानी अवस्थारूपसे विलयको प्राप्त होता है और ध्रौव्यरूपसे नित्य स्थित रहता है। वह शक्तिस्वभावसे नित्य रहकर पर्याय-अपेक्षासे पलटता है। उसका नित्यस्थायी ध्रौव्यस्वरूप रिक्त नहीं है, किन्तु अनंत गुण-वैभवसे भरपूर

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। प्रभु! तू अपने अनुपम वैभवयुक्त शाश्वत स्वरूप पर दृष्टि कर तो तुझे विश्वास और सन्तोष होगा कि 'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ।' उसमें रमणता करनेसे तू व्यक्त दशामें भी कृतकृत्य हो जायगा। अहा! ऐसी बातें! सामायिक, प्रतिक्रमणादि बाह्य क्रियाएँ करते-करते कल्याण हो जायगा—ऐसा माननेवाले क्रियाकाण्डियोंको यह बात असह्य लगती है; परन्तु भाई! आत्माकी यथार्थ प्रतीति बिना सामायिक एवं प्रतिक्रमणादि तू लाया कहाँ से? आत्मानुभवके बिना उनसे धूल भी धर्म नहीं होता।

भगवान ज्ञायक आत्माका नित्य स्थायी स्वरूप रिक्त नहीं है किन्तु गुणऋद्धिसे भरपूर है। 'रिक्त नहीं है' वह नास्तिसे कहा और 'गुणऋद्धिसे भरपूर' वह अस्तिसे कहा है। जैसे मिश्रीमें मिठास भरपूर है वैसे ही ज्ञायक प्रभुके नित्यस्थायी स्वरूपमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, अनन्त ईश्वरता आदि अनंतानन्त शक्तियाँ भीतर भरपूर भरी हैं। अरेरे! जीवोंको अपने अंतरंग निधानकी खबर नहीं है और बाहरी माथाकूटमें धर्म मानकर बेचारे फँस गये हैं। आजकल तो तत्त्वकी बात ही सारी गुम हो गई है। जीव बाह्य प्रवृत्तियोंमेंसे छूट ही नहीं पाता। प्रतिदिन बाईस घन्टे स्त्री-बच्चों और व्यापारमें, खाने-पीने तथा सोनेमें बीत जाते हैं; बड़ी मुश्किलसे घन्टे-दो घन्टे निकालकर कभी सुनने जाता है तो 'यह करो और वह करो, पूजा करो और भक्ति करो, दान करो और उपवासादि तप करो; उनसे तुम्हारा कल्याण होगा'—ऐसा विपरीत सुननेको मिलता है। भाई! यह सब तो रागकी क्रियाएँ हैं, और राग 'करना' वह तो 'मरना' है। रागसे तो आत्माका भावमरण होता है; वह तो संसारमें परिभ्रमणाका कारण है, उससे कल्याण कैसे होगा?

भगवान आत्मा असंख्यप्रदेशी अमूर्त द्रव्य है; उसमें गुणरत्नोंके अनन्त भण्डार भरे हैं। जैसे हजार कड़ियोंवाली सोनेकी जंजीर बच्चेके गलेमें पहनायी हो तो बहुत लड़ियाँ होती हैं, और बड़ेके गलेमें पहिनाई हो तो कम लड़ियाँ होती हैं। उसी प्रकार ज्ञानमूर्ति भगवान आत्मा, जो शरीर-प्रमाण रहता है वह, हजार योजनवाले महामच्छके शरीरमें हो तो उसके लोक-प्रमाण असंख्यप्रदेश अल्प संकुचित हैं, और चींटीके शरीरमें तब उसके प्रदेश अधिक संकुचित होते हैं, इसलिये चींटीकी दशामें उनका कद छोटा हो जाता है। जरा सूक्ष्म बात है भाई! उन समस्त प्रदेशोंमें अनन्त गुणरत्नोंके भण्डार भरे हैं। अहा! अपनेको पामर मान बैठा हो वहाँ प्रभुताकी प्रतीति कैसे होगी? प्रभु! अद्भुत चैतन्यसमृद्धिसे परिपूर्ण ऐसे अपने स्थायी स्वरूप पर दृष्टि दे, गहरे उतरकर उस पर गंभीरतासे दृष्टि डाल तो तुझे अपनी प्रभुताका अंतरसे विश्वास आयगा और कोई अतीन्द्रिय आनन्दकी अनुभूति होगी। तुझे अंतरंगसे ऐसा लगेगा कि 'मैं तो स्वभावसे सदा कृतकृत्य हूँ,' और अंतरमें अपने प्रभुत्व स्वरूपमें स्थिर होऊँ तब तो पर्यायमें भी कृतकृत्य हो जाऊँगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ तो यह बात चलती है कि किसी भी बाह्य प्रवृत्तिमें खड़े रहना वह आत्माका स्वभाव नहीं है। मन्दिर बनाना, पाठशाला चलाना, अस्पताल बनाना, पैसोंका चन्दा इकट्ठा करना आदि प्रवृत्तियोंमें रुकना यह आत्माका कार्य नहीं है। आत्माका स्वभाव तो ज्ञाता-द्रष्टापना है; बाह्य कार्योंमें लगना तो वह तो विकारी भाव है। अज्ञानीको तो जरा दस–बीस लाखका चन्दा हो जाय तो ऐसा लगता है कि 'हमने तो कितना बड़ा काम किया है;' इस प्रकार परके कर्तृत्वका अभिमान हो जाता है। भाई! उसने कुछ धूल भी नहीं किया है, उलटा अभिमानका पाप बाँधा है।

प्रश्न:—उसने शुभ कार्य तो किया है न?

उत्तर:—क्या कार्य किया है? कर्तापनेका अभिमान किया है। कदाचित् शुभराग किया हो तो वह भी निश्चयसे तो पाप ही है, वह आत्माका पवित्र स्वभाव नहीं है। श्री योगीन्दुदेवने कहा है :

पापरूपको पाप तो जाने जग सब कोई;
पुण्यतत्त्व भी पाप है, कहे अनुभवी बुध कोई।

शुभभावमें आनेसे निर्विकल्प समाधिसे—स्वरूपसे—पतन होता है इसलिये परमार्थतः वह भी पाप है। कठिन बात है भाई! समझमें आता है कुछ?

भगवान आत्मा ज्ञान एवं आनन्दादि निज गुणोंसे ठसाठस भरा है। वह तो मात्र ज्ञाता—परका अकर्ता है। शुभ हो या अशुभ हो—किसी भी कार्यमें संलग्न होना वह आत्माका स्वभाव नहीं है।

प्रश्न:—शुभ कार्यमें संलग्न हो तो धीरे–धीरे शुद्धता आयगी न?

उत्तर:—शुद्धता तो भीतर स्वभावमें विद्यमान है; क्या बाह्य शुभकार्योंमें लगनेसे शुद्धता आ जायगी?—कदापि नहीं; अंतरमें ज्ञायकस्वभावका अवलम्बन लेनेसे पर्यायमें शुद्धता प्रगट होती है और उस स्वभावके विशेष आलम्बनसे शुद्धतामें वृद्धि होती है।

यहाँ सोनगढ़में लाखों रुपये खर्च हुए, बड़े–बड़े मन्दिर बने, लाखों पुस्तकें छपीं, अद्वितीय परमागम मन्दिर बना। लोग कहते हैं कि 'यह सब महाराजके प्रतापसे हुआ है।' क्या यह सब मैंने किया है? यह जो परमागम मन्दिर बना उसे क्या रामजीभाई और वृजलालभाईने बनाया है? वह तो उस कालमें उसके कारण हुआ है। यहाँ तो पहले जंगल था, भैंसे और पाड़े बैठते थे। वहाँ यह छब्बीस लाखकी लागतका भव्य परमागम मन्दिर बन गया। उसे किसीने बनाया कहना तो निमित्तके उपचारका कथन है। वास्तवमें तो पुद्गलके सम्बन्धोंकी तत्कालीन अवस्थासे हुआ है। बड़ी कठिन बात है। जन्म–मरण रहित होनेका मार्ग—आत्माका मार्ग—सूक्ष्म है भाई!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मासिक-पत्रके लिये एकाध लेख तो लिख देना पड़ेगा, आपके नामकी पाठशाला बनाना है तो उसके लिये अच्छी रकम एकत्रित कर देना पड़ेगी आदि किसी भी प्रवृत्तिमें खड़ा रहना वह आत्माका कार्य नहीं है। अरे भाई! जगतके कार्य तो स्वयं उनके अपनेसे होते हैं, उनके कर्तृत्वका उत्साह क्यों आता है? मैंने ध्यान रखा तब वह कार्य हुआ, मैं उस काममें पड़ा तब वह पूरा हुआ, नहीं तो कभी नहीं होता। रहने दे भाई! यह कर्तृत्वका मिथ्याभिमान। मिथ्यात्वका अभिमान तो महापाप है। पं० बनारसीदासजीने कहा है :

करै करम सोई करतारा, जो जानै सो जाननहारा;
जो करता नहि जाने सोई, जानै सो करता नहि होई।

बाह्यक्रिया एक जैसी दिखने पर भी ज्ञानी और अज्ञानीके अंतर अभिप्रायमें तथा परिणामोंमें महान अंतर है। परके कार्य होते हों वहाँ अज्ञानी 'मैं उन्हें करता हूँ' ऐसे परके कर्तृत्वके अहंकारमय अभिमानके कारण निरन्तर बंधको प्राप्त होता है और ज्ञानी मात्र ज्ञातृत्वके अभिप्रायके कारण निरन्तर अबंध ही रहता है। इसलिये अंतर ज्ञानपरिणतिके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारकी प्रवृत्तिमें लगना वह आत्माका स्वभाव नहीं है।

'एक आत्मामें ही रहना वह हितकारी, कल्याणकारी और सर्वस्व है।

अतीन्द्रिय आनन्दके नाथ ऐसे निज चैतन्य ज्ञायकदेवमें, उसकी यथार्थ श्रद्धा, ज्ञान और स्वानुभूति करके स्थिर हो जाना वह एक ही हितकारी कार्य है।

कुछ लोगोंको ऐसा लगता है कि सोनगढ़वाले निश्चयकी बातें करते हैं परन्तु त्याग या व्रतादि करनेको नहीं कहते। भाई! त्याग और व्रतादि किसे कहते हैं उसकी तुम्हें खबर है? आत्माका यथार्थ स्वरूप समझकर स्वानुभव होनेपर विपरीत श्रद्धाके अनन्त प्रकारोंका त्याग वह क्या कोई त्याग ही नहीं है? त्यागके सच्चे स्वरूपकी तुम्हें खबर नहीं है। अज्ञानीको मिथ्यात्वके त्यागका कोई मूल्य नहीं है। बाह्यमें स्त्री–बच्चोंको छोड़ दिया उसे त्याग मानते हैं, परन्तु आत्माको समझे बिना उसमें धूल भी त्याग नहीं है, भाई! जबतक अंतरमें 'मैं परका करता हूँ, परका ग्रहण–त्याग कर सकता हूँ, परको जीवन दे सकता हूँ, सुखी कर सकता हूँ, कुटुम्बकी रक्षा कर सकता हूँ, मैं पत्नीका पति हूँ' ऐसे परके कर्तृत्व एवं स्वामित्वके पाखण्डमय भाव हैं तबतक वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टिके त्याग कैसा? भाई! परपदार्थको तो तूने ग्रहण नहीं किया है, किन्तु अंतरमें जो शुभाशुभ रागवृत्ति होती है वह भी तेरी वस्तु नहीं है। भीतर अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आनन्दसे परिपूर्ण जो आत्मस्वभाव है वही तेरी वस्तु है। उस आत्मस्वभावका अंतरमें श्रद्धा, ज्ञान और स्वानुभव भावसे अवलम्बन लेने पर अशुभ तथा शुभ विभावका त्याग होनेसे उस विभावके निमित्तभूत परपदार्थका सम्बन्ध छूट जाना उसे व्यवहारसे परवस्तुका त्याग कहा जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरेरे ! दुनिया कहाँ पड़ी है! वह तो धर्मके बहाने भी पापका—मिथ्यात्वका सेवन करती है। यहाँ बेन कहती हैं कि—एक आत्मामें रहना ही हितकारी, कल्याणकारी तथा सर्वस्व है। एक आत्माके सिवा अन्य सर्व कार्योंमें—दो घन्टे उपदेश देना, संस्थाका ध्यान रखना, गादी पर बैठकर व्यापार करना, पुत्र–पुत्री युवा हो गये हों तो उनके विवाहादि करना आदि कार्योंमें—लगे रहना वह आत्माका स्वभाव नहीं है; एक ज्ञायक प्रभुमें दृष्टि देकर उसीमें रह जाना ही करने योग्य है। व्यवहारके रसिकजनोंको यह अंतरसन्मुख होनेकी बात कठिन लगती है। भाई! उसका अभ्यास नहीं होनेसे कठिन लगती है; वैसे तो अंतरकी वस्तु—अपनी वस्तु—होनेसे सरल है। अंतरमें जो है उसकी प्राप्ति—प्राप्तकी प्राप्ति करना है, वह कठिन कैसे होगी? पर और राग जोकि आत्माके स्वभावमें नहीं हैं उन्हें यदि अपना बनाना हो तो वह नहीं हो सकेंगे। परन्तु आनन्दकन्द भगवान आत्मा जो अंतरमें सदा प्राप्त है—जागृत जीव सदा विद्यमान है—उसे दृष्टिमें प्राप्त करना वह तो सरल है, अपने हाथकी बात है। भाई! यह तो भीतरकी वस्तु है; यह कोई पण्डिताईकी वस्तु नहीं है जो बाहरसे मिल जायगी।

ज्ञान एवं आनन्दरूप भगवान ज्ञायक आत्मामें रहना वही सर्वस्व है, वही कल्याणकारी तथा हितरूप है। अहा! बेनकी भाषा तो सादी है, परन्तु भाव अत्यन्त गहरे हैं। वस्तुस्थिति यही है।

*

वचनामृत–२६०

शुद्धात्माको जाने बिना भले ही क्रियाके ढेर लगा दे, परन्तु उससे आत्मा नहीं जाना जा सकता; ज्ञानसे ही आत्मा जाना जा सकता है। २६०.

देहादि तथा रागादिसे भिन्न आनंदनिधान शुद्ध चैतन्यघन निज भगवान आत्माको पहिचाने बिना भले ही दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत, उपवासादि क्रियाओंके ढेर लगा दे, परन्तु उससे कहीं आत्मा प्राप्त नहीं होता।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि—स्वामीजी पहले स्थानकवासी सम्प्रदायमें थे। स्थानकवासीमें मूर्तिकी मान्यता नहीं है; वहाँके संस्कार रह जानेसे उनके उपदेशमें आता है कि मन्दिर बनवानेमें, भगवानकी मूर्तिके दर्शन करनेमें, लाखों रुपये खर्च करके तीर्थयात्राका संघ निकालनेमें धर्म नहीं है। भाई! यह सब तो अंतरमें कषाय मन्द हुआ हो तो शुभराग है, धर्म नहीं है। अरे! मूर्ति तो ठीक, परन्तु त्रिलोकीनाथ श्री तीर्थंकर भगवानके साक्षात्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दर्शन करनेका भाव भी शुभराग है, धर्म नहीं है; क्योंकि वह परकी ओरके लक्षवाला बहिर्मुखभाव है। अंतरोन्मुखतापूर्वक चैतन्य ज्ञायक प्रभुके आश्रयसे जो निर्मलभाव हो वह धर्म है।

अपने शुद्धात्माको जाने बिना भले ही छह–छह महिनेके उपवास करे, उपवासके पारणेमें रूक्ष आहार करे, परन्तु वह सब आत्महितके लिये निरर्थक है। आजकल तो सम्प्रदायमें लोगोंको क्रियाकाण्डमें लगा दिया है। सामायिक करो, प्रतिक्रमण और प्रोषध करो, सिद्धचक्र और कर्मदहन विधान कहो—इस प्रकार बाह्य क्रियाओंमें वर्तमानके उपदेशकोंने धर्म मनवा दिया है; किन्तु भाई! ऐसी क्रियाओंके लाखों ढेर लगा दे न! परंतु आत्माके भान बिना वह सब धूल–राख है।

प्रश्न:—आप जो उपदेश देते हैं वह तो धर्मका उपदेश है न?

उत्तर:—उपदेश तो भाषावर्गणारूप पुद्गलकी पर्याय है, उस ओरका विकल्प वह राग है, दुःख है। पुद्गलकी पर्यायसे अथवा रागसे आत्माका धर्म कैसे होगा?—नहीं हो सकता।

प्रश्न:—वह धर्मका साधन तो है न?

उत्तर:—कदापि नहीं। श्री प्रवचनसारकी टीकाके अन्तमें श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने कहा है न! कि—वास्तवमें पुद्गल ही स्वयं शब्दरूपसे परिणमते हैं, आत्मा उनको परिणमित नहीं कर सकता, तथा वास्तवमें सर्व पदार्थ ही स्वयं ज्ञेयरूपसे–प्रमेयरूपसे परिणमते हैं, शब्द उन्हें ज्ञेय नहीं बना सकते—समझा नहीं सकते इसलिये 'आत्मासहित विश्व वह व्याख्येय (समाझाने योग्य) है, वाणीका गुंथन वह व्याख्या (समझावट) है और अमृतचन्द्रसूरि वे व्याख्याता हैं'—इसप्रकार मोहसे जनो न नाचो (–न फूलो)। जहाँ भाषा स्वयं व्याख्यानरूप परिणमती है वहाँ कर्ता आत्मा कैसे हो सकेगा? नहीं हो सकता।

वकील अदालतमें बहस करे और न्यायाधीश उसका फैसला सुनाये—यह सब वाणी जड़ है। वह वाणी आत्मासे नहीं हुई है और उस समय उस प्रकारका जो राग आया वह भी आत्माकी वस्तु नहीं है। उससे आत्मा नहीं जाना जा सकता। निज शुद्धात्माको जाने बिना भले ही लाख–करोड़ उपवास करे, शत्रुंजय पर्वतकी निन्यानवे यात्राएँ करे, परन्तु उससे आत्माका ज्ञान नहीं हो सकता। यात्रा कहा किसे जाय? वास्तवमें तो अंतरमें जो तीन लोकका नाथ आनन्दकन्द ज्ञायक प्रभु भगवान आत्मा है उसका आश्रय लेकर स्वरूपमें स्थिर होनेका नाम यात्रा है, तीर्थकी यात्राके भाव अशुभसे बचनेके लिये आते हैं परन्तु वे शुभ भाव हैं। उनसे धर्म नहीं होता।

आत्माकी प्रतीतिके बिना क्रियाकाण्डसे नहीं किन्तु स्वसन्मुख ज्ञानसे ही आत्माको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाना जा सकता है। अंतरमें चैतन्य विज्ञानघन प्रभु विद्यमान है वहाँ वर्तमान पर्यायको मोड़नेसे—ज्ञानकी परिणतिको स्वोन्मुख करनेसे—आत्मा जाना जा सकता है। अन्य किसी प्रकार वह नहीं जाना जा सकता। वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकीनाथकी यह आज्ञा है कि—बाह्यमें लाखों क्रियाकाण्ड करे तथापि उससे आत्माका ज्ञान नहीं होता। अन्तर्मुख होना ही एकमात्र ज्ञान होनेका उपाय है, अन्य कोई उपाय नहीं है।

गुरुदेवने सबको द्रव्यदृष्टिका—शुद्धात्मद्रव्यकी ओर उन्मुख होनेका उपदेश दिया है। तू भी इस ओर झुक जा; निधान तेरे पास ही है, कहीं ढूँढ़ने जाना पड़े ऐसा नहीं है। —*बहिनश्री चम्पाबेन.*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–६६

दिनांक २४-६-७८

वचनामृत–२६१

दृष्टि पूर्ण आत्मा पर रखकर तू आगे बढ़ तो सिद्ध भगवान जैसी दशा हो जायगी। यदि स्वभावमें अधूरापन मानेगा तो पूर्णताको कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा। इसलिये तू अधूरा नहीं, पूर्ण है—ऐसा मान। २६१.

'दृष्टि पूर्ण आत्मा पर रखकर तू आगे बढ़ तो सिद्ध भगवान जैसी दशा हो जायगी।'

विषय कुछ सूक्ष्म है। सर्वप्रथम ज्ञान–आनन्दादि अनंत शक्तियोंसे सदा परिपूर्ण ऐसे निज चैतन्यद्रव्यसामान्य पर दृष्टि देनेसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है और उसमें सिद्ध भगवानकी जातिके अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आता है। इसलिये त्रैकालिक ध्रुव पूर्ण चैतन्यतत्त्वको दृष्टिमें लेकर आगे बढ़ो, जिससे स्वरूप रमणता बढ़ने पर पूर्ण परमात्म दशा प्रगट होगी।

दृष्टि स्वयं पर्याय है; परन्तु उस पर्यायको पूर्ण ध्रुव स्वभाव पर रख भाई! तुझे आत्माका कल्याण करना हो, जन्म–मरणके दुःखोंका अन्त लाना हो तो शरीरादि बाह्य निमित्त और दया–दानके विकल्पोंसे अपनी दृष्टि हटाकर उसे त्रैकालिक पूर्ण चैतन्य भगवान पर केन्द्रित कर दे। वर्तमान पर्यायमें जो अपूर्णता दिखती है वह आत्माकी वस्तु नहीं है। दृष्टि अन्तर्मुख हुई और उसने पूर्ण स्वभावका स्वीकार किया तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट हुआ और अतीन्द्रिय आनन्दका किंचित् स्वाद आया। अब उसमें आगे बढ़ जिससे तेरी दशा सिद्ध भगवान समान पूर्ण हो जायगी।

अहा! यह बात लोगोंको कठिन लगती है, क्योंकि इसका अभ्यास नहीं है न! अरे, आठ–आठ वर्षके छोटे बालक भी इस प्रकार अन्तर्मुख दृष्टि करके आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं। तीनों काल आत्मज्ञान प्राप्त करनेकी विधि तो एक ही होती है न? यही यहाँ कहते हैं कि—पूर्ण परमात्मस्वरूप पर दृष्टि रखकर आगे बढ़, ध्रुव ज्ञायक द्रव्यस्वभावका विशेष बलपूर्वक आश्रय ले तो तेरी दशामें प्रथम तो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–स्थिरतारूप तथा

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्दके अंशरूप निर्मलता प्रगट हुई थी उसमें वृद्धि होकर पूर्णानन्दरूप परमात्मदशा हो जायगी, सिद्ध भगवान सदश दशा हो जायगी। प्रथम स्वभाव पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन, सत्यदर्शन हुआ—भगवान ज्ञायक जैसा है वैसा पर्यायमें साक्षात्कार हुआ; फिर स्वरूपमें विशेष बलपूर्वक एकाग्र होनेसे वर्तमान दशामें जो अशुद्धता–कचाश थी वह मिट गई;—इस प्रकार दृष्टि पूर्ण आत्मा पर रखकर आगे स्थिरता बढ़ानेसे सिद्ध भगवान जैसी पूर्ण निर्मल दशा हो गई। ऐसी बात है; आया कुछ समझमें?

'यदि स्वभावमें अधूरापन मानेगा तो पूर्णताको कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा।'

क्या कहते हैं? कि—भगवान आत्मा एक समयमें पूरण.....पूरण.....पूरण, पूर्णानन्दसे भरपूर वस्तु है। 'आपूर्णम्' समयसारके कलशमें आता है न? परिपूर्ण वस्तुको स्वीकार करनेवाली तो पर्याय है न? अरेरे! कितने ही एकान्त अभिप्रायवालोंको पर्यायके स्वरूपकी खबर नहीं है। 'आत्मा पूर्णस्वरूप है'—ऐसा निर्णय किसने किया? —पर्यायने। उस पर्यायके समीप ही पूर्णानन्द प्रभु विद्यमान है। उसपर दृष्टि देनेसे तथा स्थिरतामें आगे बढ़नेसे पूर्णानन्दमय सिद्ध दशा प्रगट होती है, कोई व्रत–तपादि करनेसे सिद्धदशा प्रगट नहीं होती। साधक जीवको जबतक पर्यायमें पूर्णता प्रगट नहीं हुई है तबतक बीचमें ऐसे शुभ भाव आते अवश्य हैं, परन्तु उसकी दृष्टि उनपर नहीं होती; दृष्टि तो सदा स्वभावपर होनेसे, स्वभावके विशेष बलमय आश्रयरूप स्थिरता बढ़ाकर, अपूर्णताको नष्ट करके, वह पूर्णानन्द दशाको प्राप्त हो जायगा। अहा! ऐसी बातें हैं, साधारण मनुष्योंको ऐसा लगेगा कि यह कैसा धर्म है? परन्तु भाई! वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है।

एक समयकी—वर्तमान—पर्यायके समीप भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूपमें विद्यमान है। यदि वह स्वभावसे परिपूर्ण न हो तो पर्यायमें पूर्णता आयगी कहाँसे? क्या बाहरसे आयगी? बात कुछ सूक्ष्म है; बहुत ध्यान रखकर पकड़े तो पकड़में आये ऐसी है। यदि तू अपने स्वभावमें अपूर्णता मानेगा तो तुझे पर्यायमें कभी पूर्णता प्रगट नहीं होगी। अपनी प्रभुताको अल्प एवं अपूर्ण मानेगा तो उसके आश्रयसे कभी पूर्णता प्राप्त नहीं होगी।

लैंडीपीपलमें चौंसठपुटी पूर्ण चरपराहट तथा रंगमें हरापन शक्तिरूपसे भरे हैं। लैंडीपीपलके दानेको यों ही सीधा खाया जाय तो उसमें साधारण चरपराहट और रंगमें कालापन दिखायी देता है; परन्तु उसमें चौंसठपुटी पूर्ण चरपराहटकी शक्ति तो सदा भरपूर है। जो चरपराहट प्रगट होती है वह कहाँसे आती है? क्या खरलमें घोटनेसे आती है? भीतर उसके स्वभावमें जो शक्ति विद्यमान है उसमेंसे आती है। यह उदाहरण तो समझमें आये ऐसा है। यहाँ तो ऐसा कहना है कि यदि तू अपने ज्ञायकस्वभावमें न्यूनता—अपूर्णता मानेगा तो अपूर्णताके आश्रयसे कभी–किसी दिन पूर्णताको प्राप्त नहीं कर सकेगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह बात लोगोंको एकान्त निश्चय जैसी लगती है, क्योंकि इसमें व्यवहारसे—दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत एवं तपसे लाभ होना नहीं आता है न! भाई, वे सब व्यवहारके भाव तो शुभ राग हैं, आत्माका धर्म नहीं है। उनमें धर्म मानकर तू ठगा गया है। अरे! यह महँगा मनुष्यभव चला जायगा, सत्य समझनेका अवसर प्राप्त हुआ है और अभी नहीं समझा तो कब समझेगा? क्रियाकाण्डके विकल्प तो क्लेश हैं, दुःख हैं, दुःखके आश्रयसे कहीं आनन्दमूर्ति आत्मा दृष्टिमें आयगा?

जिस प्रकार कोठीमें भरे हुए गेहूँ उससे भिन्न हैं उसी प्रकार आत्मामें भरे हुए गुण उससे भिन्न नहीं हैं। आत्मा तो ज्ञान–आनन्दादि अनन्त गुणोंसे भरपूर अभिन्न पदार्थ है, उसमें यदि अपूर्णता मानेगा तो तेरी दृष्टिमें पूर्णस्वभावकी स्वीकृति नहीं आयगी। पर्यायमें अपूर्णता है इसलिये वस्तुस्वभाव भी अपूर्ण–अधूरा है ऐसा यदि मानेगा तो तेरी दृष्टिमें मिथ्यात्व होगा, तुझे शुद्धता प्रगट नहीं होगी। प्रभु! तू स्वभावसे परिपूर्ण है, अपूर्ण नहीं है। बेनने (३८०वें बोलमें) कहा है न! कि—'जिस प्रकार सुवर्णको जंग नहीं लगती, अग्निको दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार ज्ञायक स्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती। तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नोंकी चमक प्रगट होगी।' अहा, ऐसी है वस्तु! कितनी सरस बात है!

आकाशका क्षेत्र अनन्त है। चौदह ब्रह्माण्डके पश्चात् फिर अकेला आकाश है। है कहीं उसका अन्त? है कहीं उसका छोर? छोर है तो उसके पश्चात् फिर क्या हैं? अरे, कोई नास्तिक विचार करे तो उसे भी स्वीकारना पड़ेगा कि दसों दिशाओंमें आकाशका कहीं अन्त नहीं है। उस अमाप अनन्त आकाशके प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्तगुने आत्मामें गुण हैं। यह कहकर क्या कहना है? आत्मामें जो अनन्तानन्त गुण हैं उसमें 'यह गुण अन्तिम' ऐसा नहीं है। अहाहा! अमापका माप करनेवाली पर्यायमें ज्ञात सब कुछ होता है तथापि आत्माके ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि अनन्तगुणोंमें 'यह गुण अन्तिम' ऐसा नहीं है। ऐसे अनन्त गुणोंसे भरपूर आत्माके—ध्रुवस्वभावके—तलमें उतर, पातालमें जा तो तू पूर्णताको प्राप्त कर सकेगा।

'इसलिये तू अधूरा नहीं, पूर्ण है—ऐसा मान।'

इसलिये 'मैं सदा परिपूर्ण हूँ' ऐसी स्वभावकी दृष्टि करके मान। अपूर्णता तेरा स्वभाव नहीं है। वस्तु स्वभावसे परिपूर्ण होने पर भी यदि उसमें अपूर्णता मानेगा तो तेरी दृष्टि मिथ्या होगी, विपरीत होगी। आत्मा जैसा त्रैकालिक परिपूर्ण है वैसा मानना, प्रतीतिमें लेना सो सम्यग्दर्शन है। इसलिये आत्महित करना हो, मोक्षमार्ग पर पहुँचना हो तो 'मैं स्वभावसे वर्तमानमें ही परिपूर्ण हूँ, अपूर्ण नहीं हूँ'—ऐसा मान। आया कुछ समझमें? मार्ग बड़ा अलौकिक है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–२६२

द्रव्य सूक्ष्म है; इसलिये उपयोगको सूक्ष्म कर तो सूक्ष्म द्रव्य पकड़में आयगा। सूक्ष्म द्रव्यको पकड़कर आरामसे आत्मामें बैठना वह विश्राम है।२६२.

'द्रव्य सूक्ष्म है; इसलिये उपयोगको सूक्ष्म कर तो सूक्ष्म द्रव्य पकड़में आयगा।'

जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्मका बंध हो वह भाव भी स्थूल है, भगवान ज्ञायक आत्मा उससे पार होनेके कारण सूक्ष्म है। ज्ञानको अन्तर्मुख करनेसे आत्मद्रव्य पकड़में आता है। आत्मासे च्युत होकर बहिर्मुख वर्तता ज्ञान भी सब स्थूल है। आत्मद्रव्य सूक्ष्म है, वह उपयोगको सूक्ष्म करनेसे अर्थात् ज्ञानको अन्तर्मुख करनेसे पकड़में आयगा। यहाँ द्रव्यका अर्थ पदार्थ, वस्तु समझना, पैसा–लक्ष्मी नहीं। पैसा तो जड़–धूल है और यह आत्मद्रव्य तो ज्ञानादि अनन्तानन्त गुणोंका सागर पूर्णानन्द भगवान है। प्रभु! तुझे उसकी महिमा और विश्वास नहीं है इसलिये बाह्य प्रवृत्ति और क्रियाकाण्डसे निवृत्ति नहीं मिलती। कभी व्यापार–धन्धेसे थोड़ी निवृत्ति मिले, उपदेश सुनने जाय, तो वहाँ उपदेशक उसे क्रियाकाण्डमें—व्रत, तप, पूजा, भक्ति तथा यात्रादिमें—लगा देते हैं; किन्तु भाई! वह सब तो, यदि अंतरमें कषायमन्द किया हो तो, शुभराग है; उसमें धर्म कहाँ आया? धर्म तो अंतरमें सर्वप्रकारके रागरहित जो सूक्ष्म द्रव्यस्वभाव है उसे समझकर श्रद्धा, ज्ञान एवं अनुभव करनेसे होता है।

अहा! द्रव्य किसे कहते हैं?–कि जिसमें राग तो नहीं है परन्तु अपूर्णता भी नहीं है। पर्यायमें अपूर्णता है, द्रव्यस्वभाव तो निज गुणसमृद्धिसे सदा भरपूर है। द्रव्यमें अशुद्धता और अपूर्णता किस प्रकार होगी?—यदि हो तो वह द्रव्य ही कैसे कहा जायगा? वह तो पवित्रता तथा परिपूर्ण गुणोंकी गाँठ है, एक बार रागकी एकता तोड़—दया, दानादि शुभ रागसे और गुण-गुणीके विकल्पसे लाभ होगा, ऐसे रागके साथ एकताके ताले लगा रखे हैं उन्हें तोड़—तो गुणोंकी गाँठ, अंतर चैतन्यका अद्भुत भण्डार खुल जायगा।

अहाहा! अंतरमें रागसे भिन्न, पर्यायसे भी भिन्न, अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण होने पर भी सूक्ष्म—ऐसी निज ज्ञायक वस्तुको एकबार उपयोगको सूक्ष्म करके लक्षमें तो ले, तो तुझे वह ज्ञायक प्रभु अनुभवमें आयगा। वह ज्ञायक द्रव्य सूक्ष्म है, इसलिये किसी विकल्पसे, दया–दानादि रागकी मन्दतासे, देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धासे, पंचमहाव्रतके शुभ आचरणसे पकड़में नहीं आता, क्योंकि वे समस्त भाव शुभ राग हैं, अत्यन्त स्थूल हैं, उनसे रागरहित अत्यन्त सूक्ष्म आत्मद्रव्य कैसे पकड़में आयगा?

अरेरे! कितनोंको तो 'द्रव्य'के अर्थकी भी खबर नहीं होती। यहाँ स्वाध्यायमन्दिरमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दीवार पर 'द्रव्य दृष्टि सो सम्यग्दृष्टि'—ऐसा संक्षिप्त वाक्य लिखा है; उसे पढ़कर वर्षों पहले एक भाईने पूछा था कि—साहब! यह 'द्रव्यदृष्टि अर्थात् पैसेकी दृष्टि? क्या पैसेकी दृष्टिवाले सब सम्यग्दृष्टि होंगे?' भाई! यहाँ 'द्रव्य'का अर्थ पैसा–लक्ष्मी नहीं है, द्रव्य अर्थात् चैतन्य चमत्कारसे परिपूर्ण त्रैकालिक सच्चिदानन्दमय निज ज्ञायक आत्मा है। वह अत्यन्त सूक्ष्म है, इन्द्रियोंसे, रागसे या गुण-गुणीके भेदरूप विकल्पसे भी वह जाननेमें आये ऐसा नहीं है। वर्तमान ज्ञानमें परिणामको सूक्ष्म कर, यह जो स्थूल पर लक्ष जाता है उसे अन्तर्मुख करके सूक्ष्म बना दे तो सूक्ष्म भगवान आत्मा पकड़में—ज्ञानमें तथा अनुभवमें—आयगा।

जैसे छोटे–बारीक मोती सांडसी द्वारा पकड़में नहीं आते, उनके लिये छोटी चिमटी चाहिये, वैसे ही भगवान आत्मा सूक्ष्म है, उसे पकड़नेके लिये सूक्ष्म बुद्धि होना चाहिये। अरे! परलक्षी शास्त्रज्ञान भी स्थूल है, उसके द्वारा भी आत्मा यथार्थ पकड़में—अनुभवमें नहीं आयगा। अहा! भवका अभाव करनेकी पद्धति यह है, शेष सब कोरी बातें हैं। चौरासीके अवतार अनन्तबार किये, उनमें अनन्तबार महाव्रत धारण किये, अनन्तबार भगवानके क्षेत्रोंकी यात्राएँ कीं, परन्तु वह कोई विशेष कार्य नहीं है, उस शुभरागसे किंचित् आत्मकल्याण नहीं होता। अंतरमें पूर्णानन्द प्रभु विराजमान है उस वर्तमान ज्ञानकी पर्यायमें धीरेसे, उपयोगको सूक्ष्म करके लक्षगत बनाये तो वह पकड़में आता है। तीनलोकके नाथ श्री तीर्थंकर भगवानका यह आदेश है।

अनन्त शक्तियोंका सागर ज्ञायक वस्तु सूक्ष्म है; वह निमित्तसे तथा रागसे तो नहीं किन्तु स्थूल ज्ञानसे—शास्त्रज्ञानसे भी पकड़में नहीं आयगी, क्योंकि वह परलक्षी ज्ञान है। अंतरमें सूक्ष्म ज्ञानके उपयोगसे ही सूक्ष्म द्रव्य पकड़में आता है। अरूपी आनन्दकन्द प्रभुको पकड़नेके लिये ज्ञानकी वर्तमान पर्यायको सूक्ष्म—स्थिर करना पड़ेगी।

उसका उपाय? सूक्ष्म उपयोग करना, अर्थात् पूर्णानन्द प्रभुका आश्रय—अवलम्बन लेनेवाली जो पर्याय है उसके द्वारा सूक्ष्म द्रव्य पकड़में आता है। सूक्ष्म बात है भाई! यह तो जन्ममरणके अन्तकी बातें हैं। सर्वज्ञ भगवानने आत्माको जिस द्रव्यके रूपमें देखा और पर्यायमें प्रगट किया वह सूक्ष्म है। अंतरमें उतरकर परिणामको अतिसूक्ष्म करे तब वह पकड़में आयगा। अहा! चैतन्यचमत्कारसे भरपूर इस आत्मवस्तुका जीवने कभी विश्वास नहीं किया है। 'विश्वाससे जहाज तिरते हैं'—ऐसा कहा जाता है न?–ऐसे ही सूक्ष्म उपयोग करके अंतरमें इस पूर्णानन्दके नाथका विश्वास करनेसे मोक्षमार्ग प्रारम्भ होता है। सूक्ष्म उपयोगसे द्रव्य पकड़में आया, तथापि जबतक पर्यायमें पूर्णता न हो तबतक आनन्द और दुःख दोनों मिश्र हैं। इसलिये कहते हैं कि—पूर्णके ऊपर लक्ष करके वहीं स्थिर हो जा।

कोई ऐसा कहे कि—सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ, इसलिये अब ज्ञानीको दुःख है ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं; तो वे तत्त्वको—साधकभावको, साध्यको अथवा द्रव्यको—समझते ही नहीं हैं। यहाँ तो यही कहा है न! कि—दृष्टिको द्रव्य पर रखकर आगे बढ़ो। यदि पर्यायमें अपूर्णता न हो तो आगे बढ़नेको क्यों कहेंगे? अहा! ध्रुवके ध्येयसे कभी च्युत नहीं होना; उस ध्रुव पर दृष्टि स्थापित करोगे तो पर्यायमें पूर्ण आनन्द प्रगट होगा, तेरी पर्याय अपूर्ण नहीं रह सकेगी। आया कुछ समझमें? उपयोगको सूक्ष्म करोगे तो सूक्ष्म द्रव्य पकड़में आयगा।

'सूक्ष्म द्रव्यको पकड़कर आरामसे आत्मामें बैठना वह विश्राम है।'

ज्ञानकी वर्तमान पर्यायको सूक्ष्म करके द्रव्यको अंतरमें ग्रहण कर और वहाँ आरामसे बैठ। जैसे किसी मनुष्यको थकान लगने पर वह पलंग बिछाकर बैठता है—आराम करता है। भगवान आत्मामें जहाँ दृष्टि लगी वहाँ पर्यायमें आनन्द आया, वहीं उसे विश्राम मिल गया, चारों गतिके दुःख चले गये। परन्तु जिसे अन्तर्मुख दृष्टि नहीं है उसे उसके विश्वास बिना धर्मकी दशा प्रगट नहीं होती। सूक्ष्म द्रव्यस्वभावको पकड़कर आत्मामें आरामसे बैठना वह विश्राम है। शुभरागमें या पर्यायमें बैठना वह विश्राम नहीं है। भाई! उपयोगको निमित्तमें तथा दुःख—रागमें तो नहीं किन्तु एक समयकी पर्यायमें भी स्थिर न होने दे, उसे अपने त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक द्रव्यस्वभावमें ले जा।

भीतर जो चैतन्यमहल है वही सच्चा विश्रामगृह है। पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप उस महलमें आरामसे रहकर विश्राम कर; पर्यायमें रहना छोड़ दे और द्रव्यस्वभावमें आसन लगा दे। अतीन्द्रिय ज्ञायक प्रभुको पहिचानकर उसमें शान्तिपूर्वक रहना वही सच्चा विश्राम है।

*

वचनामृत—२६३

साधना करनेवालेको कोई स्पृहा नहीं होती। मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिये, एक आत्मा ही चाहिये। इसी क्षण वीतरागता होती हो तो दूसरा कुछ नहीं चाहिये; परन्तु अंतरमें नहीं रहा जाता, इसलिये बाहर आना पड़ता है। अभी केवलज्ञान होता हो तो बाहर ही न आयें। २६३.

'साधना करनेवालेको कोई स्पृहा नहीं होती।'

अंतरमें ज्ञायकप्रभुकी साधना करनेवालेको कोई बाहरी स्पृहा नहीं होती। दुनिया मुझे माने, भक्त मेरी पूजा करें, लोग मुझे विशेष व्यक्तियोंमें गिने ऐसी कोई स्पृहा साधकको नहीं होती। पूर्णानन्द भगवान आत्माकी दृष्टि करके जो अंतर्मुख आत्मानन्दसे सन्तुष्ट हैं, तृप्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं, उन्हें अपने सिवा किसी अन्य वस्तुकी इच्छा कैसी? समयसारमें तो इच्छा–तृष्णा–स्पृहाको अज्ञानमय भाव कहा है।

दुनिया मुझे ज्ञानी कहे—माने, लोग मुझसे सन्तुष्ट हों और मेरे ज्ञानकी प्रसंशा करें ऐसी भावना ज्ञानीको कदापि नहीं होती; अपने विषयमें कोई कुछ अच्छा बोले या न बोले उसकी साधकको परवाह नहीं होती; वह तो केवल आत्मसाधनाकी अभिवृद्धिमें ही तत्पर होता है, उसे पूर्ण परमात्मपद साधनेकी ही लगन होती है; आत्माके सिवा अन्य किसी प्रकारकी स्पृहा उसे नहीं होती। अरेरे! यह बात कहीं सुननेको नहीं मिलती। जैन नामधारी सम्प्रदायोंमें तो इस बातकी गंध भी नहीं है, वहाँ तो गृहीत मिथ्यात्वका पोषण है; जैनका नाम होने पर भी वास्तवमें वह जैन हैं ही नहीं, उन्होंने वीतराग जैनमार्गकी सच्ची पद्धति तोड़ डाली है। सच्चे जैनको—साधना करनेवालेको आत्माके सिवा किसीकी स्पृहा नहीं होती।

'मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिये, एक आत्मा ही चाहिये।'

मुझे तो आनन्दका नाथ मेरा आत्मा ही चाहिये, मुझे तो अपना भगवान ही चाहिये। कौन-सा भगवान? भीतर विराजमान अपना ज्ञायक भगवान। अरिहंतादि अन्य भगवानोंसे भेंट करनेका भाव वह सब राग है। अहा! त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञदेव जिनेश्वर परमात्मा दिव्यध्वनि द्वारा तो कह रहे हैं वही यह बात है। साधकको एक निज आत्मा ही लेना है और कुछ नहीं चाहिये, अरे! ज्ञानके परलक्षी विशेष क्षयोपशमकी भी आवश्यकता नहीं है। प्रवचनसारमें कहा हैं न!–'केवलीमें और श्रुतकेवलीमें स्वरूपस्थिरताके तारतम्यरूप भेद ही मुख्य है; अधिक–अल्प पदार्थ जाननेरूप भेद अत्यन्त गौण है। इसलिये अधिक जाननेकी इच्छारूप क्षोभ छोड़कर स्वरूपमें ही निश्चल रहना योग्य है। यही केवलज्ञान प्राप्तिका उपाय है।' एक पूर्णानन्द प्रभु ही मुझे चाहिये और अन्य कुछ नहीं चाहिये—ऐसी साधक जीवको भावना होती है। इसमें अनेकान्त आ गंया। इसके सिवा दूसरा कुछ माने उसमें गड़बड़ है।

'इस क्षण वीतरागता होती हो तो दूसरा कुछ नहीं चाहिये; परन्तु अंतरमें नहीं रहा जाता, इसलिये बाहर आना पड़ता है।'

इसी पल यदि पूर्ण वीतरागता प्रगटती हो तो, यह थोड़े शास्त्र पढ़ लूँ, भक्ति–बक्ति कर लूँ आदि कुछ भी नहीं चाहिये। किन्तु भीतर पूर्णानन्दनाथमें स्थिर नहीं रह सकता, इसलिये वृत्ति बाहर आ जाती है। साधक जीवको स्वरूपकी दृष्टि हुई है और स्वरूपरमणता भी प्रगटी है, तथापि अशक्तिके कारण अंतरमें विशेष नहीं रह सकते। ज्ञानीको भी भक्तिका, शास्त्र-श्रवण तथा पठनका राग आता है; उसे बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परन्तु अंतरमें अधिक नहीं रह सकते इसलिये बाहर आना पड़ता है। अंतरमें पूर्णरूपसे स्थिरता नहीं हो पाती इसलिये बाहर आना पड़ता है, परन्तु वह दुःख है। ज्ञानीको अंतरमें ज्ञानधारा एवं आनन्दधारा प्रगट हुई है परन्तु उसमें पूर्णतः नहीं रहा जा सकता इसलिये श्रवणका, कथनका आदि भाव आते हैं। वे भाव राग हैं, कर्मधारा है। उसे कर्मधारामें आना रुचता नहीं है परन्तु पुरुषार्थकी मन्दता होनेसे बाहर आना पड़ता है।

'अभी केवलज्ञान होता हो तो बाहर ही न आयें।'

यदि इसी समय केवलज्ञान हो जाता हो तो कभी बाहर न आयें। ज्ञानीको ऐसा नहीं लगता कि विशेष जानकारी हो जाय तो लोगोंको समझानेमें सरलता रहे; उसे तो निरन्तर यही भावना होती है कि अभी अंतर-स्थिरता होती हो तो एक क्षण भी बाहर न आयें। बेनके (४०१वें) बोलमें आता है न!–ज्ञानी निज स्वरूपमें परिपूर्णरूपसे स्थिर हो जानेको तरसते हैं। उन्हें जब जब विकल्प उठता है तब अंतरमें ऐसा लगता है कि 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? इन दया, दान, पूजा, भक्ति आदिके परभावोंमें हमें अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्दादि अनन्तगुणरूप हमारा परिवार रहता है वह हमारा स्वदेश है। साधक जीवको इसी क्षण स्वदेशमें निवास होता हो—वीतरागता एवं केवलज्ञान होता हो—तो वह कभी बाहर ही न आये।

भाई! दुनियाको थोड़ा समझाकर उसका उपकार करूँ यह भी विकल्प है और बन्धका कारण है। दूसरोंको समझानेमें अपना ज्ञान बढ़ता है न?–ऐसे ज्ञानकी भी साधकको आवश्यकता नहीं है। उसे तो एक ही लगन है कि स्वभावका आश्रय करके उसमें इसी समय पूर्णरूपसे समा जाता हो, वीतरागता और केवलज्ञान होता हो तो कभी बाहर ही न आयें।

*

मुक्तिका मार्ग अंतरमें है, बाह्यमें नहीं है। इस विषमकालमें मार्गदर्शक एक गुरुदेव ही थे। गुरुदेवका ऐसे कालमें जन्म हुआ तो कितनोंको रुचि उत्पन्न हुई। मार्गका किसीको पता नहीं था, अभ्यन्तरका मार्ग गुरुदेवने बतलाया है।

—बहिनश्री चम्पाबेन.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१००

दिनांक २५-६-७८

वचनामृत–२६४

तेरे चित्तमें जबतक दूसरा रंग चढ़ा है, तबतक आत्माका रंग नहीं चढ़ सकता। बाहरका सारा रस छूट जाय तो आत्मा–ज्ञायकदेव प्रगट होता है। जिसे गुणरत्नोंसे गुँथा हुआ आत्मा मिल जाय, उसे इन तुच्छ विभावोंसे क्या प्रयोजन? २६४.

'तेरे चित्तमें जबतक दूसरा रंग चढ़ा है, तबतक आत्माका रंग नहीं चढ़ सकता।'

क्या कहते हैं? कि–जिसके चित्तमें दूसरा रंग चढ़ा हो अर्थात् दूसरा प्रेम हो—किसी संयोगी वस्तुका प्रेम हो, रागका प्रेम हो और बहिर्लक्षी शास्त्रज्ञान हुआ उसका प्रेम हो—उसे अपने स्वभावका प्रेम नहीं आ सकता? चित्तमें जबतक रागका—दया, दान, व्रत, तपादि विकल्पोंका—रंग चढ़ा हो अर्थात् प्रेम लगा हो तबतक आत्माका प्रेम नहीं हो सकता। एक म्यानमें दो तलवारें नहीं रह सकतीं। निमित्तका प्रेम रहे, रागका प्रेम रहे और एक समयकी पर्यायमें ज्ञानका परलक्षी विकास हुआ उसका प्रेम रहे तो अपना आत्मा जाननेमें नहीं आता। ऐसी बात है भाई! आया कुछ समझमें?

'बाहरका सारा रस छूट जाय तो आत्मा–ज्ञायकदेव प्रगट होता है।'

निमित्तका रस छूट जाय, रागका रस छूट जाय, अपनी पर्यायमें–भावेन्द्रियमें जो विकास है उसका रंग–प्रेम छूट जाय तो आत्मा–ज्ञायकदेव प्रगट होता है। बाहरकी कोई भी वस्तु आश्चर्यकारी लगे तबतक अपने स्वभावका आश्चर्य नहीं आ सकता—आत्माका रंग नहीं चढ़ सकता। अहा! भगवान आत्मा तो चैतन्यस्वरूप ज्ञायकस्वभावका पिण्ड है, प्रभु! परका रंग सब छूट जाय तो, अपना रंग चढ़ जाय ऐसी बात है।

प्रश्न:—आत्माका रंग कैसा? विकल्प जैसा?

उत्तर:—रंग अर्थात् रस। आत्माका रंग अर्थात् आत्माका प्रेम। मेरा नाथ

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परमानन्दमूर्ति प्रभु, उसका जिसे प्रेम हो जाता है उसे परका समस्त प्रेम छूट जाता है। अरेरे! जीव कहींका कहीं अटकता है—या तो स्त्रीका प्रेम, या तो बच्चोंका प्रेम, प्रतिष्ठाका प्रेम, लक्ष्मीका प्रेम, शुभभाव—राग होता है उसका प्रेम।

प्रश्न:—चक्रवर्तीको भी तो सबका प्रेम होता है?

उत्तर:—एक भी प्रेम नहीं है; सम्यक्त्वी हैं, छह खण्डके अधिपति हैं। निहालभाईने 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश'में लिखा है कि—चक्रवर्ती–तीर्थंकर छह खण्डको नहीं साधते, वे तो अखण्डकी साधना करते हैं।

प्रश्न:—व्यवहारसे तो साधते हैं?

उत्तर:—बिलकुल नहीं साधते। विकल्प आते हैं उनके भी ज्ञाता रहते हैं। राग होता है, छह खण्डके राज्यमें–व्यवस्थामें–खड़े रहना पड़ता है। बेनके (२५९वें) बोलमें आता है कि—'किसी प्रकारकी प्रवृत्तिमें खड़ा रहना वह आत्माका स्वभाव नहीं है। एक आत्मामें ही रहना वह हितकारी, कल्याणकारी और सर्वस्व है।' बाह्यमें कहीं खड़े नहीं रहना। राग आता है परन्तु वहाँ, मैं अपनी—चक्रवर्तीकी सम्पदाकी व्यवस्था करता हूँ, इसप्रकार खड़े नहीं रहते।

श्रीमद् राजचन्द्र भी कहते हैं—

सर्व भावसे उदासीनवृत्ति करी।
देह प्रति किंचित् मूर्छा नहीं होय जो;

प्रश्न:—सर्व भावोंमें शुद्धभाव भी आ गया न?

उत्तर:—शुद्ध नहीं, राग। रागादि सर्व भावोंसे उदासीन हो तब तो शुद्ध भाव प्रगट होता है। धर्मीको भी राग आता है किन्तु रागमें सुखबुद्धि नहीं है। छह खण्डका राज्य, एक हजार देव जिसकी सेवा करते हैं ऐसी पटरानी सहित छ्यानवे हजार रानियाँ हैं परन्तु उनमें किंचित् मात्र सुखबुद्धि नहीं है।

प्रश्न:—नये–नये विवाह भी तो करते हैं, उनका क्या?

उत्तर:—कौन करता है? चक्रवर्तीको—धर्मीको राग आता है परन्तु अभिप्रायमें राग है वह विष है, काला नाग है। अभी आसक्तिके कारण ज्ञानी किंचित् बाह्यमें खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्रायमें काले नाग जैसा लगता है। ज्ञानी विभावोंमें खड़े होने पर भी विभावसे भिन्न हैं, न्यारे हैं। विभावोंको तो काले नागकी भाँति छोड़ दिया है। ज्ञानीको राग आता है परन्तु वह दुःखरूप लगता है। मेरा प्रभु आनन्दस्वरूपमेंसे बाहर निकल गया;—दृष्टिसे नहीं, दृष्टि तो वहीं (स्वरूपमें) लग रही है; उसमें मैं नहीं रह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सकता। अपनी अशक्तिसे शुभराग—भक्ति आदिका भाव—आया वह भी दुःख है। अहा! ऐसा है वीतराग मार्ग! बाह्यका समस्त रस छूट जाय तो भगवान आत्मा—ज्ञायकदेव प्रगट होता है।

'जिसे गुणरत्नोंसे गुथाँ हुआ आत्मा मिल जाय, उसे इन तुच्छ विभावोंसे क्या प्रयोजन?'

ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे अनन्त गुणोंसे गुँथा हुआ अभेद परमात्मस्वरूप आत्मा मिल जाय तो परका रस टूट जाय। अपना रस लग जाय तो तुझे भगवान मिल जायँ। अरे! शुभरागमें आना वह भी अपराध है। देव–शास्त्र–गुरुकी भक्तिका भाव भी शुभ राग है, दोष है, असमाधि है, अशान्ति है। परका रस छूट जाय तो भगवान आत्माके रसमें जागृतस्वरूप चैतन्यदेव प्रगट हो।

प्रश्नः—परका रस छूटे किस प्रकार?

उत्तरः—किया है वह छोड़ेगा। जिसने जोड़ा है वह तोड़ेगा। परका रस जिसने जोड़ा है वह जीव तोड़ेगा। परमें युक्त हुआ वह स्वयं अपनेसे हुआ है, उसे स्वयं तोड़कर भगवानके साथ सम्बन्ध जोड़ लेना। सम्यक्त्वी छह खण्डके राज्यमें खड़ा है, राग आता है उसका दुःख भी लगता है, उसमें उसे रस नहीं लगता—सुखबुद्धि नहीं है। उसमें रुचि, सुखबुद्धि नहीं होनेसे–परका रस छूट जानेसे भगवान प्रगट होता है। उसमें क्या प्रगट हुआ? क्या अनुभवमें आया? उसे गुणरत्नोंसे गुँथा हुआ आत्मा मिल गया। अहा! मार्ग बड़ा कठिन है! अनादिसे अभ्यास नहीं होनेके कारण जीव उल्टे रास्ते पर चढ़ गये हैं।

अहा! जिसे भगवान आत्मा मिल गया उसे इन तुच्छ विभावोंसे क्या प्रयोजन? भगवान आत्मा—अनन्त गुणोंसे गुँथा हुआ प्रभु, उसके रसमें भगवान मिल जायँ तो अन्य विभावोंसे उसे क्या प्रयोजन? शरीर आदि, लक्ष्मी आदि तथा रागादि—उसके साथ क्या प्रयोजन? वे तुच्छ विभाव हैं, अरे! चक्रवर्तीका राज्य हो या इन्द्रका इन्द्रासन हो—वह सब चैतन्यवैभवके सामने तुच्छ है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने समयसारकी पाँचवीं गाथामें कहा है कि—मैं निज वैभवसे कहूँगा। कौनसा वैभव? मैं आनन्दमूर्ति भगवान सच्चिदानंद प्रभु हूँ ऐसा मेरी दृष्टि तथा मेरे अनुभवमें आया, मेरी वीतरागी पर्याय उत्पन्न हुई,—वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—यही मेरा निज वैभव है। अहा! उस निज वैभवसे मैं कहूँगा, प्रभु! तू प्रमाण करना। अपने निज वैभवसे कहूँगा; भगवान कहते हैं इसलिये कहूँगा—ऐसा नहीं। श्वेताम्बरोंमें आचारांग आदि सूत्रोंमें आता है कि—भगवान ऐसा कहते थे.....ऐसा कहते थे। वह सब शैली

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अलग है और यह शैली अलग है। मेरा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दका कन्द, अतीन्द्रिय ज्ञानका पिण्ड, अतीन्द्रिय शान्तिका सागर, अनन्त गुणोंका भण्डार, अनन्त शान्तिका संग्रहालय, अनन्त स्वभावका समुद्र..... अहा! ऐसा जिसे अंतरमें प्राप्त हो गया उसे अन्य वैभवोंसे क्या प्रयोजन? वे करोड़ोंके बँगले आदि तेरा वैभव नहीं है। भीतर आत्माके अनन्त गुणोंका जो वैभव है उसके प्रेमके समक्ष पर–जड़ वैभवका क्या प्रयोजन है? अरे! तेरी पर्यायमें होनेवाले तुच्छ विभावोंसे भी तुझे क्या प्रयोजन है? .....उससे तुझे क्या लाभ है?

*

वचनामृत–२६५

आत्मा जाननेवाला है, सदा जागृतस्वरूप ही है। जागृतस्वरूप ऐसे आत्माको पहिचाने तो भी पर्यायमें भी जागृति प्रगट हो। आत्मा जागती ज्योति है, उसे जान। २६५.

'आत्मा जाननेवाला है, सदा जागृतस्वरूप ही है। ऐसे आत्माको पहिचाने तो पर्यायमें भी जागृति प्रगट हो।'

भगवान! तू जाननेवाला जागृतस्वरूप प्रभु है। आत्मा जाननेवाला सदा जागृतस्वरूप ही है, उसे कोई निद्रा या आवरण नहीं है। भीतर जागृतस्वरूप भगवान—जागती ज्योति चैतन्यप्रभु विराजता है। जागृतस्वरूप कहकर दो बातें कही हैं; (१) नित्य—त्रिकाल ज्ञायक स्वभाव जागृतस्वरूप ही है; (२) ऐसे आत्माको पहिचाने तो पर्यायमें भी जागृतस्वरूप प्रगट हो। रागादि तो अंधकार है, भले ही वह दया–दानका विकल्प हो। रागादि अपनेको नहीं जानते, परन्तु अन्यके द्वारा ज्ञात होने योग्य हैं इसलिये वे चैतन्यसे अन्य स्वभाववाले हैं, और भगवान आत्मा तो, उसे सदैव विज्ञानघनस्वभावपना होनेसे, स्वयं ही चेतक—ज्ञाता है (अपनेको तथा परको जानता है) इसलिये चैतन्यसे अन्य स्वभाववाला ही है। भगवान आत्मा तो चैतन्य-चैतन्य अर्थात् जाग्रतस्वरूप है उसे पर्यायमें पहिचान। अहा! बहुत कठिन कार्य है! रागस्वरूप अंधकारको छोड़ दे और जाग्रतस्वरूप भगवान आत्मा—जागता जीव खड़ा है—उसे पहिचान ले तो पर्यायमें भी जागृति प्रगट होगी। अहा! बेनके इन शब्दोंमें बहुत भाव भरे हैं। चैतन्यकी जाग्रतशक्तिसम्पन्न प्रभुको—जाग्रत भगवान आत्माको—पहिचान ले; अजाग्रत रागादिकी पहिचान छोड़ दे।

लोगोंको यह बात कठिन लगती है। आजकल सारी प्रथा ही बदल गई है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्मके नामसे वर्तमानमें भक्ति करो, पूजा करो, दान करो, दया पालो, मन्दिर बनवाओ, गजरथ चलाओ आदि बाहरकी बातें ही चलती हैं; भीतर जाग्रतस्वरूप आत्मा जागती ज्योति विद्यमान है उसे जाननेकी बात कोई समझता ही नहीं है। आत्मा जागती ज्योति—स्वयंज्योति सुखधाम, अतीन्द्रिय आनन्दकी खान है। श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं कि—

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम;
बीजुं कहीए केटलुं, कर विचार तो पाम।

—उस जाग्रत ज्योतिकी खानके क्षेत्रमें अतीन्द्रियआनन्दकी फसल पकती है, जिसमें रागकी फसल पके वह आत्मा नहीं है।

तीनलोकका नाथ–जाग्रतज्योति, झिलमिल ज्योति जलती है न भीतर। उसकी पहिचान कर न!

आत्मा पर पदार्थका कुछ कर ही नहीं सकता। यह मन्दिर आदि भवन बने हैं वे उनके अपने कारण बने हैं, उन्हें कारीगर बना ही नहीं सकते। परका कौन करेगा? अरे, आँखकी पलकें हिलानेकी क्रिया आत्मा तीनकाल त्रणलोकमें नहीं कर सकता। जड़की क्रिया जड़से होती है। यहाँ कहते हैं कि–शान्तिका सागर झिलमिल ज्योति प्रभु तू है; तेरी वस्तु ऐसी है उसे पहिचान न! शास्त्रोंको जान ऐसा नहीं कहा। अरे! अनंतकालका परिभ्रमण मिटानेका उपाय तो अंतरमें जाग्रतज्योतिको जानना–अनुभवना वह है प्रभु!

अनन्तगुणका नाथ भगवान आत्मा गुणभेदमें नहीं आता; पर्यायमें भी नहीं आता, तब रागमें और परमें कहाँसे आ सकेगा? भजनमें आता है कि—'तुझे पर्यायमें रुकने नहिं दूँ रे.....!' प्रभु! तुझे रागमें तो नहीं अटकने दूँगा, किन्तु पर्यायमें भी अब नहीं अटकने दूँगा। तेरी वस्तु भीतर–भगवान आनन्दका नाथ विराजता है वहाँ जा न! जाग्रतस्वरूपी, सर्वज्ञस्वरूपी आत्मा रागवाला अथवा अल्पज्ञतावाला नहीं है। 'ज्ञ' स्वभावी कहो, सर्वज्ञस्वभावी कहो, जाग्रतस्वरूप कहो अथवा चैतन्य—चेतनास्वभाव कहो—उसे पहिचान तो पर्यायमें भी जागृति प्रगट होगी। वह त्रिकाल जाग्रतस्वभाव, नित्यानन्द प्रभु, ध्रुवस्वरूप—उसकी पहिचान कर ली, तो तेरी पर्यायमें भी जाग्रतपना, ज्ञाताद्रष्टाकी पर्याय, आनन्दकी पर्याय प्रगट होगी।

सम्प्रदायमें कहते हैं कि सामायिक करो, प्रोषध करो, चउविहार करो, किन्तु भाई! वह तो क्रियाका राग है, वह तेरी वस्तु नहीं है; तेरी वस्तु तो भीतर जाग्रतस्वरूप है, अनंत-अनंत गुणोंका भण्डार भीतर भरा है वह है।

१८ से २० वर्षकी छोटी उम्रकी बात है। उन दिनों मुंबई माल लेने जाते थे। वहाँ केशरके गोदाममें केशरके डिब्बोंकी थप्पियाँ लगी हुई देखी थीं, वैसे ही यह जाग्रतस्वरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा अनन्त गुणोंका गोदाम है, अनन्त-अनन्त गुणोंकी थप्पियाँ पड़ी हैं भीतर, वहाँ दृष्टि डाल प्रभु! तो तेरी पर्यायमें भी जाग्रतदशा प्रगट होगी।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह जाग्रत दशा और भगवान आत्मा वह त्रैकालिक जाग्रतस्वरूप। प्रभु! तू तो सच्चिदानन्द है, आनन्दका सागर है। सत् अर्थात् शाश्वत, चिद अर्थात् ज्ञान; शाश्वत ज्ञान और आनन्दका गंज है प्रभु! उसे पहिचान, उसके सन्मुख हो और पर्याय तथा रागसे विमुख हो जा। स्वभाव जाग्रत है, आनन्द है, वैसे ही पर्यायमें भी तेरी जागृति—चैतन्य एवं आनन्दकी दशा—होगी। अतीन्द्रिय आनन्दके नाथकी दृष्टि करने, उसका आदर करनेसे तेरी पर्यायमें अतीन्द्रिय आनन्द आयगा, आत्मसाक्षात्कार होगा। अहा! ऐसी बात है प्रभु! पर्यायमें भी जागृति प्रगट होगी।

जैसे अग्नि स्वयं ज्योति है वैसे ही यह भगवान आत्मा स्वयं जाग्रतज्योति है, वज्रकी भाँति ध्रुव ज्ञायकका बिम्ब है प्रभु! अहा! वह जिनबिम्ब है। श्रीमद् राजचन्द्रने भी लिखा है कि–जिनप्रतिमा बन, जिनप्रतिमा बन। परन्तु उसकी उन लोगोंको खबर नहीं है। जिनप्रतिमा—जिनस्वरूपी भगवान आत्मा है। उसकी दृष्टि करनेसे पर्यायमें जिनपना आ जायगा। वह जिनबिम्ब है, वह चैतन्यप्रतिमा है। यह जो बाह्य प्रतिमा है वह व्यवहार है; शुभराग आता है तो लक्ष वहाँ जाता है; यहाँ तो भाई! तेरे अपने घरमें जानेकी बात कही है।—

हम तो कबहुँ न निजघर आये;
पर घर भ्रमत बहुत दिन बीते,
नाम अनेक धराये...हम तो कबहुं०

'मैं धनवान, मैं पुण्यवान, मैं पापी, मैं पण्डित, मैं मूर्ख—इसप्रकार 'पर घर भ्रमत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये, हम तो कबहुं न निजघर आये।' गाय–भैंस आदि पशु सबेरे जंगलमें चरने जाते हैं और शामको लौटते हैं, उस समय यदि दरवाजा बन्द हो तो सिर मारते हैं। सारमें घास मिलेगी और रातभर आराम मिलेगा ऐसे उत्साहपूर्वक बन्द दरवाजे पर सिर मारते हैं। ऐसे ही प्रभु! अपने भीतरके घरमें जानेके लिये एक बार सिर तो मार! रागकी एकतासे आत्माके द्वार बन्द हैं वे खुल जायँगे। अहा! आत्मा जाग्रतज्योति है उसे जान, चैतन्यस्वरूपको चैतन्यसे जान। जाननेवाली—जानती है वह—पर्याय है, परन्तु पर्यायमें जाननेमें आता है त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव। ज्ञानकी पर्यायमें वह जाग्रतस्वभाव जाननेमें आया तथापि, वह पर्यायमें नहीं आया—पर्यायरूप नहीं हो गया; जाग्रतस्वभावका सामर्थ्य कितना है वह पर्यायमें आया। पर्याय द्रव्यरूप हो जाती है अथवा द्रव्य पर्यायमें आ जाता है—ऐसा नहीं है।

'आत्मा जागती ज्योति है उसे जान।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह आत्मा स्वयं जाग्रतज्योति है उसे जान। वह शाश्वत वस्तु है उसे पहिचान। पहिचानना वह पर्याय है। कार्य पर्यायमें होता है न! ध्रुवमें कहाँ कार्य होता है? ध्रुव तो है ही—जाग्रतज्योति कूटस्थ, नित्य—उसे जान, उसका अनुभव कर। अहा! ऐसा है स्वरूप; उसे जाननेे–माननेसे अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होगा।

*

वचनामृत–२६६

यदि तुझे जन्म-मरणका नाश करके आत्माका कल्याण करना हो तो इस चैतन्यभूमिमें खड़ा रहकर तू पुरुषार्थ कर; तेरे जन्म-मरणका नाश हो जायगा। आचार्यदेव करुणापूर्वक कहते हैं :—तू मुक्तस्वरूप आत्मामें निस्पृहतासे खड़ा रह। मोक्षकी स्पृहा और चिन्तासे भी मुक्त हो। तू स्वयमेव सुखरूप हो जायगा। तेरे सुखके लिये हम यह मार्ग बतला रहे हैं। बाहरके व्यर्थ प्रयत्नसे सुख नहीं मिलेगा। २६६.

'यदि तुझे जन्म-मरणका नाश करके आत्माका कल्याण करना हो तो इस चैतन्यभूमिमें खड़ा रहकर तू पुरुषार्थ कर; तेरे जन्म-मरणका नाश हो जायगा।'

मुझे जन्म-मरणका अंत करके आत्मकल्याण करना है—ऐसा तेरा भाव हो तो इस चैतन्यभूमिमें खड़े रहकर तू पुरुषार्थ कर; तेरे जन्म-मरणका अंत हो जायगा। मुझे पुण्यबंध हो, मैं स्वर्गमें जाऊँ, लक्ष्मी मिले और दुनियामें बड़ा माना जाऊँ—यह सब कुछ नहीं, मात्र जन्म-मरणके दुःखसे छूटनेकी सच्ची भावना हो उसकी बात है। अहा! जीव चौरासी लाख योनियोंमें तथा एक-एक योनिमें अनन्तबार उत्पन्न हुआ है। माताके गर्भमें सवा नौ महीने रहता है; परन्तु शास्त्रमें कहा है कि माताके गर्भमें उत्कृष्ट बारह वर्ष तक रह सकता है, कदाचित् बारह वर्ष गर्भमें रहकर जन्म लेते ही मृत्यु हो जाय और पुनः उसमें आये और फिर गर्भमें बारह वर्ष तक रहे—ऐसी गर्भ-कायस्थिति उत्कृष्ट चौवीस वर्षकी गिननेमें आयी है। उलटे मुँह गर्भाशयकी अशुचिमें रहकर कष्ट सहन किये हैं। ऐसा अनन्त बार हो गया है प्रभु! इसप्रकार दुःख भोगते हुए अनन्तकाल बीता है; यदि तुझे इस दुःख-भरपूर जन्म-मरणका नाश करना हो, करने योग्य कार्य कर लेना हो—आत्माका कल्याण करना हो, तो इस चैतन्यभूमिमें खड़े रहकर तू अंतरमें आत्माको समझनेका पुरुषार्थ कर। राग और पर्यायमें खड़ा है वह छोड़ दे और यह जो चैतन्यभूमि—अंतरमें चैतन्यपिण्ड—उसमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दृष्टि लगाकर वहाँ खड़ा हो जा। यदि तुझे जन्म-मरणका नाश करके आत्मकल्याण करना हो तो यह शर्त है—'इस चैतन्यभूमिमें खड़े रहकर, चैतन्य-ध्रुव—ध्रुव-भगवान—में खड़े रहकर तू अंतरमें पुरुषार्थ कर। वह पुरुषार्थ अर्थात् शुद्ध चैतन्यकी परिणति; उससे तेरे जन्म-मरणका नाश हो जायगा। चैतन्यभूमि कहो अथवा चैतन्यपिण्ड कहो, वस्तु, अस्तित्व कहो; ऐसा जो शुद्ध चैतन्यघन, उसमें खड़े रहकर तू पुरूषार्थ कर; तेरे जन्म-मरणका अन्त हो जायगा।

अहा! ऐसी भाषा! पुस्तक (बहिनश्रीके वचनामृत) ऐसी प्रकाशित हो गई है कि—अन्य मतवाले वेदान्तवाले भी एकबार पढ़ें तो उन्हें लगेगा कि—अहा! भीतर कैसे भाव भरे हैं। एक वेदान्तीके हाथमें गई तो पढ़कर कहा—'ओहो! ऐसी वस्तु! यह तो वस्तुका स्वरूप है, यह किसी पक्षकी या सम्प्रदायकी बात नहीं है।

'आचार्यदेव करुणापूर्वक कहते हैं:—तू मुक्तस्वरूप आत्मामें निस्पृहतासे खड़ा रह।'

आचार्यदेव करुणासे कहते हैं'—भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचंद्राचार्य आदि सन्त करुणापूर्वक कहते हैं कि—'तू मुक्तस्वरूप आत्मामें निस्पृहरूपसे खड़ा रह।' भगवान आत्मा अंतरमें तो मुक्तस्वरूप ही है प्रभु! द्रव्य जो वस्तु है उसे आवरण भी नहीं है, उसमें अशुद्धता भी नहीं है और उसमें अपूर्णता भी नहीं है। बेनके बोलमें (३८०) आता है:—'जिस प्रकार सुवर्णको जंग नहीं लगती, अग्निको दीमक नहीं लगती, उसी प्रकार ज्ञायकस्वभावमें आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती। तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नोंकी चमक प्रगट होगी।' अहा! पूर्णानन्दका नाथ प्रभु भीतर विराजता है। अरे! उसका प्रयत्न भी कितना? कि....तू ऐसे मुक्तस्वरूप आत्मामें निस्पृहरूपसे खड़ा रह इतना।

समयसारकी १५वीं गाथामें कहा है–'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं....' जो कोई आत्माको अबद्धस्पृष्ट देखता है, रागके सम्बन्धरहित वस्तु देखता है उसने सकल जिनशासन देखा। अबद्ध कहो या मुक्तस्वरूप कहो। रागादि सम्बन्धरहित वस्तु सो अबद्ध। नास्तिसे कहो तो अबद्ध और अस्तिसे कहो तो मुक्तस्वरूप ऐसा उपदेश लोगोंको कठिन लगता है इसलिये कहते हैं—एकान्त है, एकान्त है। अरे प्रभु! सुन तो सही, यह तेरे घरकी बात है, तुझे तेरे घरमें ले जानेकी बात है।

किसी भी आशाके बिना तू मुक्तस्वरूप अपने आत्मामें निस्पृहरूपसे खड़ा रह। विशेष ज्ञान हो तो दुनिया मुझे माने, लोगोंका उद्धार करनेके लिये मैं एकाध भव करूँ तो.....यह सब भ्रम है। भले ही मुझे एकाध भव करना पड़े, परन्तु दुनिया मेरा लाभ उठाये—यह दृष्टि ही विपरीत है। कोई कहे कि दुनियाके लिये एक–दो भव करना पड़े तब भी क्या?.....अरे! भगवान, तू ये क्या कहता है? भव करना अर्थात् भवका कारण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग करना; और रागके फलमें फिर भाव मिले–इस प्रकार उसे तो भवकी भावना रही। तथा तुझसे दुनियाका कल्याण होगा ऐसा भी तीनकालमें है नहीं। दुनियाका कल्याण तो उसके वीतरागभावसे होगा और अज्ञानभावसे बंध होगा। बड़ी कठिन बात है भाई!

तू मुक्तस्वरूप आत्मामें निस्पृहरूपसे खड़ा रह। मुक्त.....मुक्त!—यह बात कैसे बैठे? वस्तु जो कि द्रव्य है, पदार्थ है वह तो मुक्त ही है। एक समयकी पर्यायमें रागका सम्बन्ध है; त्रैकालिक वस्तुमें तो रागका सम्बन्ध है ही नहीं। भगवान आत्मा अरागस्वरूप, मुक्तस्वरूप, अबंधस्वरूप है उसे जिसने देखा—शुद्धोपयोगमें जिसने देखा—उसने समस्त जिनशासनको देख लिया।

क्या कहा? कि—तीनलोकके नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर–जिनेश्वरदेवकी आज्ञा–आदेश है कि प्रभु! तेरी वस्तु अबद्ध है उसे अंतरमें एकबार तो देख। वस्तुको आवरण नहीं है, यदि आवरण हो तो वस्तु अवस्तु हो जाय; वस्तु त्रिकाल है, उसका अभाव कब होगा? अहा! यह बातें जगतसे बहुत भिन्न हैं भाई! सम्प्रदायमें तो आजकल बड़ी गड़बड़ चलती है। परमेश्वर जिनेश्वरदेव, जिनको सर्वज्ञता एवं वीतरागता परिपूर्ण प्रगट हुए हैं, उन परमात्माको वाणी बिना इच्छाके निकलती है; उस वाणीमें स्व–परकी कथा कहनेकी शक्ति है। स्व-पर प्रकाशनकी शक्ति चैतन्यकी है और स्व-परकी कथा कहनेकी शक्ति वाणीमें है। उस भगवानकी वाणीमें ऐसा आया कि–भगवान आत्मा भीतर मुक्तस्वरूप है; यदि मुक्त न हो तो मुक्तिकी पर्याय आयगी कहाँसे? मुक्तस्वरूप है, उसमेंसे—उसके आश्रयसे केवलज्ञान पर्याय, सिद्धपर्याय—मुक्तिकी पर्याय प्रगट होती है। बंधस्वरूप हो उसमेंसे तो बंधका फल आयगा। रागका और कर्मका सम्बन्ध तो एकसमयकी पर्यायके साथ है, उस पर्यायका त्रैकालिक द्रव्यस्वभावमें तो अभाव है।

'मोक्षकी स्पृहा और चिन्तासे भी मुक्त हो।'

यहाँ तो कहते हैं कि यदि तुझे जन्म-मरण रहित होना हो, तुझे अपना कल्याण करना हो तो—प्रभु, बातें करके जगतको सन्तुष्ट करना हो उसकी यह बात नहीं है—तू मुक्तस्वरूप अबद्धस्वरूप भगवान आत्मा वस्तुरूपसे, द्रव्यरूपसे, पदार्थरूपसे नित्य हो, उसमें स्थित रहकर पुरुषार्थ कर। वस्तु उसे कहते हैं जिसमें अनन्त गुण बसें। अनन्त गुणोंका स्वामी है सम्राट भगवान आत्मा; उसके साम्राज्यमें अनन्तगुणोंकी प्रजा रहती है। क्षेत्र भले ही शरीरप्रमाण हो, परन्तु भाव तो अमाप—अपार है। ऐसे मुक्तस्वरूप भगवान आत्मामें निस्पृहरूपसे स्थित रहकर 'मोक्षकी स्पृहा और चिन्तासे भी मुक्त हो' मोक्षकी इच्छासे मोक्ष नहीं होगा; मुक्तस्वरूप भगवान आत्मामें रहनेसे मुक्ति होगी।

यहाँ तो जन्म-मरण रहित होनेकी बात है। जन्म-मरण मोह-राग-द्वेषके बिना नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिलता। महान चक्रवर्ती हो और मरकर नरकमें जाता है। ब्रह्मदत्त अन्तिम चक्रवर्ती था। छ्यानवे हजार रानियाँ, उनमें एक कुरुमती नामकी पटरानी, जिसकी हजार देव सेवा करते थे। उस पटरानीमें वह इतना आसक्त हो गया था कि देहान्तके समय 'कुरुमती! कुरुमती!' पुकारता हुआ दूसरे ही क्षण सातवें नरकमें गया। नीचे सात नरक हैं। यह लॉजिकसे—न्यायसे सिद्ध होता है। सातवें नरकमें तेतीस सागरकी स्थिति है। एक सागरमें दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं। एक पल्यके असंख्यवें भागमें असंख्य अरब वर्ष हैं। सातसौ वर्षकी आयुके सामने, मरकर तेतीस सागरकी आयु! एक श्वासप्रमाण भोगका फल उसे कितना आया? सात सौ वर्षके जितने श्वास होते हैं, उसके एक श्वास बराबर ग्यारह लाख, छप्पन हजार और नौ सौ पचहत्तर पल्योपम प्रमाण नरकके फलरूप दुःख प्राप्त हुआ।

अहा! प्रभु! तू क्या करता है? कितनी विपरीतता! ऐसे जन्म-मरणके दुःखोंसे तुझे छूटना हो तो भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप है उसमें स्थिति कर, उसका स्वीकार कर; मोक्षकी इच्छा और चिन्तासे भी मुक्त हो।

'तू स्वयमेव सुखरूप हो जायगा।'

प्रभु! तू मुक्तस्वरूप, आनन्दस्वरूप है, उसमें रहनेसे तेरी पर्यायमें अनंतसुख—अनन्त आनन्द आ जायगा। पर्यायमें भीतरसे अनन्त आनन्द प्रगट हो जायगा। तू स्वयमेव, किसीकी अपेक्षा बिना सुखरूप हो जायगा।

'तेरे सुखके लिये हम यह मार्ग बतला रहे हैं।'

—ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

'बाहरके व्यर्थ प्रयत्नसे सुख नहीं मिलेगा।'

भले ही दया, दान, व्रत, भक्तिका भाव हो, परन्तु वह तो राग है, उससे आत्माका सच्चा सुख नहीं मिलेगा। तुझमें एक वीर्य नामका गुण है। अपनी दृष्टिमें अपने द्रव्यका स्वीकार करनेसे वीर्यगुणका कार्य यह है कि स्वरूपकी निर्मल रचना करे। वह वीर्य बीचमें रागकी रचना करे वह नपुंसकता है। नपुंसकके संतान नहीं होती, वैसे ही शुभ भावसे धर्मकी संतान—पर्याय नहीं होती। ऐसी बात है! पूर्णानन्दका नाथ मुक्तस्वरूप है, उसमें स्थित रहकर, दृष्टि वहाँ लगानेसे तेरी पर्यायमें भी परमानन्दकी दशा प्रगट हो जायगी। यहाँ बतलाते हैं कि व्यर्थके बाह्य प्रयत्नसे सुख प्राप्त नहीं होगा। अंतर चैतन्यस्वभावमें स्थित रहनेका, समझकर स्थिर होनेका पुरुषार्थ करनेसे तू स्वयमेव सुखरूप हो जायगा।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१०१

दिनांक २६-६-७८

वचनामृत–२६७

ज्ञानी द्रव्यके आलम्बनके बलसे, ज्ञानमें निश्चय-व्यवहारकी मैत्रीपूर्वक, आगे बढ़ता जाता है और चैतन्य स्वयं अपनी अद्भुततामें समा जाता है। २६७.

धर्मी जीवकी बात है। पूर्णानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मद्रव्यके अवलम्बनके बलसे साधक धर्मात्माको निश्चय अर्थात् स्वरूपकी दृष्टि, ज्ञान एवं रमणता, तथा उसमें न रह सके तो व्यवहार अर्थात् भूमिकानुसार व्रतादिके विकल्प, —इन दोनोंकी—शुद्ध और शुभकी—मैत्री होती है, दोनों एकसाथ होनेमें विरोध नहीं है। समयसार-कलश (११०)में कहा है कि–जबतक यथाख्यातचारित्र नहीं होता तबतक सम्यग्दृष्टिको दो धाराएँ रहती हैं—शुभाशुभ कर्मधारा और ज्ञानधारा। वे दोनों साथ रहनेमें कुछ भी विरोध नहीं है। जिसप्रकार मिथ्याज्ञानमें और सम्यग्ज्ञानमें परस्पर विरोध है, उसी प्रकार कर्म सामान्यमें तथा ज्ञानमें विरोध नहीं है। उस स्थितिमें कर्म अपना कार्य करता है और ज्ञान अपना कार्य करता है। जितने अंशमें शुभाशुभ कर्मधारा है उतने अंशमें कर्मबन्ध होता है और जितने अंशमें ज्ञानधारा है उतने अंशमें कर्मका नाश होता जाता है। विषय-कषायके विकल्प अथवा व्रत–नियमके विकल्प—शुद्धस्वरूपका विचार तक—कर्मबन्धका कारण है; शुद्ध परिणतिरूप ज्ञानधारा ही मोक्षका कारण है।

प्रश्न :—चरणानुयोग-अपेक्षासे तो शुभभाव उपादेय है न?

उत्तर :—भाई! व्रतादिका शुभभाव भी राग है; राग उपादेय कैसे होगा? सम्यग्दृष्टिको, श्रावकको तथा मुनिराजको अपनी-अपनी भूमिकानुसार अंतरमें शुद्धि— ज्ञानधारा—प्रगट हुई है। उनको पूर्ण वीतरागता प्रगट न होनेसे साथ ही देवपूजा अथवा व्रतादिके शुभभाव आते हैं। उन्हें शुद्धिरूप अरागधारा और शुभाशुभ रागधारा साथ-साथ रहनेमें विरोध नहीं है। शुभभाव ज्ञानीको भी आता है, परन्तु है वह दुःखरूप तथा बन्धका कारण; इसलिये वह उपादेय नहीं है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतरमें स्वभावके आश्रयसे प्रगट होनेवाली ज्ञानधारा सो निश्चय है और अपूर्णताके कारण साथमें जो राग आता है वह व्यवहार है। वहाँ, व्यवहार करते-करते निश्चय होगा ऐसा नहीं है, मात्र अपूर्ण दशामें दोनों साथ होते हैं। द्रव्यसंग्रहमें कहा है—

'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।'

प्रथम अपने भगवान ज्ञायककी ओर ढलनेसे तथा रागके साथकी एकता तोड़नेसे जो वीतरागी सम्यग्दर्शन होता है वह अंतर आत्माभिमुख ध्यानमें होता है, और फिर अंतरमें विशेष रमणतारूप चारित्र भी अंतरध्यानमें स्थिर हो तब, ध्यानमें ही प्राप्त होता है। अरेरे! अनन्तकालसे जीवने यह नहीं किया है। वैसे तो बाहरी सर्व प्रकारकी माथापच्ची की है।

व्रतको आस्रव कहा है वहाँ आत्माश्रित शुद्धिके साथ रहनेवाले कचासरूप रागको आस्रव कहा है। वास्तवमें तो आत्मज्ञानी साधकको अंतरमें विकल्प टूटकर आनन्दस्वरूपमें एकाकार दृढ़ स्थिरता होती है उसका नाम निश्चय व्रत है; उससे संवर–निर्जरा होते हैं। उसे उस भूमिकामें शुद्धिके साथ जो अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रहके विकल्प उठते हैं उन्हें व्यवहारसे व्रत कहा जाता है, परन्तु वह आस्रव है, बंधका कारण है। कोई ऐसा माने कि—मिथ्यादृष्टिके व्रत, तप, भक्ति बंधका कारण हैं, परन्तु सम्यग्दृष्टिके व्रत, तपादि बन्धका कारण नहीं हैं, तो वह मान्यता मिथ्यात्व है।

किसीको भ्रम हो कि मिथ्यादृष्टिका जो क्रियारूप यतिपना है वह बंधका कारण है, परन्तु सम्यग्दृष्टिका यतिपना अंतरमें सम्यग्दर्शन-चारित्रस्वरूप है, इसलिये उसे अंतरमें अनुभवज्ञान तथा बाह्यमें दया, दान, व्रतादि शुभक्रिया—यह दोनों मिलकर ज्ञानावरणीयादि कर्मोंका क्षय करते हैं। अज्ञानी जीव ऐसी प्रतीति करते हैं। भाई! यह सब पुरानी मान्यताएँ बदलना पड़ेंगी। अज्ञानीके व्रतादि तो बंधका कारण हैं ही, किन्तु ज्ञानीके शुभक्रियारूप व्रतादि भी बन्धका कारण हैं, क्योंकि वे भाव शुभराग हैं, आत्माके अनाकुल स्वभावसे विरुद्ध जातिके हैं; वे संवर–निर्जराका कारण कैसे हो सकते हैं? राग होनेसे आस्रव–बंधका ही कारण हैं। शास्त्रमें ऐसा स्पष्टीकरण है फिर भी लोग इस बातमें विवाद करते हैं।

चैतन्यस्वभावके अवलम्बनसे अंतरमें जो विशेष स्थिरता हुई उसके साथ भूमिकानुसार अणुव्रत या महाव्रतादिके जो विकल्प आते हैं उन्हें कथंचित्—चरणानुयोगकी अपेक्षासे—उपादेय कहा जाता है, परन्तु वास्तवमें तो वे आस्रव हैं और बंधका कारण हैं। तत्त्वार्थसूत्रमें भी 'शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य' व्रतादि शुभयोग पुण्यास्रवका कारण है। भाई! जो भाव आस्रव–बन्धका कारण है वह आदरणीय कैसे होगा? शुभ और अशुभ राग दोनों आस्रव–बन्धके कारण हैं, उनमें शुभ राग अच्छा और अशुभ राग बुरा—ऐसा अंतर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। ऐसी मान्यतासे वह घोर अपार संसारमें भटकेगा। प्रवचनसारकी ७७वीं गाथामें कहा है :—

ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।
हिंडदि घोरमपारं संसारं मोह संछण्णो॥

इसप्रकार पुण्य और पापमें अंतर नहीं है ऐसा जो नहीं मानता, वह मोहाच्छादित वर्तता हुआ घोर अपार संसारमें परिभ्रमण करता है। प्रवचनसार अर्थात् भगवानकी दिव्यध्वनिका सार। उसमें कहा है कि वीतरागता धर्म है, राग धर्म नहीं है। जितने शुभ भाव, बहिर्जल्परूप विकल्पवृत्ति, द्रव्यके विचाररूप विकल्प—वह सब शुभराग होनेसे, बंधका कारण है।

अरे भाई! सत्य समझनेका अवसर जैसे-तैसे मिला, वहाँ सम्यग्दर्शनमें विवाद करते हैं! क्या किया जाय! भगवानका तो विरह हुआ। परमात्मा वहाँ (महाविदेह क्षेत्रमें) रह गये और यहाँ (भरतमें) सर्वज्ञदशा प्रगट होनेकी योग्यता नहीं रही, तथा जीव अपने स्वच्छन्दसे वीतरागमार्गकी जो कल्पना करते हैं वह सब झूठी है। वीतरागमार्गमें निश्चय-व्यवहारकी सच्ची मैत्रीका स्वरूप क्या है उसकी लोगोंको खबर नहीं है, और शुभ रागरूप व्यवहारसे निश्चय प्रगट होगा ऐसा मानते हैं; परन्तु रागसे निश्चय अर्थात् वीतरागता होगी ऐसा मानना वह अज्ञान है। स्वरूपके आश्रयसे प्रगट होनेवाली शुद्धिके साथ देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति, विनय आदि शुभभाव आते हैं इसलिये व्यवहारसे शुद्धि और शुभकी मैत्री कही जाती है, परन्तु समयसार-कलशके टीकाकारने, जहाँ ज्ञाननय और क्रियानयकी मैत्रीकी बात आयी है वहाँ, शुद्धजीवके स्वरूपानुभवको ज्ञाननय कहा है और रागादि अशुद्ध परिणामके त्यागको क्रियानय कहा है।

भाई! यह शरीर छूटेगा, सब छूट जायगा, अकेला कहाँ रहेगा? क्योंकि भविष्यमें तू रहनेवाला तो है। राग आदरणीय है ऐसी दृष्टि रखकर तू कहाँ रहेगा? भविष्यमें मिथ्यात्वदशामें रहेगा। रागरहित मैं पूर्णानन्दस्वरूप हूँ—ऐसे स्वद्रव्यके अवलम्बनपूर्वक दृष्टि हुई तो जिस प्रकार द्रव्यका कभी नाश नहीं होता वैसे ही द्रव्याश्रित दृष्टिका अभाव नहीं होगा, फिर भले ही स्वर्गका भव मिले।

ज्ञानी स्वभावका आश्रय विशेष करता जाता है। स्वद्रव्यके आलम्बनके बलसे ज्ञानमें निश्चय-व्यवहारकी मैत्रीपूर्वक वह आगे बढ़ता जाता है। उसे शुभराग आये तब अंतरका विशेष आश्रय नहीं है, अल्प आश्रय है। उस समय भी उसे शुभभावका आश्रय नहीं है। वह तो अंतरमें स्वभावाश्रित शुद्धिके बलसे आगे बढ़ता जाता है। भले ही शुभभाव आयें परन्तु लक्ष भीतर ध्रुवतत्त्वमें वर्तता होनेसे आगे बढ़कर चैतन्य स्वयं अपनी अद्भुततामें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समा जाता है। आनन्दस्वभावी निजात्माका जो अवलम्बन किया वह निश्चय और साथ ही जो राग रह गया वह व्यवहार। स्वका विशेष आश्रय करते-करते राग छूट जायगा और पूर्णानन्दकी अद्भुत प्राप्ति हो जायगी अर्थात् चैतन्य स्वयं अपनी अद्भुततामें समा जायगा। निर्विकल्प भगवान आत्मा निर्विकल्प दृष्टि और स्वरूपरमणतामें समा जाता है। अतीन्द्रिय आनन्दका पिण्ड जो ज्ञायक प्रभु उसका विशेष अवलम्बन करते-करते आत्मा स्वयं अपनेमें समा जाता है। अहा! ऐसा है वस्तुस्वरूप है!

*

वचनामृत–२६८

बाह्य रोग आत्माकी साधक दशाको नहीं रोक सकते, आत्माकी ज्ञातृत्व-धाराको नहीं तोड़ सकते। पुद्गलपरिणतिरूप उपसर्ग कहीं आत्मपरिणतिको नहीं बदल सकते। २६८.

'बाह्य रोग आत्माकी साधक दशाको नहीं रोक सकते, आत्माकी ज्ञाताधाराको नहीं तोड़ सकते।'

शरीरमें ज्वर आये, क्षयरोग हो, परन्तु जिसे अंतरमें शरीरसे भिन्न ज्ञायककी दृष्टि परिणमित हुई है ऐसे साधक जीवको चाहे जैसे बाह्य रोग उसकी अन्तः साधनाको बाधक नहीं होते। नारकी जीवको जन्मसे ही सोलह महा रोग होते हैं, शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो जायँ—ऐसी स्थितिमें भी भीतर आत्माका अवलम्बन लेकर सम्यग्दर्शन प्रगट करते हैं, उनकी साधनाको कोई रोक नहीं सकता। शरीरकी निरोगता साधकदशाका पोषण करती है और रोग साधनामें विक्षेप डालते हैं, साधक दशाको रोक देते हैं—ऐसा है ही नहीं।

आठ-आठ वर्षके राजकुमार अपनी माताके पास जाकर अंतरकी उग्र साधना प्रगट करने हेतु—मुनिदशा अंगीकार करने हेतु—अनुमति माँगते हैं:—

हे माता! मेरी वस्तु मुझमें है ऐसी मुझे अंतरप्रतीति हुई है; उसकी पूर्ण साधना हेतु अब मैं अंतरमें जाना चाहता हूँ, मुनिदशा अंगीकार करके वनवास करना चाहता हूँ। अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका रस जागृत हुआ है उसमें वृद्धि करने हेतु हे जननी! मुझे दीक्षा लेनेकी आज्ञा दो। हे माता! एकाबार रोना हो तो रो ले, परन्तु मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि अब दूसरीको नहीं रुलाऊँगा, अब दूसरा भव नहीं करूँगा, अंतरमें स्थिर होकर साधना पूर्ण करूँगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राजकुमार ध्रुवकी माताका देहान्त होने पर पिताने दूसरा विवाह किया। ध्रुवको वैराग्य आ गया और उसने संन्यास धारण कर लिया। ध्रुव ध्यानस्थ वनमें बैठे हैं; उन्हें चलायमान करनेके लिये स्वर्गसे अप्सरा उतरती है और कहती हैं—'हे राजकुमार! हमारे शरीरकी ओर तो देखो! ध्रुव कहते हैं—हे माता! तेरा शरीर अत्यन्त सुन्दर है, भव धारण करना होगा तो तेरी कोखसे जन्म लूँगा। दूसरी कोई बात नहीं होगी।

अहा! बाहरके उपसर्ग भी आत्माकी साधकदशाको नहीं रोक सकते। मुनिराज वनमें वास करते हैं, मूसलधार वर्षा हो रही हो, शरीरमें श्वास रोग हो, परन्तु स्वयं जहाँ अंतर आनन्दके धाममें प्रविष्ट हो गये हैं वहाँ उन्हें बाह्य प्रतिकूलताएँ क्या कर सकेंगी? उनकी ज्ञाताधाराको नहीं तोड़ सकती।

जैसे—बिजली गिरने पर पर्वतके दो भाग हो जायँ तो वे तीनकालमें जोड़नेसे नहीं जुड़ते; वैसे ही प्रज्ञाछैनी द्वारा ज्ञान और रागके दो भाग हुए वे अब कभी एक नहीं होंगे। प्रभु! तेरे भीतर चैतन्यचमत्कार भरा पड़ा है उसका तुझे अंतरसे माहात्म्य आना चाहिये और बाह्यका सर्व माहात्म्य छोड़ देना चाहिये। अंतरके आनन्दधाममें प्रविष्ट होनेके लिये ज्ञाताधाराको कोई बाह्य साधन–सुविधा सहायता नहीं कर सकती और बाहरकी कोई असुविधा—रोगादि—रोक नहीं सकती, वह सब पर ज्ञेयके रूपमें मात्र जाननेमें आता है।

'पुद्गलपरिणतिरूप उपसर्ग कहीं आत्मपरिणतिको नहीं बदल सकते।'

साधक मुनिराज आत्मसाधनामें लीन बैठे हों; वहाँ किसी देवका उपसर्ग आया—प्रहारसे शरीरके टुकड़े हो गये—वह साधनामय आत्मपरिणतिको बदल नहीं सकता। अहा! वस्तुस्वरूप तो देखो। अनादिकालसे रागके दर्शन होते थे; उस रागसे भिन्न होकर सम्यग्दर्शनमें भगवान ज्ञायक आत्माके जो दर्शन हुए उस दर्शनकी धाराको पुद्गलपरिणतिरूप बाह्य उपसर्ग नहीं तोड़ सकते। नरकगतिमें भी जीवको सम्यग्दर्शन—ज्ञाताधारा प्रगट होती है। वहाँकी भीषण यातनाएँ भी उसकी ज्ञानधाराको बदल नहीं सकतीं। रोगादि तो जड़की पर्याय है और स्वभावके अवलम्बनसे हुई वीतरागदशा तो आत्माकी निर्मल परिणति है। जिसप्रकार स्वयंसिद्ध द्रव्यका अभाव नहीं होता उसीप्रकार स्वद्रव्याश्रित हुई ज्ञानधाराका भी परके कारण अभाव नहीं होता।

*

वचनामृत–२६६

अहो! देव-शास्त्र-गुरु मंगल हैं, उपकारी हैं। हमें तो देव-शास्त्र-गुरुका दासत्व चाहिये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूज्य कहान गुरुदेवसे तो मुक्तिका मार्ग मिला है। उन्होंने चारों ओरसे मुक्तिका मार्ग प्रकाशित किया है। गुरुदेवका अपार उपकार है। वह उपकार कैसे भूला जाय?

गुरुदेवका द्रव्य तो अलौकिक है। उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारी है।

परम उपकारी गुरुदेवका द्रव्य मंगल है, उनकी अमृतमयी वाणी मंगल है। वे मंगलमूर्ति हैं, भवोदधितारणहार हैं, महिमावन्त गुणोंसे भरपूर हैं।

पूज्य गुरुदेवके चरणकमलकी भक्ति और उनका दासत्व निरन्तर हो।

२६६.

इस बोलमें बेनने भक्तिका वर्णन किया है, इसे पढ़ लेना। देव-शास्त्र-गुरु व्यवहारसे मंगल और उपकारी हैं न? वास्तवमें तो निज भगवान ज्ञायक आत्मा मंगल और उपकारी है। मंग=पवित्रता और ल=लाये, अथवा मम्=पाप (मिथ्यात्व और रागद्वेष) और गल=गाले, नाश करे;—इसप्रकार पवित्रताको लाये और पापको गाले ऐसा निज भगवान आत्मा ही मंगल है। हरि भी निज आत्मा ही है। 'पापं हरति इति हरिः।' पापका—अज्ञान और रागद्वेषका—नाश करे सो हरि। 'चलते-फिरते प्रगट हरि देखूँ रे, अपना जीवन सफल तब लेखूँ रे।' पतंग चाहे जिधर उड़े परन्तु डोर हाथमें रखे। उपयोग चाहे जहाँ जाय—रागादिमें जाय—परन्तु ज्ञानीको परिणतिमें भीतर जो निज शुद्धात्म द्रव्यसामान्यका अवलम्बन हुआ है वह कभी छूटता नहीं। उपसर्गके कालमें भगवान आत्माकी ज्ञानधारा एवं उदासीनताको कोई रोक नहीं सकता। उदासीन अर्थात् रागसे भिन्न होकर ज्ञायकस्वभावमें आसीन है—स्वभावमें जिसने आसन जमाया है—ऐसा।

जैनेतर समाजमें सती अनुसूयाकी बात आती है; वह सदेह स्वर्गमें जाती थी; 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति'—बिना पुत्रके गति नहीं होती ऐसा कहकर उसे पृथ्वी पर लौटा दिया। वहीं एक वृद्ध ब्राह्मण रहता था; उसके साथ विवाह किया और एक पुत्रको जन्म दिया। पुत्रको पालनेमें झुलाती हुई अनुसूया उससे कहती है—'शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निर्विकल्पोऽसि, उदासीनोऽसि।' बेटा, तू शुद्ध है, बुद्ध है, निर्विकल्प है और उदासीन है। अहा! बच्चोंको भी ऐसा सम्बोधन! आजकल तो 'तू शुद्ध है' सुनते ही भड़कते हैं; उन्हें तो अशुद्ध हूँ, रागी हूँ, रागसे मुझे लाभ होगा—ऐसा हो गया है। अरे! रागने मुझे मार डाला! समयसारकी 'तात्पर्यवृत्ति' टीकामें और परमात्मप्रकाशकी टीकामें भी ऐसे अनेक बोल आते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं—मैं सहज शुद्ध ज्ञान एवं आनन्द जिसका स्वभाव है ऐसा हूँ; मैं निर्विकल्प हूँ; उदासीन हूँ; स्वसंवेद्य हूँ; भरितावस्थ हूँ; सर्वविभावपरिणामरहित हूँ आदि। प्रभु! तू तो शुद्ध चैतन्यघन है न, ज्ञानका पिण्ड है न, राग और अल्पज्ञता तुझमें कैसी? तेरा आसन तो रागसे भिन्न है, रागमें रहना तेरा आसन नहीं है, तू तो रागके और भेदके विकल्परहित निर्विकल्प है।

यहाँ तो मंगलकी बात चलती है। निज आत्मा ही वास्तवमें मंगलस्वरूप है। व्यवहारसे देव–शास्त्र–गुरु मंगल और उपकारी हैं। हमें तो देव-शास्त्र-गुरुका दासत्व चाहिये। बेनने यहाँ (पूज्य गुरुदेवके) उपकारकी महिमा गाई है वह तो उनकी विनय है न? इस बोलमें बेनने अपनी विनय और भक्तिभाव दरशाया है, उसे अपने आप पढ़ लेना।

*

वचनामत–२७०

अपनी जिज्ञासा ही मार्ग बना लेती है। शास्त्र साधन हैं, परन्तु मार्ग तो अपनेसे ही ज्ञात होता है। अपनी गहरी तीव्र रुचि और सूक्ष्म उपयोगसे मार्ग ज्ञात होता है। कारण देना चाहिये। २७०.

'अपनी जिज्ञासा ही मार्ग बना लेती है।'

स्वरूपसम्बन्धी उत्कण्ठा ही मार्ग बना देती है। रुचि अनुयायी वीर्य। जिसे अपने स्वरूपकी रुचि है उसका वीर्य भी रुचिके अनुरूप होकर मार्ग निकल आता है। अहा! अनन्तकालमें ज्ञानघनरूप अपूर्व वस्तुकी कभी प्राप्ति नहीं हुई है; कैसी होगी वह वस्तु? अनन्तबार स्वर्गका भव मिला, अनन्तबार बड़ा राजा या सेठ हुआ, अरे, अनन्तबार शुक्ललेश्याधारक महाव्रती मुनि भी हुआ—मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो। भीतर व्रतादिके शुभरागसे भी रहित जो निज ज्ञायकस्वभाव उसकी महिमा तथा उसकी रुचि प्रगट नहीं की। बाह्यक्रिया और शुभरागमें ही धर्म तथा धर्मका साधन मानकर अटक गया, इसलिये उसे आत्माका आनन्द नहीं आया। सम्यग्दृष्टिको भी शुभराग आता है, परन्तु वह उसे दुःखरूप लगता है। रागरहित अंतर ज्ञायकस्वरूपकी भावना, जिज्ञासा हो तो उसे अंतरसे मार्ग सूझ ही आता है।

'शास्त्र साधन हैं, परन्तु मार्ग तो अपनेसे ही ज्ञात होता है।'

शास्त्र तो निमित्त हैं; वे दिशा बतलाकर दूर रहते हैं, किन्तु चलना तो अपनेको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही पड़ता है न? प्रभु! तुझे अपनी महत्ताका पता नहीं है। अरे! आठ-आठ वर्षके बालक भी आत्मानुभव प्राप्त करके केवलज्ञान प्रगट करते हैं। बाल, युवा, वृद्ध आदि तो देहकी स्थिति है; वास्तवमें तो रागको अपना तथा लाभदायी मानना वह बालदशा–अज्ञानदशा है; रागसे भिन्न अंतरमें ज्ञायक आत्माकी प्रतीति एवं स्वानुभूति हो वह युवावस्था है और अंतरस्वभावका उग्र आश्रय लेकर केवलज्ञान प्राप्त करना वह वृद्धदशा है;—यह तीनों दशाएँ अंतरकी स्थितिमें हैं। समझमें आता है कुछ?

जीवने व्रत, उपवास, चौविहार आदि अनन्तबार किये; शुक्ललेश्या, उच्चसे उच्च शुभभाव अनन्तबार किये, परन्तु वह कोई वस्तु नहीं है—संवर-निर्जरा नहीं है, शुभराग होनेसे दुःखरूप हैं। आनन्दमूर्ति भगवान आत्माका आश्रय लेकर जो निर्मलता प्रगट हो वह आनन्द है। ज्ञानीको भी राग आता है परन्तु वह दुःखरूप लगता है। अहा! ऐसा मार्ग है। मार्ग समझनेमें शास्त्र निमित्त हैं, परन्तु वह ज्ञात तो अपनेसे ही होते हैं। रागसे भिन्न होकर अंतरमें स्वयं अपनेको ग्रहण करे तो स्वयं अपनेसे ही ज्ञात होता है, गुरुसे नहीं, शास्त्रसे नहीं।

बाह्यमें अनुकूलता दिखायी दे, दस–बीस लाखकी कमाई होती हो, उसे अज्ञानी सुख मानते हैं, परन्तु वह मान्यता मिथ्याबुद्धि है। विषय-भोगोंमें सुख मानना वह अज्ञान और पाखण्ड है। ज्ञानी सम्यक्त्वीको—शान्तिनाथ चक्रवर्तीको—भी भोगके भाव अपनी अशक्तिके कारण आते हैं परन्तु वे उन्हें दुःखरूप भासित होते हैं, उनमें सुखबुद्धि नहीं है। महाराजा भरत जब चक्रवर्तित्वकी साधनाको गये वहाँ सैकड़ों राजकुमारियोंके साथ विवाह किया। विवाहका राग आता है, परन्तु वह अंतरमें दुःखरूप तथा विषरूप लगता है। दशामें पूर्णताका पुरुषार्थ नहीं है इसलिये राग आता है, परन्तु वह लगता है काले नाग जैसा। मेरा नाथ अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका सागर है, वहाँ यह विकल्प कहाँसे आया? अशक्तिवश आर्तध्यान और रौद्रध्यान भी होता है, परन्तु अंतरमें वह दुःखरूप लगता है। अशुभ राग तो दूर रहो, किन्तु शुभराग भी कल्याणका मार्ग नहीं है; मार्ग तो वीतराग भाव है और वह अपने से ही ज्ञात होता है।

'अपनी गहरी तीव्र रुचि और सूक्ष्म उपयोगसे मार्ग ज्ञात होता है।'

पूर्णानन्दके नाथकी, अंतस्तलमें जो भगवान ज्ञायक विराजता है उसकी, गहरी और तीव्र रुचि करे तो मार्ग हाथ आये। जिसे आत्मानन्दके अतिरिक्त अन्य कोई रुचि अच्छी नहीं लगती उसे अन्तर्मुख सूक्ष्म उपयोग द्वारा मार्ग हाथ आता है। ज्ञानका जो व्यापार परोन्मुख हो वह स्थूल उपयोग है और भगवान आत्माको ग्रहण करनेमें स्वोन्मुख हो वह सूक्ष्म उपयोग है। भाव भले ही गहरे हैं किन्तु बेनकी भाषा तो समझमें आये ऐसी है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पातालकुएँके पानीकी भाँति आत्माके पातालमें आनन्द भरा है। सौराष्ट्रमें बोटादके पास जनड़ा गाँवमें एक पातालकुआँ है। बहुत खुदाई करने पर भी पानी नहीं निकला। लोग थक गये इसलिये खोदना छोड़ दिया। पानी जहाँ निकलना था वहाँ उसके ऊपर एक पत्थरकी शिला रह गई थी। एक बारात वहाँसे निकली; पानी है या नहीं यह देखनेके लिये ऊपरसे एक बड़ा पत्थर फेंका। पत्थरकी शिला टूट गई और पानीका फव्वारा छूटा; आजकल वहाँ अठारह रहँट चलते हैं। उसीप्रकार भगवान आत्माको रागकी एकताका पत्थर ऊपर आ गया है एकबार स्वसन्मुख होकर उसे तोड़ दे तो मार्ग हाथ आ जाय। अहा! ऐसा मार्ग! ऐसा उपदेश! कथा हो तो आनन्द आये। भाई! सुन तो सही! यह तेरे आत्माकी भागवत कथा है।

'कारण देना चाहिये।'

अंतरमें पूर्णानन्दका नाथ भगवान आत्मा विराजमान है; उसकी दृष्टि, ज्ञान और भावनारूप कारण देना चाहिये। राग और ज्ञानके बीच साँध है, दोनों एकमेक नहीं हैं, किन्तु अज्ञानी एक मानता है। प्रज्ञाछैनी द्वारा दोनों अपने-अपने नियत लक्षणसे पृथक् हो जाते हैं, इसलिये कभी एक हुए ही नहीं हैं। उन्हें पृथक् करनेके लिये तीव्र रुचि और दृष्टिका कारण देना चाहिये। कारण देनेसे ही कार्य होता है।

*

गुरुदेवने मार्ग बतलाया है। आत्माका हित करनेके लिये उस मार्ग पर चलना है। जगतमें सर्वोत्कृष्ट वस्तु एक ज्ञायक—आत्मा है उसे जानना। भेदज्ञानकी धारा प्रगट करना, ज्ञातापनेकी उग्रता करना।

—बहिनश्री चम्पाबेन.

*

महापुरुष जहाँ विचरें और निवास करें वह भूमि तीर्थस्वरूप है। गुरुदेवने सोनगढ़का कण–कण पावन किया है, यहाँ वर्षोंतक निवास किया है, वाणीकी वर्षा की है। इसलिये हमें तो यह भूमि पावन तीर्थसमान है।

—बहिनश्री चम्पाबेन.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१०२

दिनांक २७-६-७८

वचनामृत–२७१

जिसकी जिसे तन्मयतासे लगन हो उसे वह नहीं भूलता। 'यह शरीर सो मैं' वह नहीं भूलता। नींदमें भी शरीरके नामसे बुलाये तो उत्तर देता है, क्योंकि शरीरके साथ तन्मयताकी मान्यताका अनादि अभ्यास है। अनभ्यस्त ज्ञायकके अन्दर जानेके लिये सूक्ष्म होना पड़ता है, स्थिर होना पड़ता है; वह कठिन लगता है। बाह्य कार्योंका अभ्यास है इसलिये सरल लगते हैं। लेकिन जब भी कर तब तुझे ही करना है। २७१.

'जिसकी जिसे तन्मयतासे लगन हो उसे वह नहीं भूलता।'

भव्यसागर नामके एक दिगम्बर मुनि हैं। बीस वर्ष पूर्व दीक्षित हुए थे। उन्होंने यह (बहिनश्रीके वचनामृत) पुस्तकें मँगवायी हैं। पुस्तक पढ़कर उन्होंने अत्यन्त प्रमोद व्यक्त किया है। वे लिखते हैं—यह पुस्तक पढ़कर मुझे जो आनन्द आया वह और कहीं नहीं आया।

जिसे जिसमें तन्मयतापूर्वक लगन हो वह उसे भूलता नहीं है, जिसे जिसकी आवश्यकता प्रतीत हो उसे उसकी लगन लगे बिना नहीं रहती—यह सिद्धान्त है।

'यह शरीर सो मैं' वह भूलता नहीं है। नींदमें भी शरीरके नामसे बुलाये तो उत्तर देता है, क्योंकि शरीरके साथ तन्मयताकी मान्यताका अनादि अभ्यास है।'

कोई नामसे बुलाये कि–मंगलदास! तो चौंककर कहेगा—हें!.....परन्तु वह नाम तेरा कहाँ है? यह तो शरीरका नाम है और वह तो मिट्टी है, धूल है, पुद्गलकी पर्याय है। एकबार जो पुद्गल बिच्छूके डंकरूपमें थे वे वर्तमानमें इस शरीररूप परिणमित हुए हों, किन्तु तन्मयताका अनादि अभ्यास होनेसे कोई उसके नामकी आवाज दे तो नींदमें भी चौंककर 'हें!'.....कहकर उत्तर देता है। शरीरकी सुन्दरता, सुडौलता आदि देखकर उसे, अनादि एकत्वका अध्यास होनेसे, यह सब मैं हूँ—ऐसा लगता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'अनभ्यस्त ज्ञायकके अन्दर जानेके लिये सूक्ष्म होना पड़ता है, धीर होना पड़ता है, स्थिर होना पड़ता है, वह कठिन लगता है।'

एक समयकी पर्यायके पीछे अंतरमें जो ज्ञायक प्रभु विद्यमान है उसका अनादिसे अभ्यास नहीं होनेके कारण, उस ओर कभी दृष्टि नहीं दी इसलिये, उसमें जानेके लिये उपयोगको सूक्ष्म करना पड़ता है; ज्ञानधारा स्वको ग्रहण कर सके इसप्रकार सूक्ष्म होना पड़ता है।

मुनि भव्यसागरजीका पत्र आया है। लिखते हैं कि–बहिनकी वाणीका एक-एक शब्द मनन करने योग्य है; आपका साहित्य पढ़कर मुझे जो आनन्द हुआ है ऐसा अन्यत्र कहीं नहीं हुआ। प्रभु! मार्ग तो यह है, दुनियाको उसका अभ्यास नहीं है इसलिये कठिन लगता है, परन्तु यदि निज आत्माका हित करना हो तो उपयोगको सूक्ष्म बनाकर अभ्यास करना पड़ेगा।

प्रश्न:—तन्मयरूपसे रस होनेका क्या अर्थ है?

उत्तर:—'तन्मयरूपसे रस' होनेका अर्थ है उस ओर रुचिपूर्वक उपयोगका झुकाव; दोनों एक हो जाते हैं—ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

प्रभु! द्रव्यस्वभाव—चैतन्यबिम्ब—अंतरमें ज्ञान एवं आनन्द आदि अनन्त गुणोंसे भरपूर विद्यमान है, उसे पकड़ने—ग्रहण करनेके लिये ज्ञानके व्यापारको सूक्ष्म करना पड़ता है, भीतर ज्ञायकस्वभावमें जानेके लिये स्थिर–शांत होना पड़ता है। 'धी' अर्थात् बुद्धि, प्रज्ञा, उसे जो ज्ञायकस्वभावके प्रति प्रेरित करे उसे धीर कहते हैं। आनन्दकन्द ऐसी जो निज अखण्ड वस्तु उसे उपयोग-पर्यायमें ग्रहण करनेके लिये धीर होना पड़ता है, टिकना पड़ता है अर्थात् निष्कम्प स्थिरता करना पड़ती है; परन्तु जीवको उसका अभ्यास न होनेसे कठिन लगता है। भाई! निज ज्ञायकतत्त्वके अभ्यास बिना तेरे जन्म–मरणका अन्त नहीं होगा। अरेरे! कौए, कुत्ते और कीड़ोंके भव कर–करके अनन्तकाल गँवा दिया—यह सब भूल गया! भूल गया इसलिये यह सब नहीं था ऐसा कैसे कहा जाय? इस भवमें जन्म लेनेके बाद छह महीने तक माताने तुझे दूध पिलाया, नहलाया आदि सब वर्तमानमें याद नहीं है इसलिये क्या वह नहीं था? यह भवभ्रमण टालना हो तो उपयोगको सूक्ष्म करके, धीर होकर अंतरमें त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकको ध्येय बना। स्वसन्मुखताका अभ्यास नहीं होनेसे अंतरमें स्थिर होना अज्ञानीको कठिन लगता है।

'बाह्य कार्योंका अभ्यास है इसलिये सरल लगते हैं।'

आत्माका अभ्यास नहीं है, बाहरका अभ्यास है, इसलिये अज्ञानीको यह करूँ, वह करूँ, पुण्य करूँ, पाप करूँ, दयाका पालन और व्रतका आचरण करूँ—यह सब सरल लगता है। बाह्य कार्योंका अभ्यास होनेसे उसे वे सरल लगते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'तत्त्वज्ञानतरंगिणी'में ऐसा कथन है कि—सुन्दर शरीर, सम्पत्ति आदिका मिलना दुर्लभ है। क्योंकि उन्हें प्राप्त करनेमें आत्माका राग काममें नहीं आता, वे पूर्वके ऐसे कर्म हों तभी मिलते हैं; परन्तु भगवान आत्माका मिलना वह सुलभ है, क्योंकि वह तो अपनी वस्तु है, उसमें कोई कर्म सहायक हो तो मिले ऐसा नहीं है। अहा! कैसी बात! एक ओर कहते हैं बोधि—सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र—दुर्लभ है, तथा दूसरी ओर कहते हैं : पर वस्तु दुर्लभ है, क्योंकि अपने रागमय पुरुषार्थसे वह प्राप्त नहीं होती, वह तो पूर्वका पुण्य हो तो मिलती है। आत्माको प्राप्त करनेमें किसी बाह्य वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। वह तो अपनी वस्तु है, अपने उपयोगको सूक्ष्म करनेसे उसकी प्राप्ति होती है। अहा! प्रथम अपने ज्ञानमें निर्णय तो करे कि वस्तुका स्वरूप ऐसा है; इसके सिवा सब व्यर्थ है। अज्ञानीको परका तथा विभावका अध्यास होनेसे वह उसे सुलभ लगता है। ज्ञानीको अन्तर्मुख स्वतत्त्वका अभ्यास होनेसे उसे वह सुलभ लगता है; पर कदापि अपना नहीं हो सकता इसलिये दुर्लभ लगता है।

अरे! आठ–आठ वर्षके बालकोंको भी आत्मज्ञानसहित दीक्षा लेनेकी भावना जागृत होती है। दीक्षाकी आज्ञा माँगते समय मातासे कहते हैं:—

हे माता! हम आज ही धर्म अर्थात् चारित्रदशा अंगीकार करना चाहते हैं कि जो निर्ग्रन्थ चारित्रदशा धारण करके अब हम वापिस लौटनेवाले नहीं हैं, हमें दूसरा भव नहीं करना है। माता! इस संसारमें कौनसी वस्तु अप्राप्य रह गई है? स्वर्गके भव, सुन्दर शरीर, वज्रर्षभनाराचसंहनन आदि सब अनंतबार मिल चुका है, वह कोई नवीन वस्तुएँ नहीं है, अप्राप्य तो अंतरमें एक अपना आत्मा रह गया है। माता! उसकी श्रद्धा करो और हमारे प्रति जो राग है उसे छोड़ो। हम तो, जहाँ मनुष्यका पगरव भी न हो ऐसे घोर वनमें जाकर, आत्माकी पूर्ण साधना करेंगे।

प्रवचनसारके 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' अधिकारमें—जहाँ श्रमण होनेका इच्छुक पहले ही अपने सगे–सम्बन्धियोंसे विदा लेता है, बड़ोंसे, स्त्री और पुत्रोंसे अपनेको छुड़ाता है वहाँ—आता है कि 'हे इस पुरुषके शरीरकी रमणीके आत्मा! इस पुरुषके आत्माको तू नहीं रमाता ऐसा निश्चयसे जान। इसलिये इस आत्माको तू छोड़। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है ऐसा यह आत्मा आज स्वानुभूतिरूपी जो अपनी अनादि रमणी उसके पास जा रहा है।' चक्रवर्तीको या उनके पुत्रोंको पद्मिनी जैसी सुन्दर स्त्रियाँ होती हैं, परन्तु जहाँ अंतर आत्मानुभूतिके साथ विशेष वैराग्य जागृत हो वहाँ कह देते हैं कि–हे स्त्री! अब मुझे भीतर विषयका राग मिट गया है, तुम भी मेरे प्रति जो राग है उसे छोड़ दो, मैं रागसे मर गया हूँ, तुम्हारे प्रति जो राग था उसे मैंने मार डाला है, अब तुम उसे किसीप्रकार जीवित नहीं कर सकोगी। अहा, धन्य वैराग्य!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ कहते हैं कि बाह्य कार्योंका अभ्यास है इसलिये सरल लगते हैं।

'लेकिन जब भी कर तब तुझे ही करना है।'

भाई! यदि तुझे आत्माका हित करना हो तो तुझे स्वयं भीतर ज्ञायकमें जाना पड़ेगा, अन्य कोई उपाय नहीं है। भीतर भगवान आत्मा विराजता है वहाँ दृष्टि ले जा, अनादिसे जो दृष्टि बाह्यमें—निमित्तों और रागादिमें—भटकती है वह व्यभिचारिणी है, उसे स्वगृहमें ला और ज्ञायकपतिमें लगा दे। दृष्टिको स्वभावमें जोड़नेका कार्य जब भी कर तब तुझे स्वयं ही करना है, देव–गुरु आदि कोई निमित्त नहीं कर देते। निर्जरा अधिकार (समयसार)में कहा है:—जो वर्णादिक गुणस्थानपर्यंत भाव हैं वे सब आत्मामें अनियत, अनेक, क्षणिक, व्यभिचारी भाव हैं। जो यह स्वसंवेदनरूप ज्ञान है वह नियत है, एक है, नित्य है, अव्यभिचारी है। आत्मा स्थायी है और यह ज्ञान भी स्थायी भाव है इसलिये वह आत्माका पद है। वह एक ही ज्ञानियों द्वारा आस्वाद लेने योग्य है।

अनुभूतिस्वरूप त्रैकालिक आत्मा—जो अनादि-अनन्त नित्य-उदयरूप विज्ञानघन-स्वभावभावपनेके कारण एक है, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरणस्वरूप सर्व कारकोंके समूहकी प्रक्रियासे पार उतरी हुई जो निर्मल अनुभूति, उस अनुभूतिमात्रपनेके कारण शुद्ध है—वही मैं हूँ ऐसा अभ्यास जब कर तब तुझे ही करना है। आता है कुछ समझमें? भाई! सत्यमार्ग समझनेको मिलना कठिन है, धर्मके बहाने भी ठगाई चल रही है। अहा! मेरा त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यस्वभाव दुःखकी पर्यायसे तो स्वरूपभेदसे भिन्न है ही परन्तु अंतरमें जो निर्मल आनंदकी पर्याय प्रगट होती है उतना भी मैं नहीं हूँ, मेरा ध्रुव द्रव्य एक समयकी पर्यायरूप नहीं हो जाता। पर्यायका लक्ष छोड़कर त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभाव आश्रय करने योग्य है। ऐसी बातें हैं!

अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्माको ग्रहण करना वह तेरा काम है; जब भी कर वह तुझे स्वयं ही करना है; दूसरा कोई सहायक हो अथवा गुरुकी कृपा हो जाय तो ज्ञायकोन्मुख होनेका कार्य हो—ऐसा नहीं है।

*

वचनामृत–२७२

जो खूब थका हुआ है, द्रव्यके सिवा जिसे कुछ चाहिये ही नहीं, जिसे आशा–पिपासा छूट गई है, द्रव्यमें जो हो वही जिसे चाहिये, वह सच्चा जिज्ञासु है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य जो कि शान्तिमय है वही मुझे चाहिये—ऐसी निस्पृहता आये तो द्रव्यमें गहरा जाय और सब पर्यायें प्रगट हों। २७२.

'जो खूब थका हुआ है, द्रव्यके सिवा जिसे कुछ चाहिये ही नहीं, जिसे आशा–पिपासा छूट गई है, द्रव्यमें जो हो वही जिसे चाहिये, वह सच्चा जिज्ञासु है।'

शुभ और अशुभभावके असंख्य प्रकार हैं। वे विभावभाव करके जिसे थकान आ गई हो, उनमें कहीं आत्माका विश्राम नहीं लगा हो, ऐसे जिज्ञासुके लिये यह बात है। अपने ज्ञायक आत्माके सिवा जगतकी अन्य सर्व वस्तुओं परसे जिसका प्रेम हट गया है, परवस्तुकी जिसे आशा–पिपासा छूट गई है ऐसे आत्मार्थी जीवका यहाँ स्वरूप बतलाया है। श्री आनन्दघनजीने कहा है न!—

आशा औरनकी क्या कीजे, ज्ञान-सुधारस पीजे; आशा०
भटकत द्वार-द्वार लोगनके, कूकर आशाधारी;
आतम अनुभवरसके रसिया, उतरे न कबहुँ खुमारी। आशा०

भाई! परकी आशा छोड़ दे और भगवान आत्माके निर्विकल्प ज्ञान-सुधारसका पान कर। दुनिया मुझे माने या न माने, जाने या न जाने, मुझे किसी प्रकारकी आशा नहीं है, सब आशा–पिपासा छूट गई है। वस्तुमें जो है—अनन्त ज्ञान, असीम अपरिमित आनन्दादि अनन्त गुणवैभव—वही मुझे चाहिये ऐसी जिसे अंतरंग भावना है वह सच्चा जिज्ञासु है।

आत्माके ज्ञानादि गुणोंकी संख्या अपरिमित है। अहा! अपरिमित किसे कहा जाता है? जैसे आकाशका दसों दिशाओंमें कहीं अन्त नहीं है, वैसे ही भगवान आत्मामें इतने–इतने अनन्त गुण हैं कि उनका गिनतीमें कोई अन्त नहीं है। द्रव्यमें जो हो—आनन्द–आनन्द–आनन्द ज्ञान–दर्शनादि अनन्त गुणवैभव—वही जिसे चाहिये वह सच्चा जिज्ञासु है। यदि अंतरमें किंचित् भी आशा रह जाय कि—मान मिले, दुनियाकी गिनतीमें गिना जाऊँ, तो तब तक अंतरकी वस्तु प्राप्त नहीं होगी।

'द्रव्य जो कि शान्तिवाला है वही मुझे चाहिये—ऐसी निस्पृहता आये तो द्रव्यमें गहरा जाय और सब पर्यायें प्रगट हों।'

भगवान आत्मा तो स्वभावसे शान्त शान्त शान्त, अकषाय वीतरागस्वरूप वस्तु है।

जेम निर्मलता रे रत्न स्फटिक तणी,
तेम ज जीवस्वभाव रे;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ते जिन वीरे रे धर्म प्रकाशियो,
प्रबल कषाय-अभाव रे। श्री सीमंधर.....

शान्त और अकषायस्वरूप निज ज्ञायक प्रभुका आश्रय करके जो अकषायपरिणति हुई वह धर्म है। अहा! ऐसी बातें! द्रव्य कहो या वस्तु कहो; जिसमेंसे पर्याय द्रवित हो वह द्रव्य है। पंचास्तिकायसंग्रहमें कहा है :

ते ते विविध सद्भावपर्ययने द्रवे-व्यापे-लहे,
तेने कहे छे द्रव्य, जे सत्ता थकी नहीं अन्य छे॥९॥

उन-उन क्रमभावी तथा सहभावी सद्भावपर्यायोंको अर्थात् स्वभाव-विशेषोंको जो द्रवता है—प्राप्त करता है—सामान्यरूप स्वरूपसे व्यापता है वह द्रव्य है। शुद्ध या अशुद्ध, स्वभाव या विभाव पर्यायोंको जो द्रवे उसे द्रव्य कहते है। भगवान आत्मा शरीर, वाणी, धंधा आदि परपदार्थोंकी क्रियाका कर्ता तो है ही नहीं, परन्तु पर्यायमें जो रागादि विभाव होते हैं वे भी ज्ञायक चैतन्यबिम्बमें नहीं हैं। अहा! यह तो बात ही कोई अलग है; दुनियाके साथ इसकी तुलना नहीं हो सकती। भगवान ज्ञायक द्रव्य तो शान्त है, रागादिसे भिन्न अकषायस्वरूप है। धर्मीको तो यह एक ही भावना होती है कि—मुझे तो अपने वीतराग शान्तस्वरूप भगवान आत्माकी ही आवश्यकता है। अहा! शान्त शान्त रस!

'उपशमरस वरसे रे प्रभु तेरे नयनमें।'

साधक जीवकी पर्यायमें उपशमरसके रेले उतरने लगते हैं वे आये कहाँसे? अंतरमें ज्ञायक वस्तु स्वयं उपशमरसका पिण्ड है; पर्यायमें जो विकल्प उठते हैं वह राग हैं, दुःख हैं; वे शान्तिमय द्रव्यस्वभावमें नहीं हैं। वह द्रव्य ही मुझे चाहिये, अन्य किसीकी आवश्यकता नहीं है—ऐसी निस्पृहता अंतरसे प्रगट हो तो आत्मामें गहरे उतरे और सर्व पर्यायें प्रगट हों। अहा! ऐसी बाते हैं!

दिगम्बर जैन मुनि श्री भव्यसागरजी अपने पत्रमें लिखते हैं : बहिनश्रीका एक-एक वचनामृत मनन करने योग्य है। अरे भाई! यह तो कोई वस्तु ही और है! द्रव्यस्वभावको ग्रहण करके अंतरमें गहरा उतरे तो शीघ्र आत्मानुभव हो—ऐसी यह वस्तु है। ज्ञानीको आत्माका अनुभव प्रगट हुआ है तथापि जबतक पर्यायमें पूर्ण वीतरागता प्रगट न हुई हो तबतक अस्थिरताके कारण दुःख भी है। स्वरूप तो पूर्णानन्दसे भरपूर है, परन्तु उसके अवलम्बनसे पर्यायमें पूर्ण आनन्द व्यक्त न हुआ हो, तबतक सम्यक्त्वी ज्ञानीको भी पर्यायमें आनन्द और दुःख दोनों हैं।

प्रश्न :—मिश्रधारा है?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :—हाँ, मिश्रधारा है। पर्याय एक, परन्तु उसके भाग दो। स्वके आश्रयसे जितना आनन्द प्रगट हुआ वह ज्ञानस्वरूप, और परके आश्रयसे जितना राग तथा दुःख है वह कर्मरूप—ऐसे एक पर्यायमें दो धाराएँ—दो भाग होते हैं।

प्रश्न :—ज्ञानी दुःखकी पर्यायको जानता तो है न?

उत्तर :—अपनी ज्ञाताधारासे च्युत हुए बिना, अस्थिरताके दुःखको जानना वह ज्ञानका स्वभाव है; अपना वेदन है न?

प्रश्न :—दुःखको पररूप जानता है?

उत्तर :—नहीं–नहीं; पररूपसे नहीं, अपनी पर्यायमें होता है ऐसा जानता है। प्रवचनसारके परिशिष्टमें ४७ नयोंका कथन है। उसमें एक कर्तृनय लिया है : 'आत्मद्रव्य कर्तृनयसे, रंगरेजकी भाँति, रागादि परिणामोंका कर्ता है।' गणधरदेव, जो कि महान सन्त हैं वे भी, अपनी पर्यायमें रागका विकल्प उठे उसका 'कर्ता मैं हूँ' ऐसा जानते हैं। वह राग करने योग्य है ऐसी बुद्धि नहीं है परन्तु वह अपने द्रव्यका परिणमन है, परका नहीं है, ऐसा बराबर जानते हैं।

चार ज्ञानके स्वामी गणधरदेव, अरे! छद्मस्थ तीर्थंकरदेव भी, अपनी पर्यायमें जितना रागांश है उतना दुःख है—ऐसा जानते–मानते हैं। जितना साधक दशाका विकास हुआ उतना सुख है और जितना रागांश है उतना दुःख है, उन दोनों अंशोंका अधिष्ठाता एवं भोक्ता आत्मा है। अहा! एक ओर कहते हैं कि आत्मा रागादिका स्वामी नहीं है और एक ओर कहते हैं कि आत्मा उसका अधिष्ठाता—स्वामी है। किस अपेक्षासे? जहाँ तक साधक दशा है वहाँतक पर्यायमें आनन्द भी है और राग भी है, दोनोंका अधिष्ठाता—आधार आत्मा है।

प्रश्न :—प्रवचनसार कर्तृनयके आधारसे हाँ कहता है, परन्तु समयसार तो ना कहता है न ?

उत्तर :—समयसार भी हाँ कहता है। आस्रव अधिकारमें कहा है : सम्यग्दृष्टि आत्मा सविकल्पदशामें हो या निर्विकल्प अनुभवदशामें हो—यथाख्यात-चारित्रदशा होनेसे पूर्व उसे अवश्य रागभावका सद्भाव होता है, और राग होनेसे बंध भी होता है। जबतक ज्ञानकी हीनदशा है तबतक दुःख है, यथाख्यातचारित्र नहीं है। जब दृष्टि और दृष्टिके विषयकी मुख्यता चलती हो तब, राग और दुःख आत्माका परिणमन नहीं है ऐसा कहा जाता है, परन्तु वह तो मुख्यताकी बात है; वैसे तो पर्यायमें अशुद्धता है, दुःख है, उसे छोड़कर अकेला शुद्ध है—ऐसा नहीं है।

आत्मा स्वभावसे शान्त शान्त शान्त है; वही मुझे चाहिये—ऐसी यदि अंतरसे निस्पृहता आये तो द्रव्यकी गहराईमें उतरे—तलमें जहाँ ध्रुव ज्ञायक भगवान विराजता है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वहाँ गहरे पर्याय जाय—और सर्व पर्यायें प्रगट हों। साधक दशा है तबतक ज्ञानादि पर्यायें अल्प हैं, परन्तु भीतर स्वभावका एकदम उग्र आश्रय ले तो समस्त पर्यायोंमें पूर्णता प्रगट हो; केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्दादि सब पूर्ण प्रगट हो।

*

* परमपूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका अपार उपकार *

हे परमकृपालु गुरुदेव! आपके अपार गुणोंका क्या वर्णन करूँ? आपके अनन्त उपकारोंका क्या वर्णन करूं? इस आत्माकी प्रत्येक पर्यायमें आपका असीम उपकार है। आपने इस भारतके जीवोंको जागृत किया है, अन्तरमें आत्मोन्मुख किया है।

हे गुरुदेव! आपके शुद्धात्मामें प्रगट हुई शुद्ध पर्यायोंकी—ज्ञान-विरक्त आदिकी—छाया आपके अन्तरमें तथा आपकी मुद्रामें छा गई थी।

हे गुरुदेव! आपके अन्तरमें चैतन्यरत्नाकर स्पर्शी सातिशय श्रुतज्ञानकी चमत्कारी सम्यक् पर्यायोंके जगमगाते ज्ञानदीपक प्रकाशित हो रहे थे; आपकी सातिशय वाणी चैतन्यदेवका अद्भुत चमत्कार बतलानेवाली थी।

हे गुरुदेव! आपका चैतन्यद्रव्य मंगलस्वरूप एवं मांगलिकता प्रगट करनेवाला तथा अलौकिक था, दिव्य था।

हे गुरुदेव! आपने एकाकी, निस्पृहता एवम् निर्भीकतासे अन्तरमें पुरुषार्थ कर आत्मरत्नको प्रगट करके भारतके जीवोंको उस सम्यक् मार्गमें निस्पृहता एवम् निर्भीकतापूर्वक अपने पराक्रमसे लगाया है, शास्त्रोंके तथा आत्मदेवके गम्भीर सूक्ष्म हार्द प्रकाशित किये हैं; उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, द्रव्यदृष्टि, ज्ञाता, कर्त्ता, अकर्त्ता, स्वानुभूतिकी निर्विकल्प दशा आदि चैतन्यकी अद्भुतताका वाणी द्वारा प्रकाश करके लाखों जीवोंको अन्तरदृष्टिका मार्ग बतलाया है, उस पन्थ पर लगाया है। आप भारतकी महान विभूति एवम् अजोड़ रत्न थे।

हे गुरुदेव! आपके उपकारोंका क्या वर्णन हो सकता है? वे तो हृदयपट पर अंकित हो गये हैं। इस दासके आत्मा पर आपका अनन्त उपकार है। आपकी सेवा-भक्ति अंतरमें बसी रहे। आपके चरणकमलमें इस दासके बारम्बार परम भक्तिसे नमस्कार हो।

—पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१०३

दिनांक २८-६-७८

वचनामृत–२७३

गुरुके हितकारी उपदेशके तीक्ष्ण प्रहारोंसे सच्चे मुमुक्षुका आत्मा जाग उठता है और ज्ञायककी रुचि प्रगट होती है, बारम्बार चेतनकी ओर—ज्ञायककी ओर झुकाव होता है। जैसे भक्तको भगवान मुश्किलसे मिले हों तो उन्हें छोड़ना अच्छा नहीं लगता, उसीप्रकार 'हे चेतन', 'हे ज्ञायक'—ऐसा बारम्बार अंतरमें होता रहता है, उसी ओर रुचि बनी रहती है; 'चलते फिरते प्रभुकी याद आये रे'—ऐसा बना रहता है। २७३.

'गुरुके हितकारी उपदेशके तीक्ष्ण प्रहारोंसे सच्चे मुमुक्षुका आत्मा जाग उठता है और ज्ञायककी रुचि प्रगट होती है, बारम्बार चेतनकी ओर—ज्ञायककी ओर झुकाव होता है।'

क्या कहते हैं? तीर्थंकरका और गुरुका—संत मुनिराजका—यह उपदेश है कि तेरी वस्तु भीतर जो चिदानन्द प्रभु है वह परके तथा रागके सम्बन्धरहित शुद्ध है। दृष्टिका विषय—शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु—रागसे रहित वीतरागस्वरूप है। जैनदर्शनके गुरुका हितकारी उपदेश ऐसा होता है कि–प्रभु! तेरा ज्ञायक भगवान तो परके सम्बन्धरहित अंतरमें है; अंतरमें तू वीतराग जिनबिम्बस्वरूप है, उसका आश्रय ले तो तुझे सम्यग्दर्शन तथा अतीन्द्रिय आनन्दका अंशतः अनुभव होगा। वहींसे धर्मका प्रारम्भ होता है। उसके सिवा लाख दया, दान, भक्ति, व्रत, तप कर, परन्तु वह सब राग है, धर्म नहीं है।

गुरु किन्हें कहते हैं?–कि जिन्हें रागसे भिन्न निज वीतराग ज्ञायक प्रभुका अनुभव हुआ हो तथा स्वरूपमें विशेष स्थिरतापूर्वक अंतरमें आनन्ददशा बढ़ गई हो ऐसे निर्ग्रन्थ मुनिराजको जैनधर्ममें गुरु कहा जाता है। वीतरागी मुनिराजका अथवा स्वानुभवी सम्यग्दृष्टिका उपदेश हितकारी है। उनके तीक्ष्ण प्रहारोंसे सच्चे मुमुक्षुका आत्मा अंतरसे जागृत हो उठता है। गुरु उपदेशमें कहते हैं : चारों अनुयोगोंका तात्पर्य वीतरागता है। भगवान! तेरा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वरूप अंदर वीतराग है न? यदि रागसे भेदज्ञान नहीं किया तो तूने क्या किया? अवसर चला जा रहा है और यह शरीर तो छूट जानेवाला है, वर्तमानमें शरीरसे तथा रागसे भिन्न निज ज्ञायक आत्माका भेदज्ञान नहीं करेगा तो फिर कब करेगा? इस शरीरके भीतर, किन्तु शरीरादिसे भिन्न, ज्ञान एवं आनन्दादि अपरिमित गुणोंका भण्डार पूर्ण ज्ञायक पदार्थ विराजता है; उसकी गम्भीरताका विचार तो कर कि वह क्या वस्तु है! लोकका अन्त है किन्तु अलोकका अन्त कहाँ है? वैसे ही क्षेत्रका स्वभाव यदि अचिन्त्य और आश्चर्यकारी है तो उसे जाननेवाले भगवान आत्माके ज्ञान एवं आनन्दादि अचिन्त्य महिमाका तो क्या कहना? शरीर और रागसे भिन्न होकर उस अपरिमित अभेद गुणसागर पर दृष्टि कर।–यह ज्ञानी गुरुका हितकारी उपदेश है। भेदज्ञान करानेके लिये दिये गये उपदेशके तीक्ष्ण प्रहारोंसे सच्चे मुमुक्षुका आत्मा अंतरसे जागृत हो उठता है और अंतरमें ज्ञायककी रुचि प्रगट होती है। समयसारमें आता है न!–

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥

अभी तक जो भी मुक्ति—सिद्धपदको प्राप्त हुए हैं वे सब भेदविज्ञानसे ही प्राप्त हुए हैं और जो बँधे हैं—संसारमें भटक रहे हैं वे सब भेदविज्ञानके अभावसे ही बँधे हैं। अहा! इन देहादि एवं रागादिकी क्रियासे बिलकुल भिन्न मैं केवल ज्ञायक ही हूँ—ऐसे भेदविज्ञानसे ही सबने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है, भेदविज्ञानसे ही चारित्र प्राप्त किया है और भेदविज्ञानसे ही केवलज्ञान–पूर्णदशाको प्राप्त हुए हैं। प्रभु! सहज अनंतज्ञान, सहज अनन्त आनन्दादि अपरिमित अनन्त गुणोंसे सदा परिपूर्ण ऐसे ध्रुव चैतन्यपिण्ड पर तू दृष्टि कर तो तुझे सम्यग्दर्शन—धर्मका प्रथम सोपान—प्रारम्भ होगा। उसके बिना सब—शास्त्राभ्यास, भक्ति, व्रतादिकी क्रिया आदि थोथे हैं।

गुरुका ऐसा उपदेश सुनकर जिसे आत्मप्राप्तिकी तीव्र अभिलाषा है ऐसे सच्चे आत्मार्थीका आत्मा भीतरसे जाग उठता है। समयसारकी पाँचवीं गाथामें श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने—नग्न दिगम्बर वीतराग संतने—कहा है : 'तं एयत्तविहत्तं दाएहं आपणो सविहवेण' एकाध भवमें पूर्ण परमात्मस्वरूप होनेकी योग्यतावाले वे महान संत कहते हैं कि 'मैं अपने आत्माके आनन्दझरते निजवैभव द्वारा आत्माके उस एकत्व-विभक्त स्वरूपको कहूँगा।' मैंने मात्र सुना है इसलिये मैं कहूँगा—ऐसा नहीं, परन्तु मैं अपने स्वानुभवप्रत्यक्षप्रमाणसे कहूँगा। हे श्रोता! तू भी उसे अपने स्वानुभव-प्रत्यक्षसे प्रमाण करना—स्वीकार करना। अहा! देखो तो दिगम्बर सन्तोंकी यह वाणी! है कहीं ऐसी बात? लोगोंने सुनी नहीं है कि यह कैसी वस्तु है? 'नागा बादशाह थी आघा'—नग्न दिगम्बर मुनिराज बादशाहसे भी ऊँचे हैं, श्रेष्ठ हैं, अधिक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं; उन्हें किसीकी परवाह नहीं है, समाजको अच्छा लगेगा या नहीं उसकी उन्हें कोई परवाह नहीं है। अहा! ऐसा मार्ग है।

जैनदर्शन समझना वह कोई अलौकिक वस्तु है। सम्प्रदायमें जन्म लिया इसलिये 'जैन' हो गये ऐसा नहीं है। मन्दिर, पूजा, भक्ति, स्वाध्याय अथवा व्रतादिसे धर्म नहीं है; धर्म तो अंतरमें देहादि एवं रागादिसे भिन्न निज ज्ञायक प्रभुका भेदज्ञान करनेसे होता है;—गुरुके ऐसे हितकारी उपदेशके तीक्ष्ण प्रहारोंसे मुमुक्षुका आत्मा अंतरसे जागृत हो जाता है कि 'अरे! मैं तो ज्ञायक चैतन्यमूर्ति हूँ।' देखो न, क्षणमें आयु पूर्ण हो जाती है, यह शरीर छोड़कर जीव अन्य भवमें चल जाता है, संयोगी वस्तु तो पृथक् होगी ही न? माताके पेटसे बच्चा बाहर आया; माता उसे देखे उससे पूर्व ही वह मर भी जाता है। माताकी गोदमें आनेसे पूर्व ही वह अनित्यताकी गोदमें आ चुका है। संयोग हुआ वह वियोगको लेकर ही आया है। भाई! यह शरीर तो क्षणभंगुर है, एक क्षणमें छूट जायगा, उसे रखनेके लाख उपाय करे, बड़े–बड़े डॉक्टरोंको बुलाये, करोड़ों रुपये खर्च करे–वह सब व्यर्थ है।

प्रभु! तेरी ज्ञायक वस्तु भीतर भगवान स्वरूपमें विद्यमान है वहाँ एकबार तो देख! वहाँ अपनी प्रभुता पर दृष्टि तो डाल! पामरताके ऊपर—दया पालन की, भक्ति की, पूजा की ऐसे रागके ऊपर—तो तेरी दृष्टि अनादिसे है; वह दृष्टि तो मिथ्यादृष्टि है ही परन्तु एक समयकी पर्याय, अल्पज्ञता अथवा गुणभेदकी जो दृष्टि है वह भी पर्याय-मूढ़ता है। अहा भगवान! तू तो पूर्णानन्दका नाथ अंतरमें विराजता है न! जैसे कोई महान पुरुष—राजा या नगरसेठ—मिलने आया हो उस समय उसकी ओर आदर–सन्मान करनेका भाव प्रदर्शित न करे और बच्चोंके साथ खेलकूदमें लग जाय तो वह पुरुष चला जाता है; वैसे ही भगवान ज्ञायक आत्मा जहाँ एक समयकी पर्याय है वहीं समीप ही विराजमान है, परन्तु उसकी ओर ध्यान न देकर तू राग और पुण्यके साथ खेलमें लग गया है, उसमें तेरा समय व्यतीत हो गया। 'सज्झायमाला'में आता है न?—

एक रे दिवस एवो आवशे, जाणे जन्यो ज नो'तो जी.....
सगी नारी रे तारी कामिनी, ऊभी टगटग जोवे जी,
आ रे कायामां हवे कांई नथी, धुसके धुसके रोवे जी....एक रे०

—वह तो अपनी अनुकूलता छूट जाती है इसलिये रोता है; वह मरकर कहाँ गया—नरकमें या पशुगतिमें—उसकी रोनेवालोंको कहाँ चिन्ता है? उन्हें खबर या विचार भी कहाँ है? वह व्यक्ति मरकर कहाँ गया उससे भी उन्हें कहाँ कुछ लेना–देना है! वे तो अपनी सुविधा छिन गई है इसलिये रोते हैं। यहाँ कहते हैं कि–गुरुके हितकारी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपदेशकी जोरदार चाबुकोंसे सच्चे मुमुक्षुका आत्मा अंतरसे जागृत हो उठता है, रागकी रुचि छूटकर पूर्णानन्दस्वरूप ज्ञायकप्रभुकी रुचि जम जाती है—दृढ़ हो जाती है। यह धर्मका प्रारम्भ है। उसके बिना सब—शास्त्रोंका ज्ञातृत्व और बाह्य क्रियाकाण्ड—थोथा है। जहाँ चैतन्यस्वरूप भगवान आत्माकी रुचि हुई वहाँ उसका झुकाव बारम्बार उस ओर होता है, बारम्बार उसकी वृत्ति चेतनकी ओर—ज्ञायककी ओर जाती है।

"जैसे भक्तको भगवान मुश्किलसे मिले हों तो उन्हें छोड़ना अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार 'हे चेतन', 'हे ज्ञायक'—ऐसा बारम्बार अंतरमें होता रहता है, उसी ओर रुचि बनी रहती है; 'चलते-फिरते प्रभुकी याद आये रे'—ऐसा बना रहता है।"

सूरदासने कृष्णका हाथ पकड़ा; कृष्ण हाथ छुड़ाकर अदृश्य हो गये। सूरदास कहते हैं—प्रभु! आप मेरा हाथ छुड़ाकर चले गये, परन्तु यदि मेरे हृदयसे चले जाओ तो तुम्हें शक्तिशाली मानूँगा! आप मेरे हृदयमें उत्कीर्ण हो गये हो, वहाँसे आप कभी निकल नहीं सकते। उसीप्रकार परमानन्दका नाथ ज्ञायक प्रभु जिसे अंतरंग रुचिपूर्वक लक्षगत हुआ हो उसे तो 'हे चेतन', 'हे ज्ञायक'–ऐसा एक ही रटन रहता है; चलते–फिरते, खाते–पीते उसे एक 'हरि'की–निज चैतन्य प्रभुकी—ही लगन होती है। अन्य मतमें आता है न—

चलते–फिरते प्रगट हरि देखूँ रे, मेरा जीवन सफल तब लेखूँ रे;
मुक्तानन्दका नाथ विहारी रे, वही जीवन डोरी हमारी रे।

इस देह-मन्दिरमें भीतर विराजमान निज ज्ञायकदेव वह अपना 'हरि' है, दूसरा कोई नहीं। आनन्दनिधान ज्ञायक प्रभुका आश्रय ही मुमुक्षुका जीवन है; रागसे जीवित रहना वह कोई आत्माकी वस्तु नहीं है। मुमुक्षुको चलते–फिरते ज्ञायक, ज्ञायक और ज्ञायककी धुन लगी रहती है।

*

वचनामृत–२७४

अनन्तकालमें चैतन्यकी महिमा नहीं आयी, विभावकी तुच्छता नहीं लगी, परसे और विभावसे विरक्तता नहीं हुई, इसलिये मार्ग नहीं मिला।।२७४।।

सर्वज्ञ परमात्माने भीतर जो आत्मा देखा वह तो पूर्णानन्दका नाथ है। उस चैतन्य ज्ञायककी सच्ची महिमा अनन्तकालमें नहीं आयी, विभावकी—पुण्य-पापके विकल्प, दया–दान–भक्ति आदि शुभभावोंकी—तुच्छता भासित नहीं हुई, इसलिये अंतरमें मार्ग नहीं मिला।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनन्तबार दिगम्बर मुनि हुआ, 'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।'—आत्मप्रतीतिके बिना किंचित् सुख प्राप्त नहीं हुआ। श्रीमद् राजचन्द्रजीने भी कहा है:—

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लियो;
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो।

*

सब शास्त्रनके नय धारि हिये, मतमंडन खंडन भेद लिये;
वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।

पंच महाव्रत एवं नियमादि अनन्तबार धारण किये, इन्द्रिय-दमन अनन्तबार किया, बाल ब्रह्मचारी अनन्तबार हुआ; बाह्य विषयोंसे उदास उदास उदास, परन्तु चैतन्य ज्ञायककी महिमा लाकर अंतर्मुख नहीं हुआ। 'अब क्यों न विचारत है मनसे, कछु और रहा उन साधनसे।' पंचमहाव्रत एवं इन्द्रिय-दमनादिको साधन माना, परन्तु भाई! आत्माको प्राप्त करनेकी कला तो कोई और ही है!

परसे तथा विभावसे विरक्ति नहीं हुई इसलिये अंतरमें आत्माका मार्ग नहीं मिला। शरीर, स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी और देव-शास्त्र-गुरु आदि पर पदार्थ हैं तथा उनके लक्षसे भीतर परिणाममें होनेवाले अशुभ तथा शुभभाव विभाव हैं; उनके ओर रुचि की परन्तु स्वभावकी रुचि नहीं की; उनमें रत रहा परन्तु उनसे विरक्ति नहीं की। रागकी क्रियामें—दया, दान, व्रत, तीर्थयात्रा आदिके परिणाममें—महत्ता लगी, परन्तु अंतरमें अपने ज्ञायकप्रभुकी महत्ता भासित नहीं हुई, इसलिये अंतरका सच्चा मार्ग नहीं मिला। भले पच्चीस, पचास या सौ बार गिरनारकी अथवा सम्मेदशिखरकी यात्रा कर आये परन्तु उससे आत्माको क्या मिला? वह तो शुभराग है, धर्म या मोक्षका मार्ग नहीं है। सम्मेदशिखरकी यात्राके सम्बन्धमें कहा जाता है कि—एकबार वन्दे जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहिं होई।' परन्तु उसमें क्या? यात्राके समय शुभभाव हो तो सीधा नरक या पशुगतिमें नहीं जाता, परन्तु 'शुभभावसे मुझे धर्म होगा' ऐसा भ्रम होनेसे भवभ्रमण तो ज्योंका त्यों बना रहेगा। वास्तवमें तो आनन्दका नाथ और समताका सागर ऐसे निज ज्ञायक आत्माके अनंत गुणोंकी निर्मलताकी पराकाष्ठा—शिखर पर आरूढ़ होना सो संमेदशिखरकी यात्रा है। निचली भूमिकामें सम्मेदशिखर आदि तीर्थस्थानोंकी यात्राका भाव आता है वह सत्य है, परन्तु है तो वह शुभराग और पुण्यबंधका कारण; अशुभसे बचनेके लिये ऐसे भाव आते हैं, परन्तु वह धर्म नहीं है।

यह मेरे स्त्री, पुत्र एवं परिवार तथा देव, शास्त्र और गुरु—इन परपदार्थोंकी रुचिकी बात तो कहीं दूर रही, परन्तु श्री नियमसारमें तो यहाँ तक कहा है कि—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जे चित्त जोड़े द्रव्य-गुण-पर्यायकी चिंता विषे,
तेनेय मोहविहीन श्रमणो, अन्यवश भाखे अरे!

जो जीव अपने द्रव्य, गुण और पर्यायोंके विकल्पमें रुकता है वह भी रागसे विरमा नहीं है; वह भी अन्यवश—रागवश होनेसे उसको आवश्यकस्वरूप कर्म नहीं है। शुभ विकल्प कहीं अवश्य करने योग्य क्रिया नहीं है, वह धार्मिक क्रिया नहीं है। अंतर आनन्दके नाथमें एकाग्र होना वह वास्तवमें आवश्यक—अवश्य करने योग्य—कर्म है। स्वरूपमें एकाग्रतारूप निर्मल दशाको ही वास्तवमें सामायिक, स्तवन, प्रतिक्रमणादि आवश्यक कहे जाते हैं।

*

वचनामृत–२७५

पंचमकाल है इसलिये बाहर फेरफार होता है, परन्तु जिसे आत्माका कल्याण करना है उसे काल बाधक नहीं होता।२७५.

कुछ लोग कहते हैं—'हमें धर्म करना है, लेकिन क्या करें? पंचमकाल है इसलिये अंतरका पुरुषार्थ नहीं चलता।' भाई! काल किसे बाधक होता है? जिन्हें अपना कल्याण करना है उन्हें किसीको काल बाधक नहीं है। श्रीमद्ने कहा है–

यदि इच्छो परमार्थ तो, करो सत्य पुरुषार्थ;
भवस्थिति आदि नाम ले, मत छेदो आत्मार्थ।

भाई! भवस्थिति पकेगी या काललब्धि आयगी तब मुक्ति होगी ऐसी बातें छोड़ दे; अंतरस्वभावोन्मुख होनेका पुरुषार्थ कर तो तेरी काललब्धि आदि सब आ जायँगे। पंचमकाल है इसलिये बाहर फेरफार होता है; भले हो, परन्तु जिसे आत्माका कल्याण करना है उसे काल कहीं बाधक–साधक नहीं है। चौथे कालमें भगवानके समवसरणमें भी जो सम्यग्दर्शन नहीं प्राप्त किया वह यहाँ पंचमकालमें हो सकता है। अरे! तीसरे नरकके नारकीको परमाधामी—असुरकुमारके देव—लोहेकी धधकती हुई सलाखें बाँधकर ऊपरसे घनोंकी चोटें मारते हैं उस समय भी वह सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है। बाहरी काल या कोई वस्तु भीतर आत्माका कार्य करनेमें बाधक नहीं होती।

अहा! वीतराग परमेश्वरका मार्ग कोई अद्भुत है। वीतराग परमात्माके सिवा अन्यत्र कहीं यह बात है ही नहीं। अरेरे! 'अपनी नजरके आलससे मैंने देखा न हरिको कभी।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अज्ञान और राग-द्वेषका नाश करे सो हरि। भाई! तेरी दृष्टि राग और पर्यायमें लगी है, परन्तु भीतर रागका नाश करनेवाला भगवान आत्मा विराजता है वहाँ नहीं जाती। अन्तर्दृष्टि नहीं करता और बाहर कालादिका द्वेष निकालता है! चाहे जैसी भीषण प्रतिकूलताके प्रसंगमें भी जीव अन्तर्मुख होनेका पुरुषार्थ करे तो अवश्य सम्यग्दर्शन हो सकता है। उसे काल, शरीरकी कठिन व्याधियाँ या वध–बन्धनादि कोई बाह्य प्रतिकूलताएँ आत्मसन्मुख होनेमें नहीं रोकतीं; अन्तर्मुख दृष्टि करनेमें कोई विघ्न नहीं डालतीं। अंतरमें आनन्दमूर्ति भगवान ज्ञायकदेव विद्यमान है—जागता जीव खड़ा है—उसपर दृष्टि करनेमें बाह्य प्रतिकूलता बाधक नहीं होती और बाह्य सुविधा—देव-शास्त्र-गुरु—सहायक होती है ऐसा भी नहीं है। जब करे तब अपने अंतर्मुख पुरुषार्थसे ही धर्मरूपी कार्य साधना है।

*

वचनामृत–२७६

'शुभाशुभ भावसे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ' यह प्रत्येक प्रसंगमें याद रखना। भेदज्ञानका अभ्यास करना ही मनुष्यजीवनकी सार्थकता है। २७६.

"शुभाशुभ भावसे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ' यह प्रत्येक प्रसंगमें याद रखना।"

'ज्ञान' लक्षणसे जाननेमें आता यह भगवान आत्मा शरीर, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके विषय और कर्मसे तो बिलकुल भिन्न है ही, परन्तु भीतर जो स्वाध्याय, पठन–मनन, दया, दान, व्रतादिके शुभभाव तथा विषय, कषाय, हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मादिके अशुभभाव होते हैं उनसे भी भिन्न है; वे विभावभाव आत्माका मूलस्वरूप नहीं हैं। अहा! यह बात कैसे बैठे? भाई! त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ भगवानकी यह वाणी है। भगवानने नवतत्त्व कहे हैं न?—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष। उनमें शुभभाव तो पुण्यतत्त्वमें और अशुभभाव पापतत्त्वमें जाता है। आत्मा तो नवों तत्त्वोंसे भिन्न सहज ज्ञायकतत्त्व है।

अरे! वणिकोंको व्यापार-धंधेमें यह बात सुननेका अवकाश ही नहीं मिलता! यह करना है और वह करना है—इसप्रकार सारे दिन जगतको पापके धंधे! कभी एकाध घन्टा धर्म सुनने जायँ तो उपदेशक मिथ्या उपदेश देते हैं कि—व्रत करो, तप करो, भक्ति करो, तुम्हारा कल्याण हो जायगा। किन्तु भाई! वह सब तो कषायकी मन्दता की हो तो शुभराग है। राग करनेकी आज्ञा वीतरागकी नहीं है। उनकी तो आज्ञा है कि—हमने अपने ज्ञायक स्वभावके अवलम्बनसे वीतरागता प्राप्त की है, और तुमसे भी दयादिके रागसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भिन्न निज ज्ञायक स्वभावका अवलम्बन लेनेको कहते हैं।

शुभाशुभ रागभाव अत्यन्त अशुचि हैं, विपरीत स्वभाववाले हैं तथा दुःखरूप हैं; भगवान ज्ञायक आत्मा अत्यन्त पवित्र है, अविरुद्धस्वभावी है और सुखरूप है। त्रैकालिक ज्ञायक द्रव्य रागका कारण भी नहीं है और कार्य भी नहीं है। रागकी मन्दता हो तो सम्यग्दर्शनरूप कार्य होता है—ऐसा नहीं है। अहा! ऐसी बात है। लोगोंके दिमाग फिर जायँ ऐसा है! किन्तु भाई! भगवानकी दिव्यध्वनिमें आत्माका स्वरूप इसी प्रकार आया है। भगवानने तुझे 'भगवान' कहकर बुलाया है, आचार्यदेवने पामरको प्रभुके रूपमें सम्बोधन किया है। यह बात सुनकर जगतकी तमाम रुचि उड़ जाय ऐसा है। अहा! शुभाशुभ भावोंसे भिन्न मैं सदा ज्ञायक ही हूँ—यह प्रत्येक प्रसंगमें याद रखना चाहिये, भीतर परिणमनमें वह घुँट जाना चाहिये।

'भेदज्ञानका अभ्यास करना ही मनुष्यजीवनकी सार्थकता है।'

रागसे भिन्न होनेका अभ्यास अंतरमें करते रहना यही इस मनुष्यजीवनका महान कर्त्तव्य है; यदि भेदज्ञानका अभ्यास नहीं किया तो यह दुर्लभ मनुष्यभव व्यर्थ चला जायगा। पुण्यके योगसे बाह्यमें दस-बीस करोड़—धूल मिल जाय उससे तुझे क्या मिला? वे तो सब पुद्गलके खेल हैं। लक्ष्मी आदिसे तो तू अत्यन्त भिन्न ही है, किन्तु शुभाशुभ रागसे भी तू पृथक् है। ऐसा अंतरमें भेदज्ञानका अभ्यास रखना। उसीमें तेरे मनुष्यजीवनकी सार्थकता है।

*

ज्ञायकको जानना, उसकी महिमा करना, उसका अभ्यास करना तथा उसमें लीनता करना। वह करनेसे चैतन्य प्रगट होनेके पश्चात्—चैतन्यकी अद्भुत दशा प्रगट होने पर—भेदज्ञानकी धारा सहज वर्तती है। वह दशा प्रगट करने जैसी है, वही जीवनका कर्तव्य है, वही गुरुदेवने बतलाया है। ऐसे शुद्धात्माको दरशानेवाले गुरुदेव थे। गुरुदेवकी जितनी महिमा की जाय उतनी अल्प है।

—बहिन श्री चम्पाबेन.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१०४

दिनांक २६-६-७८

वचनामृत–२७७

परसे विरक्तता नहीं है, विभावकी तुच्छता नहीं लगती, अंतरमें इतनी उत्कंठा नहीं है; फिर कार्य कहाँसे हो? अंतरमें उत्कंठा जागृत हो तो कार्य हुए बिना रहता ही नहीं। स्वयं आलसी हो गया है। 'करूँगा, करूँगा' कहता है परन्तु करता नहीं है। कोई तो ऐसे आलसी होते हैं कि सोते हों तो बैठते नहीं हैं और बैठे हों तो खड़े होनेमें आलस्य करते हैं; उसीप्रकार उत्कंठारहित आलसी जीव 'कल करूँगा, कल करूँगा' ऐसे मन्दरूप वर्तते हैं; वहाँ कलकी आज नहीं होती और जीवन समाप्त हो जाता है।२७७।

'परसे विरक्तता नहीं है, विभावकी तुच्छता नहीं लगती, अंतरमें इतनी उत्कंठा नहीं है, फिर कार्य कहाँसे हो?'

शरीर, वाणी, स्त्री, पुत्र, परिवार, धन-सम्पत्ति आदि परद्रव्य हैं, उन्हें प्राप्त करना या उनकी रक्षा करना वह आत्माके हाथकी बात नहीं है, तथापि उनके पीछे सारा जीवन बीत जाता है। आत्मा परद्रव्यसे अत्यन्त भिन्न है ऐसा लक्ष नहीं होनेसे उनसे विरक्ति नहीं होती। परसे—सारी दुनियासे—विरक्ति आ जाना चाहिये; यदि परसे विरक्ति न हो तो अन्तरोन्मुखताका कार्य कहाँसे होगा?

धर्म तो सबके लिये सरल है, परन्तु समझे उसके लिये न? इस शरीरका प्रत्येक परमाणु स्वयं 'सत्' है, अपने उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्ययुक्त है। जैसे शरीरके वैसे ही कर्मके तथा जगतके सर्व पदार्थोंके परिणाम इस आत्मासे अत्यन्त भिन्न हैं; आत्मा उन्हें कर नहीं सकता, रख नहीं सकता या भोग नहीं सकता; परन्तु अज्ञानी जीव मानता है कि शरीरको बराबर रख सकता हूँ, धन कमाता हूँ, विषयोंका उपभोग कर सकता हूँ। अरे भाई! शरीर, स्त्री, लक्ष्मी आदि समस्त परपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रुवतारूप अपने परिणामोंको स्वयं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करते हैं तथा तेरा आत्मा अपने परिणामोंको स्वयं करता है। एक-दूसरेके बीच कोई कर्त्ता–कर्मका सम्बन्ध है ही नहीं, तो फिर तू उनका क्या कर सकता है? 'मैं उनका करता हूँ, उन्हें प्राप्त करता हूँ—रखता हूँ' ऐसा मात्र अज्ञानजनित अभिमान कर सकता है। प्रत्येक पदार्थकी पर्याय उसके अपने कारणसे होती है ऐसा तात्त्विक ज्ञान न होनेसे जीवको परसे विरक्ति नहीं होती। यदि परसे विरक्ति नहीं है तो आत्मोन्मुख होनेका कार्य कहाँसे होगा? रुचि बाह्यमें ही लगी रहेगी।

प्रश्न :—आत्मा परके कार्यमें निमित्त तो है न?

उत्तर :—'निमित्त है' उसका अर्थ क्या? निमित्त अर्थात् भिन्न पदार्थ। सामनेकी वस्तुमें अपने उपादानकारणसे पर्याय होती है तब उसके अनुकूल उपस्थित पदार्थको निमित्त कहा जाता है; उसके कारण सामनेकी वस्तुमें कार्य—पर्याय—होता है ऐसा उसका अर्थ नहीं है। अहा! बड़ा कठिन काम है भाई! अनन्तकालमें ऐसा अमूल्य मनुष्यभव प्राप्त हुआ उसमें यदि आत्माको पहिचाननेका कार्य नहीं किया तो यह भव भी व्यर्थ चला जायगा। बच्चोंका किया, स्त्रीका किया, व्यापार-धंधा किया—उन्हींमें पाप कर–करके मर गया—अरेरे! मोहने मार डाला। किसके पुत्र और किसकी स्त्री? प्रत्येक पदार्थ पृथक् और स्वतंत्र है।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि—यदि भीतरसे शरीर, स्त्री, पुत्रादि परपदार्थोंसे विरक्ति नहीं है तो अंतरमें–स्वभावमें जानेका अवकाश कहाँसे होगा? नहीं हो सकता। यह शरीर है वह तो पुद्गलकी–मिट्टीकी–पर्याय है; उसमें मिट्टी (पुद्गल) ध्रुवरूप रहकर उसके उत्पाद-व्यय होते हैं। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' है न? शरीर एवं कर्मरूप परिणमित हुए पुद्गलोंके उत्पाद-व्यय तथा ध्रौव्यसे यह भगवान आत्मा पृथक् है–बिलकुल भिन्न है। भीतर राग-द्वेष और दुःखकी पर्याय होती है वह भी, आत्माकी वर्तमान क्षणिक दशामें होती है तथापि, ज्ञानस्वभावसे स्वरूपमें बिलकुल भिन्न है। उस विभावपरिणमनसे भिन्न ऐसे सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज आनन्दादि अनन्त गुणस्वभावी त्रैकालिक ध्रौव्यमें जबतक रुचि न हो तबतक उसकी दृष्टि यथार्थ नहीं होती। भाई! जीवन चला जा रहा है, मृत्युका क्षण निकट आता जा रहा है। माता मानती है कि मेरा पुत्र बड़ा हो रहा है परन्तु वास्तवमें तो वह प्रतिक्षण मृत्युके निकट पहुँच रहा है।

अरेरे! जीवको क्षणभंगुर संयोगोंसे विरक्ति नहीं होती, विभावकी तुच्छता नहीं लगती, अंतरमें इतनी उत्कंठा नहीं है; आत्मार्थका कार्य कहाँसे हो? यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शनकी बात है। सम्यग्दर्शन हुआ तो अतीन्द्रिय आनन्दके अंशका अपूर्व स्वाद आया। वहाँ जो राग–द्वेष, पुण्य–पाप और दुःखादि विभाव उत्पन्न होते हैं उनकी ज्ञानीको अत्यन्त तुच्छता लगती है। ज्ञानी जानते हैं कि जितना दुःखका वेदन है वह मुझमें और मेरे कारणसे है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथापि—एक ही पर्यायमें साथ होने पर भी—ज्ञानभाग भिन्न है और विभावभाग भिन्न है। अहा! यह मार्ग तो भाई! शान्ति एवं धैर्यका है। शास्त्र पढ़कर धारणा बना ले वह कोई वस्तुकी दृष्टि हो गई—ऐसा नहीं है। दृष्टि सम्यक् हुई हो तो उसको साथमें विवेक भी होना चाहिये कि—मुझमें आनन्द भी प्रगट हुआ है और दुःख भी मुझमें है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानीको, अस्थिरताकी अपेक्षा भी, दुःखका वेदन होता ही नहीं—ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है, उसे साधकदशाके स्वरूपकी खबर नहीं है।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि विभावकी तुच्छता लगे बिना भीतर स्वरूपमें नहीं पहुँचा जाता। विभावकी तुच्छता लगे, अंतरमें स्वभावकी उत्कंठा जागृत हो, तब आत्माका कार्य होता है।

'अंतरमें उत्कंठा जागृत हो तो कार्य हुए बिना रहता ही नहीं।'

अरे! शास्त्रोंकी जानकारी वह भी परलक्षी ज्ञान है, वह कहीं धर्म नहीं है। शास्त्रोंकी जानकारीसे भी मेरी वस्तु कोई भिन्न है—ऐसी अंतरकी सच्ची उत्कंठा जागृत हो तो आत्माका यथार्थ अंतर्लक्ष हुए बिना रहेगा ही नहीं। अहा! अंतरमें जो चैतन्यस्वरूप भगवान आनन्दकन्द विराजमान है उसका तो लक्ष है नहीं और दया–दानादि शुभभावोंकी अंतरंग महिमा है, परसे विरक्ति हुई नहीं और विभावोंकी तुच्छता नहीं लगी है वह अंतरमें कैसे पहुँच सकेगा? जहाँ एकसमय विभावपर्याय उत्पन्न होती है वहीं अंतस्तलमें जो चिदानन्दस्वरूप ध्रुव परमात्मा विराजता है उसे समझनेकी लालसा अंतरसे लगे तो कार्य—सम्यग्दर्शन तथा स्वानुभूति आदि—हुए बिना रहता ही नहीं। अहा! बड़ी सादी भाषामें उच्च प्रकारका तत्त्व आया है; जगतके भाग्य हैं कि 'वचनामृत' जैसी वस्तु प्रगट हुई—गुजराती सादी भाषामें, बोलचालकी भाषामें यह हिन्दी अनुवाद तो बादमें हुआ है।

'स्वयं आलसी हो गया है।'

किसी कर्मके कारण नहीं, परन्तु स्वयं आलसी हो गया है। भीतर स्वभाव तो आनन्दका कन्द है, वहाँ जानेका प्रयास नहीं करता और प्रमादी होकर पुण्य–पापके भावोंमें मूर्च्छित हो गया है। चौवीसों घन्टे स्त्री और दुकानकी होलीमें जल रहा है। उसमें यदि लड़का अमेरिका पढ़ने जाय और वहाँसे आनेपर कोई अच्छे घरकी कन्या मिल जाय तो फिर देखो कैसा हर्षित होता है!.....अरे, काहेका हर्ष? पापका? प्रभु! यह पापका हर्ष करके तुझे मरकर कहाँ जाना है? इस पापके प्रेममें तू प्रमादी हो गया है।

अंतर्स्वभावके लक्षका सच्चा पुरुषार्थ नहीं करता और बाह्यमें—मेरी स्त्री, मेरे बच्चे, मेरा देश और मेरे पुण्य–पाप उन्हींमें अटक गया है, परन्तु वे भाव तो मूढ़ता हैं। और उसमें भी यदि दो–चार करोड़ रुपये हो जायँ तो फिर देख लो; मैं चौड़ा और गली

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सँकरी!' हो जाय। आजकल तो अफ्रिका–नैरोबी–में अपने अनेक मुमुक्षु करोड़पति हैं। पुण्यका योग हो तो पैसा आता है, उसमें आत्माको क्या मिला? पहले वे लोग श्वेतांबर थे, अब दिगम्बर हो गये हैं। वहाँ हमेशा अपने यहाँका शास्त्र-पठन होता है। पन्द्रह लाख शिलिंगका एक भव्य दिगम्बर जिनमन्दिर बनाया है। मन्दिर बनानेका वह शुभराग भी ध्रुव भगवान ज्ञायकसे भिन्न है। राग तो ऊपर-ऊपर तैरता है, भीतर नित्यानन्द ध्रुवस्वभावमें प्रविष्ट नहीं होता। स्वभावकी प्रतीतिके बिना, आत्मामें जो भी शुभ–अशुभ भाव होते हैं उनके प्रेममें तू प्रमादी हो गया। अहा! अंतरमें जहाँ ज्ञायक वस्तु है वहाँ जाना है, परन्तु वहाँ न जाकर स्वयं आलसी हो गया है।

"करूँगा–करूँगा' कहता है किन्तु करता नहीं है।"

'मुझे आत्माका हित—सम्यग्दर्शन करना है' ऐसा कहता रहता है, परन्तु कब करेगा? अंतरसे उल्लास आये बिना अन्तर्मुख नहीं हुआ जा सकेगा और सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होगी। भाई! ऐसे ही ऐसे संसारके मायाजालमें मर जायगा, यह दुर्लभ मनुष्यभव बीत जायगा और चला जायगा नरक–निगोदमें। वहाँ कोई कुदरतके कार्यमें–नियममें किसीकी सिफारिश काम नहीं आयगी। हमे बड़े करोड़पति हो गये, दो करोड़ तो धर्मादामें दे चुके हैं—ऐसा उल्लास बताता है परन्तु उसमें आत्माको क्या मिला? लोभ मन्द किया होगा तो थोड़ा पुण्य बँधेगा; 'मैंने दान किया'—इसप्रकार भीतर बड़प्पनके अभिमानका पोषण किया हो तो उलटा पाप होता है। वह तो 'एरनकी चोरी और सुईका दान' जैसी बात हुई। सारे दिन पापका धंधा वह एरनकी चोरी और उसमें दो–चार करोड़का धर्मके नाम पर दान करे वह सुईका दान हुआ। लक्ष्मीका–जड़का स्वामी हुआ वही बड़ी चोरी है। मिथ्यात्व रखकर दान करे वह सुईका दान है, मन्दकषाय किया हो तो वह पुण्य है परन्तु धर्म नहीं है।

भाई! तू पुण्य–पापके परिणामोंमें प्रमादी होकर पड़ा है, परन्तु अंतरमें जानेका पुरुषार्थ कभी नहीं करता। प्रभु! भीतर ज्ञायक भगवानकी लगन लगनी चाहिये। शरीरकी कैसी लगन लगी है? शरीरका नाम लेकर कोई बुलाये कि—'पोपट'! तो नींदमें भी जवाब देता है 'हाँ'; 'पोपट' आया कहाँ से? वह तो शरीरका–जड़का नाम है, परन्तु देहाध्यास ऐसा हो गया है कि स्वप्नमें भी 'यह मैं हूँ' ऐसा आभास होता है। अरे! स्वके लिये आलसी और परके लिये पुरुषार्थ! आत्मकार्य करूँगा, सम्यग्दर्शन प्रगट करना है, परन्तु करता नहीं है।

"कोई तो ऐसे आलसी होते हैं कि सोते हों तो बैठते नहीं और बैठे हों तो खड़े होनेमें आलस्य करते हैं; उसीप्रकार उत्कंठारहित आलसी जीव 'कल करूँगा, कल करूँगा'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसे मन्दरूप वर्तते हैं; वहाँ कलकी आज नहीं होती और जीवन समाप्त हो जाता है।''

सर्वज्ञ परमात्माने जिसे अंतरमें परिपूर्ण ज्ञायक परमात्मस्वरूपसे देखा है ऐसे निजात्माको, अंतरंग उत्कंठारहित आलसी जीव समझनेमें पुरुषार्थहीन वर्तता है; 'कल करूँगा', 'फिर करूँगा'—इसप्रकार वादे करता है; उसका वादा कभी पूरा होता नहीं और मृत्युक्षण आ जाता है; फिर पछतावा करता है, परन्तु उसका क्या वश चलेगा? मरकर परिभ्रमणकी लम्बी यात्रा पर चल देता है। धर्म तो बादमें भी हो जायगा, पहले इन लड़के–लड़कियोंके विवाह तो कर लूँ, लड़कोंके लिये मकान बनवा लूँ, व्यापारमें लड़कोंको अपने अनुभवकी जानकारी करवा दूँ,—इसप्रकार बाहरका रस है, परन्तु आत्माकी किंचित् भी कामना नहीं है। 'कल करूँगा, फिर करूँगा' इसप्रकार मन्दरूप वर्तता है। उसके कलका आज कभी नहीं होता। कहावत है न! कि—'बनिया जीमे आज और भाट जीमे कल'। बनियाकी 'कल' कभी आती नहीं और भाट कभी जीमता नहीं। इसीप्रकार आलसी जीवका 'कल' कभी आज नहीं होता और जीवन समाप्त हो जाता है, मरकर नरक–निगोदमें चला जाता है।

दीक्षा ग्रहण की तब हाथी पर हौदेमें बैठकर जुलूस निकला था। हाथी पर बैठनेके लिये नसैनी पर चढ़ते समय धोती थोड़ी फट गई। तब मनमें शंका हुई कि—यह क्या? उस समय तो अधिक विचार नहीं आया था, परन्तु बादमें खूब विचार करनेपर अंतरसे ऐसा लगा कि वस्त्रसहित मुनिपना वह सच्ची दीक्षा ही नहीं है। धोती फट गई उसमें ऐसा संकेत था कि–'मुनिको तीनकालमें वस्त्र नहीं होते।' संवत् १९७३में सम्प्रदायके गुरु भोजनादिके पात्र अपने हाथसे रंग रहे थे, जिसमें घन्टोंके घन्टे बीत जाते थे। मैं स्वाध्याय कर रहा था। मैंने गुरुजीसे कहा—यह क्या उपाधि है? गुरु बड़े भद्रपुरुष थे। कहने लगे—बिना पात्रोंका गुरु खोज लाना.....और अंतरसे खोज लिया कि–मुनिको वस्त्र–पात्र होते ही नहीं। जो वस्त्र–पात्र रखकर मुनिपना मनाते हैं वे मुनि हैं ही नहीं, मिथ्यादृष्टि हैं। बड़ी कठिन बात है भाई! यह तो जहाँ त्रिलोकीनाथ सीमंधर भगवान विराज रहे हैं वहाँसे आयी हुई बात है। आता है कुछ समझमें? यहाँ कहते हैं कि—अंतरंग उत्कंठारहित प्रमादी–आलसी जीव 'कल करूँगा' ऐसे वादे करता है परन्तु उसका 'कल' कभी 'आज' नहीं होता और अरेरे! इस प्रकार जीवन पूर्ण करके चार गतियोंमें परिभ्रमण करने चला जाता है, अमूल्य मनुष्यभव हार जाता है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–२७८

जैसे किसीको ग्रीष्मऋतुमें पर्वतके शिखर पर अधिक ताप और तीव्र तृषा लगी हो, उस समय पानीकी एक बूँदकी ओर भी उसका लक्ष जाता है और वह उसे लेनेको दौड़ता है; उसीप्रकार जिस जीवको संसारका ताप लगा हो और सत्‌की तीव्र पिपासा जागी हो वह सत्‌की प्राप्तिके लिये उग्र प्रयत्न करता है। वह आत्मार्थी जीव 'ज्ञान' लक्षण द्वारा ज्ञायक आत्माकी प्रतीति करके अंतरसे उसके अस्तित्वको ख्यालमें ले, तो उसे ज्ञायकतत्त्व प्रगट हो।२७८.

जैसे किसीको ग्रीष्मऋतुमें पर्वतके शिखर पर अधिक ताप और तीव्र तृषा लगी हो, उस समय पानीकी एक बूँदकी ओर भी उसका लक्ष जाता है और वह उसे लेने दौड़ता है, उसीप्रकार जिस जीवको संसारका ताप लगा हो और सत्‌की तीव्र पिपासा जागी हो वह सत्‌की प्राप्तिके लिये उग्र प्रयत्न करता है।

ग्रीष्मकी तपती हुई दोपहरीमें पर्वतके वृक्षरहित पथरीले शिखर पर जैसे किसीको तीव्र ताप लगा हो और साथ ही तीव्र तृषा लग रही हो, वहाँ उसे पानीकी एक बूँद भी मिले तो उसे लेनेके लिये दौड़ता है, वैसे ही जिस जीवको यह सारा संसार एकान्त दुःखरूप लगा हो और सत्‌की तीव्र पिपासा जागी हो वह अंतरमें नित्यानन्द ज्ञायक प्रभुको पहिचाननेका उग्र पुरुषार्थ करता है। जिसे प्यास लगी हो वह पानी पीने जाता है, उसी प्रकार जिसे अंतरसे सत् प्राप्त करनेकी लालसा जागृत हुई है वह अंतरस्वरूपोन्मुख होकर आत्मानुभव किये बिना नहीं रहता, अतीन्द्रिय आनन्दामृतका रसपान किये बिना नहीं रहता। अहा! ऐसा मार्ग है भाई! अन्य उपदेशक अज्ञानसे चाहे जो कहें—आपने मन्दिरका निर्माण कराया, यात्रासंघ निकाले, व्रत धारण किये, दान दिया, इसलिये आपको धर्म हो गया—वह सब पाखण्ड और मूढ़ता है। भाई! उसमें धरमबरम है ही नहीं; हाँ, यदि रागकी मन्दता की हो तो पुण्य है। अज्ञानी पुण्यका पुरुषार्थ करता है, किन्तु अंतरका पुरुषार्थ कभी नहीं करता। चौविहार करना, ब्रह्मचर्य पालना आदि क्रियाकाण्डमें राग मन्द किया हो तो पुण्य होगा, धर्म नहीं।

यहाँ कहते हैं कि—संसारका ताप लगा हो और सत्‌की तीव्र तृषा लगी हो वह सत्‌की प्राप्ति हेतु उग्र प्रयत्न करता है। अहा! संसारके दुःखोंको कहा नहीं जा सकता। भगवान कहते हैं कि–एक श्वासोच्छ्वास जितने समयमें जीव निगोदके अठारह भव करता है। आलू, प्याज, लहसुन आदिके एक राई जितने टुकड़ेमें असंख्य औदारिक शरीर हैं,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और उस एक शरीरमें सिद्धोंकी संख्याकी अपेक्षा अनंतगुने निगोदके जीव हैं। अरे प्रभु! तू भी वहाँ अनंतकाल रह आया है। अब तुझे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, इसलिये अंतरमें यदि तुझे संसारका ताप लगा हो और सत् समझनेकी तीव्र जिज्ञासा जागी हो तो उस सत्की प्राप्ति हेतु उग्र पुरुषार्थ कर।

"वह आत्मार्थी जीव 'ज्ञान' लक्षण द्वारा ज्ञायक आत्माकी प्रतीति करके अंतरसे उसके अस्तित्वको ख्यालमें ले, तो उसे ज्ञायक तत्त्व प्रगट हो।"

'सच्चिदानन्दस्वरूप निज ज्ञायक आत्माको मैं कैसे प्राप्त करूँ'—ऐसी तीव्र जिज्ञासा जिसे हुई हो वह आत्मार्थी जीव 'यह ज्ञाता, ज्ञाता, ज्ञाता तत्त्व सो मैं'—इसप्रकार 'ज्ञान' लक्षण द्वारा ज्ञायक आत्माकी सच्ची पहिचान करके, उसके स्वरूपको बराबर ख्यालमें ले तो ज्ञायक आत्माकी अनुभूति प्रगट हो। आत्माका लक्षण 'ज्ञान' कहा; शरीर, वाणी, मन या राग वे कहीं आत्मका लक्षण नहीं हैं। वर्तमान उत्पाद–व्ययवाली पर्यायमें जो ज्ञाताक्रिया है उसके द्वारा लक्षगत होता जो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञान वह आत्माका लक्षण है। उस लक्षण द्वारा ज्ञायकका जो लक्ष किया, तथा उससे जो ज्ञायक द्रव्यका अनुभव किया उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

अरेरे! लोगोंको यह बात बड़ी कठिन लगती है और कहते हैं कि सोनगढ़वाले अकेली निश्चयकी बात करते हैं। भले ही लोग कहें, उन्हें वस्तुस्वरूपकी खबर नहीं है। यहाँ तो हमने सारी दुनिया देख ली है, सारे हिन्दुस्तानमें—दस–दस हजार मील—तीन बार फिर आये हैं, धर्मी नाम धारण करनेवाले सबके अभिप्राय देख लिये हैं। भाई! यह बात कोई अलग है। प्रभु! तुम्हारी व्यापारिक पेढ़ी कोई भिन्न है। 'ज्ञान' लक्षण द्वारा अंतरमें जाना वह तेरी पेढ़ी है।

ज्ञायक वस्तु जो त्रैकालिक ध्रुव निज परमात्मतत्त्व है उसे 'ज्ञान' द्वारा परसे तथा विभावसे भिन्न बराबर पहिचानकर, उसकी अंतरमें यथार्थ प्रतीति करके उसके शुद्ध सहज अस्तित्वको लक्षगत बनाये तो उस आत्मार्थी जीवको ज्ञायकतत्त्व प्रगट हो—अनुभवगोचर हो। मिथ्यादृष्टिका जो ज्ञान एकान्त परसन्मुख कार्य करता था उस ज्ञानकी पर्याय स्वसन्मुख होकर अंतर ज्ञायकमें प्रविष्ट हो गई। ज्ञानपर्यायने ज्ञायकको पकड़ा तब उसकी ज्ञानपर्यायमें प्रतीति हुई कि—मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ। ज्ञायकका स्वरूप अनुभवसहित ख्यालमें आया उसे ज्ञायकतत्त्व प्रगट हुआ कहा जाता है। अहा! ऐसी बातें हैं। इन वणिक बेचारोंको धन्धेके पाप कार्यसे अवकाश नहीं मिलता। सवेरे ६ बजेसे रातके ९ बजे तक धंधेकी मजदूरी, गाँवमें कोई साधु आ जायँ फिर भी उनके पास जानेकी फुरसत नहीं मिलती। कितने ही बेचारोंने तो 'आत्मा क्या है' वह कभी सुना भी नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान सर्वज्ञ जिनेश्वरदेवने ज्ञानलक्षणसे लक्षित जो आत्मा देखा और कहा उसे जानकर अंतरमें प्रतीति करके—जाने बिना प्रतीति किसकी?—उसके ज्ञानमय सहज अस्तित्वको सम्यक्रूपसे समझे, ज्ञान लक्षणके द्वारा त्रैकालिक ध्रुव विद्यमान वस्तुको ख्यालमें ले तो उसके ज्ञायक आत्मा प्रगट होता है। ज्ञायक आत्माका अनुभवमें आना सो सम्यग्दर्शन है। ज्ञायक आत्माके यथार्थ लक्ष बिना मात्र देव–शास्त्र–गुरुको मानकर अपनेको सम्यग्दर्शन हुआ माने तो वह बराबर नहीं है। देव–शास्त्र–गुरुकी ओर लक्ष जानेसे राग होता है, वहाँ धूल भी सम्यग्दर्शन नहीं है। धूल भी नहीं का अर्थ है–ऐसे भावसे पुण्यानुबंधी पुण्य भी नहीं है।

भगवान ज्ञायक आत्मा 'देहमन्दिरमें विराजता है वह तो व्यवहारका कथन है। वास्तवमें उत्पाद-व्यय स्वरूप जो पर्याय है उसके भीतर अर्थात् समीप ध्रुव ज्ञायक तत्त्व विराजता है। उसके त्रैकालिक अस्तित्वको अंतरसे समझे, वर्तमान ज्ञानकी पर्याय द्वारा उस महान अस्तित्वकी प्रतीति कर ले, तो उस आत्मार्थीको ज्ञायकतत्त्व अनुभवमें आ जाय। वर्तमान ज्ञानपर्याय द्वारा त्रैकालिक ज्ञायक लक्षमें लिया तो उस ज्ञानपर्यायमें ज्ञायक आत्माकी प्रतीति आ गई। पर्यायमें ज्ञान एवं आनन्दकी जो दशा प्रगट हुई उसका नाम सम्यक्त्व, ज्ञान और धर्म है।

ज्ञायक तत्त्व सर्व जीवोंमें है तो अवश्य, परन्तु अज्ञानीको रागके रसमें, दया–दानादि विकल्पोंके प्रेममें, आनन्दकन्द ज्ञायक ध्रुव भगवानका अनादर—तिरस्कार हो गया था। अब ज्ञानलक्षण द्वारा अंतरमें जहाँ ज्ञायकको पकड़ा वहाँ उसका सत्कार, स्वीकार हो गया। स्वभावका स्वीकार हुआ तो पर्यायमें अनुभवसहित ज्ञायकपना प्रगट हो गया। जो ज्ञायकपना प्रगट हुआ उसका नाम सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति और धर्म है।

*

गुरुदेवने ही शुद्धात्माका मार्ग बतलाया है। गुरुदेवने सबको तैयार किया है। 'तू पुरुषार्थ कर। पुरुषार्थ तुझे ही करना है। तू अपने अपराधसे भटका है और तुझे अपने ही पुरुषार्थसे पार होना है'—ऐसी जोरदार वाणी बरसायी है। गुरुदेवने पंचमकालमें भगवानका विरह भुला दिया है।

—बहिनश्री चम्पाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१०५

दिनांक ३०-६-७८

वचनामृत–२७६

विचार, मंथन सब विकल्परूप ही है। उससे भिन्न विकल्पातीत एक स्थायी ज्ञायक तत्त्व सो आत्मा है। उसमें 'यह विकल्प तोड़ दूँ, यह विकल्प तोड़ दूँ' वह भी विकल्प ही है; उसके उसपार भिन्न ही चैतन्यपदार्थ है। उसका अस्तिपना ख्यालमें आये, 'मैं भिन्न हूँ, यह मैं ज्ञायक भिन्न हूँ' ऐसा निरंतर घोटन रहे, वह भी अच्छा है। पुरुषार्थकी उग्रता तथा उस प्रकारका प्रारम्भ हो तो मार्ग निकलता ही है। पहले विकल्प नहीं टूटता परन्तु पहले पक्का निर्णय आता है। २७६.

'विचार, मंथन सब विकल्परूप ही है।'

क्या कहते हैं? स्वभावसे जो नित्य ज्ञायक प्रभु है ऐसे भगवान आत्मामें 'यह आत्मा है','यह आत्मा है' ऐसे विचार और मंथन यह सब विकल्पस्वरूप ही हैं। विचार और मंथन वह राग सहित ज्ञानकी पर्याय है। विकल्पका अर्थ राग है; वह चारित्रगुणकी विकारी पर्याय है। विचारमें ज्ञान और रागका विकल्प दोनों हैं।

प्रश्न:—क्या दो गुण एकट्ठे हो गये?

उत्तर:—नहीं; ज्ञान और चारित्र—दोनों गुण एक नहीं हो जाते, परन्तु विचार तथा मंथनमें इन दोनों गुणोंका परिणमन साथ ही है।

विचार और मंथनमें जो ज्ञातृत्व है वह ज्ञानका परिणमन है और जो रागांश है वह चारित्रगुणका विभाव परिणमन है—दोनों एकसाथ हैं। समयसार कलश–टीकामें कहा है कि—शुद्धस्वरूपका विचार भी बंधका कारण है, क्योंकि 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा जो विचार है वह भी रागमिश्रित भाव है। आत्मा शरीर–वाणी–मनसे तो पर है, परन्तु वह रागमिश्रित विचार भी आत्माका स्वरूप नहीं है, उससे धर्म नहीं होता। 'मैं विज्ञानघन परम पदार्थ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हूँ' ऐसा रागमिश्रित विचार–विकल्प उठाना वह भी विकल्प है तथा बंधका कारण है। समस्त विकल्प राग होनेसे हेय ही हैं।

'उससे भिन्न विकल्पातीत एक स्थायी ज्ञायक तत्त्व सो आत्मा है।'

भीतर जो रागकी वृत्ति उठती है उससे चैतन्यपिण्ड—ज्ञायक प्रभु—भीतर भिन्न है। यह तो अभी सम्यग्दर्शन प्राप्तिमें प्रथम क्या होता है उसकी बात है। सम्यक्त्व प्राप्त होनेके पश्चात् ज्ञानीको अस्थिरताके रागादि होते हैं, परन्तु वे तो स्वका आश्रय करते-करते छूट जाते हैं; परन्तु अभी जो विकल्पातीत दृष्टिरूप परिणमित नहीं हुआ है उसे स्थिरता कहाँसे होगी?

रागसे भिन्न चैतन्यस्वभावी भगवान आत्माकी ज्ञानपर्यायमें प्रवेश किये बिना 'मैं ऐसा हूँ और वैसा हूँ' ऐसे जो विकल्प उठते हैं वह सब राग है। अरे! अनन्तकाल बीत गया चौरासीके अवतारमें—कितना दुःखी है प्रभु! यह मोहकी संतति और यह विकल्प दुःखरूप हैं; उनसे भिन्न भगवान अंतरमें स्थायी है और परिणमनशील भी है। अहा! ऐसी बात है। क्या किया जाय? लोगोंने आजकल मार्गमें बहुत फेरफार कर दिया है। थोड़ा–सा विचार और मंथन किया वहाँ मान लिया कि सम्यग्दर्शन हो गया! भाई! विचार एवं मंथनके विकल्प वह कोई वस्तु नहीं है। उन विकल्पोंसे भिन्न भीतर जो अनादि–अनन्त ध्रुव चैतन्यबिम्ब विद्यमान है वह अपनी शाश्वत वस्तु है। ज्ञायक तत्त्व ही आत्मा है, विकल्प वह मूल आत्मा नहीं है।

"उसमें 'यह विकल्प तोड़ दूँ, यह विकल्प तोड़ दूँ' यह भी विकल्प ही है; उसके उसपार भिन्न ही चैतन्य पदार्थ है।"

अंतरमें नित्य चैतन्यघन ज्ञायक प्रभु स्थायी स्थायी स्थायी, अहा! स्थिर जिनबिम्ब है, वीतराग निर्विकल्प प्रभु है। उसमें 'यह विकल्प तोड़ूँ' यह वृत्ति भी राग है, आत्मा नहीं। उस विकल्पसे उसपार—दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके विकल्पोंसे भिन्न—भीतर चैतन्यपदार्थ है। समयसारकी १४वीं गाथामें कहा है : मैं अबद्धस्पृष्ट हूँ, अनन्य हूँ, नियत हूँ, अविशेष हूँ और असंयुक्त हूँ—ऐसा विकल्प उठाना वह भी राग है। वह राग मेरा कार्य और मैं उसका कर्ता–ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। सूक्ष्म बात है भाई! समस्त विकल्पोंसे उसपार चैतन्य पदार्थ भिन्न ही है।

"उसका अस्तिपना ख्यालमें आये, 'मैं भिन्न हूँ, यह मैं ज्ञायक भिन्न हूँ' ऐसा निरन्तर घोटन रहे वह भी अच्छा है।"

क्या कहते हैं? कि—स्थायी वस्तु भगवान ज्ञायकका सहज अस्तित्व समझमें आनेसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुभव हो जाता है। 'मैं नित्यानन्दस्वरूप ज्ञायक परसे तथा विभावसे बिलकुल भिन्न हूँ, ज्ञायक.....ज्ञायक.....ज्ञायक, यह मैं भिन्न ज्ञायक ही हूँ' ऐसा सतत मंथन रहे वह भी उत्तम है। मंथनका अर्थ मात्र विकल्प नहीं है, परन्तु अंतरमें ज्ञायककी ओर यथार्थ उन्मुखता है। मंथन एवं मननमें विकल्प साथ होने पर भी वह अन्तरोन्मुख होनेवाली ज्ञानकी पर्याय है, 'मैं यह ज्ञायक हूँ, मैं यह भिन्न ज्ञायक ही हूँ' इसप्रकार वह अंतरमें प्रवेश करता है—भीतर जानेमें एकाग्र होता है। निज चैतन्यपदार्थका स्वरूप यथार्थरूपसे समझमें आनेपर उसका जो निरन्तर चिन्तन, मनन, निदिध्यासन रहता है वह भी अच्छा है। अनादिसे रागका जो मंथन कर रहा है उसकी अपेक्षा इस चैतन्यकी ओर ढलना, विभावसे हटकर स्वभावकी ओर ढलना–उसका निरन्तर मनन करना वह भी उत्तम है। अहा, सूक्ष्म बात है! भाषामें कितनी आये?

'पुरुषार्थकी उग्रता तथा उस प्रकारका आरंभ हो तो मार्ग निकलता है।'

अंतरमें उग्ररूपसे ज्ञायककी ओरका पुरुषार्थ करे, उस प्रकारका अंतरमें प्रारम्भ–शुरुआत करे तो अंतरमें मार्ग निकलेगा ही, सम्यग्दर्शन होगा ही। अहा! ऐसी बात है।

'पहले विकल्प नहीं टूटता, परन्तु पहले पक्का निर्णय आता है।'

सर्वज्ञ भगवानने जैसा आत्माका स्वरूप कहा है वैसा प्रथम विकल्पसे निर्णय करना। वहाँ जो विकल्पका भाग है वह राग है और निर्णयका भाग है वह ज्ञानकी पर्याय है, दोनों एक साथ हैं। परसे तो मैं भिन्न ही हूँ, परन्तु राग या एक समयकी पर्याय भी मेरा मूल स्वरूप नहीं है, जो सदा पूर्णानन्दस्वरूप ज्ञायक प्रभु—भगवान आत्मा—वही मैं हूँ। ऐसा स्पष्ट निर्णय सम्यग्दर्शन होनेसे पूर्व भी होना चाहिये। 'जो सकल निरावरण–अखण्ड–एक–प्रत्यक्षप्रतिभासमय–अविनश्वर–शुद्ध–पारिणामिकपरमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ।' ऐसा ज्ञानमें आना चाहिये। प्रथम ऐसा निर्णय होना चाहिये, पश्चात् त्रैकालिक द्रव्यस्वभावका अंतरंग बलपूर्वक आश्रय करनेसे विकल्प टूटकर सम्यग्दर्शन तथा स्वानुभूति होती है। समयसारमें आता है न, कि प्रथम अवस्थामें प्रमाण–नय–निक्षेपादिसे यथार्थ वस्तुको जानकर अंतरंग ज्ञान–श्रद्धानकी सिद्धि करना। आँगनमें आये बिना भीतर प्रवेश कैसे होगा? वैसे ही प्रथम विकल्पसहित स्व–परका सच्चा निर्णय किये बिना—आँगनमें आये बिना—परसे विमुख होकर भीतर स्वमें कहाँसे जा सकेगा? —निर्विकल्प किस प्रकार होगा? इसलिये प्रथम पक्का निर्णय आता है और पश्चात् विकल्प टूटकर स्वरूपका अनुभव प्रगट होता है।

अरेरे! इस जीवने मिथ्यात्वके कारण अनंत अवतार धारण किये। वास्तवमें तो मिथ्यात्व ही महापाप है। शरीर, स्त्री, पैसा, परिवारादि परपदार्थोंको अपना मानना वह तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

महा मिथ्यात्वभाव है ही, परन्तु 'मैं ज्ञायक हूँ, आनन्दमूर्ति हूँ'—ऐसा जो विकल्प आता है वह मोक्षमार्गमें सहायता करेगा—ऐसी मान्यता भी मिथ्यात्व है। भगवान आत्मा तो ऐसे विकल्पोंसे भी भिन्न अंतर स्वतःसिद्ध ज्ञायक वस्तु है।

यहाँ कहते हैं कि—पहलेसे विकल्प नहीं टूटते। विकल्प आते तो हैं। सर्वज्ञ भगवानका कहा हुआ, शरीरादिसे भिन्न जो ज्ञायक आत्मा, उसके अनन्त गुण तथा उसकी अनन्त पर्यायें आदि सब पहले जैसे हैं वैसे बराबर जाने, रागमिश्रित विचारसे पहले पक्का निर्णय करे पश्चात् स्वभावकी एकाग्रता करने पर विकल्प टूटते हैं। निर्णयके लिये विकल्प आते हैं परन्तु वह सम्यग्दर्शन नहीं है। 'मैं अपरिमित शक्तियोंका सागर पूर्णानन्द प्रभु हूँ' ऐसा विकल्प पहले आता है, पश्चात् उसे भी छोड़कर अंतरस्वरूपमें प्रवेश करना। प्रवेशका अर्थ है पकड़ना–ग्रहण करना। ज्ञानकी पर्यायसे ज्ञायकको पकड़ना–ग्रहण करना। ज्ञायकका अनुभव सो सम्यग्दर्शन है।

पश्चात् ज्ञानीको भी अस्थिरताके रागादिभाव आते हैं, परन्तु उनके साथ एकत्वबुद्धि टूट गई है, उनका तो वह मात्र ज्ञाता रहता है। स्वभावका उग्र आश्रय करके वह उनका क्रमशः नाश कर देगा। आता है कुछ समझमें?

प्रथम पक्का निर्णय होता है। पक्का अर्थात् अभी सम्यग्दर्शन नहीं है, परन्तु ज्ञानकी विकल्पयुक्त पर्याय। निर्णयमें ज्ञान और विकल्प दोनों हैं। उसमें रागसे क्या होगा? परन्तु उसमें जो ज्ञानकी पर्याय है उसके द्वारा 'मैं अखण्डानन्द प्रभु हूँ, मुझमें और परमेश्वरमें शक्ति-अपेक्षासे कोई अंतर नहीं है'—ऐसा पहले पक्का निर्णय करे, पश्चात् विकल्प टूटने पर सम्यग्दर्शन एवं आत्मानुभूति प्रगट होते हैं। समयसार-नाटकमें आता है न!–

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं।
अपने रससौं भर्यो आपनी टेक हौं॥

मोहकर्म मम नाहिं नांहि भ्रमकूप है।
शुद्ध चेतनासिन्धु हमारौ रूप है॥

'राग मैं हूँ' यह तो भ्रमका कुआँ है; शुद्ध चेतनासिन्धु ही आत्माका स्वरूप है। सर्वज्ञ भगवानने आत्माका जैसा स्वरूप कहा है उसका प्रथम ज्ञानकी विचारधारामें पक्का निर्णय तो आये न? समयसारकी १४४वीं गाथाकी टीकामें कहा है : प्रथम, श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चय करके, पश्चात् आत्माकी प्रगट प्रसिद्धिके लिये, जिसने मतिज्ञान तत्त्वको आत्मसन्मुख किया है ऐसा, श्रुत ज्ञानतत्त्वको भी आत्मसन्मुख करता, अत्यन्त विकल्परहित होकर, परमात्मारूप समयसारको जब अनुभवता है उस समय ही आत्मा सम्यक्रूपसे दिखता है (–श्रद्धामें आता है) और ज्ञात होता है। यहाँ 'ज्ञानस्वभाव आत्माका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निश्चय करके' यह विकल्पयुक्त पक्के निर्णयकी बात है। निर्विकल्प आत्मानुभूति तो तत्पश्चात् होती है।

आनन्दघनजी कहते हैं:—

ज्ञान ना जानूँ, विज्ञान ना जानूँ, ना जानूँ भज नामा;
आनन्दघन प्रभुके घर द्वारे, रटन करूँ गुण धामा;
अबधू क्या मागूँ गुणहीना.....।

अहा! पूर्णानन्द प्रभुके आँगनमें, उसकी पर्यायमें, उसके विचारमें उसका गुणगान कर, उसका रटन कर। रटन पहले विकल्प सहित होता है, फिर विकल्प तोड़कर भीतर स्वरूपमें प्रवेश होता है। लोगोंको–व्यवहारके रसिकोंको–यह बात कठिन लगती है। उन्हें तो व्रत–तपादिमें धर्म मनाओ तो अच्छा लगता है। भाई! सम्यग्दर्शनके बिना तेरे व्रत–तप सब बालव्रत और बालतप हैं, वे धर्म नहीं हैं और धर्मका कारण नहीं हैं। उनसे धर्म होगा—ऐसी मान्यतासे तो मिथ्यात्वकी पुष्टि होती है। प्रथम तत्त्वका पक्का निर्णय करनेके पश्चात् फिर विकल्प टूटने पर आत्मानुभव हो वह धर्म है।

*

वचनामृत–२८०

वास्तवमें जिसे स्वभाव रुचे, अंतरकी जागृति हो, उसे बाहर आना सुहाता ही नहीं। स्वभाव शान्ति एवं निवृत्तिरूप है, शुभाशुभ विभावभावोंमें आकुलता और प्रवृत्ति है; उन दोनोंका मेल ही नहीं बैठता।२८०.

'वास्तवमें जिसे स्वभाव रुचे, अंतरकी जागृति हो, उसे बाहर आना सुहाता ही नहीं।'

जिसे वास्तवमें आनन्दमूर्ति ज्ञायक प्रभुकी रुचि हुई हो, अंतरसे रुचि पलट गई हो, उसे ज्ञातास्वभावमेंसे बाहर आना जरा भी अच्छा नहीं लगता। पुण्य और पुण्यके फलकी रुचि वह तो मिथ्यात्वभाव है, पापभाव है, झूठे पाखण्डभाव हैं। भीतर वीतराग जिनबिम्ब-स्वरूप भगवान आत्मा जिसे रुचता है उसे अंतरसे जागृति होती है। जिसे स्वभावकी जागृति हो उसे बाहर आना रुचता ही नहीं। रुचता नहीं है तथापि राग होनेसे बाहर आ जाता है, परन्तु वह दुःखरूप लगता है। पूर्णानन्द प्रभु स्वभावसे सदा जागृतस्वरूप ही है; उसकी पर्यायमें जागृति होनेपर बाहर आना—भले ही शुभराग हो तथापि—दुःखरूप लगता है। आता है न—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चाखे रसकी क्योंकर छूटे, सुरिजन सुरिजन टोरी हो;
मनसा नटनागर सौं जोरी हो.....।

जिसने निर्विकल्प आनन्दका रस चखा है उसे रागमें आना अच्छा नहीं लगता। जिसने स्वभावमें रुचि लगायी है उसे भले ही देवोंकी टोली डिगाने आये और कहे कि 'भीतर आत्मामें रहना ठीक नहीं है, तुम भगवानको मानो, देव–गुरुकी श्रद्धा करो', परन्तु उन बाहरी बातोंमें एकत्वबुद्धिसे रुक जाना ज्ञानीको अच्छा नहीं लगता। अंतरस्वरूपमें विशेष स्थिर नहीं हो सकता, इससे ज्ञानीको ऐसे विकल्प आते अवश्य हैं, परन्तु उन्हें दुःखरूप जानता है। आनन्दमूर्ति ज्ञायकप्रभुकी प्रतीति होने पर पर्यायमें जो अंशतः आनन्द प्रगट हुआ उसके साथ जो अल्प राग आता है उसकी आनन्दके साथ तुलना करता है—मिलान करता है कि राग तो आकुलता है, दुःख है और आनन्द अनुपम, अतीन्द्रिय आह्लादमय है। उसने आनन्दका रसास्वादन किया है इसलिये रागमें—बाहर आना रुचता ही नहीं।

'स्वभाव शान्ति एवं निवृत्तिरूप है, शुभाशुभ विभावभावोंमें आकुलता और प्रवृत्ति है; उन दोनोंका मेल ही नहीं बैठता।'

भगवान आत्मा अंतरमें शान्त, शान्त, शान्त और निवृत्तिस्वरूप है; उसे 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं' यह शुभरागकी वृत्ति भी दुःखरूप है। ज्ञानीको पूर्णानन्दस्वरूप आत्माकी प्रतीति हुई है इससे पर्यायमें थोड़ा आनन्द तो आया, परन्तु अभी पर्यायमें पूर्णता प्रगट नहीं हुई है इसलिये राग आता है; परन्तु ज्ञानी उसे दुःखरूप जानता है। मुनिराजको षट् आवश्यकके विकल्प आते हैं, परन्तु उनमें आना उन्हें अच्छा नहीं लगता; क्योंकि स्वभाव शान्ति एवं निवृत्तिस्वरूप है और यह जो विकल्प उठते हैं वे विभाव, अशान्ति, आकुलता एवं प्रवृत्तिस्वरूप हैं। उन स्वभाव और विभावका मेल कैसे बैठे? अहा! यह कैसी बात है वह सुननेको भी नहीं मिलती और जीवन व्यापार–धन्धेमें यों ही बीत जाता है। कभी शास्त्र सुनने जाय तो वहाँ विपरीत उपदेश मिलता है कि—यह करो, वह करो, उपवास करो, भक्ति करो, दान करो; परन्तु वह सब तो शुभराग है, उसमें धर्म कहाँ आया? समयसारमें प्रतिक्रमणादि शुभरागको विषकुम्भ कहा है। भगवान आत्माका धर्म तो शान्ति और निवृत्तिस्वरूप है । ज्ञानीको अंतरमें शांति एवं निवृत्तिस्वरूपके अतीन्द्रिय आनन्दके स्वादके साथ निर्बलतासे जो व्रतादि शुभरागकी अल्प वृत्ति उत्पन्न होती है वह रुचती नहीं है, उसमें सुखबुद्धि नहीं होती।

मोक्षमार्ग प्रकाशकमें कहा है : धर्मलोभी जिज्ञासुओंको देखकर मुनिराजको भी धर्मोपदेश देनेका शुभभाव आता है, परन्तु है वह दुःखरूप। आनन्दका नाथ जहाँ अंतरंग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रुचिको भा गया वहाँ रागकी रुचि कैसे रहेगी? अहा! ऐसी बातें हैं! बड़ी सूक्ष्म बातें हैं, भाई! भवका अभाव करनेकी रुचि और दृष्टि करना वह कोई अलौकिक वस्तु है। आठ वर्षका बालक भी स्वानुभूति प्रगट करके केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है। आत्मा कहाँ बालक है? वह तो अनादिनिधन स्थायी आनन्दकन्द प्रभु है।

ज्ञानीको शुभकी भाँति अशुभ भाव भी आते हैं परन्तु उनकी अंतरमें रुचि नहीं है। अशुभ भाव आये उसे काला नाग मानते हैं। चक्रवर्ती ज्ञानीको छियानवे हजार स्त्रियोंका भोग-भाव आये वह आकुलता और दुःख है; वह राग भट्ठी जैसा लगता है। कहा भी है कि—

'यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेईये;'

शुभ हो या अशुभ हो—रागमात्र अग्नि है। आत्माकी शान्तिको जलानेवाली—भस्म करनेवाली है। चौथे–पाँचवें गुणस्थानमें ज्ञानीको भी शुभ तथा अशुभ भाव आते हैं, परन्तु उन्हें वे काले नागकी भाँति त्रासरूप–दुःखरूप लगते हैं।

शुभभाव भी आकुलता है, क्योंकि वह कषायका अंश है न? शुभाशुभ भाव विभाव है और विभावमें आकुलता एवं प्रवृत्ति है; अंतरमें भगवान आत्मा तो शान्ति एवं निवृत्तिस्वरूप है। ज्ञानीको अशुभसे बचनेके लिये शुभभाव आता है, परन्तु वह है तो आकुलता। ज्ञानी (मनुष्य)को भविष्यकी आयु बँधती है वह शुभके कालमें ही बँधती है; क्योंकि भविष्यमें उसे स्वर्गमें जाना है न? उसे अशुभके कालमें आयुका बंध नहीं होता इतना सम्यग्ज्ञानका जोर है। श्रेणिक राजा प्रथम नरकमें हैं, क्षायिक सम्यक्त्वी आत्मानुभवी हैं; उनको वहाँ प्रतिकूल संयोगोंमें जितनी संलग्नता है उतना दुःख होता है, उस समय भी तीर्थंकर नामकर्म बाँधते हैं। वे जानते हैं कि दुःखकी दशा तो मेरी पर्यायमें है, त्रैकालिक द्रव्यस्वभावमें नहीं है। द्रव्य–पर्याय दोनोंका ज्ञान तो सच्चा होना चाहिये न? द्रव्यका ज्ञान तो सच्चा है ही, और साथ ही पर्यायमें जैसा वेदन है वैसा जाना। आया कुछ समझमें?

यहाँ भी यही कहते हैं—शुभाशुभ विभावभावमें आकुलता है, भगवान ज्ञायकदेव शान्त, निराकुल एवं निवृत्तस्वरूप है; उन दोनोंका मेल ही नहीं बैठता। राग दुःखरूप है, भगवान आत्मा आनन्दरूप है; दोनोंकी जाति ही भिन्न है तो उनका मेल कैसे बैठेगा? भीतर ज्ञानानन्दस्वभाव भरपूर होने पर भी पर्यायमें—आत्माकी दशामें—जो शुभाशुभ विकार, दुःखरूप भाव होते हैं उनका अपने आनन्दस्वभावके आश्रय द्वारा नाश करना—यह वहाँ बतलाता है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१०६

दिनांक १-१०-७८

वचनामृत–२८१

बाहरके सब कार्योंमें सीमा—मर्यादा होती है। अमर्यादित तो अन्तर्ज्ञान और आनन्द है। वहाँ सीमा—मर्यादा नहीं है। अंतरमें—स्वभावमें मर्यादा नहीं होती। जीवको अनादिकालसे तो बाह्य वृत्ति है उसकी यदि मर्यादा न हो तब तो जीव कभी उससे विमुख ही न हो, सदा बाह्यमें ही रुका रहे। अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है। आत्मा अगाध शक्तिसे भरा है। २८१.

'बाहरके सब कार्योंमें सीमा—मर्यादा होती है।'

जरा सूक्ष्म बात है। बाहरके सब कार्योंमें सीमा—मर्यादा होती है। क्या कहते हैं? देहकी स्थिति, भवकी स्थिति, जो संयोग मिले हों उनकी स्थिति, कर्मकी स्थिति, पुण्य–पापके भाव तथा रागादिकी स्थिति—यह सब मर्यादित हैं, वे अमुक काल तक रहेंगे, वे स्थायी वस्तु नहीं हैं।

प्रश्न:—मति–श्रुतज्ञान हैं वह?

उत्तर:—वह भी पर्याय है, अमर्यादित नहीं हैं। अरे! जहाँ केवलज्ञान भी एक समयकी स्थितिवाली–मर्यादावाली पर्याय है, वहाँ समस्त बाह्य कार्योंमें मर्यादा हो उसमें आश्चर्य क्या है?—बाहरके सभी कार्य सीमायुक्त ही होते हैं।

'अमर्यादित तो अन्तर्ज्ञान और आनन्द है। वहाँ सीमा–मर्यादा नहीं है।'

भीतर जो ज्ञायकभाव है—ज्ञान और आनन्द स्वभाव है—वह अमर्यादित नित्यस्थायी वस्तु है; स्वभावमें कभी सीमा नहीं होती। जैसे आकाशक्षेत्रकी कोई सीमा नहीं है वैसे ही अंतरमें ज्ञान–आनन्द आदि स्वभावकी भी कोई सीमा—मर्यादा नहीं है। श्री नियमसारकी ३८वीं गाथाके कलशमें कहा है न—'सकलविलयदूरः'–समयसार अर्थात् शुद्ध आत्मा औपशमिक, क्षायोपशमिकादि समस्त नाशको प्राप्त होने योग्य भावोंसे दूर है–रहित है। संवर, निर्जरा और मोक्षकी पर्याय भी प्रतिसमय पलटती होने से नाशवान—मर्यादावान—है, और भगवान

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायक आत्मा तो अमर्यादित पारिणामिक स्वभावसे परिपूर्ण होनेके कारण शाश्वत, टंकोत्कीर्ण और मर्यादारहित है।

'बाहरके सब कार्य' कहकर देहकी स्थिति, सर्वार्थसिद्धिके भवकी स्थिति, कर्मकी स्थिति, राग–द्वेषकी स्थिति तथा संवर–निर्जरा–धर्म आदि पर्यायोंकी स्थिति मर्यादा जितनी ही है;—कार्यकी बात है न? वस्तु—रजकण या जीव—द्रव्यस्वभावसे स्थायी है, उस बातकी विवक्षा इस समय नहीं है। अरे! अपनी पर्यायमें राग–द्वेष या धर्मका कार्य होता है वह भी मर्यादित है; परन्तु यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि–विकार मर्यादित है।

'अंतरमें–स्वभावमें मर्यादा नहीं होती।'

सहज ज्ञान और सहज आनन्दादि अनन्त गुणोंका पिण्ड ऐसे भगवान आत्माकी कोई भी शक्ति या स्वभावमें मर्यादा नहीं होती। ऐसी अमर्यादित वस्तुमें भीतर मर्यादा—कार्यशक्तिकी सीमा नहीं होती। अहा! ऐसी भाषा और ऐसी वस्तु! धर्मी किसे कहा जाता है?—कि जिसकी दृष्टि अमर्यादित स्वभाव—त्रैकालिक ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, पवित्रस्वभाव, प्रभुत्वस्वभाव, ईश्वरस्वभाव आदि अनन्त सत्चिदानन्दमय द्रव्यस्वभाव—पर स्थिर हो गई है उसे। वस्तु अमर्यादित है, अपरिमित स्वभाववान है। केवलज्ञानकी पूर्ण पर्यायें अनन्तकाल तक होती रहें तथापि वस्तुस्वभाव तो ज्योंका त्यों अमर्यादित रहता है। अहा! बात जरा कठिन है। भगवान आत्मा अमर्यादित स्वभावोंसे परिपूर्ण–भरा हुआ है। भीतर स्वभावमें कभी मर्यादा नहीं होती।

'जीवको अनादिकालसे जो बाह्य वृत्ति है उसकी यदि मर्यादा न हो तब तो जीव कभी उससे विमुख ही न हो, सदा बाह्यमें ही रुका रहे।'

जीवको अनादिकालसे शुभाशुभरूप जो बाह्य वृत्तियाँ हैं उनकी यदि कोई सीमा न हो तो वह कभी वहाँसे हटकर स्वभावमें आ ही नहीं सके। विकारी पर्याय सीमित, मर्यादित और नाशवान वस्तु है; यदि उसकी सीमा न हो तो जीव वहाँसे विमुख कैसे हो सकेगा? और यदि विकारसे विमुख न हो सके तो वह सदा विकारी भावोंमें ही रुक जाय। जैसे लोकका क्षेत्र मर्यादित है, परन्तु तत्पश्चात् जो अलोकका क्षेत्र है उसकी कोई मर्यादा है? वह तो अमाप, अमाप, अमर्यादित अमाप है; वैसे ही भगवान आत्माकी वर्तमान दशामें जो पुण्य–पापके भाव हैं–विभावरूप परिणमन हैं वह तो सीमावाली, अवधिवाली, अस्थायी वस्तु है; परन्तु वर्तमान विभावसे रहित जो त्रैकालिक ध्रुवस्वभाव है उसकी कोई सीमा है? वह तो असीम, असीम अमर्यादित परमभाव है। विभाव अमर्यादित नहीं है, इसलिये उससे विमुख हुआ जा सकता है–पराङ्मुख होकर अमर्यादित ऐसे ध्रुव ज्ञायकस्वभावकी ओर लौटा जा सकता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है।

ज्ञान, आनन्द, पुरुषार्थ आदि आत्माके स्वभाव ही अमर्यादित हैं। ज्ञानस्वभावका कहीं पार है सही? यहाँ ज्ञान पूरा हो गया—ऐसा स्वभावमें है ही नहीं। अमर्यादित आनन्दस्वभावकी भी कहीं मर्यादा आ जाती है—ऐसा भी नहीं है। अरेरे! लोगोंको इस बातकी रुचि और अभ्यास नहीं है। रुचि हो तो वीर्य स्फुरित हुए बिना न रहे। जिसकी आवश्यकता लगे वह पुरुषार्थ किये बिना जीव नहीं रहता। भगवान आत्माके ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि स्वभावोंकी गहराईकी क्या बात कहें ? उस अमर्यादित स्वभावके आश्रयसे मर्यादित ऐसे विकारी भावोंसे विमुख हुआ जा सकता है; क्योंकि विभाव तो मर्यादित वस्तु है न? देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धा, दया, दानादिका जो शुभराग वह तो मर्यादित है; विकार कभी मर्यादित–स्थायी रहनेवाला नहीं हो सकता, अमर्यादि तो आत्मस्वभाव ही है।

शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवारादि पर पदार्थोंका संयोग तो मर्यादित काल पर्यन्त है, परन्तु जीवकी पर्यायमें जो विकारी भाव होते हैं वे भी मर्यादित हैं, उनकी भी मर्यादा है–सीमा है। विभावोंकी सीमा होनेसे वे मिट सकते हैं, जो अमर्यादित स्वभाव है वह कभी मिट नहीं सकता। अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है। आत्मामें अनन्तगुण हैं। संख्यासे अनन्त-अनन्त गुणोंमें यह गुण अन्तिम—ऐसी मर्यादा कभी स्वभावमें नहीं होती। अनन्त-अनन्त ज्ञान एवं आनन्दादि स्वभावोंमें यह अन्तिम स्वभाव, यह अन्तिम शक्ति—ऐसी सीमा वस्तुस्वभावमें हो ही नहीं सकती। बात कुछ सूक्ष्म है भाई! जीव बाह्य वस्तुओंकी विस्मयतामें रुक गया है, वह रुकना भी सीमित वस्तु है। अरे! जिसने अमर्यादित स्वभावका माप लिया वह सम्यग्दर्शन–ज्ञान पर्यायें भी मर्यादित हैं, क्योंकि वे पर्यायें नित्य नहीं रहतीं। नित्य रहनेवाला असीम तो ज्ञायकस्वभाव ही है।

अमर्यादित तत्त्व तो आत्मस्वभाव ही है। आत्मा अगाध अनन्त शक्तिसे भरपूर है। शक्तियोंकी संख्यासे तो वह अनन्त है परन्तु भावसे भी वह अगाध तथा अनन्त है। आकाशके प्रदेश संख्यासे जितने अनन्त हैं उनकी अपेक्षा आत्माके गुण अनन्तगुने हैं। संख्या-अपेक्षासे गुण अनन्त हैं परन्तु भावकी अपेक्षासे भी प्रत्येक गुण अमर्यादित है। आत्माके गुण भले ही क्षेत्र-अपेक्षासे असंख्य प्रदेशोंमें—मर्यादित क्षेत्रमें रहें, परन्तु भावकी अपेक्षासे गुणोंकी गहनता अपार है, असीम है। अहा! ऐसी वस्तु है। हल्दीकी गाँठसे पंसारी नहीं हुआ जा सकता। शास्त्रकी अमुक बातोंकी धारण कर ली इसलिये अमर्यादित आत्माका ज्ञान हो गया—ऐसा नहीं है। भाई! यह तो भवका अन्त लानेकी बात है। भव तो मर्यादित है; उसका अन्त तो अमर्यादित ज्ञान एवं आनन्दादि स्वभावोंसे भरपूर भगवान आत्माका आश्रय करनेसे होता है। अमर्यादित स्वभाव पर दृष्टि होनेसे अंतरमें क्या

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कार्य होता है वह ज्ञानी जानता है, अज्ञानी नहीं जान सकता।

'आत्मा अगाध शक्तिसे भरा है।'

आत्माकी ज्ञान और आनन्दादि शक्तियाँ संख्यासे भी अगाध तथा स्वभावके सामर्थ्यरूपसे भी अगाध हैं। अरे प्रभु! तू कितना और कैसा है वह तुझे खबर नहीं है। दस-बीस करोड़ रुपये मिल गये तो उससे हुआ क्या? वे तो तुझसे बिलकुल पृथक् हैं, दया–दानका राग भी विभाव है–वह सब मर्यादित है; अमर्यादित तो अनन्त अगाध शक्तियोंसे भरपूर भगवान आत्मा है। उसके आश्रयसे पर्यायमें सुख और शान्ति प्रगट होती है।

*

वचनामृत–२८२

यह जो बाह्य लोक है उससे चैतन्यलोक पृथक् ही है। बाह्यमें लोग देखते हैं कि 'इन्होंने ऐसा किया, ऐसा किया', परन्तु अंतरमें ज्ञानी कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, वह तो ज्ञानी स्वयं ही जानते हैं। बाहरसे देखनेवाले मनुष्योंको ज्ञानी बाह्यमें कुछ क्रियाएँ करते या विकल्पोंमें पड़ते दिखाई देते हैं, परन्तु अंतरमें तो वे कहीं चैतन्यलोककी गहराईमें विचरते हैं। २८२.

'यह जो बाह्य लोक है उससे चैतन्यलोक पृथक् ही है।'

शरीर, वाणी, कर्म आदि पर पदार्थस्वरूप संयोग, पुण्य-पापरूप विभावभाव तथा परलक्षी अधूरी पर्याय—वह सब बाह्य लोक है। उससे यह त्रैकालिक भगवान आत्मा—चैतन्यलोक, द्रव्यस्वभाव, ज्ञायकतत्त्व—बिलकुल भिन्न ही है।

बाह्यमें लोग देखते हैं कि 'इन्होंने ऐसा किया, ऐसा किया', परन्तु अंतरमें ज्ञानी कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, वह तो ज्ञानी स्वयं जानते हैं।'

धर्मात्माकी दृष्टि सदा अंतर्मुख होती है, लोगोंकी दृष्टि बहिर्मुख होनेसे वे बाह्यसे देखते हैं कि ज्ञानी भी व्यापार करते हैं, राज्यका संचालन करते हैं, पूजा–भक्ति करते हैं, स्वाध्याय–विचार–ध्यान करते हैं, दया–दान–तप आदि सब करते हैं; परन्तु उस समस्त प्रवृत्तिके समय भी अंतरमें ज्ञानी कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, वह तो ज्ञानी स्वयं ही जानते हैं। ज्ञानीकी दृष्टि तो सदा अंतरमें मर्यादित स्वभाव पर लगी है। अहा! अंतरमें उनकी दशा क्या कार्य कर रही है वह जानना अज्ञानीका–बहिर्मुख जीवका सामर्थ्य नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बात कुछ सूक्ष्म है। अपना परिणमन भीतर क्या काम करता है वह ज्ञानी स्वयं ही जानता है। उसकी दृष्टि तो सदा अपने त्रैकालिक ज्ञायकभाव, सामान्यभाव, अमर्यादितभाव पर ही रहती है; उसे बाह्य प्रवृत्ति होती है किन्तु वह तो ज्ञाता-दृष्टा है। ज्ञानी चक्रवर्ती छह खण्डके राज्यमें, भोगकालमें भोगके भावमें दिखते हैं तथापि अंतरमें दृष्टिने जो ध्रुव परमात्मस्वभावको ग्रहण कर लिया है वहाँसे किंचित् भी नहीं हटती। अहा! ऐसा वस्तुस्वरूप है; लोगोंको समझना कठिन लगता है। ज्ञानीकी ज्ञानधारा भीतर क्या काम करती है वह स्वयं ही जानते हैं, अज्ञानी उसे नहीं जान सकते।

'बाहरसे देखनेवाले मनुष्योंको ज्ञानी बाह्यमें कुछ क्रियाएँ करते या विकल्पोंमें पड़ते दिखाई देते हैं, परन्तु अंतरमें तो वें कहीं चैतन्यलोककी गहराईमें विचरते हैं।'

बाहरसे देखनेवालेको ज्ञानी शुभाशुभ भावमें स्थित दिखाई देते हैं, दया–दान, पूजा–भक्ति, पठन–श्रवण, तत्त्वचर्चा आदि क्रियाएँ करते दिखते हैं, परन्तु अंतरमें तो वे कहीं गहरे चैतन्यलोकमें विचरण करते हैं। श्रीमद् राजचन्द्रजीसे किसीने पूछा : श्रीकृष्ण कहाँ हैं? श्रीमद्ने उत्तर दिया : आत्मामें। बाह्य स्थिति वह अलग वस्तु है। श्रेणिक राजा नरकमें गये हैं न? प्रभु! एकबार सुन तो सही, जहाँ भी हों वहाँ सर्वत्र आत्मामें हैं। अरे! नरककी वेदना सुनी है? ऐसी वेदनाके समय भी ज्ञानीकी दृष्टि भीतर अपने ज्ञाताद्रष्टा स्वभावमें होनेसे वे बाह्य संयोगोंमें या रागमें नहीं हैं, वे तो मात्र उनके ज्ञाता ही हैं। अहा! बड़ी अच्छी बात है! यह सब बोल बड़े अच्छे आये हैं।

ज्ञानानन्दस्वरूप अमृतस्वभाव अमर्यादित है, शुभाशुभ भाव तो विष, तुच्छ और मर्यादित हैं—ऐसी जिन्हें अंतर प्रतीति हुई है वे श्रद्धा-अपेक्षासे बाहर आते ही नहीं, वे तो अपने चैतन्यलोककी गहराईमें विचरते रहते हैं। रागसे भिन्न निज चैतन्यस्वरूपकी खबर नहीं है ऐसा अज्ञानी बाहरसे राज्य, परिवार, स्त्री आदि सब छोड़ दे परन्तु भीतर जो रागके एकत्वमें पड़ा है, शुभरागसे लाभ होगा ऐसी एकत्वबुद्धि पड़ी है, उसे राजपाट छोड़नेका क्या फल मिलेगा? वह तो अभी बाहर ही पड़ा है, आत्मामें आया ही नहीं। अहा! यह तो वीतरागका मार्ग! जैनकुलमें जन्म लिया उन्हें भी सत्य समझानेवाले नहीं मिलते!—तो वे बेचारे भीतर—अंतरमें कहाँसे जायें?

सम्प्रदाय छोड़कर दिगम्बरमें आयें, परन्तु दिगम्बर कहें किसे? देहादि परसे भिन्न और दया–दानादि विभावसे रहित—शुभाशुभ वृत्तिरूपी वस्त्रोंसे रहित—अंतरमें चैतन्यस्वभावकी यथार्थ प्रतीति हो तब तो अभी दिगम्बर धर्मकी—वीतराग धर्मकी—शुरुआत हुई कही जाती है; सच्चे भावलिंगी दिगम्बर मुनिपनेकी बात तो अभी दूर है। दिगम्बर कोई पक्ष, सम्प्रदाय या वाड़ा नहीं है, वह तो वस्तुका स्वरूप है। दिग् अर्थात् दिशा—आकाश,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अम्बर अर्थात् वस्त्र; आत्मामें तो वस्त्र है ही नहीं, परन्तु आत्माकी उग्र आराधना करनेवाले साधकको शरीरको ढँकनेवाले वस्त्र भी छूट जाते हैं इसलिये यथाजातरूपधरपना होता है, बाह्यमें शरीर भी वस्त्ररहित दिगम्बर होता है।

यहाँ तो यह बात चल रही है कि—बाह्यसे देखनेवालेको ज्ञानी बाह्यक्रियाएँ करते अथवा विकल्पोंमें संलग्न होते दिखते हैं, परन्तु अंतरमें तो वे परमानन्दके नाथमें—अपने त्रैकालिक चैतन्यस्वभावमें—गहरे-गहरे विचरण करते हैं। बाहरसे देखने पर सम्यग्दृष्टि युद्धमें लड़ता दिखाई देता है, तीन ज्ञानके धारी चक्रवर्ती श्री शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ तथा अरहनाथ छह खण्डको जीतने गये थे, उस काल भी उनकी दृष्टि अखण्ड चैतन्यमें ही लगी थी; दृष्टि-अपेक्षासे परकी क्रियामें या रागके विकल्पमें वे आये ही नहीं थे। जिन्होंने अपने अमर्यादित स्वभावको दृष्टिमें—ज्ञानकी पर्यायमें—ग्रहण कर लिया है वे भीतर चैतन्यकी गहनतामें गहरे-गहरे विचरते हैं; उनको व्यवहाररत्नत्रयके विकल्प आयें, परन्तु वास्तवमें उनकी ओर दृष्टि न होनेसे, वे उनमें आते नहीं हैं। अहा! अलौकिक बात है, भगवान! तेरी बातें अलौकिक हैं। सर्वज्ञदेवने जगतके समक्ष यह परमार्थ सत्य प्रकाशित किया है; और जिसे वह अंतरंग अनुभवमें आया उनको वह प्रसिद्ध होता है।

*

वचनामृत–२८३

द्रव्य तो अनन्त शक्तिका स्वामी है, महान है, प्रभु है। उसके सामने साधककी पर्याय अपनी पामरता स्वीकार करती है। साधकको द्रव्य-पर्यायमें प्रभुता और पामरताका ऐसा विवेक वर्तता है। २८३.

'द्रव्य तो अनन्त शक्तिका स्वामी है, महान है, प्रभु है।'

भगवान ज्ञायक आत्मा ज्ञान, आनन्द, वीर्यादि अनन्त समृद्धिका स्वामी है। द्रव्यकी शक्ति संख्यासे तथा भावसे अनन्त अनन्त अनन्त है। द्रव्यकी अनन्तताकी अपेक्षा तीनोंकालके समयोंकी संख्या अनन्तगुनी है, कालके समयोंकी संख्याकी अपेक्षा आकाशके प्रदेशोंकी—क्षेत्रकी—संख्या अनन्तगुनी है और आकाशके प्रदेशोंकी संख्याअपेक्षा भावकी—द्रव्यके गुणोंकी—संख्या अनन्तगुनी है। क्या कहते हैं? शक्तिकी अनन्तता इतनी महान है कि उसमें यह अन्तिम शक्ति—ऐसा है ही नहीं। भावसे भी शक्तिकी अनन्तता है।

भगवान आत्मा द्रव्य है, वह ज्ञानादि अनन्त अगाध शक्तिका स्वामी है, महान है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परमेश्वर है, अमर्यादित गुणोंका भण्डार है, परम अनन्तशक्तिका संग्रहालय है। उसकी दृष्टि करनेसे जीवको साधक पर्याय प्रगट होती है।

'उसके सामने साधककी पर्याय अपनी पामरता स्वीकार करती है।'

क्या कहते हैं? अनन्त-अनन्त स्वभावके सागर—त्रैकालिक द्रव्य—के समक्ष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप साधक पर्याय अपनी पामरता-अल्पता-स्वीकारती है। वीतराग मोक्षमार्गकी पर्याय भी त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावके समक्ष पामर है।

अगाध अमर्यादित शक्तियोंका पिण्ड ऐसा है निज त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव उसका आश्रय लेकर, उसके सन्मुख होकर जो मोक्षमार्ग—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी एकतास्वरूप साधक पर्याय—प्रगट हुआ वह त्रैकालिक द्रव्यस्वभावके समक्ष पामर है;—यह एक बात; दूसरी बात यह कि निर्मल साधक पर्याय प्रगट हुई परन्तु साध्य पर्याय—सर्वज्ञपर्याय—के समक्ष पामर है। त्रैकालिक ध्रुवस्वभावके समक्ष तो ठीक, परन्तु पूर्ण पर्यायके समक्ष भी पामर है।

श्री कार्तिकयानुप्रेक्षामें कहा है कि—'अप्पाणं मुणदि तिणमेत्तं।' सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबंधी तीव्र राग-द्वेषरूप परिणामोंका अभाव हुआ होनेसे, उपशमभावोंकी निरन्तर भावना रखता है और अपनेको, जबतक अनन्त ज्ञानादि पूर्ण दशा प्राप्त न हो तबतक, तृणतुल्य मानता है, किसी प्रकारका गर्व नहीं करता। अपनी साधकदशाको पूर्ण पर्यायके समक्ष पामर मानता है।

बेनने भी कहा है न!—'द्रव्यसे परिपूर्ण महाप्रभु हूँ, भगवान हूँ, कृतकृत्य हूँ' ऐसा मानते हैं तथापि 'पर्यायसे तो मैं पामर हूँ' ऐसा महामुनि भी जानते हैं।

गणधरदेव भी कहते हैं कि 'हे जिनेन्द्र! मैं आपके ज्ञानको नहीं पहुँच सकता। आपके एक समयके ज्ञानमें समस्त लोकालोक और अपनी भी अनंत पर्यायें ज्ञात होती हैं। कहाँ आपका अनन्त अनन्त द्रव्य-पर्यायोंको जानता अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान! आप अनुपम आनन्दरूप भी सम्पूर्णरूपसे परिणमित हो गये हैं। कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द! इसीप्रकार अनन्त गुणोंकी पूर्णपर्यायरूप आप सम्पूर्णरूपसे परिणमित हो गये हैं। आपकी क्या महिमा करें? आपका तो जैसा द्रव्य वैसी ही एक समयकी पर्याय परिणमित हो गई है; मेरी पर्याय तो आपके अनन्तवें भाग है।'

इस प्रकार प्रत्येक साधक, द्रव्य-अपेक्षासे अपनेको भगवान मानता होनेपर भी पर्याय-अपेक्षासे—ज्ञान, आनन्द, चारित्र वीर्य इत्यादि सर्व पर्यायोंकी अपेक्षासे—अपनी पामरता जानता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'साधकको द्रव्य–पर्यायमें प्रभुता और पामरताका ऐसा विवेक वर्तता है।'

स्वानुभवी सम्यग्दृष्टि ज्ञानीको द्रव्य-अपेक्षासे अपनी पूर्ण प्रभुताका और पर्याय-अपेक्षासे अपनी पामरताका—दोनोंका यथार्थ विवेक होता है, दोनोंका जैसा है वैसा सच्चा ज्ञान होता है।

आत्मा कामधेनु है, कल्पवृक्ष है, इसमेंसे जब जो चाहेगा वह मिल जायेगा। तू जो चाहेगा वह अंतरमेंसे मिलेगा। स्वभावमेंसे मनोवांछित फल मिलेगा। एक उपयोगको अन्दर ले जा तो कितना ही खिल जायेगा। एक चैतन्य पर दृष्टि रख तो उसके फल ऐसे खिल उठेंगे कि अंदरसे सहज ज्ञान आयेगा, आनन्द आयेगा, इसमें याद करना या धारणा नहीं करना पड़ेगा। किसी भी प्रकारकी आकुलताके बिना निराकुलरूपसे आया ही करेगा। इसका एक अंश भी अनन्तता लेकर आयेगा, पूर्णता हो उसकी तो क्या बात? तुझे आश्चर्य होगा कि जब एक अंशमें इतना तो पूर्णतामें कितना होगा?

वह अंश सहज अनंतता लेकर ही आयेगा। स्वभावमें है वह कहां जाये? उसे कौन ले जाये? उसमें विघ्न करनेवाला कौन है? उसे रोकनेवाला कौन है? कोई रोकनेवाला नहीं है; रुकता है तो अपने पुरुषार्थकी कमजोरीसे ही। एक अंश अनन्तता लेकर ही आता है। 'सर्वगुणांश वह सम्यक्त्व।' एक अंशके वेदनमें अनंती शक्तिका वेदन है।

जैसे समुद्र अन्दरसे उछले तो उस पानीको कौन रोक सकता है? बाहरसे पानी एकत्र करनेसे समुद्र नहीं भर जाता; जो अन्दरसे समुद्र उछले तो उसका उछाला ही निराला होता है; वैसे ही धारणाज्ञानसे पूरा नहीं पड़ता, बाहरका क्षयोपशम चाहे जितना एकत्रित करे परन्तु वह काम नहीं आता इसलिये तू अन्दरमें भेदज्ञानका सम्यक् प्रयास कर। एक द्रव्यदृष्टिकी डोर मुख्य रखना।....एक द्रव्यको ग्रहण करनेके बाद द्रव्य तेरे साथ ही रहेगा, तू स्वयं ही द्रव्य है। —*बहिनश्री चंपाबेन*

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१०७

दिनांक २-१०-७८

वचनामृत–२८४

साधक दशा तो अधूरी है। साधकको जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, और चैतन्यधाममें पूर्णरूपसे सदाके लिये विराजमान न हो जाय, तब तक पुरुषार्थकी धारा तो उग्र ही होती जाती है। केवलज्ञान होने पर एकसमयका उपयोग होता है और वह एकसमयकी ज्ञानपर्याय तीन काल एवं तीन लोकको जान लेती है। २८४.

'साधकदशा तो अधूरी है।'

क्या कहते हैं? साधकपना तो चौथेसे बारहवें गुणस्थान तक होता है। परसे तथा रागसे भिन्न ऐसा अपना त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव—सहज ज्ञायकभाव—सदा परिपूर्ण है ऐसा जिसके प्रथम ज्ञानमें, प्रतीतिमें और वेदनमें आया है उस सम्यग्दृष्टि जीवको साधकदशाका प्रारम्भ होता है। सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, अरे! पाँचवें–छठवें गुणस्थानमें अंतरमें विशेष स्थिरतारूप चारित्र हुआ, तथापि वह दशा अधूरी है। साधक दशा है न?

'साधकको जब तक पूर्ण वीतरागता न हो जाय, और चैतन्यधाममें पूर्णरूपसे सदाके लिये विराजमान न हो जाय तब तक पुरुषार्थकी धारा तो उग्र ही होती जाती है।'

अहाहा! साधक जीवका ऐसा पुरुषार्थ! जब तक स्वरूपमें पूर्णरूपसे स्थिर न हो जाय, अपने पूर्णानन्दमय चैतन्यधाममें सदाके लिये सम्पूर्णरूपसे निवास न हो जाय, तब तक उसे त्रैकालिक स्वभावके सतत आलम्बनरूप पुरुषार्थकी धारा तो उग्र ही होती जाती है।

साधक जीव सम्यग्दृष्टि है, स्वानुभवी है, परन्तु जब तक उस प्रकारकी अस्थिरता हो तब तक उसे व्यापार–धन्धेका तथा भोगादिका राग तो आता है, परन्तु वह भाव उसे दुःखरूप लगता है। श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानी थे, अनुभवी थे, परन्तु उन्हें रागके कारण व्यापार–धन्धेमें किंचित् लीनता थी। वे लिखते हैं कि धंधेमें ऐसा राग आ जाता है, ऐसी

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपाधि आ जाती है, ऐसा दुःख होता है मानो धड़के उपर मस्तक रहेगा या नहीं? इतनी आकुल–व्याकुलता होती है कि यह सब छोड़ दूँ, परन्तु क्या हो, प्रारब्धमें इस प्रकारका योग है। तीर्थंकरोंको भी प्रारब्धके योगसे गृहस्थाश्रममें रहना बनता है। चौथे गुणस्थानमें स्वानुभवी सम्यग्दृष्टिको भी, साधकदशा अल्प है इसलिये, भूमिकानुसार राग–द्वेषादि भाव आ जाते हैं। ज्ञानीको अस्थिरता-अपेक्षासे भी राग या दुःखका वेदन होता ही नहीं, और यदि राग या दुःखका वेदन करे तो वह तीव्र कषायी है—ऐसा माननेवालेको दृष्टिकी खबर ही नहीं है, तत्त्वकी तथा साधकदशाके स्वरूपकी खबर नहीं है। अहा! तत्त्वदृष्टि प्राप्त होना और प्राप्त होनेके पश्चात् किस प्रकार बनी रहे—यह कोई अलौकिक बात है। क्षायिक सम्यक्त्व और तीन ज्ञान लेकर अवतरित चक्रवर्ती तीर्थंकर भगवान भी गृहस्थाश्रममें होते हैं और छह खण्डको साधनेके लिये निकले हैं। अंतरमें अखण्डकी दृष्टि तथा साधना होने पर भी अभी साधक दशा अधूरी है इसलिये रागका विकल्प आता है।

श्रीमद् छव्वीसवें वर्षमें कहते हैं : 'सम्यक्त्वमें अर्थात् बोधमें भ्रान्ति प्रायः नहीं होती।' सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और दोनों सहित स्वात्माका संवेदन होनेपर भी, पूर्व प्रारब्धके योगसे उपाधि होती है, उसमें आकुलता होती है। कब तक? –कि मस्तक धड़के ऊपर रहना कठिन लगे अर्थात् मस्तक फिर जाय तब तक। भीतर दृष्टि नहीं बदलती परन्तु पर्यायमें अभी अस्थिरता है, पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हुई है, इसलिये भूमिकानुसार रागके ऐसे भाव आते हैं। जिसने आत्माका स्वरूप जाना है ऐसे ज्ञानीकी जगतके अज्ञानी प्राणियोंके साथ राशि नहीं मिलती अर्थात् दोनोंके बीच मेल नहीं बैठता। अज्ञानी बाह्य संयोग देखकर कहते हैं : आप ज्ञानी हो गये तो यह व्यापार–धंधा क्यों करते हो? भाई! जब तक पूर्णता प्रगट नहीं हुई हो तब तक ज्ञानीको भी ऐसे भाव आते हैं। भीतर दृष्टि सम्यक् होनेपर भी ज्ञानी क्वचित् मन्दपरिणामोंको भी प्राप्त हो जाते हैं। सम्यग्दर्शन और स्वानुभव होनेके बादकी यह बात है। अरे! तत्त्वकी क्या स्थिति है यह लोगोंको खबर नहीं है।

ज्ञानीको भी अस्थिरताके कारण काम–क्रोध तथा व्यापार–धंधेके भाव आते हैं। उपाधियोग उन्हें त्रासरूप लगता है और उससे उनका आत्मा कई बार आकुल–व्याकुलताको प्राप्त होता है। अरे! त्यागकी भावनावालेको यह सब क्या? वह सब छोड़ देना है परन्तु अंतरंग अस्थिरताके कारण छोड़ा नहीं जा सकता। उपार्जित कर्मके उदयका समपरिणामसे अव्याकुलरूपसे वेदन करना—भीतर ज्ञातारूप रहना—वही ज्ञानी पुरुषका मार्ग है।

भाई! मार्ग कोई अलग है; उसकी तुझे खबर नहीं है भाई! ज्ञानीको उपाधिमें अस्थिरताके भाव आ जायें, आकुल–व्याकुलता हो जाय तो उससे अंतरमें ऐसा लगता है कि यह व्यापार–धंधा सब छोड़ दूँ, परन्तु छूटे कहाँसे? अभी राग और संयोग है न? अहा! आता है कुछ समझमें?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ तो कहते हैं कि : भीतर आनन्दधाममें पूर्णरूपसे सदाके लिये विराजमान न हो तब तक ज्ञानीको पुरुषार्थकी धारा—बीचमें अस्थिरताका राग आता है तथापि उससे भिन्न अपनी ज्ञानधारा—अहा! उग्र ही होती जाती है।

'केवलज्ञान होनेपर एक समयका उपयोग होता है और वह एक समयकी ज्ञानपर्याय तीन काल एवं तीन लोकको जान लेती है।'

साधकपना मिटकर केवलज्ञान हुआ, फिर तो कुछ करना रहता नहीं है। पूर्ण कृतकृत्यदशामें उपयोग एक समयका हो जाता है और वह एक समयका उपयोग सब—तीन काल और तीन लोक—एक साथ वर्तमानवत् जान लेता है। अहा! साधकपनेका अनुपम फल केवलज्ञान वह क्या वस्तु है! अनन्त आनन्दका नाथ ऐसे ज्ञायकप्रभुका सम्यग्दर्शन–ज्ञान होनेपर ज्ञानी अल्परूपसे तो आनन्दधाममें आ गया है, परन्तु जब निज अतीन्द्रिय आनन्दधाममें पूर्णरूपसे निवास करेगा तब अनन्त केवलज्ञान प्रगट होगा। वह एक समयकी पूर्ण ज्ञानपर्याय तीन काल और तीन लोकको एक साथ प्रत्यक्ष जान लेती है। समस्त पदार्थोंको भूतकालकी पर्यायें वर्तमानमें तो हैं नहीं, भविष्यकालकी पर्यायें अभी हुई नहीं हैं, उन सब पर्यायोंको केवलज्ञानी भगवान वर्तमानवत् अत्यन्त प्रत्यक्ष जानते हैं। अहो! यह चैतन्यकी कोई अद्भुत दशा! वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है।

विश्वकी वस्तुव्यवस्थाको—तीन काल और तीन लोकको—पूर्ण ज्ञानकी एक समयकी पर्याय जान लेती है। अहा! भाई, देख तो सही! तेरी पूर्ण पर्यायका स्वभाव ही ऐसा है। तेरे चैतन्यदरबारमें तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्दादि अनन्त गुणवैभव विद्यमान है; उसका अनुभव करते–करते अंतरमें स्थिर होकर जहाँ केवलज्ञान प्रगट होता है वहाँ तीनों कालकी पर्यायोंसहित सर्व पदार्थोंको—तीन काल और तीन लोकको—एक समयमें युगपद् जान लेता है।

लोकालोकको जाननेका कार्य तो ज्ञानकी पर्यायमें होता है। आत्माका 'ज्ञ' स्वभाव है। 'ज्ञ' स्वभाव कहो, ज्ञायकभाव कहो, सर्वज्ञभाव कहो कि जिसके सामर्थ्यका पार नहीं है ऐसा ध्रुव ज्ञानस्वभाव कहो—वह सब एकार्थ है। उस ज्ञायकस्वभावकी जब प्रथम दृष्टि हो तब तो धर्मका प्रथम सोपान—सम्यग्दर्शन—प्राप्त होता है।

समयसारकी १६०वीं गाथामें आता है कि : यह आत्मा स्वभावसे सर्वका ज्ञाता तथा द्रष्टा है तथापि अपने कर्मफलसे लिप्त—व्याप्त होता हुआ संसारको प्राप्त हुआ वह सर्व प्रकारसे सर्वको जानता नहीं है। एक पण्डित कहने लगे कि—देखो! यहाँ कर्मसे विकार होता है ऐसा कहा है। भाई! कर्म तो जड़ है, परद्रव्य है, उससे तेरी पर्याय ढँकेगी? आचार्यदेव तो ऐसा कहते हैं कि अनादि कालसे अपने पुरुषार्थके अपराध द्वारा आत्मा कर्ममलसे लिप्त हुआ है। अपने विपरीत पुरुषार्थसे पर्यायमें स्वयं विभाव करता है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तब कर्ममें निमित्तपनेका आरोप किया जाता है। केवलज्ञानावरणीय प्रकृति केवलज्ञानको रोकती है वह निमित्तका कथन है। वास्तवमें वह सत्य नहीं है, परन्तु अपनी दशामें केवलज्ञानका घात अपनेसे हुआ है तब केवलज्ञानावरणीय कर्मको निमित्त कहा जाता है। 'अपनेको आप भूलकर हैरान हो गया',—कर्मसे नहीं।

अहा! भगवान आत्माका स्वभाव मात्र जाननेका ही है, परमें फेरफार करनेका नहीं। स्वभावका आश्रय करके मात्र ज्ञाता रहनेसे साधक जीवको ज्ञानधारामें पुरुषार्थ उग्र होता है और उसके फलरूप केवलज्ञान प्रगट हो जाता है।

*

वचनामृत–२८५

स्वयं परसे और विभावसे भिन्नताका विचार करना चाहिये। एकताबुद्धि तोड़ना वह मुख्य है। प्रतिक्षण एकत्वको तोड़नेका अभ्यास करना चाहिये।२८५.

'स्वयं परसे और विभावसे भिन्नताका विचार करना चाहिये।'

इस बोलमें तो माल ही माल आया है।

शरीरादि पर द्रव्योंसे, मोहादि द्रव्यकर्मसे और अपनी पर्यायमें परके लक्षसे होनेवाले रागादि विभावोंसे अपने—ज्ञायकस्वभावी निज ध्रुव आत्माके पृथक्त्वका स्वयं विचार करना। परलक्षसे गुरुकी वाणी सुननेसे अथवा शास्त्र पढ़नेसे स्वसन्मुखताका विचार आये ऐसा नहीं है। गुरुने आत्माका जैसा स्वरूप बतलाया है और शास्त्रोंमें जैसा कहा है उसका स्वयं अन्तर्मुख होकर विचार करना चाहिये। स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी आदि तो पर हैं ही, परन्तु जिसके प्रति सर्वाधिक प्रेम है ऐसा यह निकटस्थ शरीर भी आत्मासे बिलकुल भिन्न है, पुण्य–पापके विभाव भी आत्माका मूल स्वभाव नहीं है इसलिये वे भी आत्मासे बिलकुल भिन्न हैं—इस प्रकार पर तथा विभावसे भिन्न ऐसे निज त्रैकालिक ज्ञायक द्रव्यस्वभावको लक्षमें लेकर अंतर्मुख विचार करना चाहिये।

'एकताबुद्धि तोड़ना वह मुख्य है।'

शरीर, वाणी आदि परपदार्थ और अपनी पर्यायमें होनेवाले रागादि विभाव मेरे हैं—ऐसी एकत्वबुद्धि तोड़ना वह मुख्य कर्तव्य है। समयसारकी तीसरी गाथामें 'एकत्व निश्चयगत समय सर्वत्र सुंदर लोकमें' और पाँचवीं गाथामें 'दर्शावुं एक विभक्त अे, आत्मा तणां निज विभव थी;' आता है न! स्वरूपसे एकत्व और रागसे विभक्त ऐसे निज आत्माके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पृथक्त्वका विचार करनेसे पर एवं रागके साथकी एकताबुद्धि टूटती है। भाई! मार्ग तो ऐसा है। एकत्वबुद्धि तोड़ना वह मुख्य है।

'प्रतिक्षण एकत्वको तोड़नेका अभ्यास करना चाहिये।'

कभी–कभी क्षण–दो क्षण करना ऐसा नहीं, परन्तु प्रतिक्षण आत्माको परसे तथा रागादि विभावसे भिन्न करनेका अभ्यास करना चाहिये। शरीर सो मैं, स्त्री–पुत्र–लक्ष्मी आदि मेरे'—ऐसा लगता है न? शरीरका नाम लेकर कोई बुलाये तो 'हाँ' कहता है; किन्तु भाई! शरीर तू कहाँ है? स्त्री–पुत्रादि बाह्य वस्तुएँ तेरी कब थीं? अनादिसे परमें तथा विभावमें जो एकत्वबुद्धि हो रही है उसे क्षण–क्षण तोड़नेका—अंतरसे भिन्न करनेका—अभ्यास करना चाहिये। शरीरको रोग आये, दमा हो जाय, श्वास चढ़े, वह तो जड़ शरीरकी पर्याय है; उस ओर लक्ष जानेसे जो राग या द्वेष आता है वह विभाव है। विभाव तथा परसे पृथक्त्वका विचार करना चाहिये। प्रतिक्षण शरीरादि तथा रागादिके साथका एकत्व तोड़नेका अभ्यास करना चाहिये।

*

वचनामृत–२८६

यह तो अनादिका प्रवाह मोड़ना है। कार्य कठिन तो है, परन्तु स्वयं ही करना है। बाह्य आधार किस कामका? आधार तो अपने आत्मतत्त्वका लेना है। २८६.

'यह तो अनादिका प्रवाह मोड़ना है।'

क्या कहते हैं? शरीर, वाणी आदि परद्रव्य तथा परके लक्षसे होनेवाले शुभाशुभ विभावोंके ओरकी जो अनादिकी वृत्ति है उसे बदलना है, परिणामकी दिशा पलटना है। अरे! भीतर स्वयं भगवान विराजता है उस ओर तेरा झुकाव नहीं होता। अनादिसे जो विपरीत अभ्यास है उसे बदलना है, उसमें कुलाँट मारना है। बाहरी जानपना विशेष हो या न हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। रुचिका जो प्रवाह अनादिसे परकी तथा विभावकी ओर है उसे मोड़कर अपने ज्ञानस्वभावकी ओर लाना है।

'कार्य कठिन तो है, परन्तु स्वयं ही करना है।'

पर तथा शुभाशुभ रागकी ओर दृष्टि जो अनादिसे है उसका प्रवाह स्वभावकी ओर मोड़ना है, अंतर्मुख कुलाँट लगाना है। वह कार्य कठिन तो है परन्तु स्वयं ही करना है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न:—स्वसन्मुख होनेका कार्य सुगम है—ऐसा शास्त्रमें आता है न?

उत्तर:—भाई! स्वोन्मुख होना वह आत्माका स्वरूप है उस अपेक्षासे सुगम कहा है, परन्तु यहाँ तो, अनादिसे पर तथा विभावका अभ्यास है और आत्माका अभ्यास नहीं है, इसलिये 'कठिन कार्य' कहा है।

अनादि परिभ्रमणमें जीव निगोदसे लेकर नववें ग्रैवेयक तक अनन्त बार गया, परन्तु 'शरीर मैं हूँ और रागादि विभावकी क्रिया मेरी है' ऐसे परसन्मुख परिणामोंके साथ एकताका प्रवाह एक क्षण भी नहीं बदला—आत्मस्वभावका अभ्यास नहीं किया; क्योंकि उसे अपना जो स्वरूप है वह तो समझमें आया नहीं। अपना सहज अस्तित्व—पूर्णानन्दका नाथ ऐसे निज ज्ञायक भगवानकी उपस्थितिस्वरूप जो तत्त्व वह तो—समझमें आया नहीं, तो अपना अस्तित्व कहीं मानना तो पड़ेगा न? इसलिये शरीर, वाणी या रागादि जो भी वस्तु जाननेमें आयी उसमें 'यह मेरा अस्तित्व है' ऐसा मान लिया और 'वह ज्ञानस्वरूप आत्मा मेरा अस्तित्व है' वह छूट गया। आया समझमें? काम कठिन तो है, क्योंकि अनादिका जो प्रवाह है वह बदलना है। नदीके पानीका प्रवाह एक दिशासे दूसरी दिशाकी ओर मोड़नेका काम कठिन होता है, वैसे ही यह अनादि परसन्मुखताका प्रवाह मोड़कर स्वसन्मुख करना वह काम कठिन तो है, परन्तु वह काम स्वयं अपनेको करना है।

अरे! अनादिका अभ्यास; अनादि प्रवाहमें यह जीव अनंतबार मुनि हुआ—दिगम्बर सन्त हुआ, बल-ब्रह्मचारी हुआ, महान राजपाटको छोड़ दिया, परन्तु 'यह महाव्रतादिके शुभपरिणाम मेरे हैं, मुझे लाभदायक हैं'—ऐसी एकत्वबुद्धि नहीं छोड़ी; भीतर परिणाममें जो राग होता है वह विकल्प हैं, उनसे रहित पूर्ण परमानन्दका नाथ जो निज ज्ञायकवस्तु उसके सहज अस्तित्वको नहीं समझा। अपना ज्ञानानन्दमय पूर्ण अस्तित्व प्रतीतिमें नहीं आया, इसलिये कहीं अपना अस्तित्व मानना तो पड़ेगा। अपना स्वरूप लक्षमें नहीं आया इसलिये 'यह दया–दान एवं काम–क्रोधादि विभाव तथा इनके फलरूप यह जो बाह्यसंयोग सो मैं हूँ, यह मेरे हैं' ऐसी मान्यता अनादिसे हो रही है। 'वे मेरे नहीं हैं, मैं उनसे भिन्न मात्र ज्ञायक हूँ' ऐसी अन्तर्मुखदृष्टि एक समयमात्र भी कभी नहीं की।

अब उस प्रवाहको मोड़ना है। भले ही अनादिका अभ्यास है परन्तु उसे तोड़नेका अभ्यास भी स्वयं अपनेको करना है, कोई और करवा दे ऐसा नहीं है। क्या कहा? कि—अनादि कालसे जो ज्ञान और रुचिकी पर्याय पर तथा रागकी ओर ढल रही है उसे अंतरमें ले जाना है, उसके प्रवाहको स्वोन्मुख करना वह काम कठिन तो है, परन्तु कठिन होने पर भी वह काम स्वयं ही करना है, क्योंकि कोई देव या गुरु अंतरमें भेदविज्ञान करवा दें ऐसा तो है ही नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'बाह्य आधार किस कामका?'

देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धाका राग किस कामका? वह कहीं अन्तर्मुख होने, भेदज्ञान करनेका आधार नहीं है, इसलिये उनका आधार किस कामका? अंतरमें ज्ञानप्रकाशस्वरूप जो निज चैतन्यबिम्ब उसका यथार्थ लक्ष करनेसे पर तथा विभावके साथकी एकत्वबुद्धि टूटती है। वह कार्य स्वयं अपनेको करना है; उसमें कोई देव, गुरु, शास्त्र, शरीरके संहननकी दृढ़ता अथवा शरीरकी निरोगता सहायक नहीं होते, वे सब पर हैं। परकी अवस्था भेदज्ञान करनेमें क्या काम आयगी? देव–शास्त्र–गुरुके प्रति शुभराग आता है, परन्तु उस रागसे तो पृथक् होना है। पृथक् होनेमें राग आधार बनेगा? जिनसे पृथक् होना है उनका आधार उसमें कहाँसे कार्यकारी होगा? इसलिये बेनने यहाँ कहा है कि बाहरी आधार कहीं आत्मसन्मुखतामें कार्यकारी नहीं होता।

'आधार तो अपने आत्मतत्त्वका लेना है।'

क्या कहा? कि—जो रागकी मन्दता है उससे भी भिन्नता करना है। रागकी मन्दताका आधार भी काम नहीं आयगा; आधार तो अपने भगवान परमात्माका—निज ज्ञायक प्रभुका—काम आयगा। निमित्त और रागसे तो अपनेको पृथक् करना है। निमित्त पर है, उससे पृथक् करनेमें क्या निमित्तका आधार है? राग विभाव है, उससे पृथक् होनेमें क्या रागका आधार है? आधार तो निमित्त और विभावसे रहित ऐसे अपने आत्मतत्त्वका लेना है। अहा! भाषा सादी और सरल तथा देशी, परन्तु भाव बहुत ऊँचे। इसका हिन्दी भाषान्तर तो हो चुका है। सादी भाषामें कैसी बात कही है? अब तो बहुत लोग यह पढ़ने लगे हैं।

'आधार' कहकर क्या कहना चाहते हैं? 'निमित्त और रागसे लाभ होता है' ऐसा जो अनादिका अभ्यास है उससे कुलाँट लगाना है। उस कार्यमें निमित्त या रागकी मन्दता आदि किसीके आधार या सहायताकी आवश्यकता नहीं है। जिससे पृथक् होना है उसीका आधार काम नहीं आयगा; आधार तो अपने ज्ञायकस्वभावका लेना पड़ेगा। आनन्दकन्द ज्ञायकस्वभावका अंतरंग आश्रय लेना ही सच्चा आधार है। अहा! वस्तुस्थिति ऐसी है।

*

वचनामृत–२८७

द्रव्य सदा निर्लेप है। पर्यायमें सबसे निर्लेप रहने जैसा है। कहीं खेद नहीं करना, खिंचना नहीं—कहीं अधिक राग नहीं करना। २८७.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'द्रव्य सदा निर्लेप है।'

इस बोलमें शब्द थोड़े हैं किन्तु भाव बहुत गहरे हैं।

द्रव्य अर्थात् निज त्रैकालिक ज्ञायक वस्तु; वह तो स्वभाव-अपेक्षासे सदा निर्लेप है। त्रैकालिक ज्ञायक ध्रुव द्रव्यस्वभावमें शरीरका, कर्मका या रागका कोई लेप नहीं है। अहा! ऐसी बात है! आत्मामें राग या कर्मादिका लेप है वह तो पर्याय-अपेक्षासे है, द्रव्य-अपेक्षासे नहीं। द्रव्य अर्थात् त्रैकालिक ध्रुव वस्तु, वह तो सदा निर्लेप विद्यमान है; उसमें आवरण, अशुद्धता या अल्पताका कभी प्रवेश नहीं हुआ है; वह लेप तो एक समयवर्ती पर्यायमें है। अहा! बड़ी बात है!

'पर्यायमें सबसे निर्लेप रहने जैसा है।'

अब कहते हैं कि—यदि द्रव्यस्वभाव सदा निर्लेप ही है, तो अब पर्यायमें सबसे निर्लेप करने जैसा है। स्वभावसे निर्लेप ऐसी जो ज्ञानानन्दस्वभावी निज ध्रुव ज्ञायक वस्तु उसका अंतरंग आश्रय करके पर्यायमें रागादि विभावभावके तथा निमित्तके लेपसे रहित होना, ज्ञायकवस्तु स्वभावसे जैसी है वैसा परिणमन पर्यायमें रहे वह करने जैसा है। अहा! वस्तु ऐसी है; समझमें आता है कुछ?

ज्ञानस्वभाव, द्रव्यस्वभाव—आत्मवस्तु आदि सदैव निर्लेप है तो उसका अंतरमें आश्रय करनेसे पर्यायमें भी निर्लेपता रहती है, रागादि विभावका या निमित्तका सम्बन्ध नहीं रहता। वस्तुस्वभाव सदा निर्लेप स्थित होने पर भी उसकी यथार्थ प्रतीतिके बिना अनादिसे समयवर्ती पर्यायमें राग और निमित्तके साथ जो सम्बन्ध जोड़ा था वह निर्लेप ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे तोड़ दिया—जो जोड़ता है वही तोड़ता है—उससे पर्यायमें निर्लेपता हुई।

द्रव्य जैसा निर्लेप है वैसा पर्यायमें निर्लेप मोक्षमार्ग हुआ। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र कहो या निर्लेपता कहो—दोनों एक ही बात है। क्या कहा? भगवान निर्लेप आत्माके आश्रयसे पर्यायमें निर्लेपता प्रगटती है। अर्थात् क्या? कि भगवान ज्ञायक आत्माका आश्रय करनेसे जो प्रतीति हुई, ज्ञान हुआ, रमणता हुई—पर्यायमें निर्लेपता, निर्मलता प्रगट हुई वह ऐसा सिद्ध करती है कि द्रव्यस्वभावसे वस्तु सदा निर्लेप है। अहा! ऐसी बातें हैं! लोगोंको समझनेमें कठिन लगती हैं, क्योंकि अभ्यास नहीं है न! आजकल तो सब विपरीत अभ्यास चलता है। जो अभ्यास करने योग्य है वह छोड़ दिया है और जो अनादिकालीन विभावका अभ्यास है वह बनाये रखा है—राग करना, शुभभाव करना, यह करना और वह करना।

वस्तु अर्थात् भगवान आत्मा स्वभावसे निर्लेप, निर्दोष, निरावरण, अशुद्धतारहित शुद्ध, अपूर्णतारहित पूर्ण तथा वीतराग है, उसका आधार लेकर पर्यायमें निर्लेपता प्रगट होती है। पर्यायमें निर्लेपता रहना वही मोक्षमार्ग है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न:—उसमें गुरुके उपदेशका आधार नहीं है?

उत्तर:—वस्तुके परिणमनमें वास्तवमें किसीका आधार–बाधार नहीं है।

प्रश्न:—निमित्त तो है न?

उत्तर:—निमित्त है; परन्तु उसका अर्थ क्या? वस्तु अपने उपादानकारणसे कार्य करती है उसमें जो अनुकूल अन्य वस्तु है उसे निमित्तकारणपनेका आरोप किया जाता है। वास्तवमें देखा जाय तो निमित्तवस्तु उपादानमें आधारका कोई काम नहीं करती। अहा! ऐसा मार्ग! वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है।

कुछ लोग कहते हैं कि–श्री कुन्दकुन्दाचार्यके शास्त्रोंकी भाँति अब तो बेनकी पुस्तक भी व्याख्यानमें पढ़ने लगे हैं। भाई! सुन तो सही! भगवानकी हो या कुन्दकुन्दाचार्यदेवकी हो अथवा बेनकी हो—वाणीकी जाति तो एक ही एक है। स्वानुभवी सम्यग्दृष्टिकी वाणी हो या केवलीकी हो—जाति तो एक ही है। पं. टोडरमलजीके 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक'में आता है न!—तिर्यंचादिक और केवली–सिद्धभगवानको ज्ञानादिककी हीनता-अधिकता होने पर भी, सम्यक्त्वगुण तो समान ही कहा है।

यहाँ बात चलती है कि—वस्तुस्वभाव निर्लेप है, उसके आश्रयसे पर्यायमें सबसे निर्लेप रहना योग्य है।

'कहीं खेद नहीं करना, खिंचना नहीं—कहीं अधिक राग नहीं करना।'

प्रतिकूल संयोगोंके प्रसंगोंमें घबराकर खेद नहीं करना और अनुकूल संयोगोंके प्रसंगोंमें ललचाकर आकर्षित नहीं होना। 'आकर्षित नहीं होना' अर्थात् क्या? कि–कहीं अधिक राग नहीं करना। जिसे अंतरमें स्वभावकी अधिकता है उसे भी निर्बलताके कारण राग तो आता है, परन्तु रागका राग अर्थात् उस रागका प्रेम नहीं करना।

जिसे रागका प्रेम है उसे भगवान ज्ञायकस्वभाव हेय है और जिसे भगवान ज्ञायक-स्वभाव उपादेय है उसे रागभाव हेय है। अहा! ऐसी बात! भाषा तो बड़ी संक्षिप्त परन्तु भाव बड़े गंभीर हैं भाई!

'कहीं खेद-खिन्न नहीं होना' अर्थात् खेद नहीं करना; शोक, संताप, अफसोस या द्वेष नहीं करना और 'आकर्षित नहीं होना' अर्थात् अधिक राग नहीं करना। राग अधिक हो जाय और स्वभाव ढँक जाय ऐसा नहीं करना। अशक्तिसे आ जाय वह और बात है, परन्तु स्वयं अंतरसे उल्लसित होकर स्वभावकी अपेक्षा परकी ओर विशेष राग नहीं करना।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१०८

दिनांक ३-१०-७८

वचनामृत–२८८

वस्तु सूक्ष्म है, उपयोग स्थूल हो गया है। सूक्ष्म वस्तुको पकड़नेके लिये सूक्ष्म उपयोगका प्रयत्न कर। २८८.

'वस्तु सूक्ष्म है, उपयोग स्थूल हो गया है।'

परमाणु, कालाणु आदि भी सूक्ष्म हैं, परन्तु यहाँ आत्माकी बात है। भगवान ज्ञायक आत्मा अरूपी सूक्ष्म वस्तु है। शुभाशुभ राग या परके लक्षवाली ज्ञानादिकी पर्याय भी स्थूल है। जीवको अनादिसे एक समयवर्ती पर्याय जो कि व्यक्त है, प्रगट है और स्थूल है, उस पर दृष्टि है, परन्तु पर्यायके समीप ही अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति आदि अनन्त गुणोंसे भरपूर जो त्रैकालिक ध्रुव निज ज्ञायक सूक्ष्म वस्तु विद्यमान है उस पर दृष्टि नहीं जाती; क्योंकि उसका उपयोग अनादिसे स्थूल हो गया है। उपयोग अर्थात् ज्ञानका व्यापार। सूक्ष्म ऐसे आत्मतत्त्वकी रुचि नहीं होनेसे, ज्ञानका व्यापार परलक्षी—शरीर-वाणी-मन, राग, पुण्य और पापके लक्षवाला—स्थूल हो गया है।

'सूक्ष्म वस्तुको पकड़नेके लिये सूक्ष्म उपयोगका प्रयत्न कर।'

अनन्त ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान आत्मा सूक्ष्म तथा अतीन्द्रिय महापदार्थ है। उसे अंतर्ग्राह्य करने हेतु सूक्ष्म उपयोगका प्रयत्न कर। अहा! ऐसी बात है। परमार्थवचनिकामें कहा है कि—'आगमअंग—पंचमहाव्रत, दया, दान, भक्ति, पूजादि आगमका व्यवहार—जो बाह्यक्रियारूप प्रत्यक्ष-प्रमाण है उसका स्वरूप साधना अज्ञानीको सुगम है। मूढ़ जीव वह बाह्य क्रियाएँ करता हुआ अपनेको मोक्षमार्गका अधिकारी मानता है, परन्तु अंतर्गर्भित अध्यात्मरूप क्रिया, जो कि अंतर्दृष्टि ग्राह्य है उसे मूढ जीव नहीं जानते; क्योंकि अंतर्दृष्टिके अभावमें अंतरक्रिया दृष्टिगोचर नहीं होती; इसलिये मिथ्यादृष्टि जीव चाहे जितनी क्रिया करता होनेपर भी मोक्षमार्ग साधनेमें असमर्थ है।' दया–दानादि मन्दकषायका शुभभाव परलक्षी स्थूल उपयोग है, आत्मा तो अंतरमें ज्ञान, आनन्द एवं शान्तिका ढेर–पिण्ड त्रैकालिक सूक्ष्म

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पदार्थ है। अहा! उस सूक्ष्म अतीन्द्रिय महापदार्थको ग्रहण करनेमें सूक्ष्म उपयोगका प्रयत्न कर, अंतर्मुखताका प्रबल पुरुषार्थ कर।

लोग कहते हैं कि—व्रतादि शुभभावको धर्मका साधन कहो, नहीं तो तुम्हारा 'एकान्त' हो जायगा। भाई! व्रतादिके रागसे धर्म मानना अर्थात् निश्चयसे भी धर्म होता है और व्यवहारसे भी धर्म होता है—ऐसा मानना वह तो मिथ्या 'अनेकान्त' है। भीतर रागसे भिन्न सूक्ष्म ज्ञायक वस्तुको ग्रहण करनेके लिये जो स्वन्मुखताके सूक्ष्म उपयोगका प्रयत्न वह धर्मका साधन है और व्रतादिका शुभराग साधन नहीं है। इसप्रकार 'अस्ति-नास्ति' मानना वह सच्चा अनेकान्त है। अहा! ऐसा मार्ग है; लोगोंको खबर नहीं है इसलिये बेचारे क्या करें?

व्रतादि बाह्य क्रियासे या अंतरमें रागकी बहिर्लक्षी मन्दतासे आत्माको धर्मका लाभ होगा—यह प्ररूपणा ही वास्तवमें मिथ्या उपदेश हैं; क्योंकि भगवान ज्ञायक आत्मा तो रागादि विभावरहित सूक्ष्म पदार्थ है और रागकी मन्दताके परिणाम अत्यन्त स्थूल हैं। बहिर्लक्षी स्थूल उपयोग द्वारा अन्तर्वर्ती सूक्ष्म वस्तु कैसे पकड़में आयगी? कभी नहीं आ सकती। समयसारके पुण्य-पाप अधिकारमें कहा है न!—कितने ही अज्ञानी लोग दीक्षा लेते समय सामायिककी प्रतिज्ञा लेते हैं परन्तु सूक्ष्म ऐसे आत्मस्वभावकी श्रद्धा, लक्ष तथा अनुभव नहीं कर सकनेके कारण, स्थूल लक्षवाले वे जीव अत्यन्त स्थूल ऐसे संक्लेश परिणामोंको छोड़कर अत्यन्त स्थूल ऐसे विशुद्ध परिणामोंमें (व्रतादि शुभ परिणामोंमें) राचते हैं। संक्लेश परिणाम तथा विशुद्ध परिणाम दोनों अत्यन्त स्थूल हैं; आत्मस्वभाव ही सूक्ष्म है। इसप्रकार वे—यद्यपि वास्तविक रीतिसे सर्वकर्मरहित आत्मस्वभावका अनुभवन ही मोक्षका कारण है तथापि—कर्मानुभवके बहुपने-अल्पपनेको ही बंध-मोक्षका कारण मानकर, व्रत, नियम, शील, तप आदि शुभकर्मोंका मोक्षके हेतुरूपमें आश्रय करते हैं।

अहाहा! पापके परिणाम तो स्थूल हैं ही, परन्तु भगवानकी भक्तिका भाव, व्रत-पालनका भाव, ब्रह्मचर्य-पालनका भाव आदि विकल्प भी स्थूल हैं। स्थूल उपयोग अपने सूक्ष्म आत्मतत्त्वको नहीं पकड़ सकता। इसलिये यहाँ बेनने कहा है कि—सूक्ष्म वस्तुको पकड़नेके लिये धीर होकर अंतरमें धीर सूक्ष्म उपयोगका प्रयत्न कर। अन्तर्मुख सच्चे प्रयत्नसे आत्मा अवश्य प्रगट होगा। यह प्रथम स्थितिकी बात है।

*

वचनामृत—२८६

चैतन्यकी गहरी भावना तो अन्य भवमें भी चैतन्यके साथ ही आती है। आत्मा तो शाश्वत पदार्थ है न? ऊपरी विचारोंमें नहीं परन्तु अंतरमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मंथन करके तत्त्वविचारपूर्वक गहरे संस्कार डाले होंगे तो वे साथ आयँगे।

"तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम् ॥"

जिस जीवने प्रसन्नचित्तसे इस चैतन्यस्वरूप आत्माकी बात भी सुनी है, वह भव्य पुरुष भविष्यमें होनेवाली मुक्तिका अवश्य भाजन होता है। २८६.

'चैतन्यकी गहरी भावना तो अन्य भवमें भी चैतन्यके साथ ही आती है।'

भीतर चैतन्यस्वभावमें जो सूक्ष्म है और भरपूर भरा है उस ओरकी गहरी भावना, एकाग्रता—पर्यायके पातालमें, उसके समीप जो पूर्णानन्द निज ज्ञायक प्रभु विराजता है उसे प्राप्त करनेकी तीव्र लगन—तो अन्य भवमें भी चैतन्यके साथ ही आती है। वर्तमान प्रगट पर्यायको भीतर शुद्ध द्रव्यस्वभावमें ले जा; उसके बिना आत्मा पकड़में नहीं आयगा। भगवान आत्मा तो सूक्ष्म वीतरागी स्वभावका पिण्ड है, अकषायस्वभावका दल है। अकषायस्वभाव पर्यायमें प्रगट होता है वह कहाँसे आता है? भीतर अकषायस्वभाव भरा पड़ा है उसके आश्रयसे प्रगट होता है। उस स्वभावको ग्रहण करनेकी गहरी–अति तीव्र भावना चाहिये। जीवको स्थूल ऐसे शुभरागका, व्यवहार-आचरणका अभ्यास है परन्तु अंतरमें जो ज्ञायकपिण्ड, अनन्त आनन्दकी मूर्ति शाश्वत विराजमान है उसे समझनेके लिये सूक्ष्म उपयोग कभी नहीं किया। उसे ग्रहण करनेके लिये उपयोगको सूक्ष्म करना पड़ेगा प्रभु! सांडसीसे बड़े सर्प पकड़े जाते हैं परन्तु उससे क्या बारीक मोती पकड़में आयँगे? मोती पकड़नेके लिये तो छोटी चिमटी चाहिये। वैसे ही भगवान आत्मा शुभरागके स्थूल उपयोगसे पकड़में नहीं आयगा परन्तु रागरहित स्वसन्मुखताके सूक्ष्म उपयोगसे पकड़में आयगा। जैसे रागका स्थूल उपयोग पर्याय है वैसे ही रागरहित सूक्ष्म उपयोग भी पर्याय है।

जैसे द्रव्य छूटता नहीं है, वैसे ही द्रव्यके—चैतन्य द्रव्यस्वभावके—आश्रयसे पड़े हुए दृढ़ संस्कार भी नहीं छूटते; इसलिये यहाँ कहा है कि—चैतन्यकी गहरी भावना तो अन्य भवमें भी चैतन्यके साथ ही आती है।

'आत्मा तो शाश्वत पदार्थ है न?'

भगवान चैतन्यपदार्थ सनातन शाश्वत वस्तु है न? आदि और अन्तरहित वस्तु है न? उसका कभी प्रारम्भ है? कभी उसका नाश है? आत्मा कभी किसीसे छिदता नहीं है, भिदता नहीं है; उसका कोई कर्ता–हर्ता–धर्ता नहीं है; वह तो स्वतःसिद्ध शाश्वत पदार्थ है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'ऊपरी विचारोंमें नहीं परन्तु अंतरमें मंथन करके तत्त्वविचारपूर्वक गहरे संस्कार डाले होंगे तो वे साथ आयँगे।'

'मैं ज्ञायक हूँ', 'मैं शुद्ध चैतन्यद्रव्य हूँ' ऐसा अंतरमें यथार्थ मंथन करके—ऊपरी-ऊपरी विचारोंमें नहीं परन्तु अंतर्मुख यथार्थ मंथन करके—तत्त्वचिन्तनपूर्वक यदि गहरे संस्कार डाले होंगे तो वे दूसरे भवमें भी साथ ही आयँगे। वर्तमानमें पंचमकाल चल रहा है, पूर्ण मुक्ति तो होती नहीं है, इसलिये दृढ़ किये हुए संस्कार उसे स्वर्गके भवमें साथ जायँगे। साथ ही शुभभाव हैं, उनसे पुण्यबंध होता है, इससे स्वर्गमें जायगा, परन्तु वहाँ उसको तत्त्वके संस्कार साथ ही रहेंगे। आया कुछ समझमें?

प्रभु! तू शाश्वत है न? ध्रुव है न? शाश्वतमें शाश्वतताके संस्कार डालनेसे वे शाश्वत वस्तुके साथ ही जायँगे। जैसे शुभाशुभभाव करता है और जो पुण्य-पापका बंध होता है वह भी साथ जाता है न! वैसे ही ज्ञानादि अपार–अगाध–गंभीर स्वभावसे भरपूर भगवान आत्मामें अंतर्मंथन करके, अपने स्वरूपके ओरकी एकाग्रताका प्रयत्न करके तत्त्वविचारपूर्वक गहरे संस्कार डाले होंगे वे स्वर्गमें जायगा वहाँ भी साथ ही आयँगे।

अब कहते हैं कि–कदाचित् सम्यग्दर्शन पहले न हो, तथापि यह संस्कार रह जायँ तो वे साथ आयँगे और उनके बल द्वारा पुरुषार्थ बढ़ाकर अगले भवमें भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेगा। इस सम्बन्धमें वनवासी संत श्री पद्मनन्दि आचार्यदेवने एकत्व-अधिकारके २३वें कलशमें कहा है :

"तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्॥"

"जिस जीवने प्रसन्न चित्तसे इस चैतन्यस्वरूप आत्माकी बात भी सुनी है, वह भव्यपुरुष भविष्यमें होनेवाली मुक्तिका अवश्य भाजन होता है।"

चैतन्य आनन्दकन्द भगवान आत्मा अनंत गुणोंका समुद्र अंतरमें हिलोरें मारता हुआ भरा पड़ा है। क्षेत्र भले ही शरीरप्रमाण छोटा है, परन्तु स्वभावकी अनन्तताका पार नहीं है। जिसने ऐसी बात भी अंतरके अतिशय प्रेमसहित–प्रसन्नचित्तसे सुनी है, संस्कारोंकी डोरी चैतन्यद्रव्यमें पिरो दी है, वह भव्य जीव भविष्यमें होनेवाली मुक्तिका अवश्य भाजन होता है; सम्यग्दर्शन तथा चारित्र प्रगट करके एक–दो भवमें अवश्य केवलज्ञान और मोक्षदशा प्राप्त करेगा।

जैसे बारीक सुईमें यदि डोरा पिरो दिया हो तो खो नहीं जाती, चिड़िया घोंसलेमें ले गई हो तब भी डोरा साथ है इसलिये मिल जायगी; वैसे ही यह ज्ञायक भगवान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा रागसे रहित वीतरागताकी मूर्ति है, अनाकुल आनन्दका कन्द है—ऐसी चैतन्यतत्त्वकी कथा भी जिसने अंतरंग प्रेमसहित, हर्षपूर्वक, रुचिसे श्रवण की है वह पुरुष अवश्य भव्य है; वह भववनमें खो नहीं जायगा; क्योंकि वह अल्पकालमें ही होनेवाली केवलज्ञान और मुक्तिका पात्र है।

जीवने अनादिसे पर्यायमें पुण्य–पापरूप विभावके संस्कार डाले हैं। जन्मा हुआ बालक जैसे बिना सिखाये ही माताका स्तनपान करता है,—किसने सिखाया? वे पूर्वके संस्कार हैं न? पूर्वजन्मके संस्कार कार्य करते हैं न?–वैसे ही जिसने अतीन्द्रिय आनन्दके स्वामीकी बात भी अंतरंग प्रेमसहित सुनी हो, आनन्दको चूसनेके संस्कार डाले हों वह भव्यपुरुष भविष्यमें होनेवाली मुक्तिका अवश्य भाजन होता है। अहा! यह बात लोगोंको कठिन लगती है इसलिये कहते हैं कि इसका कुछ साधन–उपाय बतलाइयें। भाई! जिस बाह्य क्रिया और शुभभावको तुम साधन मानते हो वह वास्तवमें सच्चा साधन है ही नहीं। प्रज्ञाछैनी—पर तथा विभावसे आत्माकी भिन्नताका भेदज्ञान और आत्मानुभूति—वही एकमात्र रागसे पृथक् होनेका साधन है। पत्थरकी खानमें जिस प्रकार बड़ी–बड़ी शिलाओंके बीच पतली-सी साँध होती है, उसीप्रकार भगवान आत्मा और रागके बीच साँध है। उस साँधके ऊपर प्रज्ञाछैनी पटकनेसे भगवान आत्मा एवं राग दोनों पृथक् हो जाते हैं।

जैसे शरीरादि पर द्रव्य मेरे नहीं हैं, वैसे ही राग मेरी पर्यायमें होनेपर भी मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो स्वभावसे पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ;—ऐसे अंतरकी तीव्र रुचिपूर्वक गहरे संस्कार डाले होंगे तो वह पुरुषार्थमें आगे बढ़कर अवश्य सम्पूर्ण मोक्षदशा प्राप्त करेगा। दुःखोंसे सम्पूर्ण मुक्ति और परमानन्दकी सम्पूर्ण प्राप्ति वह मोक्षदशा है। दुःखसे मुक्ति और सुखकी प्राप्ति अंशतः तो चौथे गुणस्थानसे सम्यग्दर्शन होते ही हो जाती है, चारित्रदशा होनेपर विशेष होती है। सम्यग्दृष्टिको आनन्द प्रगट हुआ है परन्तु वह अल्प है, साथ ही दुःख भी वेदनमें है। आगे बढ़कर वह दुःखका सम्पूर्ण नाश तथा पूर्ण सुखकी प्राप्ति कर लेगा। दूज उगी तो पूनम होगी और होगी ही; वैसे ही सम्यग्दर्शनरूपी दूजसे क्रमशः भविष्यमें मुक्तिरूपी पूनम होगी, होगी और होगी ही। उसमें कोई सन्देह नहीं है।

*

वचनामृत–२६०

आत्मा ज्ञानप्रधान अनंत गुणोंका पिण्ड है। उसके साथ अंतरमें तन्मयता करना वही कर्तव्य है। वस्तुस्वरूपको समझकर 'मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसी लगन लगाये तो ज्ञायकके साथ तदाकारता हो। २६०.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'आत्मा ज्ञानप्रधान अनंत गुणोंका पिण्ड है।'

क्या कहते हैं? कि—भगवान आत्मा, ज्ञान जिसमें मुख्य है ऐसे अनन्त गुणोंके समुदायस्वरूप शाश्वत द्रव्य है। स्व–पर प्रकाशक जिसका सहज स्वभाव है ऐसा यह ज्ञान आत्माका असाधारण गुण है, क्योंकि आत्मद्रव्यके अतिरिक्त अन्य द्रव्योंमें ज्ञानगुण नहीं होता, तथा आत्माके अनन्त गुणोंमें भी स्वपर–प्रकाशनस्वभावी ज्ञानगुण जैसा अन्य कोई गुण नहीं है। दूसरा कोई गुण जाननेका कार्य नहीं करता। इसप्रकार ज्ञान आत्माका विशेष गुण होनेसे आत्मा ज्ञानप्रधान—ज्ञान जिसमें मुख्य है ऐसे अनन्त गुणोंके समुदायरूप द्रव्य है।

आत्मामें मात्र एक ज्ञानगुण ही है ऐसा नहीं है; किन्तु अनंत–अनंतको जाननेका जिसका अपरिमित स्वभाव है ऐसे ज्ञानगुणके साथ रहे हुए श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि तथा अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व आदि अनन्त गुणोंका अखण्ड समुदाय वह आत्मा है।

अरे! यह समझना लोगोंको कठिन लगता है, इसलिये किसी दूसरे मार्ग पर चढ़ जाते हैं। उन्हें लगता है कि—नग्न मुनि होकर इतनी क्रियाएँ करें वह क्या धर्म नहीं है? भाई! वह धर्मकी क्रिया नहीं है; अंतरमें रागरहित ज्ञानका परिणमन होना, उसे भगवानने 'धर्मकी क्रिया' कही है। दिल्लीमें एक दिगम्बर मुनिने प्रश्न पूछा था कि–समयसारकी १५५वीं गाथामें 'जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं' कहा है, जिसका संक्षिप्त स्पष्ट अर्थ है कि 'जीवादिका श्रद्धान वह सम्यक्त्व है'। उसकी टीकामें विस्तार किया गया है कि 'जीवादिके श्रद्धानस्वभावसे ज्ञानका होना–परिणमना सो सम्यक्त्व है;' इसका क्या हेतु है? यहाँसे उत्तर दिया था कि—जीवादिका श्रद्धान सो सम्यक्त्व है, ऐसा कहा वहाँ श्रद्धानका अर्थ क्या? विकल्पात्मक श्रद्धा? नहीं; शुद्ध परिणतिरूप श्रद्धा। ज्ञानस्वभावी आत्माकी प्रतीति करके, ज्ञानस्वभावी आत्माका शुद्ध श्रद्धानस्वभावसे परिणमित हो जाना सो सम्यक्त्व है। ऐसा समझानेका टीकाका हेतु है। श्रद्धानस्वभावरूप परिणमन होनेसे, ज्ञानपरिणमन, आनन्दपरिणमन, प्रभुत्वपरिणमन, स्वच्छत्वपरिणमन, स्वसंवेदनप्रत्यक्ष होनेकी शक्ति होनेसे स्वसंवेदनप्रत्यक्षपरिणमन इत्यादि हो जाते हैं।

वस्तुस्वरूपके सूक्ष्म न्याय समझे बिना, कथित विद्वान भी अर्थका अनर्थ कर डालते हैं। एक विद्वानने तर्क किया था कि : 'यहाँ नव कोटिसे ब्रह्मचर्यका पालन करे और उसे स्वर्गमें देवांगनाएँ मिलती हैं ऐसा शास्त्रमें कहा है; तो क्या ब्रह्मचर्यपालनके फलमें देवांगना (–अब्रह्मचर्य) मिलती है? यह बात जमती नहीं है'। भाई! तुम्हारा तर्क ठीक नहीं है। देवांगनाकी प्राप्ति वह कोई ब्रह्मचर्यरूप शुद्ध परिणतिका फल नहीं है; किन्तु जब तक परिणति पूर्ण शुद्ध नहीं होती तब तक अपूर्णताके कारण जो शुभराग आता है उससे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

काहेका बंधन होगा?—पुण्यका या पापका? यदि पुण्यका बंध होता है तो उसके फलमें स्वर्ग और उसके उपभोग प्राप्त होंगे, उसमें अयथार्थ क्या है? वहाँ भी तत्त्वदृष्टि होनेसे अब्रह्ममें—देवांगनाओंमें—अंतरसे एकत्वबुद्धिपूर्वक लिप्त हुए बिना, देवपर्याय पूर्ण करके, पश्चात् मनुष्यगतिमें जन्म लेकर संयम धारण करके पूर्ण ब्रह्मपद प्राप्त कर लेगा। दूसरे एक विद्वानने ऐसा तर्क किया था कि—'वर्तमान ज्योर्ज और एडवर्ड राजाओंको एक ही रानी होती है, और जैनशास्त्रोंमें शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ तथा अरहनाथ चक्रवर्ती तीर्थंकरोंको, जोकि जन्मसे ही सम्यग्दृष्टि तथा तीन ज्ञानके धारी थे उनको, छ्यानवे हजार रानियाँ कही हैं। अरर! एकसे अधिक रानियाँ रखनेवालेको व्यभिचारी कहा जाता है'। भाई! जरा धीरज रख; एकदम जल्दबाजीमें ज्ञानी तीर्थंकरोंको व्यभिचारी मत कह दो। ज्ञानीको गृहस्थ दशामें एक स्त्री हो या छ्यानवे हजार स्त्रियाँ हों—वह सब पुण्यके फलरूप बाह्य संयोग है; उसे संख्याके साथ क्या सम्बन्ध है? पतले शरीरवालेको अल्प परमाणुओंका संयोग है और मोटे शरीरवालेको अधिक परमाणुओंका संयोग है। अधिक परमाणुओंका संयोग होना क्या दोष है? उसी प्रकार पुण्यके फलमें स्त्रियाँ कम हों या अधिक हों उसमें संख्याके साथ क्या सम्बन्ध है? अधिक स्त्रियाँ हों तो रागका वेदन अधिक हो और अल्प स्त्रियाँ हों तो रागका वेदन अल्प हो—ऐसा कोई मापदण्ड है? पुण्ययोगसे बाह्यमें अनेक स्त्रियाँ हों तथापि ज्ञानीको रागका वेदन अल्प होता है और अविवाहितको एक भी स्त्री नहीं होनेपर भी रागका वेदन अत्यन्त तीव्र होता है, इसलिये स्त्रियोंकी संख्याके ऊपरसे ज्ञानीको रागकी तीव्रता अथवा व्यभिचारीपना नहीं कहा जा सकता।

यहाँ कहते हैं कि—आत्मा ज्ञानप्रधान अनन्त गुणोंका पिण्ड है। जानना, जानना, जानना—ऐसे ज्ञातास्वभावकी मुख्यता करके 'ज्ञानप्रधान' कहा है; वहाँ मात्र ज्ञान नामका एक गुण ही है ऐसा नहीं है, परन्तु उसके साथ श्रद्धा, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणोंका अखण्ड पिण्ड है।

'उसके साथ अंतरमें तन्मयता करना वही कर्तव्य है।'

सहज ज्ञान जिसका मुख्य स्वभाव है ऐसे निज चैतन्य द्रव्यमें एकाग्रता करना, अंतरंग ज्ञायकस्वभावमें तन्मयता करना वही करने योग्य कार्य है। पर्याय जो बहिर्मुख थी उसे अंतरमें ध्रुव द्रव्यस्वभावके साथ जोड़ देना—ऐसा तन्मयताका अर्थ है परन्तु पर्यायरूप अंश द्रव्य-अंशरूप हो जाता है ऐसा तन्मयताका अर्थ नहीं है। पर्यायमें त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकद्रव्यके प्रति एकाग्रता करना ही कर्तव्य है। अनादिसे रागके साथ जो एकता कर रखी है उसे तोड़कर आत्मस्वभावके साथ एकता–तन्मयता करना है। शुभराग या पुण्य–पाप वह कोई आत्माका सच्चा कर्तव्य नहीं है; वे सब तो विभाव भाव हैं, आत्माका धर्म नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं, परन्तु ज्ञानप्रधान अनन्त गुणोंके पिण्डस्वरूप आत्मामें सम्यक्श्रद्धा–ज्ञान–चारित्ररूप एकाग्रता–तन्मयता करना वह धर्म है और वही आत्माका कर्तव्य है।

आत्मामें जो अनन्त शक्तियाँ हैं उनमें 'अकार्यकारणत्व' नामकी भी एक शक्ति है। उस शक्तिके कारण आत्मा कर्म आदि परद्रव्यका कार्य भी नहीं है और कारण भी नहीं है। स्वभावकी दृष्टिसे तो आत्मा रागका भी कारण नहीं है और सम्यग्दर्शनादि शुद्ध पर्याय रागका कार्य भी नहीं है। आत्मा परमार्थ दृष्टिसे देव–शास्त्र–गुरुकी भक्तिके या व्यवहाररत्नत्रयके रागका कारण हो और वह राग सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायोंका कारण हो—ऐसा भी नहीं है। ऐसी अकार्यकारणत्व आदि अनन्त शक्तियाँ जिसमें भरपूर विद्यमान हैं ऐसे निज ज्ञायक आत्मामें एकाग्र होना ही कर्तव्य है। वैसे बाहरी ज्ञान तो अल्प–अधिक हो,–उसके साथ साधनाका कोई सम्बन्ध नहीं है। ग्यारह अंग और नव पूर्वकी धारण कर ले उससे आत्मामें क्या आया?

आत्मा परका–बाहरका तो कुछ कर ही नहीं सकता। वह परिणमता है इसलिये 'कर्ता' है। जब वह विभावपरिणामरूप परिणमता है तब भी स्वभावको छोड़कर विभावरूप परिणमित नहीं होता। 'आत्मा स्वभावको छोड़कर एकाकाररूपसे राग करता है'—ऐसी अज्ञानीकी मान्यता वह भ्रम है, मिथ्यात्व है। राग अपने परिणमनमें स्वयं करता है इसलिये कर्ता, परन्तु राग करने योग्य है ऐसी बुद्धि ज्ञानीको नहीं होती। ज्ञानीको अंतरमें वस्तुकी प्रतीति हुई है—सम्यग्दर्शन हुआ है, तथापि पर्यायमें अभी सम्पूर्ण वीतराग नहीं हुआ इसलिये राग है, द्वेष है, भोगवासना है तथा अन्य अनेक प्रकारके विभाव हैं। मुनिदशामें भी अपने योग्य विभावपरिणमन होता है। स्वयं परिणमता है इस अपेक्षासे कर्ता कहा जाता है, किन्तु विभावभाव आत्माका कर्तव्य नहीं है, कर्तव्य तो एकमात्र वीतरागभाव है।

परसे या निमित्तसे होता है यह बात तो है ही नहीं, परन्तु जीवको अपनी पर्यायमें जो रागादि विभाव होते हैं वह किसका परिणमन है? उसका अपनी पर्यायमें अस्तित्व है या नहीं? सम्यक्त्वीको भी अस्थिरताके रागका अपनी पर्यायमें अस्तित्व है या नहीं? यदि रागका अस्तित्व है तो दुःखका अस्तित्व है या नहीं? राग दुःख ही है। 'यह राग आग दहै सदा'—सम्यग्दृष्टिको भी राग भट्ठी लगता है। अहा! ऐसी बात है।

यहाँ ऐसा कहते हैं कि ज्ञानलक्षणसे लक्षित अनंत गुणस्वरूप भगवान आत्मामें रागसे विमुख होकर, एकाग्रता करना ही कर्तव्य है।

"वस्तुस्वरूपको समझकर 'मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसी लगन लगाये तो ज्ञायकके साथ तदाकारता हो।"

वस्तुरूपसे तो मैं ज्ञाता–द्रष्टा 'ज्ञायक' हूँ, रागका मैं कर्ता नहीं हूँ। 'परिणमित हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह कर्ता'—ऐसे परिणमनकी अपेक्षा कर्ता कहा जाता हूँ, परन्तु वस्तुस्वभावसे तो 'मैं मात्र ज्ञायक ही हूँ'। ऐसी सच्ची लगन अंतरसे लगाये तो ज्ञायकके साथ एकाकारपना हो। अनादिसे रागमें एकाकार होता था, अब लक्षको स्वसन्मुख करके निर्मल पर्यायमें द्रव्यस्वभावके साथ एकाकार हुआ। निर्मल पर्याय द्रव्योन्मुख हो गई—यह एकाकारका अर्थ है; परन्तु पर्याय द्रव्यरूप हो गई—ऐसा एकाकारका अर्थ नहीं है। वस्तुस्वरूपको समझकर ज्ञायकस्वभावकी लगन लगाये तभी उसके साथ तदाकारता होगी।

द्रव्यदृष्टि करके सम्यक् पर्याय प्रकट हुई तो पूर्ण शुद्धता, प्रकट होगी ही। अन्दरसे एकदम शुद्धताका सागर उछलेगा। प्रत्येक गुण सागरके समान उछलेगा। एक अंश अनन्तता लेकर आयेगा। फिर आगे बढ़कर मुनिदशा और ऐसा करते करते केवलज्ञान। वहाँ तो शुद्धतासे भरे अनन्त गुण उछलेंगे। मुनिदशामें तो अनन्तता प्रगट होती है पर केवलज्ञान होने पर तो इससे भी अनन्त-अनन्तगुणा उछलेगा क्योंकि वह वीतराग दशा है। वीतराग होनेके बाद परिपूर्ण शुद्धता उछलेगी। इसलिये निरंतर शुद्धतासे भरा मैं ज्ञायक हूँ, शुभाशुभ भावरूप मैं नहीं हूँ, ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंसे भरा हुआ मैं भगवान हूँ—ऐसे विकल्पोंको नहीं परन्तु जाननेवालेके मूल अस्तित्वको ग्रहण कर। द्रव्यको ग्रहण कर, उसमें सब आ जायेगा।

अनन्त गुणोंकी पूर्ण शुद्धतारूप आत्मपर्यायमें जो अनन्तज्ञान है वह सबको पहुँच जानेवाला है। अनन्त द्रव्योंके उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, भूत-वर्तमान-भावीकी पर्यायोंके अनन्त अविभागप्रतिच्छेदरूप अंश वगैरह सब जिसमें दिखते हैं ऐसा दिव्यज्ञान—सबको पहुंच जानेवाला ज्ञान—तेरेमें उछलेगा। वहां अनन्त आनन्दका सागर, बलका सागर, शान्ति-समाधिका सागर—प्रभुता, विभुता आदि अनन्त शक्तियोंका भंडार जिसका कोई पार नहीं, वह उछलेगा। शक्तिरूपसे तो परिपूर्णता पड़ी ही है; मति श्रुतका व्यापार जहाँ स्वरूपसन्मुख होगा और समस्त विकल्प टूटेंगे वहां केवलज्ञानरूपसे पूर्ण उछल जायेगा।

सम्यग्दर्शनमें शुद्धता प्रगट होती है उसकी अपेक्षा मुनिदशामें अनन्तगुणी अधिक शुद्धता प्रगटती है और केवलज्ञानमें तो अनन्तानन्तगुणी अर्थात् परिपूर्ण शुद्धता प्रगटती है। मूलमेंसे उछले उसीका नाम ज्ञान। —*बहिनश्री चम्पाबेन*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१०६

दिनांक ४-१०-७८

वचनामृत–२६१

जिनेन्द्रमन्दिर, जिनेन्द्रप्रतिमा मंगलस्वरूप हैं, तो फिर समवसरणमें विराजमान साक्षात् जिनेन्द्र भगवानकी महिमा और उनके मंगलपनेका क्या कहना! सुरेन्द्र भी भगवानके गुणोंकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते, तब दूसरे तो क्या कर सकेंगे? २६१.

'जिनेन्द्रमन्दिर, जिनेन्द्रप्रतिमा मंगलस्वरूप हैं, तो फिर समवसरणमें विराजमान साक्षात् जिनेन्द्र भगवानकी महिमा और उनके मंगलपनेका क्या कहना!'

जिनेन्द्रमन्दिर, जिनेन्द्रप्रतिमा मंगलस्वरूप हैं; उनका स्वरूप ही मंगल है। 'चत्तारिमंगलं'में 'अरिहंतामंगलं', 'सिद्धामंगलं' आता है न!—ऐसे ही अरिहंतका मन्दिर तथा अरिहन्तकी प्रतिमा भी मंगल हैं। 'केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं'—वीतरागस्वरूप भगवान ज्ञायक आत्मामेंसे वीतरागभावका प्रगट होना वह केवलिप्रणीत धर्म है। अंतरमें स्वयं भावमांगलिकरूप—वीतराग भावरूप—परिणमित हुए हैं तो केवली भगवानकी प्ररूपणाको निमित्तरूपसे बाह्य मांगलिक कहा जाता है। 'मम्' अर्थात् पापको—अहंकार, ममकार, रागद्वेषादि आस्रवको—'गल' अर्थात् गाले, दूर करे वह आत्मा 'मंगल' है; उत्तम और शरण भी वही है।

निश्चयसे भगवान आत्मा मंगलस्वरूप है। उसके अवलम्बनसे ही सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी मंगलमय पर्याय प्रगट होती है। ज्ञायकतत्त्व स्वयं ही मंगल है; उसके आश्रयसे पर्यायमें जो वीतरागी निर्मलता प्रगट हो वह भी मंगल स्वरूप है। मंगलमय साधकदशामें श्री जिनेन्द्रभगवान, जिनेन्द्रप्रतिमा, जिनेन्द्रवाणी आदि बाह्य धर्मायतनोंकी ओर लक्ष जानेसे जो शुभभाव आता है वह व्यवहारसे मांगलिक कहा जाता है। शुभभावके आलम्बनरूप जिनप्रतिमा आदिको भी उपचारसे मांगलिक कहा जाता है। मुख्य मांगलिक तो अपना वीतरागभाव है; शुभरागको तो व्यवहारसे मंगलपनेका आरोप दिया जाता है। वास्तवमें तो व्यवहार मांगलिक—शुभराग—बंधका कारण है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! समवसरणमें विराजमान साक्षात् जिनेन्द्र प्रभुकी महिमाका और मांगलिकताका तो कहना ही क्या! भगवान आत्मामें अनंतज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य आदि, संख्यासे जिनका कोई माप नहीं है ऐसे, अनन्तानन्त गुण हैं। इतनी ही अनन्त निर्मल पर्यायें एक समयमें भगवान अरिहंतको प्रगट हुई हैं। पर्यायकी अवधि एक समयकी, परन्तु उनकी संख्या, जिसमें वह अन्तिम–आखिरी पर्याय ऐसा है ही नहीं ऐसी, अनन्तानन्त हैं।

वस्तुस्वरूपसे तो आत्मा परमात्मा है, परन्तु पर्यायमें व्यक्तता हुई तब व्यक्त परमात्मा कहा जाता है। उस परमात्माके गुण तथा पर्यायोंकी अनन्तता तथा उनकी महिमा और मांगलिकताकी क्या बात! अहा! गजब बात है भाई! यह बात भाषामें नहीं, भावमें लो।

अहो! समवसरणमें विराजमान, केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयरूप अंतरंग लक्ष्मीसे तथा इन्द्रों द्वारा पूज्यपना, गगनविहार, चँवरादि बहिरंग अलौकिक विभूतियोंसे सुशोभित और त्रिभुवनकल्याणकारी दिव्यध्वनिकी नित्य मेघवर्षा करनेवाले साक्षात् वीतराग जिनेन्द्रभगवानकी उस अवर्णनीय अद्भुत महिमाका तो क्या कहना! परन्तु उनकी स्थापनास्वरूप जिनप्रतिमाकी महिमा भी महान है। पं. श्री बनारसीदासजीने समयसार–नाटकमें 'जिनप्रतिमा जिनसारखी'—जिनप्रतिमाको साक्षात् वीतराग जिनेन्द्र समान कहा है।

प्रश्न:—दोनों एकसमान हैं?

उत्तर:—हाँ; अपेक्षासे दोनों समान हैं। साक्षात् जिनेन्द्रदेवके वाणीका योग होता है और जिनप्रतिमाको वाणीका योग नहीं होता—इतना दोनोंमें फेर है; वैसे भक्तको वीतरागभावके दर्शनादिका प्रयोजन दोनोंमें समानरूपसे सिद्ध होता है। जिनप्रतिबिम्बका माहात्मय दर्शाते हुए पं. बनारसीदासजी कहते हैं : जिसके अंतरंगमें सम्यग्दर्शनकी तरंगें प्रगट होनेसे मिथ्यात्वमोहनीयजनित मोहनिद्राकी असावधानी नष्ट हो गई है, जिसके हृदयमें जैनशासनकी शैली प्रगट हुई है, जिसने मिथ्याभिमानका त्याग किया है, जिसको छह द्रव्योंके स्वरूपकी पहिचान हुई है, जिसे जिनकथित आगमके उपदेशका श्रवणलाभ प्राप्त हुआ है, जिसके हृदयभण्डारमें आर्षवचन (आचार्योंके वचन) प्रवेश कर गये हैं और जिसके संसारसमुद्रका किनारा निकट आ गया है—भवस्थिति अल्प रह गई है वही 'जिनप्रतिमा प्रवांनै जिन-सारखी'—जिनप्रतिमाको जिनेन्द्रसमान मानता है।

यहाँ बेन कहती हैं कि—इन साक्षात् जिनेन्द्रभगवानके अचिन्त्य महिमाकी क्या बात कहें! वह तो मंगल, उत्तम और शरणस्वरूप है। क्या कहते हैं? कि—सम्यग्दर्शन प्रगट होनेपर अनन्त गुणोंकी पर्यायमें एकदेश व्यक्तता होती है, परन्तु भगवान सर्वज्ञको तो एकसमयमें समस्त अनुजीवी गुणोंकी पूर्ण पर्यायें प्रगट हो गई हैं। अहा! जिसकी अनन्तताका कोई पार नहीं है ऐसी यह कोई अद्भुत चैतन्य चमत्कारी वस्तु है! अनन्तताको अनन्तबार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुणा करो तब भी आत्माके गुणोंकी अनन्त–अनन्त–अनन्तताको नहीं पहुँचा जा सकता। उस प्रत्येक गुणकी पूर्ण पर्याय जिनेन्द्र परमात्माको प्रगट हो गई है। सूक्ष्म बात है भाई! अहा! जो अरिहंतके ऐसे यथार्थ स्वरूपको जानता है उसके मिथ्यात्वमोहका नाश होता है और सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। श्री प्रवचनसारकी ८०वीं गाथामें आता है न?

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥

जे जाणतो अर्हंतने, गुण-द्रव्यने पर्ययपणे,
ते जीव जाणे आत्मने, तसु मोह पामे लय खरे. ८०.

जो अर्हंतको द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे और पर्यायरूपसे जानता है, वह (अपने) आत्माको जानता है, और उसका मोह अवश्य लयको प्राप्त होता है। भगवान आत्माका स्वभाव अगाध है, उसमें अनन्तानन्त ज्ञानादि गुण हैं और उन गुणोंकी पूर्ण पर्याय एक समयमें भगवानको प्रगट हो गई है—ऐसी जिसे अंतरसे प्रतीति हुई है उसे अपना आत्मा भी द्रव्यसे, गुणसे और पर्यायकी शक्तिरूपसे ऐसा ही है—ऐसी प्रतीति अंतरमें हो जाती है और उसके मोहका नाश हो जाता है।

आकाशके क्षेत्रका अंत नहीं है। आकाश दसों दिशामें आगे-आगे-आगे चला ही जाता है, कहाँ पूर्ण होगा? एक पुद्गलपरमाणु आकाशका जितना स्थान रोकता है उसे प्रदेश कहते हैं। ऐसे क्षेत्रप्रदेश जैसे आकाशके अनन्त–अनन्त हैं वैसे ही भगवान आत्मा आदि समस्त द्रव्योंकी एकसमयकी पर्यायें भी संख्यासे अनन्तानन्त हैं। अहा! एक समयकी पर्यायका अंत है परन्तु उनकी संख्याका अंत नहीं है। आया कुछ समझमें? भाषासे इसका अंत आये ऐसा नहीं है; अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प हो तब यह वस्तु समझमें आये ऐसी है।

एक पुद्गल परमाणुमें भी आकाशके प्रदेशोंसे भी अनन्तगुने गुण हैं, उसकी पर्यायें भी संख्यासे अनन्तानन्त हैं। अहा! कैसा है वस्तुका स्वभाव! कैसे हैं वस्तुके अचिन्त्य गुण! अहा! इन सबको एक समयकी पर्यायमें जान लेनेवाले ऐसे इन समवसरणमें विराजमान साक्षात् जिनेन्द्रभगवानकी अद्भुत महिमाका तथा मांगलिकताका तो क्या कहना?

अरहंतके द्रव्य–गुण–पर्यायका जो ज्ञान हुआ है वह तो परलक्षसे, परन्तु उसके द्वारा अपने आत्मद्रव्यके स्वरूपको जान लेना वह मोहके नाशका उपाय है। जैसा अरहंतका द्रव्य है वैसा ही मेरा द्रव्य है। उनके जैसे गुण हैं वैसे ही मेरे गुण हैं, उनकी जैसी पर्यायें पूर्ण प्रगटताको प्राप्त हुई हैं वैसे मेरी पर्यायें पूर्ण प्रगट नहीं हुई हैं; परन्तु निज ज्ञायक द्रव्यस्वभावका अवलम्बन लेनेसे अंशतः जो पर्यायें प्रगट हुईं उनकी संख्या भी उतनी ही अनन्त है। 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व', सम्यक्त्व होने पर सर्व गुण एकदेश प्रगट हो जाते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं। भगवानको अनन्त गुणोंकी—सर्व गुणोंकी—पूर्ण पर्यायें प्रगट हुई हैं; सम्यक्त्वीको संख्या तो उतनी ही है, परन्तु प्रगटता पूर्ण नहीं है।

हीन पर्यायें और विपरीत पर्यायें तो अमुक (ज्ञानादिक तथा श्रद्धादिक) अल्प गुणोंकी ही होती हैं। वैसे (अस्तित्वादिक) अनन्तानन्त गुणोंकी पर्यायें तो सदैव पूर्ण और शुद्ध—अविपरीत ही रहती हैं। इस विषयमें एकबार अनेक विचार चले थे।

सर्व गुणोंका निर्मल अंश तो सम्यग्दर्शन होते ही प्रगट हो जाता है, इसलिये सम्यग्दृष्टि जीवको मांगलिकताका प्रारम्भ हो गया है। जिनेन्द्र भगवानको तो पूर्ण निर्मल पर्यायें प्रगट हो गई हैं, इसलिये उनकी महिमा एवं मांगलिकताका तो कहना ही क्या! तीर्थंकरका आत्मद्रव्य तो त्रिकाल—सदैव मंगल माना गया है।

प्रश्न:—वस्तुरूपसे या पर्यायरूपसे?

उत्तर:—तीर्थंकरका आत्मद्रव्य वस्तुरूपसे, शक्तिरूपसे, गुणरूपसे मंगल ही है तो वह पर्यायमें प्रगट होना है। भविष्यमें होनेवाली पर्यायका नैगमनयसे वर्तमानमें आरोप करके 'तीर्थंकर' कहा जाता है। यहाँ कहते हैं कि—समवसरणमें केवलज्ञानादि अनंत लक्ष्मी सहित जो जिनेन्द्रभगवान विराजमान हैं उनकी महिमा और मांगलिकताका तो क्या कहना?

'सुरेन्द्र भी भगवानके गुणोंकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते, तब दूसरे तो क्या कर सकेंगे?'

सौधर्म इन्द्र समवसरणमें जिनेन्द्र भगवानके गुणोंकी स्तुति करते हैं, परन्तु वे भगवानकी अचिन्त्य महिमाका तथा उनके सातिशय मंगलपनेका पूर्ण वर्णन नहीं कर सकते, तब अन्य तो क्या वर्णन कर सकेंगे?

जो पद श्री सर्वज्ञने देखा ज्ञानमें,
कह न सके पर उसको श्री भगवान भी;
उस स्वरूपको और वाणी तो क्या कहे?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान भी। अपूर्व अवसर.....

वह पद मात्र अनुभवगम्य है, उसका वर्णन तो क्या होगा? अहा! जिनेन्द्रभगवानका ऐसा द्रव्य, ऐसे गुण और ऐसी पर्याय—उसका वर्णन तीन ज्ञानके धारी सुरेन्द्र भी नहीं कर सकते। वाणी जड़ है, वह भगवान चैतन्यकी अलौकिक पर्यायका कितना वर्णन कर सकेगी? अहा! इन्द्र भी भगवानके गुणोंकी महिमा तथा मांगलिकताका वर्णन नहीं कर सकते, तब फिर दूसरे तो क्या कर सकेंगे?

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–२६२

जिस समय ज्ञानीकी परिणति बाहर दिखायी दे उसी समय उन्हें ज्ञायक भिन्न वर्तता है। जैसे किसीको पड़ौसीके साथ बड़ी मित्रता हो, उसके घर जाता–आता हो, परन्तु वह पड़ौसीको अपना नहीं मान लेता, उसीप्रकार ज्ञानीको विभावमें कभी एकत्वपरिणमन नहीं होता। ज्ञानी सदा कमलकी भाँति निर्लेप रहते हैं, विभावसे भिन्नरूप ऊपर–ऊपर तैरते रहते हैं। २६२.

'जिस समय ज्ञानीकी परिणति बाहर दिखायी दे उसी समय उन्हें ज्ञायक भिन्न वर्तता है।'

जिसे शरीरादि पर द्रव्योंसे तथा शुभाशुभ रागरूप विभावोंसे भिन्न निज ज्ञानानन्दमूर्ति त्रैकालिक ज्ञायक द्रव्यस्वभावका सम्यग्दर्शन हुआ है ऐसे साधक ज्ञानीको, परिणति स्वरूपमें पूर्ण स्थिर नहीं हुई इसलिये, बाह्यमें—शुभाशुभ रागादिमें—जाती तो अवश्य है, परन्तु उस समय भी उसको अंतरपरिणमनमें ज्ञायक भिन्नका भिन्न वर्तता है। वीतराग देव–शास्त्र–गुरुकी पूजा–भक्ति, शास्त्रस्वाध्याय, प्रवचन–श्रवण आदि शुभराग तथा व्यापार–धंधेके अशुभ परिणाम ज्ञानी धर्मात्माको भी आते हैं, भूमिकानुसार परिणति बाहर दिखती है, परन्तु उसीसमय उसे दृष्टिमें ज्ञायकका आश्रय सतत वर्तता है।

'जैसे किसीको पड़ौसीके साथ बड़ी मित्रता हो, उसके घर जाता–आता हो, परन्तु वह पड़ौसीको अपना नहीं मान लेता, उसीप्रकार ज्ञानीको विभावमें कभी एकत्वपरिणमन नहीं होता।'

जैसे किसी व्यक्तिकी अपने पड़ौसीके साथ गाढ़ मैत्री हो, उसके घर भी आना–जाना रहता हो, तथापि वह पड़ौसीको अपना नहीं मान लेता; वैसे ही ज्ञानीको पर्यायमें अस्थिरताजनित विभावपरिणमन है अवश्य, किन्तु उसके साथ उसे कभी एकत्व नहीं होता। इस बातको बेन २६५वें बोलमें स्पष्टतासे समझायँगी।

ज्ञानीको रागादि विभावमें कभी एकत्वपरिणमन नहीं होता, तथापि उसे पर्यायमें जितना रागांश आता है उतना दुःखका वेदन है। दृष्टि-अपेक्षासे वह रागादि विभावका कर्ता, भोक्ता या स्वामी नहीं है, उसके साथ एकत्वरूप परिणमन नहीं है, परन्तु पर्यायमें जितने अंशमें भीतर ज्ञायक प्रभुके आश्रयसे वीतरागता प्रगट हुई और उस समय जितने अंशमें परलक्षी परिणमनसे विभाव हुआ, उन दोनोंका वेदन उसको एकसाथ होता है। विभावपरिणमनके समय भी उसे ज्ञायक भिन्नका भिन्न ही वर्तता है। ज्ञानी जानता है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कि स्वभावके आश्रयसे प्रगट हुए आनन्दका वेदन भी मुझमें है और साथ ही जितना राग है उतना दुःखका वेदन भी मुझे होता है, परन्तु रागके वेदनसे आनन्दका वेदन भिन्न है, जाति ही भिन्न है।

अहा! भगवान आत्माका—उसके चमत्कारी द्रव्य, चमत्कारी गुण तथा चमत्कारी निर्मल पर्यायोंका—जिसे अंतरमें ज्ञान-प्रतीति हुई उसे ज्ञायक भिन्न ही वर्तता है। पर्यायमें विभाव हैं, किन्तु उनके साथ कभी एकत्व नहीं होता। पर्यायमें आनन्द और दुःख दोनों एकसाथ हैं अवश्य, परन्तु उनका एकत्व नहीं होता दोनों भिन्न ही हैं। यहाँ तो द्रव्यदृष्टिकी बात चलती है न? ज्ञानीको विभावमें कदापि एकत्वपरिणमन नहीं होता, ज्ञायक सदा भिन्न ही वर्तता है।

'ज्ञानी सदा कमलकी भाँति निर्लेप रहते हैं, विभावसे भिन्नरूप ऊपर-ऊपर तैरते रहते हैं।'

अहा! जहाँ शुभरागका लेप भी एकत्वरूपसे अपने द्रव्य, गुण और पर्यायमें नहीं है वहाँ अन्य बाहरी लेपकी तो ज्ञानीको बात ही कहाँ रही? ज्ञानीको विभाव तो भिन्नरूपसे ऊपर-ऊपर तैरते हैं इसलिये विभावका वेदन नहीं है ऐसा कोई कहे तो वह बराबर नहीं है। साधकको आनन्दके परिणमनके साथ जितनी कचास है उतना रागरूप परिणमन है, परन्तु उन दोनोंका एकत्व नहीं होता। अहा! एक पर्यायके दो भाग! जितना आनन्दका वेदन उतना मेरा और जितना रागका स्वाद वह मेरी वस्तु नहीं; मैं उससे भिन्न हूँ—ऐसा ज्ञानीको विवेक है।

जैसे कामधेनु गाय माँगो तब चौवीसों घन्टे दूध देती है, वैसे ही कामधेनुतुल्य आत्मा दृष्टिगत होनेपर सदैव आनन्द देता है। स्वरूपमें एकाग्रता होनेपर अंतरसे आनन्द, आनन्द और आनन्दकी धारा छूटती है। अरे, ऐसी बात कब और कहाँ सुननेको मिलती है? उपदेशकोंने तो 'दया पालो, व्रत करो, तप करो'—इस प्रकार जीवोंको शुभरागके कर्तृत्वमें फँसा दिया है; किन्तु भाई! आत्माका मार्ग अंतरमें कोई भिन्न ही है। यहाँ तो ऐसा कहना है कि धर्मात्मा ज्ञानीका परिणमन अंतरमें कमलकी भाँति निर्लिप्त रहता है। ज्ञानी तो विभावोंसे भिन्नरूप ऊपरके ऊपर तैरते रहते हैं; उनको विभाव हैं अवश्य, परन्तु उनके साथ कदापि एकत्व नहीं होता। आया समझमें?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–२६३

ज्ञानीको तो ऐसी भावना होती है कि इस समय पुरुषार्थ चले तो इसी समय मुनि होकर केवलज्ञान प्राप्त कर लें। बाहर आना पड़े वह अपनी निर्बलताके कारण है। २६३.

'ज्ञानीको तो ऐसी भावना होती है कि इस समय पुरुषार्थ चले तो इसी समय मुनि होकर केवलज्ञान प्राप्त कर लें।'

जिसे अंतर्मुख पुरुषार्थके बलसे द्रव्यदृष्टि—सम्यग्दर्शन, स्व–परका यथार्थ भेदविज्ञान प्रगट हुआ है, भीतर जो पूर्णानन्दका भण्डार है उसका अंशतः अनुभव हुआ है ऐसे ज्ञानीको तो ऐसी ही भावना होती है कि वर्तमानमें स्वरूपस्थिरताका उग्र पुरुषार्थ चले तो इसी समय अंतरमें मुनिदशा साधकर केवलज्ञान प्राप्त कर लूँ। अहा! 'अपूर्व अवसर कब ऐसा आयगा?' इसी क्षण मुनिपना लेकर केवलज्ञान होता हो तो मुझे यही करना है, परन्तु पुरुषार्थकी अशक्तिके कारण नहीं होता।

क्या कहें! धर्मीको राग आता है परन्तु रागमें रहनेकी भावना नहीं है, राग अंतरमें रुचता नहीं है, अच्छा नहीं लगता, इसी क्षण पूर्णानन्दके नाथ ऐसे अपने ज्ञायकप्रभुमें समा जाऊँ, रमण करूँ, मुनि होकर केवलज्ञान प्रगट कर लूँ—ऐसी अंतरंग भावना है, किन्तु अशक्तिके कारण पुरुषार्थ काम नहीं करता। पुरुषार्थ चलता नहीं है वह कर्मके कारण नहीं परन्तु अपनी अशक्तिका कारण है। आया समझमें?

कुछ लोग कहते हैं : आत्मा अनन्त शक्तियोंका पिण्ड है, स्वतंत्र पदार्थ है, तो आप मुनिपना तथा केवलज्ञान क्यों नहीं ले लेते? इससे ऐसा निर्णय होता है कि कर्म है इसलिये मुनिपना और केवलज्ञान प्रगट नहीं होता। भाई! यह बात बिलकुल असत्य है। अपने पुरुषार्थकी कचास है इसलिये मुनिपना, पूर्ण चारित्र या केवलज्ञान नहीं होता; उसमें कर्मादि परद्रव्योंका दोष निकालना वह बराबर नहीं है।

वि. सं. २०१३में मधुवन–सम्मेदशिखरमें आत्मा आदि प्रत्येक पदार्थकी स्वतंत्रताकी चर्चा चल रही थी तब एक त्यागी विद्वानने कहा कि : "गोम्मटसारमें 'ज्ञानावरणीय कर्मसे ज्ञानकी दशामें हीनाधिकता होती है' ऐसा आता है।" परन्तु उसका अर्थ क्या? वह तो निमित्त-अपेक्षाका कथन है। प्रभु! तू स्वयं अपनी दशामें यदि ज्ञानकी हीनतारूप परिणमता है, तू स्वयं भावघातिरूपसे परिणमता है, तो द्रव्यघातिकर्मको निमित्त कहा जाता है। पंचास्तिकायकी ६२वीं गाथाकी टीकामें कहा है : जीवकी विभावदशाके कारक जीवमें हैं और उसमें निमित्तभूत ऐसे जड़कर्मके कारक जड़में हैं। यदि दोनोंके कारक ही अत्यन्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भिन्न हैं, तो जड़कर्म ज्ञानकी दशामें हीनाधिकता किस प्रकार कर सकेंगे?

वि. सं. १९९७में एक दिगम्बर आचार्य सोनगढ़ आये थे। वे कहते थे कि—हम वस्त्र छोड़कर तो बैठ गये, परन्तु कर्म हटें तो कल्याण हो न? अरेरे! जीव अनादिसे कर्मका–परका दोष निकालता आया है, परन्तु 'कर्म बिचारे कौन, भूल तेरी अधिकाई; अगनि सहै घनघात लोहकी संगति पाई'। आत्मा अकेला स्वतंत्ररूपसे कर्ममें युक्त होता है तब विकार होता है, कर्म कहीं बलजबरीसे विकार नहीं कराता। ऋषभदेव तीर्थंकर जन्मसे तीन ज्ञान और क्षायिक सम्यक्त्व साथ लेकर अवतरित हुए थे; वे भी पुरुषार्थकी अशक्तिके कारण तिरासी लाख पूर्व तक गृहस्थ दशामें रहे। तीर्थंकरके आत्माको भी ऐसी भावना होती है कि 'इसी क्षण मैं मुनिपना लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर लूँ'। श्रीमद् राजचन्द्र भावना भाते हैं कि—

मोह स्वयंभूरमण समुद्रको पार कर,
स्थिति वहाँ जहँ क्षीणमोह गुणस्थान है;
अंत समय वहाँ पूर्णस्वरूप वीतराग हो,
प्रगटाऊँ निज केवलज्ञान निधानको।

बाह्यमें नग्न हो जाय, पंचमहाव्रतके विकल्प आयें, वह चारित्र या प्रत्याख्यान नहीं है; परन्तु 'सर्व भावको पर जानकर, पचखाण भावोंका करे, इससे नियमसे जानना कि ज्ञान प्रत्याख्यान है।' पर एवं विभावसे भिन्न निज ज्ञायकमें ज्ञानका स्थिर हो जाना, रमना उसका नाम चारित्र और प्रत्याख्यान है।

'बाहर आना पड़े वह अपनी निर्बलताके कारण है।'

भीतरके आनन्दधाममेंसे बाहर आना पड़े वह अपनी अस्थिरताके कारण है, कर्मके कारण नहीं। भूमिकानुसार विकल्पमें आना पड़े उसका कारण पुरुषार्थकी निर्बलता है। विकार होनेमें लोग कर्मका दोष निकालते हैं और कहते हैं कि–कर्म टले तो विकार टले। भाई! तू स्वयं भूल करता है तब कर्मको निमित्त कहा जाता है; इसीलिये कहा है : 'कर्म बिचारे कौन, भूल तेरी अधिकाई'। अहा! ऐसी बातें हैं, लोगोंको एक–एक बात बैठना कठिन लगता है। *

वचनामृत–२६४

ज्ञानीको 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसी धारावाही परिणति अखण्डित रहती है। वे भक्ति–शास्त्रस्वाध्याय आदि बाह्य प्रसंगोंमें उल्लासपूर्वक भाग लेते दिखाई

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देते हैं तब भी उनकी ज्ञायकधारा तो अखण्डितरूपसे अंतरमें भिन्न ही कार्य करती रहती है। २६४.

"ज्ञानीको 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसी धारावाही परिणति अखण्डित रहती है।"

जिसे स्व–परके भेदविज्ञानपूर्वक अपने आत्माका अनुभव प्रगट हुआ है ऐसे ज्ञानी धर्मात्माको 'मैं मात्र ज्ञाता, ज्ञाता, ज्ञाता हूँ' ऐसी धारावाही परिणति—ज्ञायकस्वभावी भगवान आत्माकी जो सन्मुखता हुई वह दशा—नित्य अखण्डित रहती है। अस्थिरताके कारण भले राग हो परन्तु उसे भिन्नता करना नहीं पड़ती, सहज ही भिन्नता वर्त रही है। समय–समय भिन्नताके विचार कर–करके भिन्नता टिकाए नहीं रखना पड़ती; किन्तु 'मैं रागसे भिन्न मात्र ज्ञायक ही हूँ' इस प्रकार स्वभावके अवलम्बनके बल द्वारा पहले जो भिन्नता की है उस भिन्नताकी—ज्ञानपरिणतिकी—धारा अखण्डितरूपसे वर्तती ही रहती है।

'वे भक्ति–शास्त्रस्वाध्याय आदि बाह्य प्रसंगोंमें उल्लासपूर्वक भाग लेते दिखायी देते हैं तब भी उनकी ज्ञायकधारा तो अखण्डितरूपसे अंतरमें भिन्न ही कार्य करती रहती है।'

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी भक्ति, शास्त्राभ्यास, प्रवचन–श्रवणादि शुभ रागमें उमंगपूर्वक संलग्न दिखाई देते हों तब भी 'मैं मात्र ज्ञायक हूँ' ऐसी उनकी ज्ञानधारा तो अटूटरूपसे अंतरमें चलती ही रहती है, वह ज्ञानधारा कभी रागके साथ एकाकार नहीं होती। आया कुछ समझमें? समयसारके ११०वें कलशमें कहा है कि : 'सम्यग्दृष्टि जीवको शुद्ध ज्ञान भी है और क्रियारूप परिणाम भी हैं—निचली दशामें ज्ञानधारा और कर्मधारा दोनों साथ हैं। वहाँ ज्ञानधारा शुद्धस्वरूपके अनुभवरूप है, उससे उसीकाल कर्मक्षय होता है—एक अंशमात्र भी बंध नहीं होता और साथ ही भक्ति, शास्त्रपठन या व्रतादि क्रियारूप जो कर्मधारा है उससे उसीकाल मात्र बंध होता है, कर्मका क्षय एक अंशमात्र भी नहीं होता। साधकदशाका स्वरूप ही ऐसा है। शास्त्रश्रवणादिके शुभरागके समय भी ज्ञानीके अंतरमें ज्ञायकधारा तो सतत भिन्न ही कार्य करती रहती है। शुभके प्रति रुचिपूर्वक लीन होते दिखायी देते हैं, तथापि अंतरमें 'मैं रागसे भिन्न ज्ञायक ही हूँ' ऐसी परिणमन धारा निरंतर चलती ही रहती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–११०

दिनांक ५-१०-७८

वचनामृत–२६५

यद्यपि दृष्टि-अपेक्षासे साधकको किसी पर्यायका या गुणभेदका स्वीकार नहीं है तथापि उसे स्वरूपमें स्थिर हो जानेकी भावना तो वर्तती है। रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूपसे वेदनमें आती है और वीतरागता—अंशरूप अन्तर्मुखता सुखरूपसे वेदनमें आती है। जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो उससे साधक न्याराका न्यारा रहता है। आँखमें किरकिरी नहीं समाती उसीप्रकार चैतन्यपरिणतिमें विभाव नहीं समाता। यदि साधकको बाह्यमें—प्रशस्त–अप्रशस्त रागमें—दुःख न लगे और अंतरमें—वीतरागतामें—सुख न लगे तो वह अंतरमें क्यों जाये? कहीं रागके विषयमें 'राग आग दहै' ऐसा कहा हो, कहीं प्रशस्त रागको 'विषकुम्भ' कहा हो, चाहे जिस भाषामें कहा हो, सर्वत्र भाव एक ही है कि—विभावका अंश वह दुःखरूप है। भले ही उच्चमें उच्च शुभभावरूप या अतिसूक्ष्म रागरूप प्रवृत्ति हो तथापि जितनी प्रवृत्ति उतनी आकुलता है और जितना निवृत्त होकर स्वरूपमें लीन हुआ उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है। २६५.

'यद्यपि दृष्टि-अपेक्षासे साधकको किसी पर्यायका या गुणभेदका स्वीकार नहीं है तथापि उसे स्वरूपमें स्थिर हो जानेकी भावना तो वर्तती है।'

पहली बात तो यह है कि रागके विकल्पसे भी यह भगवान आत्मा भिन्न है। जहाँ दृष्टि रागरहित द्रव्यस्वभावको ग्रहण करती है—ज्ञायक प्रभुको अनुभवती है—उस दशाको साधक दशा कहते हैं। अहा! दृष्टिवन्त वह जीव धर्मका साधक हुआ। जिसने रागके साथ एकता की है वह मिथ्यादृष्टि है, एकान्त दुःखी है। भले ही वह राजा हो या अरबपति सेठ

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो परन्तु यदि वह अंतरमें स्वभावके—त्रैकालिक चैतन्यघनके—साथ विभावके कणको भी एकरूप अनुभवता है तो वह संसारी, मिथ्यादृष्टि और एकान्त दुःखी है।

प्रश्न:—पैसेवाले तो सुखी कहे जाते हैं न?

उत्तर:—लोग तो कहते हैं कि यह पैसेवाले करोड़पति सब सुखी हैं; पैसा, पत्नी, परिवार और प्रतिष्ठा—सब सुखके साधन हैं; परन्तु भाई! वे सब तो मोहके—दुःखके निमित्त हैं। जिनको अंतरमें आनन्दका नाथ सहजात्मस्वरूप निज चैतन्य प्रभु दृष्टिमें नहीं आया और पैसा, प्रतिष्ठा आदि बाह्य वस्तुओं तथा रागादि विभावों पर दृष्टि है, अंतरका प्रेम है, वह भले नववें ग्रैवेयकका बड़ा देव हो अथवा अट्ठाईस मूलगुणोंका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाला नग्न दिगम्बर मुनि हो तथापि, रागके साथ एकत्वबुद्धि होनेसे, मिथ्यादृष्टि एकान्त दुःखी है।

यहाँ साधककी बात कही है। साधक मात्र सुखी है या उसे भी कोई दुःख है? दृष्टि-अपेक्षासे तो साधकको आनन्द, दुःख आदि किसी पर्यायका या ज्ञान, दर्शनादि गुणभेदका स्वीकार नहीं है। दृष्टि स्वयं निर्विकल्प—अभेद है, इसलिये उसका विषय 'भेद' नहीं होता; उसका विषय तो अभेद निर्विकल्प ज्ञायक प्रभु है। भेद और अभेदको जानता तो ज्ञान है। दृष्टि अभेदको स्वीकारती है उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि उसे जानती है, परन्तु ज्ञानने—शुद्धनयने—जिस अभेद निज ज्ञायक स्वभावको रुचिपूर्वक जाना उसमें दृष्टि—श्रद्धा—'यह पूर्णस्वरूप आत्मतत्त्व सो मैं हूँ' ऐसी निर्विकल्प प्रतीति करती है।

साधक जीव दृष्टि-अपेक्षासे किसी पर्यायका—स्वानुभूति तकका—या गुणभेदका स्वीकार नहीं करता, तथापि उसे आनन्दमूर्ति भगवान आत्मामें स्थिर हो जानेकी तथा पूर्ण परमानन्ददशा प्रगट करनेकी भावना तो सतत वर्तती रहती है। सच्चिदानन्द ज्ञायक प्रभुके आलम्बनसे जिन्हें अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका अनुपम स्वाद आया है ऐसे अविरत सम्यग्दृष्टिसे लेकर आगेके समस्त साधक जीवोंको अंतरमें पूर्णरूपसे स्थिर हो जानेकी भावना तो निरन्तर होती है। दृष्टिमें पर्यायका स्वीकार नहीं और परिणतिमें आगे बढ़नेकी भावना; अहा! दृष्टि और परिणतिका कैसा सामंजस्य!

'रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूपसे वेदनमें आती है और वीतरागता—अंशरूप अन्तर्मुखता सुखरूपसे वेदनमें आती है।'

जिसे अंतरमें सत्यदृष्टि प्रगट हुई है उसे, ज्ञायकस्वभावका आश्रय करके जितनी निर्मलता विकसित हुई है वह तो आनन्दरूपसे वेदनमें आती है और जितना अस्थिरताका राग आता है उसका दुःखरूपसे वेदन होता है। स्त्री, पुत्रादि बाह्य वस्तुएँ कोई सुख या दुःख नहीं हैं, वे तो मात्र ज्ञेय हैं। अंतरमें स्वरूपके साथ एकता वह सुख है और रागके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साथ एकता वह दुःख है। धर्मात्माको स्वरूपके साथ जितनी एकता हुई है उतना वेदन सुखरूप है, और जितना अस्थिरताका रागभाव है उतना दुःख है। अधर्मीको रागका राग होनेसे—विभावके साथ एकत्वबुद्धि होनेसे—अकेला दुःख ही है, अंशमात्र सुख नहीं है।

रागांश है वह बहिर्मुखता है, क्योंकि उसका आलम्बन स्त्री, पुत्र तथा देव–शास्त्र–गुरु आदि पर पदार्थ हैं। स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी आदि परकी ओरका भाव वह अशुभ और देव–शास्त्र–गुरु आदिके लक्षसे होनेवाला भाव शुभ है। ज्ञानीको वे दोनों भाव होते हैं। साधकपना हुआ है, अनन्तानुबंधी कषाय टल गया है इसलिये ज्ञानीको पूरा राग—रागका राग—नहीं है, परन्तु मात्र अशक्तिका रागांश है। उसको अंशतः आनन्ददशा प्रगट हुई है; परन्तु जितनी रागांशरूप बहिर्मुखता है उतना दुःखांश भी है। अहा! भरत चक्रवर्ती जैसे ज्ञानी सम्यग्दृष्टिको भी अपने भाईके साथ युद्ध करनेका द्वेष आया; रावणने सीताका हरण कर लिया तब रामचन्द्रजीने अपनी मुद्रिका देकर हनुमानजीको लंका भेजा, रावणके विद्याप्रहारसे लक्ष्मणजीको मूर्च्छा आयी तब रामचन्द्रजीका रुदन कि—हे भाई लक्ष्मण! हम वनमें तीन जन आये थे, उनमें सीताको तो रावण हर ले गया और तुम मूर्च्छित दशामें पड़े हो, अरे! यह क्या होनेवाला है?—

आये थे हम तीन अकेला कैसे मैं जाऊँगा?
जाकर माताको अपना मुँह कैसे दिखलाऊँगा?
भैया लक्ष्मण! जागो बोलो कुछ तो उत्तर दो!....

भाई! एकबार बोलो, एकबार तो मुँह खोलो!–यह सब क्या है? रागांश है। अरे! तीनलोकके नाथ श्री ऋषभदेव तीर्थंकर जैसोंको भी गृहस्थदशामें प्रजाको असि, मसि, कृषि आदि विद्याएँ सिखानेका रागांश आया था; शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ जोकि तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव—इन तीन पदवियोंके धारक थे, जन्मसे ही तीन ज्ञान लेकर आये थे, उन्हें भी छियानवे हजार रानियाँ ब्याहनेका विकल्प आया था। वह विकल्प क्या है? वह विकल्प अशुभ है, दुःख है। अमृतसागर भगवान आत्माके आलम्बनसे प्रगट हुई ज्ञानधाराके साथ, ज्ञानधारासे विरुद्ध ऐसी रागधारा ज्ञानी तीर्थंकरके भी होती है और जितनी रागधारा है उतना दुःखका वेदन भी है। उनको जितनी वीतरागताके अंशरूप अन्तर्मुखता उतना आनन्दका वेदन है।

साधक जीवको—सम्यग्दृष्टि ज्ञानी, अरे! चारित्रवन्त मुनि हो उसे—भी पंचमहाव्रतादिका जितना राग आता है उतना वेदन दुःखरूप है, तथा जितनी स्वके आश्रयसे दर्शन, ज्ञान एवं चारित्रकी स्थिरता हुई है उतने अंशमें आनन्दरूप वेदन है। अहा! ऐसी बात है; आया कुछ समझमें? बातको यों ही धारण कर ले उससे कुछ नहीं हो सकता, परन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह बात उसकी समझमें बराबर आनी चाहिये। अरे! शास्त्रानुसार ऐसी धारणा तो जीवने अनन्तबार की है, परन्तु उससे हुआ क्या? वास्तवमें तो यह बात अपनी रुचिमें अंतरसे बैठना चाहिये।

चक्रवर्तीको ७२ हजार पाटन, ४८ हजार नगर, ९६ हजार ग्राम, ९६ हजार रानियाँ और नवनिधान आदिका संयोग है; तो क्या वह सुखरूप है?—नहीं। तो क्या वह सब दुःखरूप है?—हाँ, वे तो मात्र दुःखके निमित्त हैं। धर्मात्माको उन निमित्तोंके अनुरूप जो अल्प राग आता है वह दुःखरूप है, और निज सच्चिदानंद प्रभुके आश्रयसे जितनी निर्मलदशा हुई है—वीतरागता हुई है—उतना वेदन आनन्दरूप है।

'जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो उससे साधक न्याराका न्यारा रहता है।'

सम्यग्दृष्टिको, श्रवकको तथा मुनिराजको अपनी–अपनी भूमिकानुसार राग तो होता है, तथापि 'मेरा स्वरूप इससे भिन्न है' ऐसा न्यारापन उनके अंतरमें निरन्तर वर्तता है। एक ओर कहना कि ज्ञानी रागका वेदन करते हैं, और एक ओर कहना कि ज्ञानी रागसे भिन्न रहते हैं, न्यारेके न्यारे रहते हैं! पर्यायमें रागका वेदन होनेपर भी मेरी वस्तु—द्रव्यस्वभाव—उससे भिन्न है। आता है न? कि—ज्ञाता पुरुष कर्मोदय, कर्म निर्जरा, कर्मबंध तथा कर्ममोक्षको मात्र जानता है—मात्र ज्ञातारूपसे रहता है, परन्तु उसे करता–भोगता नहीं है। अरे! रागके त्यागका कर्तापना–वह भी नाममात्र है। इस प्रकार साधक जीव रागसे—बहिर्मुख परिणतिसे—पृथक्का पृथक् ही रहता है।

पर्यायमें रागका वेदन होनेपर भी, ज्ञानीको दृष्टिमें ज्ञायकपनेका जोर है कि एकसमयकी विभावपर्यायसे भी मेरा त्रैकालिक तत्त्व न्यारा है। अनन्त गुणोंका भण्डार भगवान आत्मा जिसकी दृष्टिमें आ गया वह, वर्तमान वेदनकी पर्याय जितना अपनेको नहीं मानता; उससे वह न्यारा रहता है। 'दुःखका वेदन विभाव है, मेरा स्वरूप नहीं है'—इस प्रकार ज्ञानी भिन्न ही रहता है। आनन्दका वेदन तो मेरे स्वभावकी स्थिति है और रागका वेदन द्रव्यस्वभावकी अपेक्षासे मेरा स्वरूप नहीं है—इसप्रकार ज्ञानी विभावसे सदा न्यारा रहता है।

'आँखमें किरकिरी नहीं समाती उसीप्रकार चैतन्यपरिणतिमें विभाव नहीं समाता।'

आँखमें एक सूक्ष्म रजकण आ जाय तो खटकता रहता है; आँखको लाल बना देता है; उसीप्रकार आनन्दकन्द भगवान आत्माकी पर्यायमें यदि रागका भाग आये तो खटकता है और दुःखका वेदन होता है। एक ओर कहना कि वर्तमान दशामें विभावका वेदन होता है और एक ओर ऐसा कहना कि द्रव्य-अपेक्षासे विभाव मेरा स्वरूप नहीं है; अहा! कैसा है वस्तुस्वरूप!

भगवान चैतन्यपदार्थका परिणमन आनन्द और शान्ति है। उसकी वर्तमान दशामें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रागका वेदन होने पर भी वह द्रव्यस्वभावका परिणमन नहीं है। एकान्त ऐसा माने कि पर्यायमें दुःखका वेदन नहीं है तो वह भी मिथ्यात्व है, और एकान्त ऐसा माने कि 'दुःख–विभाव मेरा स्वभाव है' तो वह भी मिथ्यात्व है। अरेरे! जीवने अनादिकालसे भटकनेका काम किया है, परन्तु अंतरमें भगवान चैतन्यपरमात्मा एक समयकी जो पर्याय है उसके समीप ही विद्यमान है, उसे देखने–जाननेका अवकाश नहीं निकाला। यहाँ कहते हैं कि पर्यायमें जो रागका वेदन है वह मुझमें है, मेरे कारण है, तथापि द्रव्यस्वभावकी अपेक्षासे विभाव मेरी वस्तु नहीं है। आँखमें जैसे किरकिरी नहीं समाती वैसे ही द्रव्यस्वभावके आश्रयसे हुई वीतरागतारूप अन्तर्मुख परिणतिमें अंशतः भी रागादि विभावका समावेश नहीं होता।

'यदि साधकको बाह्यमें—प्रशस्त–अप्रशस्त रागमें—दुःख न लगे और अंतरमें—वीतरागतामें—सुख न लगे तो वह अंतरमें क्यों जाये?'

साधक जीवको पर्यायमें अपूर्णता है इसलिये शुभ तथा अशुभ राग आता है। उसे जैसे प्रशस्त अर्थात् वीतराग देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धा, भक्ति और बहुमानका शुभराग आता है वैसे ही उसे (चौथे–पाँचवें गुणस्थानवर्ती जीवको) स्त्री, विषय और परिवार आदिकी ओरका अशुभराग भी आता है, तथापि दृष्टिकी अपेक्षासे तो वह ज्ञायकमें ही वर्तता है। अहा! साधकका स्वरूप ऐसा है भाई! साधकको यदि प्रशस्त और अप्रशस्त बहिर्मुख रागपरिणतिमें दुःख न लगे तथा शुभाशुभ रागरहित स्वरूपानन्दमय वीतराग परिणतिमें सुख न लगे तो वह बारम्बार अन्तर्मुख क्यों हो?

अरे! चौथे–पाँचवें गुणस्थानमें तो रौद्रध्यान भी होता है। पच्चीस वर्षका जवान पुत्र मर जाय तब ज्ञानीको भी आर्त्तध्यान होता है—उसके कारण नहीं किन्तु अपनी अशक्तिके कारण। तद्भव मोक्षगामी भरत चक्रवर्तीको भी जब आदिनाथ भगवान अष्टापद पर्वतसे मोक्ष पधारे तब 'अरे! भरतक्षेत्रसे केवलज्ञानी तीर्थंकर-सूर्य अस्त हो गया'–इसप्रकार चौधार अश्रुधारा बहाकर प्रभुके विरहका वेदन कर रहे थे। उस समय सौधर्म इन्द्र कहते हैं—अरे! मित्र भरत! तुम यह कैसा विलाप करते हो? तुम तो जानते हो कि भगवानको मोक्ष हुआ है और तुम भी इसी भवमें मोक्ष जानेवाले हो, तुम्हें यह शोभा नहीं देता। भरत कहते हैं—इन्द्रदेव! मुझे खबर है, तथापि अशक्तिके कारण प्रभुके प्रति रागांश आता है। मैं जानता हूँ कि यह रागांश दुःख है, परन्तु मेरी भूमिका निर्बल होनेसे ऐसा शुभराग आ जाता है; परन्तु वह है तो दुःखरूप। पर्यायमें दुःखका वेदन होने पर भी द्रव्यस्वभावकी अपेक्षासे वह मेरी वस्तु नहीं है। साधकको यदि रागमें दुःख न लगे, अंतरस्वरूपमें रमणतारूप वीतरागतामें यदि सुख न लगे तो वह बारम्बार रागसे हटकर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतरमें क्यों जाये? क्या कहा? कि—शुभाशुभ भावमें दुःख और अंतरस्वरूपमें जानेपर सुखका अनुभव न हो तो वह अंतर्मुख होनेका प्रयत्न किसलिये करेगा?

"कहीं रागके विषयमें 'राग–आग दहै' ऐसा कहा हो, कहीं प्रशस्त रागको 'विषकुम्भ' कहा हो, चाहे जिस भाषामें कहा हो, सर्वत्र भाव एक ही है कि—विभावका अंश वह दुःखरूप है।"

छहढालामें आता है न!—

यह राग–आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये,
चिर भजे विषय–कषाय अब तो त्याग निजपद बेइये;
कहा रच्यो परपदमें, न तेरौ पद यहै, क्यों दुःख सहै,
अब 'दौल'! होऊ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूकौ यहै।

धर्मी जीवको भी भूमिकानुसार शुभाशुभ राग आता है परन्तु वह अग्निसमान जलन है; अंतरमें अकषायस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतरागस्वरूप भगवान ज्ञायकका आश्रय लेनेसे जितनी शुद्धि परिणमित हुई है उतनी शान्ति, शीतलता और सुख है। समयसारके मोक्ष-अधिकारमें प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना आदि प्रशस्त रागको 'विषकुम्भ' कहा है। तीन कषायके अभावस्वरूप वीतरागता जिनके अंतरमें परिणमित हुई है, प्रचुर स्वसंवेदन निरन्तर वर्त रहा है ऐसे प्रशान्तमूर्ति वीतराग मुनिराजको भी प्रमत्तदशामें प्रतिक्रमणादिका, भगवानके दर्शन करनेका—भगवान साक्षात् न हों तो जिनमन्दिरमें जाकर जिनप्रतिमाके दर्शन–स्तवन आदिका—विकल्प आता है। यह विकल्परूप शुभराग भी दुःखरूप है; उसे 'विषकुम्भ'–विषका घड़ा कहा है।

भगवानके स्मरणका अथवा भक्तिका भाव, पंचमहाव्रतका विकल्प, रागकी तीव्रता होने पर उसकी निन्दा–गर्हाका भाव, भूमिकाके लिये अशोभनीय ऐसे भाव हुए हों तो गुरुके पास जाकर निवेदन करनेका भाव—वह सब शुभराग अमृतसागर ऐसे भगवान आत्माके अवलम्बनसे प्रगट हुई अतीन्द्रिय अमृतधाराके समक्ष विष है, विषकुम्भ है। अहा! ऐसी सूक्ष्म बातें! जन्म–मरणके चक्रमें तुझे अन्य कोई शरण नहीं है प्रभु! भीतर आत्मामें जाना ही एक शरण है, बाह्यमें जाना वह तो मात्र दुःख है। कहीं रागादि विभावको दुःख कहा हो, रागरूपी आग कहा हो, प्रशस्त रागको विषकुम्भ कहा हो, किन्हीं भी शब्दोमें कहा हो, परन्तु सर्वत्र कहनेका भाव–आशय तो एक ही है कि—विभावका एक कण भी दुःखरूप है। चौथे गुणस्थानमें शेष तीन कषायका भाव, पाँचवें गुणस्थानमें शेष दो कषायका भाव, छठवें गुणस्थानमें शेष एक कषायका भाव दुःखरूप है। अरे! विभावका छोटेसे छोटा अंश भी दुःखरूप है, स्वभावरूप परिणमन ही एकमात्र सुखरूप है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'भले ही उच्चमें उच्च शुभभावरूप या अतिसूक्ष्म रागरूप प्रवृत्ति हो तथापि जितनी प्रवृत्ति उतनी आकुलता है और जितना निवृत्त होकर स्वरूपमें लीन हुआ उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है।'

जिससे उच्चमें उच्च पुण्यबंध हो—तीर्थंकर नामकर्म बँधे, चक्रवर्ती, बलदेव आदि उच्च पदवियाँ प्राप्त हों ऐसा पुण्यबंध हो—ऐसे उच्च शुभभाव हों अथवा गुण–गुणीके विकल्परूप—अतिसूक्ष्म रागरूप—प्रवृत्ति हो तथापि जितनी प्रवृत्ति उतनी आकुलता है, अशान्ति है, जहर है, और जितनी स्वभावोन्मुखतापूर्वक निवृत्ति हुई, स्वरूपमें लीनता हुई उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है। शुभाशुभभाव तो विष हैं ही, परन्तु उनके निमित्तसे जो कर्मप्रकृतियाँ बँधती हैं उसे भी विषकुम्भ और विषवृक्ष कहा है। भगवान ज्ञायक आत्मा अमृतका वृक्ष है और १४८ कर्मप्रकृतियाँ वह विषवृक्ष है। समयसारमें कर्मको विषवृक्ष कहा है न? 'कर्मरूपी विषवृक्षके फल मेरे भोगे बिना ही झर जाओ; मैं अपने चैतन्यस्वरूप आत्माको निश्चलरूपसे संचेतता हूँ—अनुभवता हूँ।

यद्यपि केवली भगवानको भी चार अघाति कर्मोंका उदय है; अघाति कर्मोंका उदय उनको दुःखरूप नहीं है; तथापि निचली मोह–राग–द्वेषरूप दशामें अघाति कर्मका उदय दुःखका निमित्त होता था इसलिये, केवलीको मोह–राग–द्वेषका तथा अपूर्णताका अभाव होकर पूर्ण परमानन्द प्रगट होनेपर भी, अघातिकर्मका उदय अभी विद्यमान होनेसे उनके आनन्दको परम-अव्याबाध आनन्दपना नहीं है। श्री अरिहंत परमात्माको ज्ञान, दर्शन, वीर्य आदि अनुजीवी गुणोंका विकार और उसके निमित्त चार घातिकर्म टल गये हैं परन्तु वेदनीयादि चार अघातिकर्म 'जली जेवरीवत् आकृतिमात्र' अभी शेष हैं, इसलिये उन्हें अव्याबाध, सूक्ष्मत्व, अवगाह और अगुरुलघुत्व आदि प्रतिजीवी गुणोंकी विभावपर्याय है, तथापि वह आकुलताजनक नहीं है। आठ कर्मोंका अभाव होनेसे सिद्ध भगवानको सम्यक्त्व, सुख आदि आठ गुण प्रगट हुए ऐसा शास्त्रमें कथन आता है न? उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि अरिहंतको पूर्ण सुख नहीं है। परन्तु पहले घातिकर्मजनित दुःखमें अघातिकर्मजनित शरीरादि संयोग निमित्त थे वे अभी छूटे नहीं हैं इसलिये उनके सुखको उतना अव्याबाधपना नहीं है, इतनी असिद्धत्वरूप कचास है। अहा! ऐसी बातें हैं!

यहाँ तो यह बात चलती है कि–भले ही उच्चसे उच्च शुभभावरूप या अतिसूक्ष्म रागरूप प्रवृत्ति हो—द्रव्य–गुण–पर्यायके सूक्ष्म विचाररूप विकल्प उठें—तथापि रागमिश्रित विचार आदि जितनी प्रवृत्ति उतनी आकुलता है, बंधका कारण है और उन विकल्पोंसे भी निवृत्त होकर जितनी स्वरूपरमणता प्रगट हुई उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है बाकी सब बातें हैं। शान्तस्वभाव–शान्तरस ऐसे निज ज्ञायक भगवानका आश्रय लेकर अंतर्मुख हुआ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उतनी शान्ति और आनन्द; तथा प्रवृत्तिके जितने विकल्प उठें—भले ही स्थूल शुभरागके परिणाम हों या अतिसूक्ष्म गुण–गुणीके अथवा द्रव्य–गुण–पर्यायके भेदका विकल्प हो—वे सब दुःखरूप हैं।

स्वभावसे बाहर निकलनेकी जितनी वृत्ति है वह सब प्रवृत्ति है। 'नियमसार'में उसे अनावश्यक कहा है, आवश्यक नहीं। उससे निवृत्त होकर स्वरूपमें एकाग्र हो जाना, अंतरमें लीनता होना वह आवश्यक है। आवश्यक अर्थात् अवश्य करने योग्य, अथवा अवश अर्थात् परके वश नहीं किन्तु निजज्ञायक आत्माके वश ऐसा स्वरूपलीनतारूपी कार्य। निवृत्त होकर अंतर्स्वरूपमें जितनी लीनता हुई उतनी शान्ति और स्वरूपानन्द है। ज्ञायक–अमृतसागरको अंतरसे जितना उल्लसित करे उतना आनन्द और जितना रागमें अटके उतना विष। व्यापार–धंधेका भाव वह तो पाप और तीव्र विष है, परन्तु देव–शास्त्र–गुरुकी भक्तिका राग या द्रव्य–गुण–पर्यायके भेदका शुभविकल्प वह भी सूक्ष्म विष है; एकमात्र स्वरूपानन्द ही परम अमृत है।

*

वचनामृत–२६६

द्रव्य तो सूक्ष्म है, उसे पकड़नेके लिये सूक्ष्म उपयोग कर। पाताल-कुएँकी भाँति द्रव्यमें गहराई तक उतर जा तो अंतरसे विभूति प्रगट होगी। द्रव्य आश्चर्यकारी है। २६६.

'द्रव्य तो सूक्ष्म है, उसे पकड़नेके लिये सूक्ष्म उपयोग कर।'

चैतन्य द्रव्य अरूपी–अमूर्त और सूक्ष्म है, उसे समझनेके लिये उपयोगको सूक्ष्म कर। जिस परिणामसे स्थूल ऐसे देह, इन्द्रियाँ और विभावसे भिन्न निजचैतन्य प्रभु पकड़में आये उसे यहाँ सूक्ष्म उपयोग कहते हैं, और जिस परिणामसे ज्ञायकप्रभु पकड़में नहीं आता उसे स्थूल उपयोग कहते हैं।

'पाताल-कुएँकी भाँति द्रव्यमें गहराई तक उतर जा तो अंतरसे विभूति प्रगट होगी।'

एक समयकी जो वर्तमान पर्याय उसके भीतर—समीप ही त्रैकालिक ध्रुवतत्त्व है। पातालकुएँकी भाँति त्रैकालिक ध्रुवतत्त्वकी गहराईमें उतर जा तो भीतरसे अनन्तज्ञान एवं आनन्दादि सर्व विभूतियाँ प्रगट होंगीं। जैसे पातालकुआँ भीतरसे फूट पड़े और पानीका फव्वारा उछलता है, वैसे ही एक गहरे ज्ञायकतत्त्वको अंतरकी गहराईसे ग्रहण कर–पकड़

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो पर्यायमें निर्मलताकी–आनन्दकी धारा उल्लसित होगी, अंतरसे विभूतियाँ प्रगट होंगीं।

'द्रव्य आश्चर्यकारी है।'

ज्ञायक द्रव्य ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्तानन्त गुणवैभवसे भरपूर कोई अद्भुत तत्त्व है। स्वभावरूप विभूतिको सूक्ष्म उपयोग द्वारा एकाग्रतासे ग्रहण करने–पकड़नेसे वह आश्चर्यकारी द्रव्य हाथमें आयगा, जिससे तेरी अनादिकी भवभ्रमणरूप दीनता दूर हो जायगी। अहा! ऐसा तत्त्व है।

सबको एकही करने योग्य है—रुचिके वेगको अंतरमें लगा देना, एक शुद्धात्माको ही ग्रहण करना। शुद्धात्मामें ही सब कुछ भरा पड़ा है। जिसमें जो हो उसमेंसे वह आयगा।—इसप्रकार गुरुदेवने जोरदार वाणी बरसाई है। गुरुदेवने पंचमकालमें भगवानका विरह भुलाया है।

—बहिनश्री चम्पाबेन.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१११

दिनांक ६-१०-७८

वचनामृत–२६७

तेरा कार्य तो तत्त्वानुसारी परिणमन करना है। जड़के कार्य तेरे नहीं हैं। चेतनके कार्य चेतन होते हैं। वैभाविक कार्य भी परमार्थसे तेरे नहीं हैं। जीवनमें ऐसा घुट जाना चाहिये कि जड़ और विभाव वे पर हैं, मैं वह नहीं हूँ। २६७.

'तेरा कार्य तो तत्त्वानुसारी परिणमन करना है।'

यदि तुझे हित करना हो, धर्म करना हो और भवका अन्त लाना हो तो तत्त्वानुसारी—सहज ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप, पूर्ण प्रभुत्वमय, सहज परम ऐश्वर्यस्वरूप त्रैकालिक ध्रुव निज ज्ञायकतत्त्वका अनुसरण करके—परिणमन करना वही तेरा कार्य है। पुण्य–पापरूप विकारीभाव अनादिकालसे करता आया है, परन्तु वह संसार है, दुःखमय है और परिभ्रमणका कारण है। अब यदि तुझे धर्मकार्य करना हो तो ज्ञायकभाव कौन है और यह पुण्य–पापमय विकारी परिणमन क्या है उसका भेदज्ञान करके त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायकतत्त्वके अनुसार निर्मल दशा प्रगट करना वही तेरा कर्तव्य है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्रमणता—वह, तत्त्वके अनुसार होनेवाली साधकदशा है, धर्मीका धर्म है।

'जड़के कार्य तेरे नहीं हैं।'

शरीर, वाणी और मन, पैसा, मकान और व्यापार या स्त्री, पुत्रादि परजीव,—उनके कार्य कहीं तेरे नहीं हैं। शरीरका हलन–चलन, वाणी निकलना, व्यापारादिका चलना यह सब जड़के कार्य हैं, आत्माके नहीं।

प्रश्न:—जीव रोटी तो खाता है न?

उत्तर:—कौन खाता है और कौन पीता है? खाने–पीनेकी क्रिया तो जड़की जड़में है। उस क्रियाके समय परका अनुसरण करके जो विकार होता है वह भी विभाव है, चैतन्यका स्वभावकार्य नहीं है। अहा! ऐसा कठिन काम है! इसमें प्रवीण होना

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पड़ेगा। चैतन्यस्वरूप भगवान आत्माको यथार्थरूपसे जानकर, उसका अनुभव करके अंतरमें ज्ञानका परिणमन करना पड़ेगा,—यदि आत्मकल्याणकी भावना हो तो।

दुकान पर बैठकर व्यापार करना, पैसा कमाना, बँगला बनवाना यह जड़के कार्य तो तेरे नहीं हैं, परन्तु भीतर जीवकी दशामें होनेवाले पुण्य–पापके विकारी भाव भी आत्माका कार्य नहीं हैं। यदि तुझे अपने हितका कार्य करना हो, परम पदार्थ ऐसे निज ज्ञायकप्रभुको प्राप्त करना हो तो—मिथ्यात्व और पुण्य–पापकी प्राप्ति तो अनादिसे की है परन्तु वह सब तो चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेके मार्ग हैं; उनसे तुझे छूटना हो तो ज्ञान, शान्ति और अकषायस्वभावसे भरपूर ऐसे निज भगवान आत्माका अनुसरण करके अंतर्मुख परिणमन करना। वह तेरा कार्य है, जड़का अनुसरण करना वह तेरा कार्य नहीं है। जड़के कार्य तेरे नहीं है।

प्रश्न:—मुमुक्षु जिनमन्दिर बनवाते हैं न? आप हमें उपदेश देते हो न?

उत्तर:—भाई! धैर्य रखकर सुन तो सही, कौन मन्दिर बनवाता है और कौन उपदेश देता है? वह तो जड़की दशा जड़के कारण होती है, जीवके कारण नहीं। उस काल जीवको जो विकल्प आता है वह भी विभावकार्य है, जीवका स्वभावकार्य नहीं है। परमानन्दस्वरूप ज्ञायकप्रभुका अनुसरण करके अंतरमें जो निर्मलता प्रगट हो वही आत्माका सच्चा कार्य है। अहा! यह तो अपूर्व बात है भाई! त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ परमात्मा दिव्यध्वनिमें जो बात कहते थे वही बात बेनके वचनोंमें आयी है।

शरीर, वाणी और मनकी क्रिया तो नहीं, परन्तु अंतरमें व्यवहार-रत्नत्रयका विकल्प उठे वह भी आत्माका—आत्माकी जातिका—कार्य नहीं है। ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप निज चैतन्यप्रभुका अनुसरण करके अंतरमें शुद्ध परिणमन हुआ वही आत्माका निर्मल कार्य है।

प्रश्न:—आपके पुनीत प्रभावसे काठियावाड़के अनेक ग्रामोंमें जिनमन्दिरोंका निर्माण हुआ जिसमें करोड़ों रुपये खर्च हुए; गुजरात तथा अन्य प्रान्तोंमें भी आपके प्रभावसे जिनमन्दिरोंका निर्माण हुआ है; यहाँ सोनगढ़में भी करोड़ों रूपये जिनालयोंके निर्माण पर खर्च हो चुके हैं, जिससे यह अनुपम तीर्थधाम बन गया। यह सब आपहीके प्रतापसे हुआ है न?

उत्तर:—भाई! वे सब जड़के परिणमन जड़के कारण होते हैं, वे आत्माके कार्य नहीं हैं। 'जड़भावसे जड़ परिणमे, चेतन चेतनरूप।'

प्रश्न:—वह सब होनेमें आपका प्रभाव तो सही?

उत्तर:—बिलकुल नहीं; वह तो मात्र निमित्तका ज्ञान करानेके लिये व्यवहारकथन है। जीवका प्रभाव जड़में कुछ नहीं कर सकता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जालना (महाराष्ट्र)में दिगम्बर मुनि श्री भव्यसागरजीका चातुर्मास है। उनका पत्र आया है। वे लिखते हैं कि–'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तक यहाँ बहुत लोग माँगते हैं इसलिये पुस्तकें भिजवायें।

अब यहाँ आगे कहते हैं कि—

'चेतनके कार्य चेतन होते हैं।'

'जड़के कार्य तेरे नहीं हैं' ऐसा निषेध करके अब कहते हैं कि–जानना–देखना अथवा सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र यह सब चेतनके कार्य चेतन होते हैं। शरीर, वाणी, मन आदि परद्रव्यके कार्य तो चेतनके नहीं हैं, किन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके भाव भी परमार्थतः चेतनके कार्य नहीं हैं। यह बात लोगोंको कुछ कठिन लगती है, परन्तु क्या किया जाय? वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है; जन्म–मरणरहित होनेका मार्ग तो यही है। वस्तुस्वरूपको समझे बिना जीवने बाह्यक्रियाएँ तो अनादिकालमें अनन्तबार की हैं, अशुभभाव छोड़कर उपवासादिके शुभभाव भी अनन्तबार किये, परन्तु वे विकृत भाव तो स्वभावसे विरुद्धभाव हैं, उनसे ज्ञायकस्वभावके कार्य कैसे होंगे?

'वैभाविक कार्य भी परमार्थसे तेरे नहीं हैं।'

'भी' शब्द क्यों रखा? क्योंकि जड़के कार्य तो तेरे नहीं हैं, परन्तु तदुपरान्त रागादि वैभाविक कार्य भी परमार्थसे तेरे नहीं हैं। अर्थात् क्या? कि–तेरी अपनी पर्यायमें रागादिरूप परिणमन है इसलिये वैभाविक कार्य तेरे हैं, परन्तु विभावभाव आत्माका स्वभाव नहीं है और वे करने योग्य नहीं हैं, इसलिये वे वैभाविक कार्य परमार्थसे—स्वभावदृष्टिसे देखने पर—तेरे नहीं हैं। अरे! धर्मी जीवको शुभाशुभ भाव आते हैं; इतना अपना अस्थिरताजनित परिणमन है उस अपेक्षासे उसे उनका कर्ता कहा जाता हैं; परन्तु वस्तुदृष्टिसे देखने पर वह स्वभावका कार्य नहीं है। अहाहा! आता है कुछ समझमें? पर्यायमें जो रागादिभाव होते हैं वह व्यवहारसे आत्माका परिणमन है, परन्तु उससे क्या वे विभावकार्य परमार्थसे आत्माका स्वभाव हैं? नहीं; विभावभाव परमार्थसे आत्माका स्वभाव नहीं हैं। अंतरमें जो पूर्णानन्दका नाथ पर्यायके समीप विद्यमान है उसका अनुसरण करके जो परिणमन हो वह तेरा कार्य है, इसके सिवा जड़के कार्य तेरे नहीं हैं;.....अरे! वैभाविक कार्य भी परमार्थसे तेरे नहीं हैं।

'जीवनमें ऐसा घुट जाना चाहिये कि जड़ और विभाव वे पर हैं, मैं वह नहीं हूँ।'

निज चैतन्य ज्ञायकस्वभावका अनुसरण करके जो परिणमन हो वही मेरा कार्य है, शेष सब—जड़ और विभाव—पर है, वह मैं नहीं हूँ,—ऐसा जीवनमें अंतरसे घुट जाना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चाहिये। 'पर' कहकर जड़ और विभाव यह दो बातें लीं, परन्तु अपने आत्माके अतिरिक्त अन्य आत्मा भी अपने लिये 'पर' हैं; परन्तु यह बात यहाँ नहीं ली है। चैतन्यके समक्ष जड़ और स्वभावके समक्ष विभाव—यह दो बातें लीं।

महाव्रतादिका शुभराग विभाव है, आत्माका स्वभावभाव नहीं है इसलिये पर हैं; तथापि भगवानने चरणानुयोगके कथनमें कहा है कि–व्रत पालना; परन्तु 'पालने'का अर्थ क्या? मोक्षमार्गप्रकाशकमें कहा है : जीव कन्दमूल आदि बहुत दोषवाली वस्तु न खाये, और अल्प दोषवाली प्रत्येकवनस्पति—हरितकाय—खाये, परन्तु उसे धर्म न माने; इसप्रकार सम्यग्दृष्टि ज्ञानी—मुनिराज सावद्ययोगका—पापयोगका—त्याग करें (पुण्ययोगका त्याग कैसे हो? वह तो स्वरूपमें स्थिर हों तभी होगा।) और सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी भूमिकामें बीचमें शुभभाव आता है इसलिये 'शुभयोगको पालते हैं' ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है, परन्तु उस शुभरागको धर्म नहीं मानते। कन्दमूल छोड़ते हैं वहाँ प्रत्येकवनस्पति खानेका भाव है वह धर्म नहीं है, इसप्रकार जहाँ सावद्ययोगका त्याग हो वहाँ शुभयोग होता है, परन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं है।

जीवनमें सहजरूपसे ऐसा हो जाना चाहिये कि जड़ और विभाव ,पर हैं, वह मैं नहीं हूँ। नवतत्त्वोंमें अजीव है वह पर है, नवतत्त्वोंसे परे ऐसा ज्ञायकतत्त्व तो जो है सो है। पुण्य–पाप, आस्रवादि तत्त्व भी ज्ञायकसे भिन्न हैं। जिस भावसे तीर्थंकरनामकर्म बँधे वह भाव भी विभाव तथा पर है, स्वभावसे विरुद्ध परिणमन है; इसलिये वह मेरा कार्य नहीं है। *

वचनामृत–२६८

ज्ञानीजीव निःशंक तो इतना होता है कि सारा ब्रह्माण्ड उलट जाये तब भी स्वयं नहीं पलटता; विभावके चाहे जितने उदय आयें तथापि चलित नहीं होता। बाहरके प्रतिकूल संयोगसे ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती; श्रद्धामें फेर नहीं पड़ता। पश्चात् क्रमशः चारित्र बढ़ता जाता है। २६८.

'ज्ञानी जीव निःशंक तो इतना होता है कि सारा ब्रह्माण्ड उलट जाये तब भी स्वयं नहीं पलटता; विभावके चाहे जितने उदय आयें तथापि चलित नहीं होता।'

ज्ञानी कहो या धर्मी कहो दोनों एक ही हैं। जिसे शास्त्रादि बाह्यज्ञान अधिक हो वह ज्ञानी और जो पूजा–भक्ति या सामायिक–उपवासादि क्रियाएँ अधिक करे वह धर्मी—ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसका अर्थ नहीं है। आत्मा शरीर, वाणी आदि जड़ पदार्थोंसे तो अत्यन्त भिन्न है—यह तो स्थूल बात है, परन्तु शुभाशुभ विभावोंसे भी भिन्न है ऐसी सच्ची श्रद्धा और स्वानुभवयुक्त आत्मज्ञान जिसे हुआ है वह जीव वास्तवमें ज्ञानी है, धर्मी है।

'ज्ञानी' शब्द क्यों प्रयुक्त किया? आत्मा ज्ञानस्वरूप है, स्वयं ज्ञायकद्रव्य है; उसका परसे तथा विभावसे भिन्नरूप ज्ञान हुआ, अनुभवन हुआ इसलिये 'ज्ञानी' कहा। आत्माका ज्ञानधर्मरूप परिणमन हुआ, जैसा आत्माका स्वरूप है ऐसा ज्ञान हुआ, अनुभव हुआ, धर्मदशा प्रगट हुई, इसलिये उसे 'धर्मी' कहा। विशाल—पाँच–दश हजारकी सभा भरती हो वह वक्ता ज्ञानी एवं धर्मी है—ऐसा नहीं है। सत्यके ज्ञाता और उसकी रुचिवान जीव तो जगतमें अल्प ही होते हैं। 'योगसार'में कहा है कि—

विरले जाने तत्त्वको, अरु सुनते हैं कोई;
विरले ध्यावें तत्त्वको, विरले धारें कोई।

जिसने स्वभावको कभी देखा नहीं है ऐसे रागरसिकोंको आत्माके रसकी बात समझना कठिन लगती है। अशुभ भाव पलटकर शुभभावमें आये, परन्तु जिसे उस शुभरागका भी अंतरमें प्रेम है वह भी मिथ्यादृष्टि—दुःखके पंथ पर, संसार–परिभ्रमणके मार्गपर—है। रागादि विभाव मेरा कर्तव्य है ऐसा मानकर वह मात्र विकारमें ही रुक गया है; भीतर ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्माकी ओर—इस व्यक्त पर्यायके पीछे अंतरमें अव्यक्तरूपसे विद्यमान महान एवं गम्भीर वस्तु क्या है उसे—अन्तर्मुख होकर देखनेकी इच्छा भी नहीं करता। उसे भगवान आत्माकी रुचि कहाँसे होगी? अहा! वह क्या वस्तु है यह बात इस 'वचनामृत' पुस्तकमें बतलायी है। पढ़ी तो होगी..... पढ़ी है न यह?

पैसा तो धूल है। आत्मा पैसेका—जड़का पति तो नहीं किन्तु विभावका पति भी नहीं है। धर्मी शुभभावका भी पति नहीं है, तथापि अशक्तिके कारण शुभभावका परिणमन आता है, उसका अस्थिरताकी अपेक्षासे कर्ता–भोक्ता भी भले कहा जाता है; परन्तु द्रव्यस्वभावकी दृष्टिसे देखने पर ज्ञानी जानता है कि–यह विभाव मेरा कार्य नहीं है। अहा! ऐसी दुधारी तलवार है।

भाई! इस भव-परिभ्रमणमें अनन्त अवतार किये, वहाँ तूने जो दुःख भोगे हैं उनका वर्णन सुनते हुए सुननेवालोंकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगती है! मनुष्य और तिर्यंचके यह जो दुःख हैं उनकी अपेक्षा अनन्तगुने दुःख प्रथम नरककी दस हजार वर्षकी अल्पसे अल्प स्थितिमें हैं। प्रभु! यदि तुझे उन दुःखोंसे मुक्त होना हो और आनन्दकन्द निज भगवान आत्माको प्राप्त करना हो तो उसका स्वरूप जो शुद्ध चैतन्य है उसका अनुसरण करके अन्तर्मुख परिणमन करना होगा। जितना कार्य परलक्षसे होता है वह विभाव है, वह तेरा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सच्चा कार्य नहीं है। एक अपेक्षासे ऐसा कहा जाता है कि विभावका कर्ता जीव है; सम्यग्दृष्टि भी, परिणमन-अपेक्षासे विभावरूप परिणमता है, इसलिये वह कर्त्ता है; परन्तु आत्माके स्वभावकी दृष्टिसे देखें तो वह कार्य आत्माका नहीं है। अरे! किसकी अभिलाषा करना और किसके हर्षमें विभोर होना? अंतरमें आनन्दनिधान चैतन्यप्रभुका अनुसरण करके जो आत्मशुद्धि हो वही तेरा कार्य है; शेष सब व्यर्थ है।

अध्यात्मकी ऐसी रसभरपूर बात लोगोंको रूखी लगती है; परन्तु क्या किया जाय? पं. दीपचन्दजीने 'भावदीपिका'में कहा है कि—'वर्तमानमें जैन सम्प्रदायमें आगमानुसार सच्ची श्रद्धा भी दिखायी नहीं देती। उनसे सच्ची बात कहें तो 'एकान्त' है, एकान्त है'—ऐसा कहकर विरोध करते हैं; इसलिये तो मैं लिखे जा रहा हूँ कि वीतरागताका कहा हुआ मार्ग सच्चा है, अन्य जो मान रहे हैं वह मार्ग सच्चा नहीं है। अरे! उस समय भी उन्हें यह लिखना पड़ा....तब फिर वर्तमानकाल तो बहुत निम्नस्तरका है। साथ ही यहाँ ऐसा पुण्य भी है जिससे लोग कुछ सुनते हैं और सुनने पर उन्हें लगता है कि यह बात कोई अलग है।

जड़के और विभावके कार्य मेरे नहीं हैं, भीतर चैतन्यका अनुसरण करके जो परिणमन हो वही मेरा कार्य है—इस प्रकार ज्ञानी निःशंक होता है। शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्माकी दृष्टि होते ही ज्ञानी जीव इतना निःशंक होता है कि सारा ब्रह्माण्ड पलट जाय तब भी स्वयं नहीं पलटे। द्रव्य कभी पलटता है? तब फिर नित्यस्थायी द्रव्यस्वभावके आश्रयसे प्रगट हुई जो अटल प्रतीति और स्वानुभव उसका पलटना—चलित होना—कैसे होगा? भले ही सारी दुनिया पुकार करे कि 'यह मिथ्या है, मिथ्या है' तथापि ज्ञानी स्वयं कभी सत्यसे चलित नहीं होता।

विभावके चाहे जितने उदय आयें तथापि ज्ञानी अपनी ज्ञानधारासे चलित नहीं होता। धर्मीको अनेक प्रकारके विषम परिणाम भी आते हैं, तथापि वे कहीं आकुलित नहीं होते, वे तो सदा निःशंक रहते हैं कि 'मेरी वस्तु शुद्ध और पवित्र है।' गृहस्थको व्यापार–धन्धेमें अनेक प्रकारके उदय आते हैं। श्रीमद् कहते हैं—इस समय उपाधियोग ऐसा है कि धड़के ऊपर मस्तक रहना कठिन है। ज्ञानीको भी परिणाममें मन्दता आ जाय, परन्तु अन्तर्दृष्टिमें फेर नहीं पड़ता। आत्मस्वरूप सम्बन्धी बोधका यद्यपि नाश न हो, तथापि आत्मस्वरूप सम्बन्धी बोधके विशेष परिणामोंके प्रति एकप्रकारका आवरण होनेरूप उपाधियोग दिखता है : क्योंकि स्त्री, बच्चों और व्यापारमें 'ज्ञान'रूप रहना अति कठिन तथा अपूर्व है।

ज्ञानीको भी विषयवासनाके भाव आते हैं तथापि वे स्वरूपसे चलित नहीं होते;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वयं ज्ञातारूप रहकर वासनाको मात्र जानते ही हैं। श्रेणिक राजा क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं, प्रतिसमय तीर्थंकर नामकर्म बँध रहा है; उनको उनके पुत्रनें कैदमें डाल दिया। माताके मुखसे अपने जन्मके समय पिताके प्रेमका वर्णन सुनकर पश्चात्ताप होनेसे पुत्र बरछी लेकर पिताके बंधन काटनेके लिये आता है; परन्तु राजा श्रेणिकको लगता है कि यह 'मुझे मारनेके लिये आ रहा है'—ऐसा भ्रम उन्हें हो जाता है कि 'इस पापीके हाथसे मरनेकी अपेक्षा तो मैं स्वयं ही क्यों न अपना शरीर त्याग दूँ'—ऐसा विचार कर जेलकी दीवारसे सिर पछाड़कर प्राणत्याग किया। अहा! ज्ञानीको भी ऐसा उदय आया तथापि अपनी ज्ञानाधारासे चलित नहीं हुए।

ज्ञानी पुत्रकी मृत्यु होनेपर रुदन करता है, आर्तध्यान होता है, परन्तु अंतरमें उसे सतत निःशंक प्रतीति है कि यह विभाव मेरी वस्तु नहीं है; और अज्ञानीको पुत्रकी मृत्यु होनेपर कदाचित् रोना न आये, सबसे माला जपनेको कहे, परन्तु अंतरमें विभावसे भिन्न निज ज्ञायक तत्त्वकी प्रतीति नहीं है इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानीको आर्तध्यान हो वहाँ उसका दृष्टि-अपेक्षासे किंचित् दोष नहीं है। चारित्र-अपेक्षासे अशक्तिका दोष है। अन्य गुणके दोषके कारण यदि श्रद्धाको दोष कहो तो साधकको सम्यग्दर्शन कभी निर्दोष रह ही नहीं सकेगा; किन्तु ऐसा नहीं है। चारित्र-अपेक्षासे अल्प दोष होनेपर भी ज्ञानीको श्रद्धा-अपेक्षासे पूर्ण निःशंकता होती है। श्रीमद्ने कहा है कि—'हे व्यग्रता! तू चली जा, चली जा, हे अल्प या मध्य-अल्प कषाय! अब तुम उपशमित होओ, क्षीण होओ! हमें कहीं तुम्हारे प्रति रुचि नहीं रही।' यहाँ बेन कहती हैं कि—विभावके चाहे जितने उदय आयें तथापि ज्ञानी चलित नहीं होते।

'बाहरके प्रतिकूल संयोगसे ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती; श्रद्धामें फेर नहीं पड़ता।'

शरीरमें अनेक प्रकारके रोग आयें, बाह्यमें अनेक प्रकारके प्रतिकूल संयोग आ पड़ें, तथापि ज्ञानीको 'मैं तो परसे तथा विभावसे भिन्न मात्र ज्ञायक ही हूँ' ऐसी परिणतिमें फेर नहीं पड़ता। स्वयं निर्णयमें निःशंक और अडिग है इसलिये उसकी श्रद्धामें फेर नहीं पड़ता। अंतरमें आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्यप्रभुकी जो निश्चल प्रतीति हुई है वह हटती नहीं है।

'पश्चात् क्रमशः चारित्र बढ़ता जाता है।'

द्रव्यस्वभावके आलम्बनसे अंतरमें स्थिरताके अंश बढ़ते–बढ़ते चारित्रदशा प्रगट होती है; चारित्रदशामें वृद्धि होनेपर पूर्ण परमानन्दस्वरूप परमात्मदशा प्रगट होती है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–२६६

वस्तु स्वतःसिद्ध है। उसका स्वभाव उसके अनुकूल होता है, प्रतिकूल नहीं। स्वतःसिद्ध आत्मवस्तुका दर्शन–ज्ञानरूप स्वभाव उसे अनुकूल है, राग–द्वेषरूप विभाव प्रतिकूल है। २६६.

'वस्तु स्वतःसिद्ध है।'

वस्तु कहो, द्रव्य कहो या पदार्थ कहो—सबका अर्थ एक ही है। गुण और पर्याय जिसमें निवास करते हैं या वसते हैं उसे वस्तु कहते हैं। अपने–अपने गुणों तथा पर्यायोंका निवासस्थान होनेसे छहों प्रकारके द्रव्य स्वतःसिद्ध वस्तु हैं। भगवान आत्मा भी स्वतंत्र द्रव्य होनेसे स्वतःसिद्ध वस्तु है। स्वतःसिद्ध वस्तु अकारणपारिणामिक द्रव्य होनेसे उसका अन्य कोई कर्ता नहीं है। जगतकी अन्य वस्तुएँ भी स्वतःसिद्ध होनेसे आत्मा भी उनका कर्ता नहीं है। वस्तु 'सत्' होनेसे स्वयं उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्त परिणामस्वभाववाली, अपना अस्तित्व अपनेसे धारण करनेवाली और अन्यके कारण–कार्यपनेसे रहित है।

'उसका स्वभाव उसके अनुकूल होता है, प्रतिकूल नहीं।'

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा स्वतःसिद्ध वस्तु है; उसका स्वभाव—सहज ज्ञान, सहज आनन्द, सहज शान्ति, सहज वीतरागता आदि उसके गुणस्वभाव—उसके अनुकूल होता है। गुणस्वभाव त्रिकाल शुद्ध होनेसे विकार एवं दुःखमय नहीं होता। स्वभाव कभी प्रतिकूल नहीं होता। अर्थात् पर्यायमें स्वभावसे विरुद्ध जो विभाव उत्पन्न होते हैं वह, आत्माका मूल स्वरूप नहीं है। देखना–जानना वह तो आत्माका दर्शन–ज्ञानमय सहज स्वभाव है; क्या वह आत्माको प्रतिकूल होगा? द्रव्यस्वभाव आत्माको सदा अनुकूल ही होता है। अहा! ऐसा उपदेश! ऐसा मार्ग! भाई, तू भी एक वस्तु है न! वस्तु हो उसे उसका ज्ञान एवं आनन्दादि स्वभाव अनुकूल ही होता है, प्रतिकूल नहीं होता।

'स्वतःसिद्ध आत्मवस्तुका दर्शन–ज्ञानरूपस्वभाव उसे अनुकूल है, राग–द्वेषरूप विभाव प्रतिकूल है।'

शब्द थोड़े हैं परन्तु उनमें वस्तुका सारा मर्म भरा है। अपनेसे ही अपना अस्तित्व धारण करनेवाली आत्मवस्तुका जो देखने–जाननेरूप स्वभाव वह उसका सहज वैभव है, वह उसे अनुकूल ही होता है, प्रतिकूल कदापि नहीं होता। परन्तु पर्यायमें जो राग–द्वेष, शुभाशुभ विकल्प—व्यवहार–रत्नत्रयके विकल्प भी—होते हैं वे स्वभावसे विरुद्ध होनेके कारण वस्तुको प्रतिकूल हैं। स्वभाववानका स्वभाव स्वको अनुकूल ही होता है; परन्तु स्वकी—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्माकी—पर्यायमें जो पुण्य–पापके विभाव होते हैं वह आत्माकी जाति नहीं है, कुजाति है, इसलिये वह स्वभावको प्रतिकूल हैं। दया, दान, पूजा, भक्ति, शास्त्रस्वाध्याय, व्रत, तप आदिके शुभभाव भी स्वभावकी जाति नहीं है, इसलिये उसकी रुचि तथा परिणतिको हटाकर अंतरमें जो स्वभाव उसका अनुसरण करनेका नाम सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र है। स्वभावमय परिणमन करना ही जीवका कर्तव्य है।

गुरुदेवने पंचमकालमें भगवानका विरह भुलाया है। स्वयं अंतरसे तैयार हो जाय तो देव–शास्त्र–गुरु शक्तिशाली निमित्तरूपसे होते ही हैं। अंतरसे आगे बढ़नेवाला कहता है कि–हमें तो गुरुके प्रतापसे प्राप्त हुआ है, हमें अंतरमें जो अनुभव प्रगट हुआ वह गुरुकी कृपासे–उनके प्रसादसे ही प्राप्त हुआ है। सारा श्रेय गुरुदेवको ही जाता है। सब कुछ गुरुदेवके ही चरणोंमें है। इस प्रकार गुरुकृपासे ही आगे बढ़ता है।

—बहिनश्री चम्पाबेन.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–११२

दिनांक ७-१०-७८

वचनामृत–३००

परिभ्रमण करते अनन्तकाल बीत गया। उस अनन्तकालमें जीवने 'आत्माका करना है' ऐसी भावना तो की परन्तु तत्त्वरुचि और तत्त्वमंथन नहीं किया। रुचनेमें तो एक आत्मा ही रुचे ऐसा जीवन बना लेना चाहिये। ३००.

'परिभ्रमण करते अनन्तकाल बीत गया।'

पंचपरावर्तनरूपसे परिभ्रमण करते हुए चौरासी लाख योनियोंमें पुनः पुनः अवतार धारण करके अनन्तकाल बीत गया। अनादिकालसे जीव इस चार गतिमय संसारमें जन्म–मरणके दुःख भोग रहा है।

''उस अनन्तकालमें जीवने 'आत्माका करना है' ऐसी भावना तो की, परन्तु तत्त्वरुचि और तत्त्वमंथन नहीं किया।''

भावना अर्थात् अभिलाषा, विकल्प। परिभ्रमणके अनंतकालमें 'मुझे अपना कल्याण करना है' ऐसी ऊपरी इच्छा तो अनंतबार की, परन्तु वह तो शुभराग है; शुभरागसे कल्याण होता है? शुभाशुभ समस्त रागसे रहित भीतर जो सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा है उसके स्वरूपकी यथार्थ रुचि और मनन गहराईसे नहीं किया, इसलिये कल्याणकी प्राप्ति नहीं हुई और परिभ्रमण चलता ही रहा।

लोगोंको अंतरंगमें तत्त्वरुचि करनेकी बात कठिन लगती है; इसलिये पुकार करते हैं कि—क्या यह व्रत–तप, दया–दान, साधुपनेकी क्रियाएँ मुक्तिका साधन नहीं हैं? उनसे आत्माकी—धर्मकी—प्राप्ति नहीं होती ऐसा कहते हो तो तुम्हारा 'एकान्त' है। भाई! जरा धैर्य रखकर सुन तो सही! ऐसे आत्मज्ञानशून्य बालव्रत–तप तो तूने अनन्तबार किये हैं और उनके फलरूपमें तू अनन्तबार स्वर्गमें गया है, तथापि अभी तक परिभ्रमणका अन्त नहीं आया; अज्ञानरूपी पाड़ा तेरे अनन्त व्रत–तपके पूले चबा गया; इसलिये अंतरमें किंचित् विचार तो सही कि भवके अन्तका उपाय कोई और ही है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिभ्रमणकी परिपाटीमें तूने सबसे कम तथापि अनन्त भव मनुष्यके किये हैं। उसकी अपेक्षा असंख्यगुने अनन्तभव नारकीके किये हैं, नारकीके भवोंकी अपेक्षा असंख्यगुने अनन्त भव देवके किये हैं और देव भवकी अपेक्षा अनन्तगुने अनन्त एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तकके तिर्यंच भव धारण किये हैं। अपने पर बीती हुई बातें तू अब भूल गया है। भूल गया इसलिये वह सब नहीं था यह कौन कह सकता है? माताके पेटसे जन्म लेनेके बाद चार–छह महीनेकी बातें तुझे याद नहीं हैं कि—तू क्या खाता था, कैसा रोता था—यह सब याद है? यदि नहीं तो क्या वह सब नहीं था? अरे! नरककी अल्पसे अल्प स्थिति दस हजार वर्षसे लेकर उत्कृष्ट तेतीस सागरोपमकी स्थितिमें तू अनन्तबार जन्म–मरण कर चुका है। वहाँके एक क्षणके दुःखका वर्णन कैसे हो! करोड़ों भवमें करोड़ों जिह्वाओंसे नहीं कहे जा सकें ऐसे भीषण वहाँके दुःख हैं।

नरकके भवोंकी अपेक्षा असंख्यगुने स्वर्गके भव अनन्तबार किये हैं। क्या शुभभावके बिना स्वर्गमें पहुँचा जा सकता है? पंचमहाव्रत-पालनके शुभभाव तथा शुक्ल लेश्याके बलसे अनंतबार नववें ग्रैवेयक तक गया, परन्तु आत्मकल्याणके साधनभूत ऐसी अन्तर्मुख तत्त्वरुचि तथा तत्त्वमंथन नहीं किया। छहढालामें कहा है न।—

मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायौ,
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।

परिभ्रमण करते हुए ऐसे शुभभाव भी अनन्तबार किये, परन्तु उनसे भवोंकी प्राप्ति हुई, भवका अभाव नहीं हुआ। भवके अभावका कारण तो आत्मज्ञान है, उसका जीवने कभी लक्ष नहीं किया। 'मुझे अपना हित करना है'–ऐसी अभिलाषा तो अनन्तबार की, परन्तु भीतर जो परमानन्दका नाथ त्रैकालिक ज्ञायक प्रभु अपने ज्ञानादि वैभवसहित विद्यमान है उसकी सन्मुखताका अभ्यास—उसकी यथार्थ रुचि तथा गहन मंथन—कभी नहीं किया। जो व्रत–तप, पूजा–भक्ति आदि शुभरागकी बहिर्मुखी क्रियाएँ हैं वे स्वयं संसार हैं; उनसे परिभ्रमण कैसे मिटेगा?

जीव नग्न दिगम्बर साधु भी अनन्तबार हुआ, परन्तु वह सब तू भूल गया है। प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि जहाँ तक जा सकता है ऐसी उच्चसे उच्च स्वर्गकी गति—नववें ग्रैवेयक—के भव भी अनन्तबार किये हैं। शुभ भावसे स्वर्ग मिला, परन्तु तत्त्वदृष्टि प्राप्त नहीं हुई; आत्मज्ञान नहीं किया इसलिये संसारपरिभ्रमण तो ज्योंका त्यों बना रहा। स्वाध्यायमालामें आता है कि—'द्रव्यसंयमसे ग्रीवक पाया, फिर पीछे पटका।' 'मुझे आत्माका करना है'—ऐसी भावना तो जीवने अनन्तबार की, परन्तु प्रज्ञाब्रह्म निज चैतन्यप्रभुमें स्वोन्मुख होकर उसकी रुचि तथा मंथन नहीं किया।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'रुचनेमें तो एक आत्मा ही रुचे ऐसा जीवन बना लेना चाहिये।'

पुण्यपरिणामोंकी रुचि हुई, परन्तु उन परिणामोंके पीछे जो ज्ञायक प्रभु अंतरमें सदा विराजमान है वह नहीं रुचा, इसलिये उसकी रुचि और मंथन नहीं किया। अरे! जो रुचि करने जैसी वस्तु है ऐसे विज्ञानघन भगवान आत्माकी रुचि नहीं हुई और रागकी रुचि हुई। दया–दान, पूजा–भक्ति आदि क्रियाओंका राग रुचिमें आया, परन्तु वास्तवमें उन विभावभावोंसे भिन्न अपने निज ज्ञायकभावकी रुचि हो ऐसा जीवन बना लेना चाहिये। ज्ञानीको भी पुण्य तथा पापके भाव आते हैं, परन्तु उसे उनकी रुचि नहीं है। वे विभावभाव भले नहीं लगते, किन्तु नवतत्त्वोंमें व्यापकरूपसे विद्यमान जो एक सहज चैतन्यज्योति—शुद्ध चैतन्यघन भगवान आत्मा—उस एककी रुचि होनेसे वही एक उत्तम लगती है। भूमिकानुसार पुण्य–पापके भाव आयें, परन्तु साथ ही साथ अंतरमें खटका है कि यह भाव दुःखमय हैं। उग्र पुरुषार्थ करके अंतर्स्वरूपमें सहजरूपसे स्थिर नहीं हुआ जा सकता इसलिये ऐसे विभावभाव आते हैं, परन्तु रुचि तो एक आत्माकी ही होनी चाहिये, जीवनको आत्मामय बना देना चाहिये। अहा! यह तो वीतरागके घरकी बातें हैं।

*

वचनामृत–३०१

जीव राग और ज्ञानकी एकतामें उलझ गया है। निज अस्तित्वको पकड़े तो उलझन निकल जाये। 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा अस्तित्व लक्षमें आना चाहिये। 'ज्ञायकके अतिरिक्त अन्य सब पर हैं' ऐसा उसमें आ जाता है। ३०१.

'जीव राग और ज्ञानकी एकतामें उलझ गया है।'

जीव अनादिकालसे ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा और रागादि विभावोंकी एकतामें उलझ गया है; उसे स्वभाव–विभावके बीच एकत्वकी आँटी पड़ गई है, ग्रन्थि लग गई है। उस एकत्वकी आँटीको उकेलना, ग्रन्थिको खोलना तत्त्वरुचि और मंथनके परिणामोंसे धैर्यपूर्वक हो सकता है। जैन दिगम्बर साधु अनन्तबार हुआ तथापि ज्ञाता स्वभावको भूलकर रागादि विभावके साथकी एकतामें उलझा ही रहा। राग और ज्ञान दोनों एक नहीं हैं, दोनोंके बीच साँध है, दरार है। प्रज्ञारूपी छैनी अंतरके बलपूर्वक पटकनेसे ग्रन्थिभेद होता है। अहा! ऐसी बात है! त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ परमात्माने दिव्यध्वनिमें जो कहा है वह 'बेन'की वाणीमें अनुभवमेंसे आया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'निज अस्तित्वको पकड़े तो उलझन निकल जाये।'

जीव कहो या आत्मा कहो—दोनों एक ही हैं। ज्ञानस्वरूप आत्मा अनादिसे रागके साथ एकता मानकर उलझ गया है। यदि वह ज्ञान और आनन्दस्वरूप अपने सहज अस्तित्वको पकड़े तो स्व–परके एकत्वकी भ्रान्तिके कारण अनादिसे पैदा की हुई वह उलझन मिट जाय। भाई! तेरा अस्तित्व रागसे बिलकुल भिन्न है; रागादिभाव तो क्षणिक विभाव हैं और तू तो ज्ञानस्वभावी नित्य चेतन पदार्थ है। रागादिसे भिन्न ज्ञानस्वरूप अपनी वस्तुके अस्तित्वको पकड़ने–समझनेके लिये तुझे कभी अवकाश नहीं मिला। अरे! यह शरीर छूट जायगा और मरकर कहीं अनजाने द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावमें चला जायगा; भाई! डेरा कहाँ होगा उसकी तुझे खबर है? वहाँ तुझे भेदज्ञानकी ऐसी बातें कहाँ मिलेंगीं? इस दुर्लभ मनुष्य जीवनमें करना तो यह एक ही है—स्व–परका भेदविज्ञान; बाकी सब व्यर्थ है।

अपना स्वरूप-अस्तित्व केवलज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणमय है और रागादि विभावका अस्तित्व क्षणिक तथा आकुलतामय है; वे दोनों एक नहीं, परन्तु स्वरूपभेदसे बिलकुल भिन्न हैं। निज शुद्ध अस्तित्वको बराबर समझे तो दोनोंके बीच एकत्वकी भ्रान्तिरूप ताला खुल जाय और अनुक्रमसे भवका अन्त आ जाय। वैसे, क्रियाकाण्ड कर–करके मर जाय तब भी भवका अन्त नहीं आयगा। समयसारके निर्जरा अधिकारमें कहा है न! कि—'जीव कथंचित् जिनाज्ञामें कहे हुए महाव्रत एवं तपके भारसे दीर्घकाल तक भग्न होते हुए—टूट मरते हुए क्लेश प्राप्त करते हों तो करो; परन्तु जो साक्षात् मोक्षस्वरूप है, निरामय (रोगादि समस्त क्लेशोंसे रहित) पद है तथा स्वयं संवेद्यमान है—अपने आप स्वयं वेदनमें आता है ऐसा यह ज्ञान तो ज्ञानगुणके बिना किसी भी प्रकार वे प्राप्त कर ही नहीं सकते।' आशय यह है कि—ज्ञान है वह साक्षात् मोक्ष है; वह ज्ञानसे ही मिलता है, अन्य किसी क्रियाकाण्डसे उसकी प्राप्ति नहीं होती।

ज्ञानीको भी अस्थिरताजनित राग तो आता है, कदाचित् पापका भाव भी आ जाय, परन्तु उसमें उन्हें सुखबुद्धि नहीं है। विषयोंमें और उनके आलम्बनसे होनेवाले रागमें सुख नहीं है, इसलिये उसमें ज्ञानीको सुखबुद्धि नहीं होती। सुख तो अतीन्द्रिय पूर्णानन्दके नाथ ऐसे भगवान निज ज्ञायक आत्मामें है—ऐसी स्वोन्मुखताकी अन्तर्दृष्टि होना, निज शुद्ध स्वरूप-अस्तित्वकी पकड़ होना वही रागके साथ एकत्वकी उलझन टालनेका एकमात्र उपाय है।

"मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा अस्तित्व लक्षमें आना चाहिये।'

क्या करना वह कहते हैं। इन सबमें मैं एक ज्ञायक हूँ, ज्ञाता.....ज्ञाता.....ज्ञाता भगवान ज्ञायक हूँ, स्वतःसिद्ध स्वयं प्रभु सत्—नित्य रहनेवाला, अचिन्त्य परम पदार्थ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हूँ—ऐसा जो अपने अस्तित्वका स्वरूप उसे बराबर समझना। मैं अबद्धस्पृष्ट हूँ, मुक्त हूँ, ज्ञायक हूँ, चैतन्य हूँ, परमब्रह्मस्वरूप हूँ, शुद्ध हूँ, आनन्दकन्द हूँ, अभेद हूँ—ऐसे जो विकल्प उठें उनसे क्या साध्य है? वे विकल्प भी राग हैं, बन्धके कारण हैं। उन विकल्पोंको भी पार करके 'मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसे निज अस्तित्वभावसे अंतरमें परिणमित हो जाना। अहा! बेनके शब्द तो अति संक्षिप्त हैं, परन्तु उनमें मर्म बहुत है।

"ज्ञायकके अतिरिक्त अन्य सब पर है' ऐसा उसमें आ जाता है।'

ज्ञायकके अतिरिक्त अन्य सब—शरीर, वाणी, मन, स्त्री–पुत्र–परिवार तथा लक्ष्मी, मकान आदि भिन्न पदार्थ, तथा जीवकी पर्यायमें परके लक्षसे उत्पन्न होनेवाले पुण्य–पापरूप विभावभाव, अरे! व्यवहार-रत्नत्रयके विकल्प तक—पर हैं ऐसा ज्ञायकका सहज अस्तित्व समझमें आनेसे उसमें आ गया। दया–दान, पूजा–भक्ति तथा व्रत–तपकी बातें तो शुभराग और क्रियाकी हैं, वह कोई आत्माकी वस्तु नहीं है। आत्मा तो मात्र ज्ञायक ही है, अन्य सब पर है। 'मैं मात्र ज्ञायक हूँ, अन्य सब पर है' इसप्रकार अंतरमें जब बराबर समझमें आये तब जीवको सम्यग्दर्शन हो और भवका अन्त आये। ज्ञायकको समझनेका कार्य कर, नहीं तो भवका अंत नहीं आयगा। प्रभु! धर्मी उसे कहते हैं जिसे एक ज्ञायकभावकी रुचि हो; उसे पुण्य–पापके भाव अंतरमें नहीं रुचते; विभावभाव आते हैं, होते हैं, किन्तु रुचते नहीं हैं।

*

वचनामृत–३०२

ज्ञानीको संसारका कुछ नहीं चाहिये; वे संसारसे भयभीत हैं। वे संसारसे विमुख होकर मोक्षके मार्गपर चल रहे हैं। स्वभावमें सुभट हैं, अंतरसे निर्भय हैं, किसीसे डरते नहीं हैं। किसी उपसर्गका भय नहीं है। मुझमें किसीका प्रवेश नहीं है—ऐसे निर्भय हैं। विभावको तो काले नागकी भाँति छोड़ दिया है। ३०२.

'ज्ञानीको संसारका कुछ नहीं चाहिये; वे संसारसे भयभीत हैं।'

आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इसके अतिरिक्त ज्ञानीको—धर्मीको अन्य कुछ—शुभाशुभ राग, पुण्य–पाप और उसके फलरूप यह सब बाह्य सामग्री आदि—नहीं चाहिये, क्योंकि वे संसारसे अत्यन्त भयभीत हैं।

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी चक्रवर्तीको छ्यानवे हजार रानियाँ होती हैं, छह खण्डका राज्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साधनेके लिये जाते हैं, परन्तु अंतरंग रुचिमें उन्हें वह कुछ नहीं चाहिये। वास्तवमें तो वे छह खण्डको साधनेके लिये नहीं किन्तु अंतरमें निज अखण्ड ज्ञायक द्रव्यको साधनेके लिये निकले हैं। उन्हें रागकी रुचि नहीं है; चार गतियोंके अवतारोंसे वे डरते हैं। सम्यग्दृष्टिको परका भय नहीं होता, अंतरमें निर्भय और निःशंक हैं, तथापि भवभ्रमणसे भयभीत हैं। योगसारमें कहा है न! कि–यदि इच्छे निज मोक्ष तो, भवभयसे डर चित्त;' 'चहुँगतिके दुःखसे डरे, तो तज सब परभाव, कर शुद्धात्मा चिन्तवन, ले शिवसुखका लाभ।' 'भवभयसे भयभीत जो, योगीन्दु मुनिराज।' अरे! इस शरीरका अन्त होनेपर कौनसा अवतार मिलेगा? आँधीमें फँसा हुआ तिनका उड़कर कहाँ जाकर गिरेगा? वैसे ही मिथ्यात्व और राग–द्वेषके बघूलेमें घुमरियाँ खाता हुआ जीव किस गतिमें जा गिरेगा? अहा! ज्ञानीको संसारका कुछ नहीं चाहिये; मोह–राग–द्वेषके भावसे संसारमें परिभ्रमण होता है, उससे वह भयभीत है।

'वे संसारसे विमुख होकर मोक्षके मार्ग पर चल रहे हैं।'

ज्ञानीको अंतरमें पूर्णानन्दघन ज्ञायक भगवानकी दृष्टि, ज्ञान तथा अंशतः रमणता परिणमित हुई है, इसलिये वह मोक्षमार्गमें क्रमशः आगे बढ़ता जाता है; शुभाशुभ परिणामोंसे लेकर सारे संसारसे वह पराङ्मुख हो गया है; निज शुद्धात्माके सन्मुख तथा समस्त विभावोंसे और समस्त कर्म एवं कर्मफलसे विमुख हो गया है। भूमिकानुसार शुभभाव आता अवश्य है, परन्तु अंतरमें उसकी इच्छा–रुचि नहीं है। तथापि वह आये बिना नहीं रहता। सम्यग्दृष्टि ज्ञानीको भी, अंतरमें स्थिर नहीं रह सकता इसलिये, अशुभसे बचनेके लिये शुभभाव आता है, परन्तु वह उसे धर्म या धर्मका सच्चा साधन नहीं मानता। अशुभभावमें तीव्र कषाय होनेसे वह तो अधर्म है ही, किन्तु पूजा–भक्ति एवं व्रतादिका शुभभाव, जिसे लोग धर्म कहते हैं वह, रागरूप मन्दकषायसे युक्त होनेके कारण धर्म नहीं है अर्थात् परमार्थतः अधर्म है; ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे प्रगट होनेवाली जो निर्मलता—शुद्धभाव वह एक ही धर्म है।

'स्वभावमें सुभट हैं, अंतरसे निर्भय हैं, किसीके डरते नहीं हैं।'

धर्मी जीव स्वभावकी साधनामें शूरवीर हैं। अंतरमें भगवान ज्ञानानन्दस्वभावकी जो दृष्टि हुई है उसके बलसे स्वरूपलीनता साधनेमें पराक्रमी हैं। अहा! बड़ी सरल भाषामें अंतरकी वस्तु आ गई है।

ज्ञानी अंतरसे निर्भय है। मोह–राग–द्वेषजनित क्षणभंगुर संसारसे ज्ञानीको भयभीत कहा, परन्तु अंतरमें अपनी ज्ञानानन्दमय शाश्वत वस्तुका अडिग आलम्बन परिणमित हो जानेसे सदा निर्भय हैं, निःशंक हैं। धर्मी उसे कहते हैं जिसके अंतरमें एकमात्र आनन्दकन्द

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकस्वभावकी रुचि हो, पुण्य–पापके फलरूप प्राप्त भोगोपभोग—लक्ष्मी, स्त्री, राजपाट, कीर्ति आदि बाह्य वैभव किंचित् भी—नहीं रुचते; और जिसे वे सब रुचते हों उसे मिथ्यादृष्टि–अज्ञानी कहते हैं। लक्ष्मी आदि कोई भी बाह्यसामग्री आत्मा प्राप्त कर सकता है या उसका उपयोग कर सकता है वह बात हराम है; वे सब तो उनके अपने कालमें आते हैं और जाते हैं। अज्ञानीको अपने अविनाशी चैतन्यप्रभुकी प्रतीति नहीं है; ज्ञानीको उसकी प्रतीति होनेसे उसकी साधनामें सदा सुभट हैं।

ज्ञानी अंतरसे निर्भय हैं, किसीसे डरते नहीं हैं। जो अंतरमें चैतन्यरूप भगवान आत्माकी गोदमें बैठ गया उसे कोई भी बाह्य वस्तु 'मेरी है'—ऐसा भासित नहीं होता। रामचन्द्रजी आत्मज्ञानी धर्मात्मा थे; उनके स्फटिकके विशाल महल थे; परन्तु अंतरमें उन्हें प्रतीति थी कि यह बाह्य वस्तुएँ मेरी नहीं हैं; मेरे जो ज्ञानादि स्वभाव हैं वह मेरे हैं, मुझसे भिन्न हो वह कुछ भी मेरा नहीं है। ऐसी वस्तुस्वरूपकी प्रतीति होनेसे ज्ञानी निःशंक और निर्भय हैं, किसीसे भयभीत नहीं होते। प्रतिकूलताके पर्वत गिर पड़ें तब भी धर्मात्मा अपने स्वभावमें अडोल रहते हैं, शुद्ध चैतन्यकी निःशंकतामें निश्चल रहते हैं। निन्दाकी वर्षा होती हो तथापि अपने साधनामय मार्गसे च्युत नहीं होते, किसीसे डरते नहीं हैं।

'किसी उपसर्गका भय नहीं है।'

अचानक कोई प्रतिकूलता आ जाय, उपसर्ग आ जाय, वनमें कोई हिंसक पशु आ जाय, ध्यानमें लीन हों और कोई सर्प या बिच्छू आकर डंक मार दे, तब भी ज्ञानी–धर्मात्मा ध्यानसे च्युत नहीं होते, उन्हें किसी प्रकारका भय या कष्ट नहीं होता, किसी उपसर्ग या प्रतिकूलतासे भयभीत नहीं होते।

'मुझमें किसीका प्रवेश नहीं है—ऐसे निर्भय हैं।'

शरीर, वाणी और मन आदि जो बाह्य वस्तुएँ हैं उनमेंसे किसीका मुझमें प्रवेश नहीं है, इसलिये मैं अत्यन्त निर्भय हूँ—ऐसा ज्ञानी धर्मात्मा मानते हैं। शरीरकी दशा चाहे जैसी हो—छिद जाय, भिद जाय, सड़ जाय—तथापि परद्रव्यरूप परिग्रह मेरा नहीं है। सनत्कुमार चक्रवर्तीको दीक्षा लेनेके पश्चात् सातसौ वर्ष तक गलित कुष्ठरोग रहा, उँगलियाँ सब सड़ गई थीं, फिर भी वे ऐसा मानते थे कि उँगलियोंका सड़ जाना आदि किसी परद्रव्यका मेरे स्वभावमें प्रवेश नहीं है; मैं भी उनमें प्रविष्ट नहीं होता। मुझमें किसीका प्रवेश नहीं है—इस प्रकार ज्ञानी सदा निर्भय हैं।

'विभावको तो काले नागकी भाँति छोड़ दिया है।'

अहा! धर्मी किसे कहते हैं भाई! जिसके अंतरमें ज्ञानानन्द प्रभुके आश्रयसे रुचिका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमन हुआ है, जिसे जगतके किसी पदार्थका भय नहीं है, ऐसे ज्ञानीको जो वैभाविक परिणमन है उसे उसने काले नागकी भाँति छोड़ दिया है। श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानी सम्यग्दृष्टि थे, लाखोंके जवाहिरातका व्यापार था, परन्तु अंतरमें अस्थिरताके रागको देखकर उन्हें लगता था कि—हे काम! हे मान! हे सांसारिक उपाधि! हे उदय! हे शिथिलता! अब तुम रुक जाओ, मेरा पीछा छोड़ो! दृष्टिमेंसे तो विभावको छोड़ दिया है, परन्तु अभी अस्थिरता है। विभाव–शुभराग वह मेरा स्वरूप नहीं है; वह तो मेरी शान्ति, साधना और आनन्दधाराको हानिकारक है। जैसे कोई काले सर्पको देखकर भयभीत हो जाता है, वैसे ही ज्ञानी शुभाशुभ रागसे डरता है। विभाव मेरा स्वरूप नहीं है ऐसा ज्ञानी जानते हैं; तथापि रागको न छूटता जानकर, बीचमें वह भूमिकानुसार आये बिना नहीं रहता ऐसा जानकर उसके ज्ञाता रहते हैं। आसक्तिके कारण ज्ञानी कुछ बाह्यमें खड़े हैं, तथापि अभिप्रायमें विभावको काला सर्प देखते हैं। विभावोंके बीच अवस्थित होनेपर भी ज्ञानी उनसे भिन्न हैं, न्यारे हैं। *

वचनामृत–३०३

सम्यग्दृष्टिको अखण्ड तत्त्वका आश्रय है, अखण्ड परसे दृष्टि छूट जाये तो साधकपना ही न रहे। दृष्टि तो अंतरमें है। चारित्रमें अपूर्णता है। वह बाहर खड़ा दिखायी दे परन्तु दृष्टि तो स्वमें ही है। ३०३.

'सम्यग्दृष्टिको अखण्ड तत्त्वका आश्रय है, अखण्ड परसे दृष्टि छूट जाये तो साधकपना ही न रहे।'

धर्मकी पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन। जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ हो वह जीव सम्यग्दृष्टि है। उसको दृष्टिमें आश्रय तो पूर्ण आनन्दकन्द अखण्ड आत्माका है; निमित्तका, रागादि विभावका, अपूर्ण तथा पूर्ण पर्यायका अथवा गुणभेदका भी नहीं। यदि अखण्ड ज्ञायक ध्रुवतत्त्व परसे दृष्टि हट जाय और परका तथा पर्यायादिका आश्रय हो तो साधकपना ही न रहे। ऐसा है तथापि ज्ञानीको भूमिकानुसार पूजा–भक्ति, व्रत–तपादिके शुभभाव आते हैं, परन्तु उसकी दृष्टि शाश्वत ज्ञायक स्तंभ पर—द्रव्यस्वभाव पर—स्थिर होनेसे, हेयबुद्धिसे वर्तता हुआ वह अस्थिरताका राग उसे हानि नहीं पहुँचाता—उसका साधकपना नहीं मिटा सकता।

'दृष्टि तो अंतरमें है। चारित्रमें अपूर्णता है।'

पर्यायमें अस्थिरताके कारण भले ही अनेक प्रकारके विकल्प आयें, परन्तु ज्ञानीकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दृष्टि तो सदा अंतरमें ध्रुव नित्यानन्दकन्द अभेद ज्ञायक प्रभु पर लगी है। स्वरूपरमणतामें अभी अपूर्णता है, ज्ञानीको अशुभराग भी आ जाता है। राग करनेकी बुद्धि नहीं है, परन्तु भूमिका अभी निचली होनेके कारण भूमिकाके अनुकूल राग अभी हटता नहीं है। उसी एकके विकल्प बने रहते हों तो उससे ज्ञात होता है कि वह रागको छोड़ नहीं सकता। उस समय भी उसकी दृष्टि तो अंतरमें ज्ञायक स्वभाव पर ही है। उसे अभी चारित्रमें अपूर्णता है; दृष्टि होनेसे अंशतः स्थिर हुआ उतना ही चारित्र है, परन्तु पूर्ण चारित्र नहीं है।

'वह बाहर खड़ा दिखायी दे परन्तु दृष्टि तो स्वमें ही है।'

अहा! ऐसी बात मिलना कठिन है, अरे सुननेको भी नहीं मिलती; इसलिये व्रत–तपादि बाह्यक्रियासे कल्याण हो जायगा—ऐसा मानता है, परन्तु सत्य वस्तु तो यह है। धर्मी बाह्यमें—शुभरागमें तथा उसके आचरणमें—स्थित दिखायी दे, परन्तु उसकी दृष्टि अंतरमें चैतन्य ज्ञायक भगवानके ऊपरसे किंचित् नहीं हटती। अज्ञानी जीव राग नहीं करता ऐसा लगता हो, भोगकी सामग्रीका त्याग बाह्यमें दिखायी देता हो, तथापि उसके अंतरमें रागके साथ एकत्वबुद्धि वर्तती होनेसे वह मिथ्यादृष्टि तथा संसारी है। वह भले ही शारीरिक ब्रह्मचर्यका पालन करता हो, तथापि उसकी दृष्टि रागके ऊपर है कि—'यह मैं पालता हूँ, यह मैं करता हूँ'; उसकी दृष्टि स्वभावपर नहीं है। धर्मी जीव बाह्यमें शुभ रागके आचरणमें स्थित दिखायी दे, राग आता हो, परन्तु उसकी दृष्टि तो भीतर स्वोन्मुख ही है।

*

सब अपने जीवनमें एक शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिलक्षण मोक्षमार्गको अंगीकार करो। अनन्त दुःखोंसे मुक्त होनेका यही एक मार्ग है। अनंतकालसे समस्त साधक इसी एक शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिलक्षण मार्ग द्वारा निर्वाणको प्राप्त हुए हैं। समस्त साधकोंका साध्य केवलज्ञान है और आश्रय ज्ञानस्वभावी शुद्धात्मतत्त्व है, इसलिये चतुर्थ गुणस्थानसे ही साधकको बाह्य नयपक्षोंमें एकत्वरूप परिणमन नहीं होता।

'तू पुरुषार्थ कर। पुरुषार्थ तुझे ही करना है। तू अपने अपराधसे भटका है और अपने ही पुरुषार्थसे तिरना है।'—इस प्रकार गुरुदेवने जोरदार वाणीकी वर्षा की है। —*बहिनश्री चम्पाबेन।*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–११३

दिनांक ८-१०-७८

वचनामृत–३०४

भगवानकी प्रतिमा देखकर ऐसा लगे कि अहा! भगवान कैसे स्थिर हो गये हैं! कैसे समा गये हैं! चैतन्यका प्रतिबिम्ब है! तू ऐसा ही है। जैसे भगवान पवित्र हैं वैसा ही तू पवित्र है, निष्क्रिय है, निर्विकल्प है। चैतन्यके सामने सब कुछ पानी भरता है। ३०४.

'भगवानकी प्रतिमा देखकर ऐसा लगे कि अहा! भगवान कैसे स्थिर हो गये हैं! कैसे समा गये हैं! चैतन्यका प्रतिबिम्ब है! तू ऐसा ही है।'

जिन्होंने मोह–राग–द्वेषादि दोष तथा अपूर्णताका नाश करके पर्यायमें वीतरागता एवं सर्वज्ञतारूप पूर्ण स्वभावको प्रगट किया है ऐसे अरिहंत परमात्माकी वीतरागभाववाही प्रतिमाके दर्शन करनेसे भक्तका हृदय भक्तिभावसे उल्लसित हो जाता है और उसे ऐसा लगता है कि अहा! भगवान कैसे स्थिर हो गये हैं! कैसे पूर्ण ज्ञान एवं आनन्दभावरूप परिणमित हो गये हैं! पूर्णानन्दका नाथ ऐसा जो निज ज्ञायकस्वरूप उसमें कैसे समा गये हैं! पं. बनारसीदासजीने कहा है न!—

'जिनप्रतिमा जिनसारखी', 'सोहै जिनकी छबि सुविद्यमान जिनसी', 'कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी, सोई जिनप्रतिमा प्रवांनै जिन सारखी।'—जिनप्रतिमा साक्षात् जिनराजतुल्य है; जिनेन्द्रकी वीतरागभाववाही मूर्ति साक्षात् जिनेन्द्र समान शोभती है। जिसको भवभ्रमणका किनारा निकट आ गया है वही जिनप्रतिमाको अंतरसे जिनराज सदृश मानता है। जिनप्रतिमा निज चैतन्यका प्रतिबिम्ब है। जिनबिम्ब ऐसा कहता है कि तू भी ऐसा ही है। आत्मा स्वभावसे जो पूर्णानन्दकन्द चैतन्यका बिम्ब है वह शान्तरसदर्शी वीतराग भाववाही जिनप्रतिमाके दर्शन करनेसे, भक्तको ज्ञात होता है; इसलिये कहा है कि जिनप्रतिमा चैतन्यका प्रतिबिम्ब है। आत्मा ही जिनस्वरूप है, इसलिये कहा है–जिन सो ही है आतमा, अन्य होई सो कर्म; कर्म कटै सौ जिनवचन, तत्त्वज्ञानीकौ मर्म।' जिनसमान ही आत्माका स्वरूप है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिनप्रतिमाके दर्शन करनेसे भक्तका हृदय उल्लसित हो जाता है और उसे अंतरमें ऐसा लगता है कि—अहा! 'उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयनमें!'

अमिय भरी मूरति रची रे, उपमा न घटे कोय;
शान्त सुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय।
विमल जिन दीठां लोचन आज, मारां सीध्यां वांछित काज।
....विमल जिन०

वीतराग शान्तरसका मानो स्थिर हो गया पिण्ड हो ऐसा जिनप्रतिमाके दर्शन करने पर लगता है। वह ऐसा बतलाती है कि तू भी ऐसा ही है। कैसे बैठे यह बात? जिसका एक बीड़ी या जरासी तम्बाकूके बिना नहीं चलता हो ऐसा अपनेको पामर मान रखा हो उसे अपनी प्रभुताकी बात कैसे बैठेगी? भगवान तो कहते हैं कि—प्रभु! तेरी वर्तमान पर्यायमें जो रागादि दोष दिखायी देते हैं वे मूल वस्तुमें नहीं हैं।

'जैसे भगवान पवित्र हैं वैसा ही तू पवित्र है, निष्क्रिय है, निर्विकल्प है।'

साक्षात् जिनेन्द्र भगवान मोह–राग–द्वेषादि समस्त दोषरहित होनेके कारण जैसे पवित्र हैं, रागादि विभावकी क्रिया नहीं होनेसे निष्क्रिय हैं, किसी भी प्रकारका विकल्प नहीं होनेसे निर्विकल्प हैं, और उस वीतरागभावकी स्थापना होनेसे जिनबिम्ब भी जैसा पवित्र, निष्क्रिय, निर्विकल्प है, वैसा ही तू परमानन्दकन्द प्रभु पवित्र है, दया–दानादि एवं व्रत–तपादि शुभरागकी क्रियासे भी निष्क्रिय है, द्रव्य–गुण–पर्याय या गुण–गुणीके भेदविचार रहित अभेद ज्ञानानन्दका पिण्ड निर्विकल्प है। अहा! आत्माकी ऐसी प्रभुता कैसे बैठे? भाई! हित करना हो, जन्म–मरणके चक्रसे छूटना हो, तो यह बात समझकर बैठाना ही पड़ेगी।

'चैतन्यके सामने सब कुछ पानी भरता है।'

ज्ञान और आनन्दादि अनन्तानन्त गुणोंके महा रत्नाकर ऐसे चैतन्यप्रभुके अभेद वैभवके समक्ष सब कुछ पानी भरता है, अर्थात् चक्रवर्ती या इन्द्रके पुण्यजनित सुन्दर वैभव, शुभराग, पुण्यबंध, पर्याय एवं गुणभेदादि किसी गिनतीमें नहीं हैं, भगवान आत्माके समक्ष उनका कोई मूल्य नहीं है। बहिनने 'वचनामृत'के २१७ वें बोलमें कहा है न!—'द्रव्यमें उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य सब होनेपर भी कहीं द्रव्य और पर्याय समान कोटिके नहीं हैं; द्रव्यकी कोटि उच्च ही है, पर्यायकी कोटि निम्न ही है।'

अहा! इस स्वतःसिद्ध चैतन्य वस्तुका कर्ता कौन होगा? उसे आवरण, अशुद्धता या अपूर्णता कैसे होगी? एकसमयकी सावरण, अशुद्ध और अपूर्ण वर्तमान दशाके समीप ही निरावरण, शुद्ध और परिपूर्ण ऐसा ध्रुव ज्ञायकप्रभु पवित्र, निष्क्रिय एवं निर्विकल्परूपसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विराजमान है; उसके समक्ष दया–दानादिके शुभभाव, अरे! व्यवहाररत्नत्रयका प्रशस्त विकल्प —कि जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्मका बंध हो ऐसा उच्च प्रकारका शुभ विकल्प—वह सब पानी भरता है, उसकी कोई गिनती या मूल्य नहीं है। जिस भावसे बंध होता हो उसका अबंधस्वभावी चैतन्यप्रभुके निकट मूल्य क्या होगा?

अरेरे! किंचित् बाह्य अनुकूलता मिले उसमें जो तृप्त–तृप्त हो जाता है उसे यह समस्त शुभाशुभ विभाव पर्यायें, साधनामय निर्मल पर्यायें तथा एक समयकी पूर्ण दशा—जो कि सब वस्तुमें ऊपर ही ऊपर तैरते हैं, ध्रुवस्वभावमें प्रविष्ट नहीं होते—उसके उसपार अंतरमें अखण्ड ज्ञायक प्रभु विराजता है वह कैसे बैठे? अंतरमें अखण्ड, एक, सकल, निरावरण, अविनाशी, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय परमपारिणामिक–शुद्धभावमय जो परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ—वह बात कैसे बैठेगी? अपनेको अंतरका अभ्यास है नहीं, और वर्तमानमें वक्ताओंकी कथनशैली बिलकुल बदल गई है, शुभभाव तथा बाह्यक्रियाओंमें ही धर्म मनवा दिया है; वहाँ यह पर्यायकी किसी भी हलचलसे रहित निष्क्रिय चैतन्यप्रभुकी बात कैसे बैठेगी? चैतन्यप्रभुके आगे सब कुछ पानी भरता है, अन्य किसी वस्तुकी कोई गिनती या मूल्य नहीं है। अहा! बेनकी भाषा अति संक्षिप्त है किन्तु भाव अति गम्भीर हैं। भाषा तो पुद्गल है परन्तु वह वाच्यको समझनेमें निमित्त है। उसमें यह कहा है कि—त्रैकालिक पूर्णानन्द प्रभुके पास एकसमयकी दशाका कोई मूल्य नहीं है।

*

वचानमृत–३०५

तू अपनेको देख; जैसे तू है वैसा ही तू प्रगट होगा। तू महान देवाधिदेव है; उसकी प्रगटताके लिये उग्र पुरुषार्थ एवं सूक्ष्म उपयोग कर। ३०५.

'तू अपनेको देख; जैसा तू है वैसा ही तू प्रगट होगा।'

'यह शरीर है, यह राग है'—इस प्रकार दिखने योग्य परवस्तुकी ओर तेरी दृष्टि अनादिसे है, परन्तु उसका देखनेवाला स्वयं भगवान आत्मा क्या वस्तु है उसे जाननेकी कभी परवाह नहीं की। शरीर, वाणी, घट–पटादि कोई भी वस्तु जाननेमें आये वहाँ जाननेवाला ऐसा ज्ञान ही ऊर्ध्व रहकर जानता है, ज्ञान न हो तो ज्ञेयको जानेगा कौन? 'घट पट आदिक जानता इससे उनको मान; ज्ञाताको माने नहीं कहो ये कैसा ज्ञान?' जाननेवाला इसे जानता है, उसे जानता है, घटको जानता है, पटको जानता है, व्यापार–धंधेको जानता है, शास्त्रको जानता है—ऐसा कहना वह परके साथके सम्बन्धका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कथन होनेसे व्यवहार है; वहाँ ज्ञात होनेवालेको नहीं किन्तु ज्ञाताको देख। अंतरमें चैतन्य विज्ञानघन आत्मा विराजता है उसे देख।

अपनी वर्तमान पर्यायमें तू अनादिसे अज्ञानभावके कारण परको ही देखता है, अब अपनी ज्ञानदृष्टिको अन्तर्मुख करके तू सुखनिधि सत्को—अपनेको ज्ञायक प्रभुको—देख। 'अपने नयनके आलससे मैं देख सका न हरि को जरी। जो मोह–राग–द्वेषादि विभावभावोंको हरे–जीते, वीतरागता प्रगट करे ऐसा अपना आत्मा ही 'हरि' है, परन्तु देखनेके आलससे तू अपने परमनिधानको कभी दृष्टिगत नहीं कर सका।

परमनिधान प्रगट मुख आगे, जगत उल्लंघी जाय; जिनेश्वर।
ज्योति बिना देखो जगदीशकी, अंधाअंध चलाय; जिनेश्वर।
धर्म जिनेश्वर गाऊँ.....

बाह्य रुचि होनेसे परको देखनेमें रुक गया। शास्त्र पढ़कर जाना, बहिर्लक्षी ज्ञान किया, परन्तु अन्तरोन्मुख होकर ज्ञाताको नहीं जाना। अहा! ऐसी बाते हैं।

जहाँ वर्तमान दशा ऊपर–ऊपर ही तैरती है, भीतर ध्रुवस्वभावमें किंचित् प्रतिष्ठाको प्राप्त नहीं होती ऐसे निज त्रैकालिक ज्ञायकप्रभुको देख। 'भूयत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो!' जो जीव भूतार्थका—विभाव तथा भेदरहित निज ध्रुव शुद्ध ज्ञायक द्रव्यका—आश्रय करता है वह जीव निश्चयसे सम्यग्दृष्टि है। राग–द्वेष, पुण्य–पाप और समस्त विकल्पजाल—यह सब अशुद्धता मात्र पर्यायमें है, त्रैकालिक स्वभाव तो उस समस्त पर्याय विकार रहित शुद्ध विज्ञानघन है। उसे देख—उसका आश्रय कर।

जैसा तू है वैसा ही अंतरमें प्रगट हो जायगा। यह क्या कहा? कि तेरा स्वरूप पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण वीतरागता आदि अनन्त गुणसमृद्धिसे भरपूर है। तू रुचिको अन्तर्मुख करके उसे देख, तो तेरी पर्यायमें तू जैसा है वैसा ही प्रगट हो जायगा। अरेरे! जीवने अनादिकालीन परिभ्रमणमें कभी यह बात नहीं जानी–अपनेको कभी नहीं देखा; देखा होता तो परिभ्रमण नहीं रहता। भाई! भीतर कोई वस्तु है या नहीं? तत्त्व है न? वह तत्त्व पूर्ण विज्ञानघन–आनन्दघन है। तेरी जो पर्याय पर वस्तुको ज्ञेय बनाकर देखती है उसे अन्तर्मुख करके स्ववस्तुको—ज्ञायक द्रव्यको—देख। जिसमें अपवित्रताका, अपूर्णताका या पूर्णताके भेदका अंश भी नहीं है ऐसे परमपवित्र, परिपूर्ण, अभेद ज्ञायकतत्त्वको अंतरमें देख, तो तू पर्यायमें भी ऐसा ही प्रगट हो जायगा। अंतरमें जो शक्ति है उसकी पूर्ण व्यक्तता हो जायगी।

'तू महान देवाधिदेव है।'

भगवान आत्मा पूर्ण सच्चिदानन्द देवाधिदेव है। आत्मा वस्तु है न? जो वस्तु हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह स्वभावसे अशुद्ध नहीं होती, अपूर्ण नहीं होती, उसे आवरण नहीं होता; ज्ञायक वस्तु भी आनन्दादि अनन्त गुणमय अपनी प्रभुतासे परिपूर्ण तत्त्व है। प्रभु! तू उसे भूल गया है। यह शरीर तो मिट्टीका–धूलका पुतला है, वह आत्मा नहीं है अथवा आत्मामें नहीं है; तथा यह जो दया–दान, काम–क्रोधादिके विकल्प उठते हैं वह तो विकार है, वह कहीं आत्मा नहीं है; वह तो नहीं है परन्तु अल्पज्ञ पर्यायरूप भी आत्मा नहीं है। वह सब तो परके सम्बन्धसे पर्यायमें होनेवाला व्यवहार-अंश है, खण्ड–खण्ड भाग है। भीतर जो अखण्ड ज्ञायक देवाधिदेव विराजता है उसकी तुझे खबर नहीं है।

लैंडी पीपलका दाना रंगमें काला, आकारमें छोटा और स्वादमें थोड़ी चरपराहटयुक्त होनेपर भी उसमें चौसठपुटी चरपराहटकी—पूर्ण चरपराहटकी शक्ति सदा भरपूर है। इस दृष्टान्तसे, आत्मा भी आकारमें शरीर-प्रमाण तथा भावमें अल्पज्ञ होने पर भी उसमें परिपूर्ण सर्वज्ञस्वभाव, आनन्दस्वभाव भरा है। अहा! तू उसे एकबार देख तो सही! एकबार तो सिंहगर्जना कर कि 'वर्तमानमें ही मैं पूर्णानन्दकन्द, सर्वज्ञस्वभावसे परिपूर्ण तत्त्व हूँ।' भाई! तू महान देवाधिदेव है। देवोंके अधिपति जो इन्द्र हैं उनका भी तू देव है; इसलिये तू देवाधिदेव है। अहा! सत्रह वर्षकी उम्रमें एकबार पालेजमें रामलीला देखने गया था। वह देखकर मुझे अंतरमें वैराग्यकी धुन लग गई। उस वैराग्यकी धुनमें छह पदोंके एक काव्यकी रचना हो गई थी। उसमें प्रथम पंक्ति थी—'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव।' उस समय तो 'देवका देव' अर्थात् क्या–उसकी विशेष खबर नहीं थी; परन्तु 'मैं पूर्ण देवाधिदेव हूँ' ऐसे संस्कार अंतरसे प्रगट हुए थे। अरेरे! आत्मा स्वयं ज्ञायक देवाधिदेव है—ऐसी बात भी सम्प्रदायमें सुननेको नहीं मिलती। सारा सम्प्रदाय बाह्य क्रियाकाण्डमें तथा शुभभावमें उलझ गया है। मुझे तो छोटी उम्रमें भी अंतरसे ऐसी भनक आयी थी कि—आत्मा शिवरमणी (मुक्तसुन्दरी)के साथ केलि करनेवाला महान देवाधिदेव है।

'उसकी प्रगटताके लिये उग्र पुरुषार्थ एवं सूक्ष्म उपयोग कर।'

जिसके द्वारा मोक्षरमणी रमनेवाला ऐसा निज ज्ञायक देवाधिदेव पकड़में आये—प्रगट हो ऐसा तीक्ष्ण पुरुषार्थ और सूक्ष्म उपयोग प्रगट कर। परलक्षसे जो शुभाशुभ भाव होते हैं वे तो अत्यन्त स्थूल हैं, उनके द्वारा आत्मा पकड़में नहीं आता—समझमें नहीं आता। भगवान आत्माको जानने–अनुभवनेके लिये स्वसन्मुखताका उग्र पुरुषार्थ तथा सूक्ष्म उपयोग करना पड़ेगा। आत्मामें एक वीर्य नामका—पुरुषार्थ नामका—गुण है। स्वरूपकी रचना करना वह उसका कार्य है। पर्यायमें पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूपकी रचना–प्रगटता हो ऐसा तीव्र पुरुषार्थ कर। दया–दानादि विभावकी रचना हो वह तो नपुंसकता है। नपुंसकको जैसे संतान नहीं होती वैसे ही शुभभावरूप नपुंसकतासे धर्मरूपी प्रजा नहीं होती। भीतर पर्यायमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्धताकी रचना करे वही सच्चा पुरुषार्थ है और जो अन्तरोन्मुखता करे वही सूक्ष्म उपयोग है। देवाधिदेव ऐसे अपने चैतन्यप्रभुकी प्रगटताके लिये तू अन्तर्मुख होकर तीक्ष्ण पुरुषार्थ और सूक्ष्म उपयोग कर।

भगवान आत्मा, जिनकी संख्याका कोई अंत नहीं है ऐसे ज्ञान तथा आनन्दादि अनन्तानन्त गुणोंका महासागर है। उसका स्वरूप अति सूक्ष्म है, स्थूल परलक्षी इन्द्रिय-ज्ञानसे या शुभाशुभ भावोंसे लक्षगत हो ऐसा नहीं है। उसे लक्षगत करनेके लिये अंतरमें तीव्र लगन और सूक्ष्म उपयोग कर। यह बात समझनेमें कठिन लगती है, इसलिये लोग कहते हैं कि इसमें व्यवहार उड़ जाता है। अरे प्रभु! सुन तो सही! तू व्यवहार किसे कहता है? क्या राग और शरीरकी क्रिया व्यवहार है? राग और शरीरकी क्रिया वह कोई तेरा स्वरूप नहीं है, उनसे तेरे आत्माको धर्मका किंचित् लाभ नहीं है। जीवका जो उपयोग सूक्ष्म होकर उग्र पुरुषार्थ द्वारा निज ज्ञायकभावका आश्रय करे वही धर्म है। चैतन्यप्रकाशके नूरका पूर—प्रवाह ऐसा जो निज शुद्धात्मद्रव्य उसे जाननेके लिये प्रभु! उपयोग—ज्ञानका प्रयोग—सूक्ष्म चाहिये और उसका आश्रय करनेके लिये वीर्य—स्वसन्मुखताके उग्र पुरुषार्थकी आवश्यकता होगी। अहा! भगवानके घरकी ऐसी बातें हैं!

अरेरे! सारा जगत दया–दान और व्रत–तपादि व्यवहारके—विभावके रसमें डूबा है। प्रभु! वह विभावभाव आत्माका रस नहीं है। वह तो ठीक, परन्तु ज्ञानकी जो वर्तमान दशा मात्र परसन्मुख होकर शास्त्रादिको जाननेका कार्य करती है वह भी स्थूल है, उससे आत्मा लक्षगत नहीं होता। ज्ञानकी जो दशा स्वसन्मुख होकर स्वको–ज्ञायकको ग्रहण करनेका कार्य करे वह उपयोग सूक्ष्म है। उपयोगको सूक्ष्म करके आत्माका आश्रय करनेके लिये उग्र पुरुषार्थ कर।

ऐसा धर्म कहाँसे निकाला?

भाई! कहींसे निकाला नहीं है, वस्तुका स्वरूप ही अनादिसे इसीप्रकार है। वस्तुस्थितिको समझे बिना लोग धर्मके नामपर अपनी मति-कल्पनासे कुछ न कुछ विपरीत मान बैठे हैं; राग और बाहरी धमालमें धर्म समझ रहे हैं। शुभ राग तो बंधका कारण है और बाहरकी धमालमें जो शरीरादिकी क्रियाएँ हैं वह जड़की परिणति है। क्या आत्मा परकी—जड़की क्रिया कर सकता है?

यदि परका नहीं किया जा सकता हो तो आप उपदेश किसलिये देते हैं? मन्दिर क्यों बनवाते हैं?

भाई! उपदेश कौन देता है और कौन मन्दिर बनवाता है? उपदेश निकलता है वह तो वचनवर्गणाकी अवस्था है। भगवान आत्मा भाषावर्गणाका कर्ता नहीं है और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान आत्मामेंसे भाषा नहीं आती। जगतमें सर्वत्र रहे हुए भाषावर्गणाके पिण्ड जीवकी भाषापर्याप्तिका निमित्त पाकर स्वयमेव शब्दरूप परिणमित हो जाते हैं; उसीप्रकार पत्थर, ईंट और चूनेके रजकण स्वयमेव मन्दिररूपमें जम जाते हैं, उनका कर्ता आत्मा नहीं है। परका कर्तृत्व नहीं किन्तु मात्र ज्ञाता–द्रष्टापना ही आत्माका स्वरूप है। यहाँ बेन कहती हैं कि ऐसे आत्माको साधनेके लिये उग्र पुरुषार्थ तथा सूक्ष्म उपयोग कर। ऐसे साधनसे ही आत्मा प्रगट होता है। *

वचनामृत–३०६

रुचिका पोषण और तत्त्वका मंथन चैतन्यके साथ एकाकार हो जाय तो कार्य होता ही है। अनादिके अभ्याससे विभावमें ही प्रेम लगा है उसे छोड़। जिसे आत्मा रुचता है उसे दूसरा नहीं रुचता और उससे आत्मा गुप्त–अप्राप्य नहीं रहता। जागता जीव विद्यमान है वह कहाँ जायगा? अवश्य प्राप्त होगा ही। ३०६.

'रुचिका पोषण और तत्त्वका मंथन चैतन्यके साथ एकाकार हो जाय तो कार्य होता ही है।'

इस बोलमें 'जागते जीव'की बात आती है। वस्त्रमें जिस प्रकार ताना–बाना बुना जाता है उसीप्रकार पूर्ण आनन्दकन्द ज्ञायककी रुचिका पोषण और तत्त्वका गहरा मंथन अंतरमें चैतन्यके साथ बुना जाना चाहिये और तभी साधनाका—सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप मोक्षमार्गका कार्य होगा। लैंडी पीपलको चौंसठपुटी घोंटनेसे उसकी पर्यायमें जिसप्रकार पूर्ण चरपराहट प्रगट होती है, उसीप्रकार रुचिको अन्तर्मुख करके स्वरूपका मंथन करते–करते आत्माकी पर्यायमें पूर्ण स्वरूप प्रगट हो जाता है। कहीं दया-दान या व्रत-तप करते-करते स्वरूप प्रगट होता है अर्थात् लक्षगत होता है—ऐसा नहीं है; वह तो विकारी भाव है, उससे आत्माकी प्राप्ति कदापि नहीं होगी। ऐसी बातें लोगोंको कठिन लगती हैं; किन्तु भाई! यह तो जिसे अंतरमें आत्माकी प्रसिद्धि—आत्मख्याति, आत्मानुभूति—करना हो उसके लिये बात है।

रुचना अर्थात् अनुकूल लगना। जगतके लोग अनुकूलताके गीत गाते हैं न? स्नेही–स्वजन मिलें तब पूछते हैं कि—'यहाँ अनुकूल–अच्छा लगता है न? इस प्रकार भाई! भीतर जो आनन्दकन्द चैतन्य प्रभु विराजता है उसे अनुकूल रखनेके लिये तू अंतरमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जा, उसकी रुचि कर, उसे रुचिमें ले। 'मुझे यही रुचता है, दूसरा कुछ अच्छा नहीं लगता।' इस प्रकार रुचिका पोषण और तत्त्वका मंथन—'ज्ञायक, ज्ञायक, ज्ञायक'—ऐसा जो रटन—चैतन्यके साथ एकमेक हो जाय तो धर्मरूपी कार्य होगा ही।

'अनादिके अभ्याससे विभावमें ही प्रेम लगा है उसे छोड़।'

हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासनादि पापवृत्ति वह अशुभभाव हैं और दया–दान, व्रत–तप, पूजा–भक्ति आदि पुण्यवृत्ति वह शुभभाव है; वे दोनों प्रकारके भाव विभावभाव हैं। जीवको अनादिसे विभावका ही प्रेम है, इसलिये अंतरमें ज्ञायकस्वभावका प्रेम उससे कभी नहीं हुआ। उस विभावका प्रेम छोड़।

'जिसे आत्मा रुचता है उसे दूसरा नहीं रुचता और उससे आत्मा गुप्त–अप्राप्य नहीं रहता।'

अंतरमें जिसे एक पूर्णानन्दकन्द आत्माकी रुचि है उसे अन्य—शुभाशुभ भावरूप विभाव—नहीं रुचता। ज्ञानीको भी भूमिकानुसार राग आता है, किन्तु रुचिमें उसका प्रेम नहीं है, वह दुःखरूप लगता है। जिसकी रुचि ज्ञान और आनन्दकन्दस्वरूप निज ज्ञायक प्रभुमें है उसे विश्वकी अन्य कोई वस्तु रुचिकर नहीं लगती, उसे आत्मा गुप्त–अप्राप्य नहीं रहता, उसे आत्मा प्रगट हुए बिना नहीं रहता। बाह्य जानकारी अधिक हो तो आत्मा प्राप्य हो—ऐसा नहीं है। वीतराग जिनेश्वर प्रभुकी भक्ति तथा नामस्मरण वह भी विकल्प हैं–राग है। वह शुभराग भी जिसे नहीं रुचता और मात्र भगवान आत्माकी ही रुचि है उसे आत्मा गुप्त–अप्राप्य नहीं रहता, पर्यायमें प्रगट हुए बिना नहीं रहता। अहा! ऐसा वस्तुका स्वरूप है।

'जागता जीव विद्यमान है वह कहाँ जायगा? अवश्य प्राप्त होगा ही।'

अंतरमें जागता जीव—चैतन्यप्रकाशकी जगमग ज्योति, ध्रुव ज्ञायक पदार्थ—विद्यमान है, शाश्वत फल देनेवाला विराजमान है, वह कहाँ जायगा? त्रैकालिक प्रज्ञाब्रह्म ध्रुवज्ञायक वस्तु क्या रागमें आयगी? पर्यायमें आयगी? सदा विद्यमान ऐसे चैतन्यदेवको अंतरमें दृष्टिगत करे तो वह अवश्य प्राप्त होगा ही। उसकी प्राप्ति होनेपर जीवके जन्म–मरण मिट जाते हैं।

वीतराग जिनेन्द्र प्रभु सम्यग्दर्शनको धर्मकी प्रथम सीढ़ी कहते हैं। जागता जीव—ध्रुव ज्ञायक आत्मा—शरीर, वाणी और मनसे तो पर है, किन्तु भीतर जो दया–दान, व्रत–तप, पूजा–भक्ति आदिके शुभपरिणाम होते हैं उनसे भी पर है। ध्रुव ज्ञायक–जागता जीव–एकसमयकी पर्याय जितना भी नहीं है। जागते जीवको देखनेवाली तो ज्ञानकी वर्तमान पर्याय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरेरे! द्रव्य क्या? वर्तमान पर्याय किसे कहते हैं?—उसकी भी जिन्हें खबर नहीं है वे वीतरागके इस मार्गको किसे किस प्रकार समझ सकेंगे? त्रिलोकीनाथ श्री जिनेश्वरदेव कहते हैं कि भाई! अंतरमें जागृत आत्मा सदा ज्ञानज्योतिसे प्रकाशमान है, वह भी सोता नहीं है, उसे कभी निद्रा नहीं आती, उसके स्वभावमें कभी अशुद्धता, आवरण या अपूर्णता नहीं है। अहा! वीतराग मार्गको समझना वह कोई अलौकिक बात है। भाई! बाह्य क्रियाकाण्ड–दया पाली, व्रत धारण किये और भक्ति–पूजा की—वह कहीं धर्म या धर्मका साधन नहीं है। शुभराग तो विष है। विष पीते–पीते क्या अमृतकी डकार आयगी? लहसुन खाते-खाते क्या कभी कस्तूरीकी डकार आती है। वैसे ही क्या रागकी क्रिया करते–करते धर्म होता है? भगवान आत्मा शरीरसे तथा शरीरकी क्रियासे, आठ कर्मोंके रजकणोंसे बिलकुल पृथक् है; भीतर जो शुभाशुभ विकारी भाव हों वे भी विभाव हैं, वे कहीं आत्मा नहीं है और आत्मा भी उनमें नहीं है। समस्त विभावोंसे भिन्न ध्रुव ज्ञायकभाव—जागता जीव—सदा अंतरमें प्रत्यक्ष विराजता है। वहाँ दृष्टि कर न! भीतर दृष्टि देनेसे वह अवश्य हाथ आ जायगा। भगवान आत्मा हाथ आने पर तुझे सम्यग्दर्शन होगा।

जागता जीव विद्यमान है न? वह परम पारिणामिकभावसे रहा हुआ, ध्रौव्यस्वरूप, जागृत तत्त्व कहाँ जायगा? क्या वह शरीरमें जायगा? रागादि विभावमें जायगा? एकसमयकी पर्यायमें जायगा? कहाँ जायगा? परमात्माकी वाणीमें वस्तुको उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्त कहा है। 'जागता जीव', ज्ञायक जीव, ज्ञाता जीव, द्रष्टा जीव—वह ध्रौव्य है। ध्रुवभावसे विद्यमान ज्ञायक भगवान कहाँ जायगा? क्या वह दया–दानादि विकल्पोंमें आयगा? वह तो सनातन ध्रौव्यरूपसे सदा विद्यमान ही है। वहाँ दृष्टि दे तो वह अवश्य प्राप्त होगा ही।

भगवान आत्मा द्रव्य-अपेक्षासे भूतार्थस्वभावसे—त्रैकालिक ज्ञायकस्वरूपसे—ध्रौव्य है, और पर्याय-अपेक्षासे उत्पाद–व्ययस्वरूप है। 'जागता जीव' अर्थात् दृष्टिके विषयभूत भूतार्थ ज्ञायक आत्मा दया–दानादि विभावभावोंसे तो स्वरूपलक्षणसे भिन्न है ही, परन्तु उत्पाद–व्ययस्वरूप एक समयकी पर्याय जितना भी नहीं है। वह जागती ध्रुव ज्योति जायगी कहाँ? काहेमें समायगी? उस ध्रुव चैतन्यज्योति पर दृष्टि लगा तो तुझे अवश्य ध्रौव्यकी प्राप्ति होगी। जब जीव निज ध्रुव तत्त्व पर दृष्टि लगाता है, उसका आश्रय करता है, तब उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता ही है।

अरेरे! आजकल तो ऐसी गड़बड़ चलती है कि—दया–दान करो तो धर्म होगा; परन्तु वह तो सब रागकी क्रिया है, वृत्तिका उत्थान है। क्या रागभावसे वीतरागभावस्वरूप धर्म होगा? अभी तो प्रथम सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो, उसे प्राप्त करनेकी रीति और पद्धति क्या है,–उसीकी लोगोंको खबर नहीं है। ध्रुव चैतन्यज्योतिकी—जागते जीवकी—दृष्टि होनेके पश्चात् स्वरूपमें जो विशेष रमणता होती है वह चारित्र है। नग्नता आदि तो जड़की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्रिया है और पंचमहाव्रतादिके परिणाम तो शुभराग है, वह कहीं चारित्र नहीं है। वह जहाँ नियमसे सहजरूपसे (बिना हठके) होता है वहाँ 'जागते जीव'के आश्रयसे अंतरमें वर्तती विशेष शुद्धि सो चारित्र है।

ज्ञान आत्माका स्वभाव है। ज्ञानका स्वभाव स्व–परप्रकाशक है। अनादि परसन्मुख दृष्टिके कारण पर्यायमें, स्व–परप्रकाशक स्वभाव होने पर भी, ज्ञान स्वको नहीं प्रकाशता, मात्र परको—राग, पुण्य, पाप, स्त्री, पुत्रादि मात्र बाह्यको—प्रकाशता है। अपनेको भूलकर मात्र परको प्रकाशनेवाली ज्ञानकी पर्याय मिथ्या है। वह ज्ञानकी पर्याय जिसकी है उसके ध्रुवस्वभावको दृष्टिमें ले तब जीवको मोक्षमहलकी प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन होता है और तब उसे चतुर्थ गुणस्थान कहा जाता है। सम्यग्दर्शन किस प्रकार प्राप्त हो उसकी यह बात है। देव–शास्त्र–गुरुको मानें तब सम्यग्दर्शन होता है—यह सब बातें मिथ्या हैं। ऐसा तो इस जीवने अनंतबार किया है, वह कोई अपूर्व वस्तु नहीं है।

ज्ञानकी वर्तमान वर्तती पर्याय अनादिसे विमुख है; उसे जागती ज्योति—चैतन्य ध्रुवस्वभाव—के सन्मुख कर। ध्रौव्यकी ओर दृष्टि करे तो पर्यायमें 'प्राप्तकी प्राप्ति' हो, जागता जीव प्रगट अनुभवमें आये। ध्रौव्य कहीं पर्यायरूप नहीं होता, परन्तु ध्रौव्यका अवलम्बन लेनेसे ध्रौव्यका जो परिपूर्ण सामर्थ्य है वह ज्ञान और प्रतीतिरूप पर्यायमें लक्षगत हो जाता है। अरे! यह कैसा धर्म? भाई! यही सच्चा जैनधर्म है। दया पालना, व्रत करना, कन्दमूल नहीं खाना–यह सब शुभराग है। रागको जैनधर्म कैसे कहा जाय?

जागता जीव विद्यमान है—अर्थात् वज्रके बिम्बकी भाँति वह टंकोत्कीर्ण नित्य ध्रुव है—वह कहाँ जायगा? अरेरे! इस विद्यमान जागती ज्योतिका—ध्रुव चैतन्य प्रभुका—कभी विचार भी नहीं किया। ध्रुवरूपसे ज्ञायकप्रभु सदा प्राप्त है; पर्यायमें उसका लक्ष करनेसे 'प्राप्तकी प्राप्ति' अवश्य होगी। विदेहक्षेत्रमें त्रिलोकीनाथ श्री सीमंधर भगवान विराजते हैं। भरत क्षेत्रमें भगवानका विरह हुआ है, धर्मका सच्चा स्वरूप बतलानेवाले नहीं रहे इसलिये लोगोंने अपनी मतिकल्पनाके अनुसार धर्मको भिन्न–भिन्न स्वरूप देकर चलाया; वीतरागताका सच्चा मार्ग दुर्लभ हो गया। महाविदेह क्षेत्रमें त्रिलोकीनाथ श्री सीमंधर भगवान विराजते हैं, वहाँसे यह वाणी आयी है। *

भीतर शुद्धात्मामें ही सब भरा पड़ा है। तू प्रमाद छोड़कर वहाँ दृष्टि कर। उसके लिये अधिक ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है, रुचि पलट दे। गुरुदेवने ही शुद्धात्माका मार्ग बतलाया है। गुरुदेवका असीम उपकार है।

—बहिन श्री चम्पाबेन।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–११४

दि. ६-१०-७८

वचनामृत–३०७

तत्त्वका उपदेश असिधारा समान है; तदनुसार परिणमित होने पर मोह भाग जाता है। ३०७.

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा आनन्दनिधि ज्ञायकतत्त्व है, शरीर, वाणी, मन और कर्म आदि अजीव तत्त्व हैं तथा पुण्य–पापके भाव विभाव तत्त्व हैं, उसमें ज्ञानमूर्ति आत्मा शरीरादि बाह्य पदार्थोंसे तथा शुभाशुभ विभावभावोंसे भिन्न है—ऐसा जिनेन्द्र भगवानका जो उपदेश वह तलवारकी धार समान है। उस उपदेशको पचाना जगतको कठिन लगता है। श्री आनन्दघनजीने कहा है न! :—

धार तलवारकी सोहली, दोहली
चौदमा जिन तणी चरण सेवा;
धार पर नाचता देख बाजीगरा,
सेवना–धार पर रहे न देवा। धार०.....

तलवारकी धार पर नाचना सरल है, परन्तु श्री जिनेन्द्र भगवानके बतलाये हुए ज्ञायकतत्त्वके अनुसार अंतरपरिणमन करना बहुत कठिन है; उसके लिये गुरुगमसे तत्त्वको समझकर अंतरमें स्वसन्मुखताका अपूर्व तथा सातिशय पुरुषार्थ आवश्यक है।

चिदानन्दस्वरूप ज्ञायक आत्मा सनातन अविनाशी तत्त्व है; वह किसीसे नवीन उत्पन्न नहीं हुआ है और किसीके द्वारा नष्ट नहीं हो सकता। उत्पाद और विनाश देखनेमें आता है वह उसकी पर्याय–स्थिति–अवस्था–दशा है। 'उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्तं सत्।' सत्वस्वभावी आत्मा द्रव्य-अपेक्षासे ध्रुवतत्त्व है और पर्याय-अपेक्षासे परिणमनशील है। द्रव्य–पर्यायरूपसे अपने सहज अस्तित्वको धारण कर रखनेवाला आत्मा ज्ञान, आनन्द, श्रद्धा, वीर्यादि अनंत गुणसमृद्धिसे भरपूर 'भरा हुआ महान पदार्थ है, जिसे दृष्टिमें लेने पर तदनुसार परिणमनसे अनादि मोहपरिणतिका नाश हो जाता है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तत्त्वका उपदेश तलवारकी धार जैसा तीक्ष्ण है; तद्नुसार परिणमन करनेसे, ध्रुव ज्ञायक जागती ज्योतिका अनुसरण करनेसे मोह खड़ा नहीं रहता। जैसे किसी मनुष्यके हाथमें तीक्ष्ण तलवार होनेपर भी यदि वह मनुष्य शत्रुओं पर अति बलपूर्वक उसका प्रहार करे तभी वह शत्रु सम्बन्धी दुःखसे मुक्त होता है, अन्यथा नहीं; उसीप्रकार इस अनादि संसारमें महाभाग्यसे जिनेश्वरदेवके उपदेशरूप तीक्ष्ण तलवार प्राप्त कर लेने पर भी यदि जीव मोह–राग–द्वेषरूप शत्रुओं पर अति दृढ़तापूर्वक उसका प्रहार करता है तभी वह सर्व दुःखोंसे मुक्त होता है, अन्यथा नहीं। सर्व उद्यमसे मोहका नाश करनेके लिये तत्त्वानुसार—शुद्ध ज्ञायकभावके आश्रयरूपसे—परिणमनका पुरुषार्थ करना वही कर्तव्य है।

भूतार्थ ज्ञायकस्वभावका अनुसरण करके परिणमित होनेसे, दिशा बदलने पर दशा बदल जाती है–सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति होती है, रागकी एकता खड़ी नहीं रहती। स्वभावकी पूर्ण एकता होनेपर राग हट जाता है। मोहके नाशका यह उपाय है।

*

वचनामृत–३०८

द्रव्य–गुण–पर्यायमें सारे ब्रह्माण्डका तत्त्व आ जाता है। 'प्रत्येक द्रव्य अपने गुणोंमें रहकर स्वतंत्ररूपसे अपनी पर्यायरूप परिणमित होता है', 'पर्याय द्रव्यको पहुँचती है, द्रव्य पर्यायको पहुँचता है'—ऐसी–ऐसी सूक्ष्मताको यथार्थरूपसे लक्षमें लेने पर मोह कहाँ खड़ा रहेगा? ३०८.

'द्रव्य–गुण–पर्यायमें सारे ब्रह्माण्डका तत्त्व आ जाता है।'

क्या कहते हैं? कि—भगवान सर्वज्ञ परमात्माने इस विश्वमें छह प्रकारके द्रव्य देखे हैं। द्रव्य अर्थात् जीव, पुद्गलादि त्रैकालिक वस्तु; गुण अर्थात् वस्तुके आश्रयसे साथ रहनेवाली स्वशक्तियाँ, जैसे कि जीवमें ज्ञान, दर्शन, सुखादि; पर्याय अर्थात् वस्तुमें प्रतिक्षण होनेवाली नवीन–नवीन अवस्थाएँ, जैसे कि जीवकी मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, सम्यग्दर्शन, स्वरूपाचरणचारित्रादि दशाएँ। अरेरे! लोगोंको अभी द्रव्य क्या, गुण क्या, पर्याय क्या उसकी भी खबर नहीं है। यह तो जैनकी इकाईकी बातें हैं। उसमें समस्त चौदह ब्रह्माण्डका तत्त्व आ जाता है। आया कुछ समझमें?

जैसे सोनेकी जंजीरमें सोना—पूर्ण वस्तु—वह द्रव्य है, पीलापन, चिकनापन और भारीपन आदि उसके गुण हैं और कड़ा, कुंडल आदि जो नई–नई अवस्थाएँ होती हैं वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय है; उसी प्रकार सर्वज्ञ परमात्माने प्रत्यक्ष जानकर कहे हुए पदार्थ—अनन्त आत्माएँ, अनन्त पुद्गल, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय तथा एक सर्वव्यापी आकाश—वे द्रव्य हैं; उन छहों प्रकारके द्रव्योंमें अपनी-अपनी नित्य रहनेवाली शक्तियाँ वे गुण हैं, और प्रतिसमय होनेवाली नई-नई अवस्थाएँ—दशाएँ वह पर्याय हैं।

"'प्रत्येक द्रव्य अपने गुणोंमें रहकर स्वतंत्ररूपसे अपनी पर्यायरूप परिणमित होता है', 'पर्याय द्रव्यको पहुँचती है, द्रव्य पर्यायको पहुँचता है'—ऐसी-ऐसी सूक्ष्मताको यथार्थरूपसे लक्षमें लेनेपर मोह कहाँ खड़ा रहेगा?"

वीतराग सर्वज्ञ भगवानने प्रत्येक पदार्थको वस्तु अर्थात् द्रव्य कहा है। अपने-अपने गुण-पर्यायोंका वास होनेसे प्रत्येक पदार्थ वस्तु है, और अपने-अपने गुणोंमें रहकर प्रतिसमय द्रवण-परिणमन-करता होनेसे प्रत्येक पदार्थ द्रव्य है। जीव भी अपने ज्ञान, दर्शन, सुखादि तथा अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्वादि त्रैकालिक गुणोंमें रहकर स्वतंत्ररूपसे अपनी पर्यायसे परिणमित होता है इसलिये वह द्रव्य है। अहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। त्रिलोकीनाथ श्री सर्वज्ञपरमात्मा द्वारा कहा गया जो वस्तुस्वरूप वह लोगोंको सुननेके लिये नहीं मिलता, तब अंतरमें तो पहुँच ही कैसे सकेंगे?

क्या कहते हैं? कि—प्रत्येक पदार्थ अपने गुणोंमें रहकर स्वाधीनरूपसे अपने आप अपनी नई-नई दशाओंरूप परिणमता है। जिस प्रकार पुद्गलपरमाणु अपने स्पर्श, रस, गंध, वर्णादि गुणोंमें रहकर शरीर, वाणी आदि अपनी पर्यायोंरूपसे स्वयं परिणमता है, वैसे ही आत्मा भी अपने ज्ञान, दर्शन, सुखादि गुणोंमें रहकर स्वतंत्ररूपसे—परकी अपेक्षा रखे बिना—सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति आदि अपनी पर्यायोंरूपसे स्वयं परिणमता है। स्वानुभूति आदि पर्यायें उत्पन्न होती हुई निज आत्मद्रव्यको पहुँच जाती हैं—प्राप्त कर लेती हैं और निज आत्मद्रव्य परिणमता हुआ सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान एवं आनन्दादि उत्पन्न होती निज पर्यायोंको पहुँच जाता है—प्राप्त कर लेता है।

प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभावमें—सत्त्वमें, गुणोंमें, शक्तिमें—रहकर स्वाधीनरूपसे अपनी पर्यायको प्राप्त करता है; उस पर्यायको प्राप्त करनेके लिये, पहुँच जानेके लिये, निमित्त या परकी अपेक्षा नहीं है। जीव भी स्वतंत्ररूपसे अपनी संसाररूप या मोक्षरूप दशाको पहुँचता है, उसमें कर्म या नोकर्मकी-परकी अपेक्षा नहीं है।

जीव, पुद्गल आदि प्रत्येक पदार्थ 'सत्' होनेसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। इसमें (शरीरमें) अनन्त पुद्गलपरमाणु हैं। उसका प्रत्येक रजकण अपनी नई-नई पर्यायको पहुँचता है। वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादि अपने गुणोंमें रहकर रजकण जिस क्षण अपनी पूर्व पर्यायका व्यय करता है उसी क्षण वह उत्तर पर्यायका—नई अवस्थाका उत्पाद करता है और उसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्षण अपने गुणोंमें नित्य अवस्थानस्वरूप ध्रौव्यरूपसे रहता है; आत्मा उसे परिणमाये या हिलाये तो हिले—ऐसा नहीं है। अनंत पुद्गलपरमाणुओंका पिण्ड वह शरीर है; उस शरीरका परमाणु स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि अपने नित्य अवस्थायी गुणोंमें रहकर गति आदि अपनी अवस्थाको स्वतंत्ररूपसे पहुँचता है। वस्तुको, अपनी अवस्थाको पहुँचने—प्राप्त करनेके लिये अन्य किसी वस्तुकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है। अपनी पर्यायको पहुँचने—प्राप्त करनेके लिये जिसे अन्य किसी वस्तुकी अपेक्षा न हो उसे वस्तु कहा जाता है।

अहा! यह तो सिद्धान्तकी गहन बातें हैं। भाई! तत्त्वकी बातें तो आजकल छिप गई हैं। बिजलीकी चमककी भाँति यह जीवन चला जा रहा है, आयु क्षण–क्षण घटती जाती है। वह चमक कब पूरी हो जायगी उसकी तुझे कुछ खबर है? चमक छिपनेसे पूर्व यदि आत्माका कार्य नहीं किया—निज शुद्धात्माको सम्यक् प्रकारसे लक्षगत करके स्वानुभूति–आत्मसाधना प्रगट नहीं की—तो भयंकर दुःखमय चार गतियोंमें भटक मरेगा। वर्तमानमें तुझे महान दुर्लभ ऐसी यह मनुष्य पर्याय प्राप्त हुई है, बिजलीकी चमककी भाँति यह पूर्ण हो जायगी; फिर तू कहाँ जायगा और वहाँ तेरा क्या होगा? उसकी तुझे खबर नहीं है। इसलिये अब चेतकर शीघ्र अपना कल्याण कर ले।

जाननेरूप, देखनेरूप या संवेदनरूप पर्याय परिणमती हुई आत्मद्रव्यको पहुँचती है और आत्मद्रव्य उसका आधार, आश्रय होनेसे वह पर्यायोंको पहुँचता है। अंतरमें जहाँ ऐसा विचार, मंथन, मनन चले वहाँ—वस्तुस्वरूपकी सूक्ष्मताको सम्यक्रूपसे समझने पर, उसका यथार्थ भावभासन होने पर—मोह खड़ा नहीं रहता अर्थात् भ्रान्ति टल जाती है। जहाँ द्रव्यस्वभावका यथार्थरूपसे भास हुआ वहाँ भ्रान्ति कैसे खड़ी रहेगी? शरीर, वाणी आदि पर हैं, जड़ हैं, रख दे उन्हें एक ओर; उन्हें आत्मा नहीं पहुँचता। आत्मद्रव्य अपनी निर्मल पर्यायको पहुँचता है और निर्मल पर्याय अपने आत्मद्रव्यको पहुँचती है—ऐसी सूक्ष्मताको बराबर समझकर अपने ज्ञायक आत्मद्रव्यको लक्षगत करे तो मोह–भ्रान्ति अवश्यमेव दूर हो जाय। 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहि, सद्गुरु वैद्य सुजान; गुरु–आज्ञा सम पथ्य नहि औषध विचार–ध्यान।' पर्याय अपने द्रव्यको पहुँचे और द्रव्य अपनी पर्यायको पहुँचे—ऐसी वस्तुस्वरूपकी सूक्ष्मताको गुरुगमसे यथार्थतया लक्षमें ले, उसका विचार, मंथन, ध्यान चले वहाँ मोह खड़ा रह ही नहीं सकता।

सोनेकी जो 'जंजीर'रूप अवस्था है वह पर्याय है; वह अवस्था सुवर्णद्रव्यकी है, अन्य किसीकी नहीं है। 'जंजीर'रूप अवस्था सुवर्णद्रव्यको पहुँचती है और सुवर्णद्रव्य अपनी 'जंजीर'रूप अवस्थाको पहुँचता है—प्राप्त करता है। आत्मा भी अपनी स्वभाव–विभावरूप अवस्थाको पहुँचता है, शरीर, वाणी आदि अन्यको नहीं; तथा अपनी स्वभाव–विभावरूप अवस्था आत्मद्रव्यको पहुँचती है, शरीर, वाणी आदि अन्यको नहीं। अहा! यह वीतरागका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मार्ग तो अति गहन है। अनन्तकालसे अनन्त अवतार किये—कीड़ेके, कौएके, कुत्तेके, नरकके, मनुष्यके, निगोदके। भगवान कहते हैं कि—लहसुन और प्याजके एक राई जितने टुकड़ेमें असंख्य शरीर हैं। और उस एक-एक शरीरमें सिद्धराशिकी अपेक्षा अनन्तगुने निगोदके जीव हैं। वहाँ एक श्वास जितने समयमें जीव अठारह बार भव धारण करता है। ऐसे भव तूने अनन्तबार किये, उनकी तुझे खबर नहीं है भाई! ऐसे अनन्त भवका अन्त लानेके लिये जिसमें भव और भवका भाव नहीं है ऐसे निज ज्ञायकद्रव्यका लक्ष करके अन्तर्मुख परिणति कर।

जो ज्ञानकी—मोक्षमार्गकी पर्याय है वह ज्ञायक द्रव्यसे होती है और ज्ञानपर्याय ज्ञायकद्रव्यको पहुँचती है। इस प्रकार पर्याय द्रव्यको पहुँचे और द्रव्य पर्यायको पहुँचे—ऐसी परसे पृथक् ज्ञानधारा चले वहाँ मोह खड़ा नहीं रहता। पर द्रव्य और पर गुणोंके विचार छोड़ती हुई जो अंतर्मुख दशा हुई वह द्रव्यकी पर्याय है, उसे स्वतंत्ररूपसे द्रव्य ही पहुँचता है अन्य कोई नहीं। जहाँ ऐसी सूक्ष्मधारा प्रवाहित हो वहाँ मोह—मिथ्यात्वादि विभाव कैसे रह सकेंगे?

शरीर, वाणी, मन पर हैं, जड़ हैं, आत्माको उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। अरे! भीतर पर्यायमें जो विभाव उत्पन्न होते हैं वह भी ज्ञायक आत्माका स्वभाव नहीं है। 'पर्याय द्रव्यको पहुँचती है और द्रव्य पर्यायको पहुँचता है' ऐसे विकल्प रहित अंतरमें जो स्वसन्मुखताका विचार है वह बहुत सूक्ष्म है ऐसी—ऐसी सूक्ष्मताको यथार्थरूपसे समझने पर मोहका नाश हो जाता है। जीवने धारणा तो अनंतबार की है, परन्तु वस्तुस्वरूप उसके अनुभवमें कभी नहीं आया। अंतरमें वस्तुस्वरूपको यथार्थरूपसे लक्षमें लेना वह सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। वर्तमान पर्यायमें किंचित् राग है वह तो परके निमित्तसे तथा परके लक्षसे होता है। स्वके लक्षसे होनेवाली पर्यायका आश्रय जो ध्रुव ज्ञायक द्रव्य उसे पकड़नेका जहाँ उपयोग कार्य करे वहाँ मोह टिक नहीं सकता। अहा! अंतरंग मार्गकी बातें ही कुछ और हैं! सब कथन सादी भाषामें आ गया है।

*

वचनामृत—३०६

बकरियोंकी टोलीमें रहनेवाला पराक्रमी सिंहका बच्चा अपनेको बकरीका बच्चा मान ले, परन्तु सिंहको देखने पर और उसकी गर्जना सुनने पर 'मैं तो इस जैसा सिंह हूँ' ऐसा समझ जाता है और सिंहरूपसे पराक्रम प्रगट करता है, उसीप्रकार पर और विभावके बीच रहनेवाले इस जीवने अपनेको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर एवं विभावरूप मान लिया है। परन्तु जीवका मूल स्वरूप बतलानेवाली गुरुकी वाणी सुनने पर वह जाग उठता है–'मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसा समझ जाता है और ज्ञायकरूप परिणमित हो जाता है। ३०६.

सिंहको वनराज–वनका राजा कहा जाता है। सिंहका बच्चा सिंहकी गर्जना सुन सकता है, बकरियाँ नहीं सुन सकतीं। पराक्रमी सिंहका जो बच्चा जन्मते ही बकरियोंकी टोलीमें मिल गया हो और बकरियोंके साथ ही बड़ा हुआ हो वह अपनेको बकरीका बच्चा मान ले, परन्तु सिंहको देखने पर तथा उसकी गर्जना सुनकर 'मैं भी इस जैसा ही सिंह हूँ' ऐसा समझ जाता है और सिंह समान अपना पराक्रम प्रगट करता है। उस सिंहके बच्चेकी भाँति पर और विभावके बीच रहे हुए इस जीवने अपनेको पर और विभावरूप मान लिया है।

शरीर मैं हूँ, परिवार मेरा है—ऐसे अहंकार और ममकारके तथा पुण्य–पापके भावमें रहे हुए इस जीवने अपनेको अहंकार और ममकाररूप तथा रागादि विभावरूप मान लिया है। वह जीव वास्तवमें बकरियोंकी टोलीमें पले हुए सिंहके बच्चे जैसा है। जब आत्माका यथार्थ स्वरूप समझानेवाले स्वानुभवी, गुरुकी वाणी सुने कि–तू तो ज्ञानमूर्ति भगवान है, तीनलोकका नाथ है; प्रभु! विभावमें विद्यमान होनेपर भी आनन्दका नाथ है, वह रागादि विभाव तेरा स्वरूप नहीं है; दया–दान, पूजा–भक्ति तथा व्रत–तपादिके परिणाम तेरा सहज अस्तित्व नहीं है; तब वह वाणी सुनते ही सुपात्र शिष्य अंतरसे जाग उठता और 'मैं तो मात्र ज्ञायक ही हूँ, परका कर्ता, हर्ता नहीं हूँ; शुभाशुभ विभाव मेरा स्वभाव नहीं है'–ऐसा बराबर समझ जाता है और परिणतिको अन्तर्मुख करके ज्ञायकरूपसे परिणमित होता है।

'जीवका मूल स्वरूप बतलानेवाली गुरुकी वाणी'—उसमें देव–शास्त्र–गुरु तीनों आ गये। गुरु अर्थात् जिन्हें पर और विभावसे भिन्न निज ज्ञायकका अनुभव प्रगट हुआ है ऐसे साधक संत; वाणीमें 'आगम' आ गया और 'आगम' तो वीतरागकी वाणी है इसलिये देव भी आ गये। त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर देव, उनकी वाणी और साधक धर्मात्मा मुनिवरोंने जीवका मूल स्वरूप बतलाते हुए ऐसा कहा है कि—'प्रभु! तेरा स्वरूप परसे और शुभाशुभ विकारोंसे तथा अपूर्णतासे बिलकुल भिन्न, शुद्ध और परिपूर्ण है। तूने भ्रमसे पर और विभावके साथ एकत्व माना है, परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है; तू तो इन सबसे रहित केवल विज्ञानघन है'। ऐसी वीतरागकी सिंहगर्जना सुनकर शिष्य अंतरसे जाग उठता है—'मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञाता जागती ज्योति हूँ' ऐसे निज मूल स्वरूपको समझ जाता है और 'ज्ञायक सो मैं' ऐसा अनुभव करने पर ज्ञायकरूपसे परिणमित हो जाता है। ज्ञायकरूपसे परिणमन कहो या धर्म कहो—दोनों एक ही हैं। *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–११५

दिनांक १०-१०-७८

वचनामृत–३१०

चैतन्यलोक अद्‌भुत है। उसमें ऋद्धिकी न्यूनता नहीं है। रमणीयतासे भरे हुए इस चैतन्यलोकमेंसे बाहर आना नहीं सुहाता। ज्ञानकी ऐसी शक्ति है कि जीव एक ही समयमें इस निज ऋद्धिको तथा अन्य सबको जान ले। वह अपने क्षेत्रमें निवास करता हुआ जानता है; श्रम पड़े बिना, खेद हुए बिना जानता है। अंतरमें रहकर सब जान लेता है, बाहर झांकने नहीं जाना पड़ता। ३१०.

'चैतन्यलोक अद्‌भुत है।'

जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त रमणता, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य आदि अनन्त अनुपम गुण भरे हैं ऐसा यह चैतन्यलोक—ज्ञायक आत्मद्रव्य—वास्तवमें कोई अद्‌भुत वस्तु है। जिसके निकट इन्द्रका इन्द्रासन भी सड़े हुए तृणसमान तुच्छ है ऐसे अद्‌भुत महावैभवसे भरपूर यह चैतन्यलोक अंतरमें सदा विराजमान है। चैतन्यलोकमें गुण कितने? कि—आकाशके प्रदेशोंसे भी अनन्तगुने। अहा! अन्तर्मुख दृष्टि करके निज चैतन्यलोकके गुणवैभवको देख न! उसका अवलोकन कर न!

आकाशका क्षेत्र अनन्त है। उसमें लोककाशका क्षेत्र असंख्यात प्रदेश है। उसकी अपेक्षा अलोकाकाशका क्षेत्र अनन्तगुना बड़ा है। आकाशमें भी अवगाहनहेतुत्व, अमूर्तत्व आदि अनन्त गुण हैं; वे सब गुण आकाशस्वरूप हैं। पुद्‌गलके रजकणमें भी जो अनन्तगुण हैं, वे सब पुद्‌गलका लोक है। अहा! ऐसी सूक्ष्म बात सर्वज्ञके सिवा अन्यत्र कहाँ है? आकाशके जिस और जितने भागमें जीव, पुद्‌गलादि छह प्रकारके द्रव्य स्थित हैं उसे चौदह ब्रह्माण्ड अथवा लोक कहते हैं। उसके बाहर आकाशके खाली भागको अलोक कहते हैं। 'लोक्यन्ते षड् द्रव्याणि यत्र इति लोकः' जहाँ छह द्रव्योंका समुदाय दृष्टिगोचर होता है वह

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लोक है। उस लोकमें स्थित अनन्त द्रव्योंका ज्ञाता यह चैतन्यलोक अहा! कोई अद्भुत और अनुपम वस्तु है।

'उसमें ऋद्धिकी न्यूनता नहीं है।'

जिसकी सम्पदामें कोई कमी नहीं है, जिसके अनन्तानन्त गुण—अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त प्रभुता, अनन्त शान्ति, अनन्त वीर्य आदि शक्तियाँ—कभी न्यून नहीं होते, जिसके गुणोंकी संख्यामें या समृद्धिमें कभी अल्पता नहीं होती ऐसा यह भगवान चैतन्यलोक सचमुच कोई अद्भुत पदार्थ है।

'रमणीयतासे भरे हुए इस चैतन्यलोकमेंसे बाहर आना नहीं सुहाता।'

अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय प्रभुता आदि आश्चर्यकारी रमणीयतासे भरपूर इस चैतन्यलोकमेंसे बाहर आना ज्ञानीको बिलकुल अच्छा नहीं लगता। अंतरमें जाने पर स्वभावकी रमणीयतामेंसे बाहर आना ज्ञानीको रुचता नहीं है। जिसमें चैतन्यकी रमणीय सम्पदाओंकी कोई कमी नहीं है, न्यूनता नहीं है ऐसा चैतन्यचमत्कारस्वरूप भगवान आत्मा भीतर अनुभवगम्य होनेपर उसमेंसे बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता। 'भगवान आत्मा अद्भुत है', 'उसमें ऋद्धिकी कमी नहीं है' और 'अनन्त रमणीयतासे भरपूर है'—इन तीन बातोंमें तो बहुत भरा है भाई! सहज ज्ञानानन्दमय अनन्त रम्यतासे भरे हुए निज भगवान आत्माको अंतरमें जहाँ निहारता है वहाँ धर्मीको वहाँसे बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता।

हजारों सुन्दर वृक्षोंमें भरा हुआ पुष्पित और पल्लवित कोई उद्यान हो, उसके सुगंधित वातावरणमें कोई प्रविष्ट हुआ हो तो उसे उसमेंसे निकलनेका मन नहीं होता। उद्यानमें तो सैकड़ों या हजारों वृक्ष होते हैं, परन्तु यहाँ आत्मामें तो ज्ञानादि अनंत रमणीक गुणोंसे भरपूर नन्दनवन है। अहा! ऐसा भगवान आत्मा तूने कभी सुना नहीं है। उस अनन्त रमणीयतासे भरपूर चैतन्यलोकमेंसे बाहर निकलना ज्ञानीको रुचिकर नहीं लगता।

जिसे भेदज्ञान हुआ है, सम्यग्दर्शन हुआ है उसे आत्माकी अनन्त रमणीय चैतन्यसम्पदा प्राप्त हुई है, अनुभवमें आयी है। भीतर अधिक नहीं रह सकते इसलिये बाहर—विकल्पमें आना ही पड़ता है, परन्तु वह दुःखरूप लगता है। भले ही शुभराग हो वह भी दुःख है। ज्ञानीको बाह्यमें—विकल्पमें आना अच्छा नहीं लगता।

श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने कहा है कि विश्वका प्रत्येक पदार्थ द्रव्यत्व, पर्यायत्व आदि अपने अनन्त धर्मोंका चुम्बन करता–स्पर्शता होनेपर भी एक–दूसरेको चूमता–स्पर्शता नहीं है। रागादिभावोंकी उत्पत्ति होना ही निज स्वरूपकी हिंसा है। अहो! दिगम्बर संतोंकी यह वाणी! जगतकी परवाह किये बिना कहते हैं कि स्वरूपके आश्रयसे परिणमित वीतरागता ही केवल मुक्तिका मार्ग है, शुभराग नहीं; वह तो बंधका मार्ग है। अहा! सत्को संख्याकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आवश्यकता नहीं है। बहुत लोग मानें तो वह 'सत्'–ऐसा नहीं है। अरे! भले एक ही माननेवाला निकले तथापि 'सत्' तो त्रिकाल 'सत्' ही है। 'असत्'को माननेवाली तो सारी दुनिया है। सत्की महत्ता उसके माननेवालोंकी संख्यासे नहीं है परन्तु उसके स्वभावसे है। भगवान आत्माका स्वरूप जैसा है वैसा यथार्थरूपसे दृष्टिगत करके उसका पर और रागादि विभावसे भेदज्ञान करना वह कोई अलौकिक बात है। जिसे भेदज्ञान हुआ है, रुचि अंतरसे चैतन्यलोकमें—ज्ञायकमें—ढल गई है उसे अशुभ तथा शुभ दोनों प्रकारके राग विष समान लगते हैं, मात्र भगवान आत्माके आश्रयसे परिणमित ज्ञानधारा ही अमृतस्वरूप भासित होती है। इसप्रकार स्वभाव और विभावके बीचका भेदज्ञान ज्ञानीको सतत वर्तता है। भेदज्ञानके बलसे ज्ञानीको बाह्यमें—विकल्पमें आना अच्छा नहीं लगता।

'ज्ञानीकी ऐसी शक्ति है कि जीव एक ही समयमें इस निजऋद्धिको तथा अन्य सबको जान ले।'

अब, निज चैतन्यलोककी अनन्त समृद्धिको तथा जगतके समस्त भावोंको एक ही समयमें जान लेनेवाले ज्ञानकी जो अद्भुत शक्ति है उसकी महिमा बतलाते हैं। चैतन्यलोक अर्थात् ज्ञान, दर्शन, सुख आदि अनन्तगुणोंके समूहस्वरूप आत्मपदार्थ (उसमें ज्ञानका स्वभाव स्व–परप्रकाशक होनेसे उसकी शक्ति इतनी है कि वह एक समयमें अपनी अनन्त ऋद्धिको—चैतन्यलोकको तथा निज–निज अनन्त गुणोंके लोक–समूह ऐसे आकाश, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, असंख्य कालाणु, अनन्त पुद्गल, अनन्त जीव—सबको युगपत् जान ले। जगतके पदार्थ हैं इसलिये ज्ञान जानता है ऐसा नहीं है, परन्तु ज्ञानका सहज स्वभाव ही ऐसा कोई स्व–परप्रकाशक है। अहा! ऐसी अनन्त ऋद्धिसे भरपूर निज चैतन्यलोकका माहात्म्य नहीं आकर तुझे अन्यकी महिमा क्यों आती है? अपनी अनन्त–अनन्त चैतन्य-ऋद्धिको तथा अनन्त ऋद्धिवान जगतके समस्त द्रव्योंको एक समयमें जाननेकी शक्ति ज्ञानमें है, परन्तु परकी अनन्त ऋद्धिरूप होनेकी, उसका कुछ करने–भोगनेकी शक्ति नहीं है। ज्ञानका ऐसा सहज स्वभाव है कि स्वक्षेत्रमें रहकर, परमें गये बिना—परका स्पर्श किये बिना, सब कुछ जान लेता है।

भगवान आत्मामें ऐसा सामर्थ्य है कि भीतर विद्यमान अपनी अलब्धपूर्व अनन्त ऋद्धिको एक समयमें प्राप्त कर सकता है। अहा! ऐसे चैतन्यबलकी बात कैसे बैठे? शारीरिक बलकी बात बैठती है, परन्तु वह तो जड़ है। यह तो जिसके बलका कोई पार नहीं है, जिसकी चैतन्यऋद्धिके समक्ष अन्य जड़ ऋद्धिका कोई मूल्य नहीं है ऐसे इस निज भगवान आत्मामें एक ऐसी ज्ञानशक्ति है कि जिससे वह एक ही समयमें अपनी सर्व ऋद्धिको तथा अन्य सबको जान ले। करना किसीका नहीं और कोई वस्तु ज्ञानके बाहर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं रहती। अहा! ऐसा मार्ग है, वर्तमानमें तो वह गुप्त हो गया है।

जीवन चला जा रहा है भाई! यह जीवन समाप्त हो जायगा, फिर कहाँ जायगा प्रभु? तेरी सत्ता तो अनादि–अनन्त है। यदि स्वभावकी दृष्टि, रुचि और भेदज्ञान नहीं किया तो कहाँ डेरा डालेगा प्रभु! एक समयमें आनन्दकी जननी निज अनन्त ऋद्धिको तथा तीन काल और तीन लोकको जाननेकी शक्ति तुझमें विद्यमान है, परन्तु तुझे उसका विश्वास–भरोसा नहीं आता।

'वह अपने क्षेत्रमें निवास करता हुआ जानता है; श्रम पड़े बिना, खेद हुए बिना जानता है।'

ज्ञायक प्रभु अपने क्षेत्रमें—निज प्रदेशोंमें—रहकर स्व–परको—सबको जानता है। पर द्रव्यको छुए बिना, पर क्षेत्रमें गये बिना, पर काल या पर भावरूप हुए बिना अपने द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावमें रहकर भगवान आत्मा अपनी ज्ञानऋद्धि द्वारा स्व–पर—सबको जानता है। अहा! ऐसा वस्तुस्वरूप है; वह तुझे क्यों नहीं रुचता? इसके सिवा दूसरा सब क्यों तुझे अच्छा लगता है? रुचिमें आत्माका पोषण करनेके बदले परका और शुभाशुभ भावका पोषण क्यों करता है? भाई! शुभाशुभ विकार तो मर्यादित–सीमित भाव है, भगवान आत्मा तो अमर्यादित–असीम है। बेनके बोलमें आता है न?—विभावमें सीमा–मर्यादा है, इसलिये जीव वहाँसे लौट सकता है, और आत्मस्वभाव तो अमर्यादित है, वह दृष्टिगत होनेपर जीव वहाँसे लौटता नहीं है। अहा! स्वभावमें प्रविष्ट हुआ वह बाहर नहीं आता—ऐसी यहाँ बात है।

एक बात तो यह है कि भगवान आत्मा स्व–पर सबको जानता है। वह अपने क्षेत्रमें निवास करते हुए जानता है। बहुत जानता है इसलिये उसे श्रम पड़ता है—थकान लगती है—ऐसा नहीं है, जानना वह तो उसका स्वभाव है। विकल्प साथ हो तभी जानता है—ऐसा नहीं है, विकल्पके बिना स्वभावसे ही जानता है; बिना श्रमके, बिना बोझके सहजरूपसे जानता है। अरेरे! दुनिया परके बड़प्पनमें फँस गई है, प्रभु! तेरे चैतन्य बड़प्पनका कोई पार नहीं है। अपना बड़प्पन और ऋद्धि जिसे रुचती है उसे परकी बड़ाई, बाहरी सम्पदा अच्छी नहीं लगती।

अनन्त गुणोंके अभेद पिण्डस्वरूप भगवान आत्मामें एक ज्ञान नामका असाधारण गुण है; उसमें परिपूर्ण जाननेकी शक्ति विद्यमान है। लोकालोकको जाननेमें ज्ञान कहीं परको छूकर या परमें जाकर नहीं जानता; तथा विकल्प हो तो जाने ऐसा भी नहीं है। विकल्प तो खेद है। अहा! बिना खेदके परिपूर्ण जाने ऐसा भगवान आत्मा कहाँ और कौन है उसकी खबर भी न हो और धर्म हो जायगा? शुभरागमें तो धूल भी धर्म नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। भक्ति करे, यात्राएँ करें, व्रत–तप करे और दया पाले, परन्तु यह सब क्रियाएँ तो शुभरागकी हैं, इनमें धर्म कहाँसे आया? यह तो सब कर्मधारा है, ज्ञानधारा नहीं है। भाई! चैतन्यलोक तुझे आकर्षित नहीं करता और 'जगतकी वस्तुएँ अच्छी हैं' ऐसा मानकर तू उनके प्रति आकर्षित हो रहा है!—अरे प्रभु! यह तुझे क्या हो गया है?

ज्ञान अपने क्षेत्रमें निवास करता हुआ सबको जानता है; बिना किसी श्रमके, खेद हुये बिना, बोझ लगे बिना सहजरूपसे जानता है। परकी तथा अपनी ऋद्धिको अपने क्षेत्रमें रहकर जानता है, अपने क्षेत्रसे हटकर नहीं।

अहो! बेनकी वाणीमें यह बात निकल गई है। उनकी अंतरंग स्थिति कोई अलौकिक है। यह तो स्त्रीका मात्र देह आ गया है। उनकी अंतर्शक्तिका माप करना किसी साधारणका कार्य नहीं है—ऐसी अलौकिक शक्ति है। बेनको भीतर आत्माका अनुभव, सम्यग्दर्शन, असंख्य अरबों वर्षका जातिस्मरणज्ञान है। उन्हें नौ भवका ज्ञान है, फिर भी उनको कुछ नहीं लगता। अहा! वस्तु तो वस्तु है; लोग स्वीकार करें या न करें, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। सत्को संख्याकी आवश्यकता नहीं है कि अधिक माननेवाले मिलें तो वह 'सत्' रहे, और माननेवाले नहीं मिलें तो 'असत्' हो जाय। सत् तो त्रिकाल 'सत्' ही रहता है कदापि 'असत्' नहीं होता। दुनिया निन्दा करे, विरोध करे, निश्चयाभास कहे, चाहे जो कहे, उससे सत् कहीं असत् नहीं हो जाता।

आत्माका ऐसा स्वभाव है कि अपने क्षेत्रमें निवास करता हुआ अपनी और परकी ऋद्धिको जान लेता है। जैसे कोई घरमें खड़ा–खड़ा बाहरका सब कुछ देखे, वैसे ही अपने क्षेत्रमें खड़ा–खड़ा तीनकाल और तीनलोकको जान लेता है। अहा! उस ओरकी रुचि बिना सब निरर्थक है।

आत्मा अपने क्षेत्रमें निवास करता हुआ जानता है। परको जाननेके लिये उसे परके क्षेत्रमें नहीं जाना पड़ता। अहा! अलोक कितना विशाल है? अनन्त.....अनन्त.....अनन्त। किसी भी दिशामें लक्ष करो–आकाशकी श्रेणी चली जा रही है.....कहीं अंत नहीं। उसमें 'अन्तिम' कहाँ? उसका अन्त कहाँ? क्षेत्रका भी ऐसा स्वभाव तो इस क्षेत्रज्ञ भगवान आत्माकी ज्ञानशक्तिकी तो बात ही क्या? किंचित् विचार करे तो खबर पड़े कि भीतर यह 'सत्' क्या वस्तु है।

ज्ञायक आत्मा आनन्दके साथ रहे हुए ज्ञान द्वारा लोकालोकको बिना श्रमके, बिना खेदके, थकान आये बिना जानता है। वणिक लोग 'बाहुबलिका बल' और 'शालिभद्रकी ऋद्धि' माँगते हैं; यहाँ तो आत्मऋद्धिकी बात है। आत्माकी ऋद्धि ज्ञान और आनन्द है। भेदज्ञानमें भी अपूर्व आनन्द है, तब फिर सर्वज्ञका तो क्या कहना? ज्ञान अंतरमें रहकर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सब जान लेता है। बाहरका कुछ करना नहीं है, कुछ कर भी नहीं सकता, और एक भी वस्तु जाने बिना भी नहीं रहता।

'अंतरमें रहकर सब जान लेता है, बाहर झाँकने नहीं जाना पड़ता।'

भगवान आत्मा अपने ज्ञानमय स्वरूप-अस्तित्वमें रहकर सब जान लेता है, परपदार्थको या उसके भावोंको जाननेके लिये उसे बाहर नहीं जाना पड़ता। ज्ञानगुणमें शक्तिरूपसे इतनी शक्ति तो है ही, परन्तु वर्तमान श्रुतज्ञानकी पर्यायमें भी ऐसी व्यक्तरूप शक्ति है कि अपनेमें रहकर जाने, जाननेके लिये उसे बाहर नहीं जाना पड़ता। काल या छोटेसे छोटा अंश जो समय, उस एक समयमें ज्ञानपर्यायकी इतनी शक्ति है कि स्वयं अपनेमें रहकर अनन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गलादि सबको जान ले। अहा! यह तो धैर्यवानका काम है। धर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि बाहरसे—व्रत, तप, दान, पूजा, भक्ति या यात्रादिसे—कर डाले। उनमें तो धूल भी धर्म नहीं है।

प्रश्न:—व्रत करनेसे धर्म होता है ऐसा तो लोग कहते हैं?

उत्तर:—लोग तो क्या, उपदेशक भी कहते हैं। क्या करें बेचारे? ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंसे भरपूर भगवान आत्मामें अन्तर्मुख होनेका जो अलौकिक अद्भुत पुरुषार्थ वह तो उनको भासित नहीं होता, इसलिये व्रतादिके शुभ रागरूप—विभावरूप—साधारण पुरुषार्थमें सन्तुष्ट हो गये हैं। उन्हें वस्तुस्वरूपकी खबर नहीं है।

यह सम्पूर्ण 'वचनामृत' पुस्तक कोई अलौकिक वस्तु है; इसमें तो अध्यात्मतत्त्वके मोती भरे हैं। यह कोई साम्प्रदायिक वस्तु नहीं है। त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ भगवानने जो देखा है वही यह बात है। ज्ञायक आत्मा अपनेमें रहकर स्वकी ऋद्धिको तथा परको जानता है; परको जाननेके लिये परमें नहीं जाना पड़ता। परमाणुको जाननेसे उसमें ज्ञानको प्रवेश नहीं करना पड़ता; ज्ञान तो अपने स्व–पर प्रकाशक स्वभावमें रहकर परको स्पर्श किये बिना अपने सामर्थ्यसे ही सब जान लेता है। पहाड़के ऊपरसे दृष्टि डाले तो कितना अधिक दिखायी देता है? आँख स्वयं छोटी, तथापि उसमें कई मीलके—गाँव, खेत आदि दिखायी देते हैं। उन्हें देखनेके लिये आँखको वहाँ जाना पड़ता है? उसीप्रकार ज्ञान भी अपनेमें रहकर, बिना श्रमके, बिना खेदके, सब भावोंको जान लेता है। ज्ञान मात्र जाननेका कार्य करता है, परका कार्य नहीं करता। *

वचनामृत–३११

वस्तु तो अनादि–अनन्त है। जो पलटता नहीं है—बदलता नहीं है उस पर दृष्टि करे, उसका ध्यान करे, वह अपनी विभूतिका अनुभव करता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। बाह्यके अर्थात् विभावके आनन्द–सुखाभासके साथ, बाहरकी किसी वस्तुके साथ उसका मेल नहीं है। जो जानता है उसे अनुभवमें आता है। उसे किसीकी उपमा लागू नहीं होती। ३११.

'वस्तु तो अनादि–अनन्त है।'

भगवान आत्मा वस्तु है, क्योंकि 'गुणपर्यायौ वसतः यस्मिन् इति वस्तु।' जिसमें गुण और पर्यायें वास करते हैं वह वस्तु है। आत्मामें ज्ञान, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुण रहते हैं। वस्तुमें सत् अर्थात् अस्तित्व नामका गुण होनेसे वह अनादि–अनन्त है। वस्तुमें आदि और अन्त कैसा?

'जो पलटता नहीं है–बदलता नहीं है उस पर दृष्टि करे, उसका ध्यान करे, वह अपनी विभूतिका अनुभव करता है।'

पर्याय-अपेक्षासे वस्तु पलटती है वह अलग बात, किन्तु द्रव्य-अपेक्षासे तो वस्तु अनादि–अनन्त ध्रौव्ययुक्त है। ध्रौव्य क्या करेगा? बदलकर–पलटकर कहाँ जायगा? जागता जीव भीतर खड़ा है वह कहाँ जायगा? यथार्थ लक्ष करे तो अवश्य प्राप्त होगा। यहीं बात यहाँ कहना है। जागता जीव अर्थात् ध्रुव वस्तु पलटकर–बदलकर काहेमें मिल जायगी? अहा! जगतके भाग्य हैं कि यह सब (बेनकी वाणी) बाहर आ गया; आगे चलकर क्या होता है, उसका परिणाम देखो धीरे–धीरे।

वस्तु है वह तो द्रव्य-अपेक्षासे अनादि–अनन्त ध्रुव है। सदृशरूप नित्य रहती है, बदलती नहीं है; परन्तु प्रतिसमयकी पर्याय-अपेक्षासे वह बदलती है। पर्याय-अपेक्षासे आत्मा पलटता है और द्रव्य-अपेक्षासे नहीं पलटता। वस्तुका पलटता अंश और ध्रौव्यांश दोनों कथंचित् भिन्न हैं। वस्तुका जो द्रव्यांश है वह पर्यायांश नहीं है और जो पर्यायांश है वह द्रव्यांश नहीं है। वस्तुगत दोनों अंश अतद्भावलक्षणसे भिन्न हैं। न्यायशास्त्रमें—आप्त-मीमांसामें—आता है न?–धर्म और धर्मीका अविनाभाव–सम्बन्ध ही एक–दूसरेकी अपेक्षासे सिद्ध होता है, स्वरूप नहीं। धर्म–धर्मीका स्वरूप तो स्वतःसिद्ध है। धर्मके कारण धर्मी नहीं है और धर्मीके कारण धर्म नहीं है। परन्तु कर्ता–कर्म और ज्ञाप्य–ज्ञापकका व्यवहार परस्पर एक–दूसरेकी अपेक्षा बिना बन नहीं सकता। व्यवहारके लिये एक–दूसरेकी अपेक्षा आवश्यक है, स्वरूपके लिये नहीं। इस प्रकार ध्रौव्यांशमें पर्यायांश नहीं आता और पर्यायांशमें ध्रौव्यांश नहीं आता, इसलिये द्रव्य और पर्याय स्वरूपभेदसे भिन्न हैं। द्रव्य स्वरूप-अपेक्षासे कभी पलटता नहीं है—बदलता नहीं है। जो जीव उस पर दृष्टि करे, उसीमें लीनता करे, वह अपनी स्वरूप-सम्पदाका अनुभव करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्व-परको जाननेकी शक्तिवाला यह भगवान आत्मा परका कुछ कर नहीं सकता और परको पररूपसे जाने बिना रह भी नहीं सकता। अंतरस्वरूप समझमें नहीं आता इसलिये बहिर्लक्षी जीवोंको लगता है कि—ऐसा उपदेश? यह क्या कहते हैं? पूजा करो, भक्ति करो, व्रत करो, मुनिको आहार–जल दो—ऐसा तो कुछ कहते नहीं है! भाई! सच्चा साधु किसे कहा जाता है उसकी भी तुझे खबर नहीं है। भगवानका उपदेश तो हितका है; जिसे अंतरमें हित प्रगट नहीं हुआ है, जिसके अंतरमें आनन्दका नाथ उल्लसित नहीं हुआ उसको हित या साधुपना मानना वह मान्यता विपरीत और अहित है। विपरीत मान्यताका फल क्या है उसकी खबर है? निज ज्ञायक द्रव्यस्वभावके आश्रयसे परिणमित परिणतिमें अतीन्द्रिय आनन्दका प्रचुर वेदन आये उसका नाम साधुपना है; बाहरसे नग्नपना तथा अंतरमें पंचमहाव्रतके शुभपरिणाम वह परमार्थ मुनिपना नहीं है। अहा! ऐसी बातें हैं।

अनादिनिधन निज ज्ञायक ध्रुववस्तु जो कि अपने मूलस्वरूपसे कभी च्युत नहीं होती, बदलती नहीं है–पलटती नहीं है, उस पर जो जीव दृष्टि करे, प्रतीतिमें उसका आश्रय ले, उसे सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन अर्थात् धर्मका प्रारम्भ, मोक्षमहलकी प्रथम सीढ़ी। चारित्रकी बात तो अभी दूर है। ध्रौव्यका ध्यान करे, ध्रौव्यको उपादेय मानकर ध्यान करे, ध्रौव्यको ध्येय बनाकर ध्यान करे, ध्यानकी वर्तमान पर्यायमें ध्रौव्यको विषय बनाये–भीतर ध्रौव्यमें एकाग्रता करे वह अपनी विभूतिका अनुभव करता है, अतीन्द्रिय निजानन्दको प्राप्त करता है। अहा! ऐसी भाषा! लोग तो बाहरी हो हा, धामधूम और धमालमें धर्म मान बैठे हैं। अरेरे! जीवन उसी–उसीमें बीत जाता है। बिजलीकी चमककी भाँति यह दुर्लभ मनुष्य भव चला जायगा। पच्चीस, पचास या सौ वर्षकी आयु वह तो बिजलीकी चमककी भाँति क्षणभंगुर है; वह तो बातकी बातमें पूर्ण हो जायगी; फिर कहाँ डेरा डालेगा? भाई! इस मनुष्य भवमें यदि तूने अपनी वस्तुको–निजज्ञायकवस्तुको—नहीं जाना, नहीं पहिचाना तो हो चुका, खेल खत्म! खत्म अर्थात् कल्याणका अवसर चला जायगा और जन्म–मरणमें भटकनेका प्रवाह चलता रहेगा।

दृष्टि परसे और विभावसे हटे और निज ध्रुव स्वरूपमें निवास करे तो अपनी शाश्वत विभूतिका अनुभव प्रगट हो, द्रव्यस्वभावमें जो वैभव भरा है उसका अनुभव पर्यायमें आये। उसका नाम सम्यग्दर्शन है, बाकी सब बातें हैं।

'बाह्यके अर्थात् विभावके आनन्द–सुखाभासके साथ, बाहरकी किसी वस्तुके साथ उसका मेल नहीं है।'

विकल्पजनित बाहरी आनन्दमें जीव अपनी कल्पनासे सुख मानता है, वह तो इन्द्रियोंके सम्बन्धवाला काल्पनिक सुख है। क्या भोगोंमें सुख है? प्रतिष्ठा, पैसा या बँगलेमें सुख

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है? लोग तो बाह्य अनुकूलतामें 'हम तो सुखी हैं' ऐसा मानते हैं, किन्तु उस बाह्य सामग्रीमें क्या तेरा सुख है? अहा! अपनी विभूतिका अनुभवजनित जो अतीन्द्रिय आनन्द उसके समक्ष विभावके आनन्दका—सुखाभासका—कोई मूल्य नहीं है। विकारी आनन्द–सुखकी कल्पना या किसी भी बाह्यवस्तुके साथ स्वानुभवजनित अतीन्द्रिय आनन्दकी कोई तुलना नहीं हो सकती। अरबपति है, बड़ा राजा है, करोड़ोंकी आमदनीवाला है इसलिये वह सुखी है? नहीं, नहीं; जिन्हें आत्माकी दृष्टि प्रगट नहीं है, निज ध्रौव्यकी शरण प्राप्त नहीं हुई है, वे धूल भी सुखी नहीं है, सब भिखारी हैं, रंक हैं। जिसने आत्मऋद्धिका ध्यान करके स्वानुभूति प्रगट की है वही सच्चा सम्राट है–सुखी है। उसके अतीन्द्रियसुखकी जगतके सुखाभासके साथ कोई तुलना नहीं हो सकती, किसी भी बाहरी वस्तुके साथ उसका मेल नहीं है।

'जो जानता है उसे अनुभवमें आता है।'

सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजानन्द, सहजवीर्य आदि अनन्त गुण पक्षोंसे शोभायमान जो चैतन्यरत्न—भगवान ज्ञायक आत्मा—उसका जो पारखी—जवेरी हो, उसे जो जाने, ज्ञेय बनाए, उसको वह अनुभवमें आता है। द्रव्यपर्यायस्वरूप आत्मवस्तुमें द्रव्य और गुण तो ध्रुव हैं। जहाँ जीव त्रैकालिक ध्रुवस्वभावको ध्येय बनाकर जाने वहाँ उसकी ध्यानरूप निर्मल पर्याय वह अनुभव है। स्वानुभूतिस्वरूप उस निर्मल दशामें अतीन्द्रिय आनन्द, अकषाय शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, ईश्वरता इत्यादि समस्त गुणोंका निर्मल वेदन आता है। ऐसा अनुभव जिसे हो उसे धर्म प्रगट हुआ कहा जाता है। अन्य सब थोथा है। पं. बनारसीदासजीने कहा है न?—

अनुभव चिन्तामणि रतन, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोक्षको, अनुभव मोक्षस्वरूप॥

'उसे किसीकी उपमा लागू नहीं होती।'

अनुभवको किसीकी उपमा लागू नहीं होती। अनुभवको किसकी उपमा दी जा सकती है? ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणके स्वामीको—निज चैतन्य प्रभुको—अंतरमें ध्येय बनाकर जिसने उसे जाना उसको अपनी निर्मल पर्यायमें जो अतीन्द्रिय आनन्द आया उसे किसीकी उपमा लागू नहीं होती। घीका स्वाद कैसा? मीठा। वह मिठास कैसी? गुड़, शक्कर, आम या मालपुआ जैसी? अरे! घी जैसी जड़वस्तु, जो बचपनसे लेकर जीवनपर्यन्त खायी है, उसके स्वादका भी किसी अन्य वस्तुकी उपमा देकर वर्णन नहीं हो सकता, तब इस अतीन्द्रिय परमानन्दमय स्वानुभूतिकी तो बात ही क्या? उसे बाहरकी कोई उपमा लागू नहीं होती। जगतमें नोकरकी अपेक्षा सेठका, सेठकी अपेक्षा मंत्रीका और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मंत्रीकी अपेक्षा राजाका सुख अधिक है ऐसा उपमा देकर कथन किया जा सकता है; परन्तु यह स्वानुभवके सुखकी जाति ही सांसारिक सुखकी अपेक्षा भिन्न प्रकार की है। घीका स्वाद घी जैसा, उसीप्रकार स्वानुभवका आनन्द स्वानुभव जैसा उसे कोई बाह्य उपमा लागू नहीं होती। अहा! दो बोल अलौकिक आये हैं!

अन्तर शुद्धात्मामें ही सब कुछ भरा हुआ है। तू प्रमाद छोड़कर वहाँ दृष्टि कर। इसके लिये ज्यादा ज्ञानकी जरूरत नहीं, रुचि पलट दे। श्रुतका अधिक ज्ञान हो तो वह कुछ नुकसानकारक नहीं है, अन्दर निर्मलताका कारण बनता है। परन्तु यदि विशेष ज्ञान न हो और प्रयोजनभूत ज्ञान हो तो भी आत्माका कार्य तो हो सकता है। प्रयोजनभूत तत्त्व जो निज शुद्धात्मा उसको जाननेका प्रयत्न करना। अधिक शास्त्रज्ञान हो तो ठीक; किन्तु कसवाला तत्त्व तो एक शुद्धात्मा ही है; उसी शुद्धात्माको ग्रहण करना।

गुरुदेवने ही शुद्धात्माका मार्ग बताया है। गुरुदेवने सबको तैयार किया है। 'तू पुरुषार्थ कर। पुरुषार्थ तुझे ही करनेका है। तू तेरे अपराधसे भटका है और तेरे ही पुरुषार्थसे तिरनेका है—इस प्रकार गुरुदेवने जोरदार वाणी बरसाई है। गुरुदेवने पंचमकालमें भगवानका विरह भुलाया है। सब श्रेय गुरुदेवको ही है। सब गुरुदेवके चरणोंमें ही है, इस प्रकार सब गुरुकृपासे ही आगे बढ़ते हैं।

एक शुद्धात्मामें ही सब कुछ भरा है। जिसमें जो हो उसीमेंसे वह आयेगा। अनंतकालसे बाहरमें बहुत माथा पच्ची की, परन्तु कुछ भी हाथ नहीं आया। इसलिये अब तो तेरी दृष्टि—रुचि जो बाहरमें चिपकी हुई है वह अन्तरमें चिपक जाये ऐसा पुरुषार्थ अवश्य कर।

—बहिनश्री चंपाबेन.

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–११६

दिनांक ११-१०-७८

वचनामृत–३१२

अनादि कालसे एकत्वपरिणमनमें सब एकमेक हो रहा है, उसमेंसे 'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ' इस प्रकार भिन्न होना है। गोसलियाके दृष्टान्तकी भाँति जीव विभावमें मिल गया है। जिस प्रकार गोसलियाने अपनी कलाईमें बँधा हुआ डोरा देखकर अपनेको भिन्न पहिचान लिया, उसीप्रकार 'ज्ञानडोरा'की ओर यथार्थ लक्ष करके 'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ' इसप्रकार अपनेको भिन्न पहिचान लेना है। ३१२.

'अनादि कालसे एकत्वपरिणमनमें सब एकमेक हो रहा है, उसमेंसे 'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ' इस प्रकार भिन्न होना है।'

क्या कहते हैं? कि—शरीर, वाणी आदि परपदार्थ और पुण्य–पापके विभावभाव—यह सब मानो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मामें एकमेक हो गया हो ऐसा अनादिकालसे अज्ञानी मानता है। परन्तु भाई! शरीर, कर्मादि परपदार्थ तो जड़ हैं, अचेतन हैं और पुण्य–पापका विभावभाव तो परके लक्षसे अपनी पर्यायमें हुआ विकार है, पर तथा विकार चैतन्यस्वरूप आत्मामें एकमेक कैसे होंगे? एकमेक नहीं हैं, तथापि अज्ञानीको अनादिसे जो एकत्वकी मान्यता है वह उसका भ्रम है, मिथ्यात्व है। 'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ' इस प्रकार अपने ज्ञायकप्रभुको लक्षगत करके यह रागादि विभाव, शरीर और कर्म वह मैं नहीं हूँ, मेरी चैतन्यवस्तुमें वे नहीं हैं—ऐसा यथार्थ भेदज्ञान करना उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभभावसे मुझे लाभ–धर्म होगा, ऐसा माननेवालेने रागको अपनी वस्तु मानी, और 'शरीरकी क्रिया मैं कर सकता हूँ' ऐसा माननेवालेने शरीरको अपना माना। भाई! राग तो मलिनता है और शरीर तो जड़ है; उन दोनोंसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहित 'मैं तो मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ, केवल ज्ञाता हूँ' इसप्रकार अन्तर्मुख होकर श्रद्धा–ज्ञानकी परिणति करना सो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। अहा! इस प्रकार भेदज्ञान करना उसमें कितने धैर्यकी आवश्यकता है। भाई! वहाँ व्यर्थकी जल्दबाजी करनेसे या रागके वेगमें बहनेसे काम नहीं चलता। उपयोगको धीर करके, सूक्ष्म करके 'यह ज्ञातातत्त्व सो मैं हूँ और यह अजानतत्त्व—शरीरादि परपदार्थ तथा रागादि विभाव—वह मैं नहीं हूँ, मेरा स्वरूप नहीं है' इसप्रकार अन्तर्मुख पुरुषार्थ द्वारा निर्णय करके स्वानुभव करना उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

मिथ्यात्व हटकर स्वरूपका ज्ञान होने पर सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र तीनों एकसाथ प्रगट होते हैं। 'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ' ऐसी प्रतीति सो सम्यग्दर्शन, ऐसा ज्ञान सो सम्यग्ज्ञान और उसमें अंशतः रमणता सो स्वरूपाचरण नामक सम्यक्चारित्र। चतुर्थ गुणस्थानमें यह तीनों हैं। वहाँ स्वरूपमें अंशतः स्थिरता है न? इसलिये इस अपेक्षासे अंशतः स्वरूपाचरण चारित्र भी नहीं है।

अरेरे! जगतको मरकर कहाँ जाना है? अनादिकालसे भटकता हुआ अज्ञानी जीव बाह्यक्रियामें—तीर्थयात्रा, व्रत, उपवास, मन्दिर, भगवानकी भक्ति आदिमें—धर्म मान रहा है; परन्तु भाई! उसमें तो धूल भी धर्म नहीं है; अरे! धर्म तो नहीं है, किन्तु अंतरमें पुण्यका प्रेम—रागका राग—होनेसे उसमें पुण्यानुबंधी पुण्य भी नहीं है। अहा! कठिन बात है भाई! ज्ञान, दर्शन, शान्ति, सुख, स्वच्छत्व, प्रभुत्व आदि अनन्त गुणशक्तिसे परिपूर्ण अपने चैतन्यलोकका—निज ज्ञायक सत्त्वका—अंतरमें शरीरकी तथा रागकी क्रियासे भिन्न अनुभव करना उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है; बाकी सब व्यर्थ है। इसलिये यहाँ ऐसा कहा है कि पर और विभावके साथ अनादिसे जो एकत्व मान रखा है उसमेंसे 'मैं पर और विभाव रहित मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ' ऐसा श्रद्धा–ज्ञानमें पृथक् होना है।

'गोसलियाकी भाँति जीव विभावमें एकमेक हो गया है।'

श्रीमद् राजचन्द्रजीने एकबार दृष्टान्त दिया था—कच्छमें मांडवी शहरके पास 'कोडाई' नामका गाँव है। वहाँ एक विधवा स्त्रीके इकलौता पुत्र था। गोत्र गोसलिया, स्वभावसे अत्यन्त भोला, पढ़नेमें कमजोर। माँ को विचार आया कि—लड़का छोटीसी दुकान कर ले तो थोड़ा खाने–पीनेका खर्च निकले। माँने कुछ रुपये देकर कहा कि–जा मांडवी शहर जाकर दुकानके लिये माल खरीद ला। भोला लड़का बोला :–'गोसलिया' कहीं खो जाय तो? माँने कहा–तेरी कलाईमें यह काला डोरा बाँध देती हूँ; शहरकी भीड़में तुझे शंका हो तब यह डोरा बँधा हुआ देखकर समझना कि 'गोसलिया' खोया नहीं है।' योगानुयोगसे भीड़में डोरा टूट गया तब हाथ पर दृष्टि जानेसे लड़का रोता–रोता घर आया और माँसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहने लगा कि–'माँ! गोसलिया खो गया।' उस गोसलियाकी भाँति यह जीव भी शरीर, मन, वाणी आदि पर पदार्थोंमें तथा शुभाशुभ विभावोंमें एकमेक हो गया है—खो गया है। स्त्री, पुत्र, परिवार और पैसा आदि सब पर हैं तथा दया–दान और व्यापार–धंधेके भाव विभाव हैं; वह सब तेरे कहाँसे हो गये? परको तथा विभावोंको अपना मानना वह मिथ्यात्व, मूढ़ता और मूर्खता है। पर तो तुझसे बिलकुल भिन्न वस्तु है। उसके साथ तेरा क्या सम्बन्ध? अरे! पत्नीका आत्मा और उसका शरीर–एकक्षेत्रमें स्थित होनेपर भी उन दोनोंमें परस्पर अत्यन्त अभाव है, कुछ भी सम्बन्ध नहीं है; फिर तू तो उनसे कहीं दूर है, तेरा उसके साथ सम्बन्ध कहाँसे हो गया? वास्तवमें वह सब आत्मासे भिन्न है तथापि उसे अपना मानना नितान्त मूढ़ता है। भ्रान्तिके कारण, गोसलियाकी भाँति, जीव परमें तथा विभावमें एकमेक हो गया है।

वीतराग सर्वज्ञदेवने नव तत्त्व कहे हैं न? तो, नव तत्त्व भिन्न–भिन्न जैसे हैं वैसे जाने तब उन्हें माना कहा जायगा न? शरीर, वाणी, कर्म आदि अजीवतत्त्व तो आत्मासे स्पष्टरूपसे भिन्न हैं ही, परन्तु दया–दानादि पुण्यभाव और काम–क्रोधादि पापभाव, आस्रव तथा बंधभाव विभावभाव होनेसे शुद्ध ज्ञायकस्वरूप त्रैकालिक आत्मस्वभावसे भिन्न हैं।

यह लक्ष्मी आदि पर वस्तुएँ मेरी हैं और मैं रागादि विभावस्वरूप हूँ–ऐसा माननेवाला मूर्ख और मिथ्यादृष्टि है। दुनिया मिथ्यात्वका मदिरापान करके पागल हो रही है और एक पागल दूसरे पागलकी प्रशंसा करता है; किंचित् दानादिकी प्रवृत्ति देखकर सेठोंको दानवीरकी उपाधि दे देते हैं, किन्तु भाई! लक्ष्मी और दानके शुभरागसे भिन्न जिन्हें अंतरज्ञायकतत्त्वकी प्रतीति नहीं है, वे भले ही अरबपति हों या करोड़पति हों, संसारमें भटकनेवाले मूढ़ जीव हैं। अरे! यह दुर्लभ मनुष्यभव आत्मकार्य कर लेनेके लिये प्राप्त हुआ है। मनुष्यभवकी स्थिति अल्पकालकी है। बिजलीकी चमककी भाँति चला जायगा। इस मनुष्य भवके अवसरमें 'यह ज्ञानानन्दस्वभावी चैतन्यमूर्ति सो मैं हूँ और यह जो दया–दानादिके विकल्प हैं सो मैं नहीं हूँ'–ऐसा भेदज्ञान कर ले तो तेरा उद्धार होगा, नहीं तो भववनमें भटकते–भटकते तेरा दम निकल जायगा।

भवपरावर्तनमें जीवने नरक और निगोदके भव करके जो दुःख सहन किये हैं उनका वर्णन सुनकर रोना आ जाता है। भाई! ऐसे दुःख तूने अनन्तबार भोगे हैं, परन्तु वह सब तू भूल गया है। भूल गया इसलिये वे नहीं थे ऐसा कौन कहेगा? प्रभु! अब तो अवसर प्राप्त हुआ है इसलिये तू शीघ्र चेत जा कि पुण्य–पापके—दया–दानके या काम–क्रोधके भाव वह मेरी वस्तु नहीं है, वे तो विकारी भाव हैं, वे कहीं शुद्ध जीवतत्त्व नहीं हैं। अरेरे! जीवने अपने शुद्धस्वरूपको समझनेकी कभी परवाह नहीं की। अनादिकालसे मूढ़ वर्तता हुआ वह अनन्तबार मनुष्य हुआ, अनन्तबार नारकी हुआ, अनन्तबार पशु हुआ,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनन्तबार स्वर्गमें गया, एकेन्द्रियादि पर्यायोंमें अनन्तानन्तबार उत्पन्न हो आया। भाई! तुझे खबर नहीं है। जड़को आत्मा मानकर, मिथ्यात्वके कारण चार गतियोंमें परिभ्रमण करके अनन्तबार दुःख प्राप्त किया। गोसलियाकी भाँति तू अपनी ज्ञानस्वरूप वस्तुको भूल गया है; अब तो सुन! कि—रागादि विभावसे और शरीरादिकी क्रियासे निजज्ञायक भगवान आत्मा बिलकुल भिन्न है; स्वभाव कभी विभावमें एकमेक नहीं हुआ है।

"जिसप्रकार गोसलियाने अपनी कलाईमें बँधा हुआ डोरा देखकर अपनेको भिन्न पहिचान लिया, उसीप्रकार 'ज्ञानडोरा'की ओर यथार्थ लक्ष करके 'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ' इसप्रकार अपनेको भिन्न पहिचान लेना है।"

राग और तेरी ज्ञायकवस्तु भीतरसे भिन्न है—इसप्रकार भगवानने ज्ञानका डोरा बाँध दिया है। 'मैं ज्ञान हूँ' और 'यह राग है', आत्मस्वभावमें राग है ही नहीं—इसप्रकार अपनेको भिन्न पहिचान लेना है। किन्तु अरेरे! अपने व्यापार–धन्धेसे जीवको अवकाश कहाँ है? गोसलियाने अपनी कलाईमें बँधा हुआ डोरा देखकर अपनेको भिन्न जान लिया, उसीप्रकार 'ज्ञानडोरा' बाँधकर भगवानने कहा कि–तू तो मात्र ज्ञातातत्त्व है, शरीरको तथा रागको मात्र जानना—उसके ज्ञातारूपसे रहना—वह तेरा स्वभाव है। 'ज्ञानडोरा'की ओर यथार्थ लक्ष करके 'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ' ऐसा अपनेको भिन्न जान लेना है।

साधु नाम धारण करके 'यह पंचमहाव्रतकी क्रियाका राग मेरा है' ऐसा माने वह मिथ्यादृष्टि है। अंतरमें ज्ञान एवं आनन्दस्वभावसे परिपूर्ण भगवान चैतन्यलोकको, पर तथा रागसे भिन्न करके 'आत्मा मात्र चैतन्यस्वरूप है' ऐसा स्वनुभव करना उसका नाम सम्यग्दर्शन है। उसे धर्मका प्रथम सोपान कहा जाता है।

अनादिसे परपदार्थमें 'यह मेरा, यह मेरा' ऐसा मानकर मूढ़ जीव चौरासी लाख योनिके अवतारोंमें परिभ्रमण कर रहा है। उसे खबर नहीं है कि 'मैं क्या मान रहा हूँ, क्या कर रहा हूँ?' नरकके नारकी जीवके पास एक 'पाई' भी नहीं है, अनाजका एक दाना भी नहीं है; तथापि वहाँ भगवान आत्माकी प्रतीति हो सकती है। श्रेणिक राजा जो कि क्षायिक सम्यक्त्वी हैं, आगामी चौवीसीमें प्रथम पद्मनाभ तीर्थंकर होनेवाले हैं और वर्तमानमें चौरासी हजार वर्षकी स्थितिरूप प्रथम नरकमें हैं, उनको 'मैं तो मात्र आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ, यह नरकके संयोग मेरी वस्तु नहीं है' इसप्रकार शरीरादि तथा रागादि विभावसे अपनी भिन्नताका विवेक सतत वर्त रहा है। भगवान आत्मा केवल ज्ञाता–दृष्टा है, राग और शरीरसे भिन्न है—ऐसा जिसने अंतरमें स्वभावसन्मुख होकर जान लिया उसे तो, उदयवश किसी भी गतिमें जाय फिर भी, आत्मा आत्मामें ही है। अहा! आया कुछ समझमें?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरे! वीतरागका यह मार्ग महादुर्लभ है, यह सुननेको भी नहीं मिलता। बेचारे जीवोंको—अरे, करोड़पति और अरबपति भी बेचारे रंक और भिखारी हैं क्योंकि उन्हें अपनी स्वरूपलक्ष्मीकी खबर नहीं है और इस बाहरी जड़की लक्ष्मीको अपनी मान बैठे हैं—देहादि पर तथा शुभाशुभ विभावके साथ एकत्वपरिणमनके कारण सब एकमेक माना जा रहा है। प्रभु! यह जड़ वस्तु तेरी कहाँसे हो गई? तुझे पर और विभावके साथ एकत्वबुद्धिका सन्निपात हुआ है। भाई! सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेवकी वाणीमें कहा है तदनुसार 'ज्ञानडोरा'की ओर यथार्थ लक्ष करके 'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ'—ऐसे अपनेको भिन्न जान ले तो तेरा अविनाशी कल्याण होगा।

अहा! वस्तुस्वरूप ऐसा है। प्रभु! यह बातें कुछ कठिन हैं और दुनियासे भिन्न प्रकारकी हैं। महाविदेह क्षेत्रमें त्रिलोकीनाथ, सर्वज्ञवीतराग परमात्मा श्री सीमंधरादि बीस जिनेश्वर जो कि वर्तमानमें अरिहंतपद पर विराज रहे हैं—महावीर परमात्मा तो मोक्ष पधार गये—वे कहते हैं कि 'आत्मा मात्र ज्ञानस्वरूप है, चैतन्यरत्न, चैतन्यसूर्य, ज्ञातृत्वमयी जगमगाती ज्योति है, और शरीर, वाणी आदि जड़ हैं, पर हैं तथा रागादि विकल्प भी आत्माका स्वभाव नहीं है।'—इसप्रकार अपनेको परसे तथा विभावसे भिन्न जान लेने, अनुभव कर लेनेका नाम सम्यग्दर्शन है, जो कि धर्मकी पहली सीढ़ी है।

इसप्रकार आत्माको पहिचाने बिना खूब व्रत करे, उपवास करे, मन्दिर बनवाये, लाखोंका दान करे इसलिये धर्म हो जायगा—ऐसा तीनकाल और तीनलोकमें नहीं होता।

प्रश्न:—धर्मानुराग तो होता है न?

उत्तर:—धर्मानुराग अर्थात् क्या? 'धर्म' वीतराग परिणाम है, और 'धर्मका अनुराग' तो अशुद्ध राग है, विकार है। अनन्त कालमें इस जीवने धर्म कभी किया ही नहीं। भगवान आत्माको परकी क्रियासे और रागसे भिन्न पहिचान ले प्रभु! तभी तुझे अपनी वस्तुका अनुभव होगा और धर्मकी–कल्याणकी शुरुआत होगी। बाकी तो सब धूलधानी है। *

वचनामृत–३१३

मार्गमें चलते हुए यदि कोई सज्जन साथी हो तो मार्ग सरलतासे कटता है। पंच परमेष्ठी सर्वोत्कृष्ट साथी हैं। इस कालमें हमें गुरुदेव उत्तम साथी मिले हैं। साथी भले हो, परन्तु मार्ग पर चलकर ध्येय तक पहुँचना तो अपनेको ही है। ३१३.

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मार्गमें चलते हुए यदि कोई सज्जन साथी हो तो मार्ग सरलतासे कटता है।'

जैसे राहमें चलते हुए राहगीरको कोई सज्जन साथी, अच्छा मार्गदर्शक मिल जाय तो मार्ग सरलतासे, बिना किसी उलझनके कट जाता है, वैसे ही भीतर आत्माके मार्गमें—मोक्षमार्गमें—मार्गके जानकर अनुभवी सत् पुरुष मिल जायँ तो सत्यमार्गकी प्राप्ति और मोक्षमार्गमें गमन बड़ी सरलतासे होता है।

'पंच परमेष्ठी सर्वोत्कृष्ट साथी हैं।'

श्री अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—यह पाँच परमेष्ठी मोक्षमार्गमें सर्वोत्कृष्ट सज्जन साथी हैं। मार्ग प्राप्त करने तथा उसपर चलनेमें वे मात्र बाह्य निमित्त हैं, मार्गमें चलना तो जीवको स्वयं अपने उपादानसे—अपने पुरुषार्थसे—है। पंचपरमेष्ठीकी—भगवानकी—भक्तिका भाव वह भी शुभराग है। उस शुभरागसे मार्ग नहीं कटता, परन्तु उनकी बतलायी हुई जो स्वद्रव्यके आश्रयसे प्रगट होनेवाली वीतरागता, उस-स्वरूप परिणमनसे मार्गमें आगे बढ़ा जाता है। पंच परमेष्ठीमें अरिहंत और सिद्ध तो पूर्णानन्दका अनुभव कर रहे हैं और जैन आचार्य, उपाध्याय तथा साधु उन्हें कहते हैं कि जिनके अंतरमें स्वभावके आश्रयसे प्रचुर स्वसंवेदनज्ञान औप स्वरूपानन्द प्रगट हुए हों। ऐसे पंच परमेष्ठी भगवान जीवको अपनी अंतर्मुख साधनामें निमित्त हैं, इसलिये वे मोक्षमार्गमें सर्वोत्कृष्ट साथी हैं।

'इस कालमें हमें गुरुदेव उत्तम साथी मिले हैं।'

—ऐसा कहकर बेनने अपनी विनय व्यक्त ही है।

'साथी भले हो, परन्तु मार्ग पर चलकर ध्येय तक पहुँचना तो अपनेको ही है।'

पंच परमेष्ठी हों या गुरु हों, कोई इस जीवको ध्येयकी ओर—साध्यकी ओर—चला नहीं देता। उत्तम साथी हो परन्तु मार्गपर चलना तो अपनेको ही है न? ऐसा नहीं है कि साथी स्वयं चले और इसे भी चला दे।

अनादि कालसे दुःखी, अज्ञानी और मूढ़ ऐसे इस जीवको, इसकी मूढ़ता क्या है वह भगवान बतलाते हैं। भाई! तू मूढ़ताके कारण उलझ गया है। अपनी ज्ञानानन्दस्वरूप वस्तुको अपनी नहीं मानना और जो वस्तु अपनी नहीं है ऐसे शरीरादि परपदार्थोंको अपना मानना वह नितान्त मूर्खता है। उस मूर्खताको—मूढ़ताको हटाना हो तो एकबार पंच परमेष्ठीको साथमें ले। अंतरमें चैतन्यका साथ ले और बाह्यमें वीतराग देव—शास्त्र—गुरुकी संगत कर तो अपनी ध्येय तक—साध्य तक—सरलतासे पहुँच जायगा। देव—शास्त्र—गुरु तो बाह्य निमित्त हैं; मार्गमें चलकर ध्येय तक—साध्य तक पहुँचना तो अपनेको अपने—स्वभावसन्मुखताके—पुरुषार्थसे ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ध्यानका ध्येय, ध्यानका आलम्बन तो वर्तमान ज्ञानकी पर्यायमें त्रैकालिक ध्रुव आत्मा है। पंच परमेष्ठी भगवान भी इस आत्माका परमार्थ ध्येय नहीं है। निज पूर्णानन्द प्रभु, द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव, ज्ञायकभाव वह एक ही धर्मीका ध्येय है। किसी भी प्रकारकी पर्याय या गुणभेद धर्मीका ध्येय–आलम्बन नहीं है, ध्येय तो मात्र एक त्रैकालिक परमभाव है। अरे! यह कैसा उपदेश? इसमें दया पालनेकी, व्रत धारण करनेकी, उपवास करनेकी बात तो कहीं आती ही नहीं है! भाई! किसकी दया? और दयाका अर्थ क्या? परकी दयाका भाव तो शुभराग है, और शुभरागसे भी आत्माकी वीतराग शान्ति लुटती है। अहा! ज्ञानी और अज्ञानीकी मान्यतामें उदय–अस्त जितना अन्तर है। भाई! दयाका अर्थ ही कुछ और है! 'मैं तो परिपूर्ण ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ'–इसप्रकार निज आत्माको ध्येय बनाकर उसकी श्रद्धा, ज्ञान और अनुभूति करना उसका नाम अपनेको मिथ्यात्व और रागरूप भावमरणसे बचाना अर्थात् स्वदया है। जैसा अपना स्वरूप है वैसा दृष्टिमें लेनेका नाम स्वदया है।

प्रश्न:—तो हमें करना क्या?

उत्तर:—आत्मकार्य करना। दस हजार वेतन लेनेवाला कोई बड़ा वकील ऐसा माने कि यह दलीलकी—भाषाकी—क्रिया मेरी है, कोई डॉक्टर ऐसा माने कि रोगीको मैं अच्छा करता हूँ—वे सब मूढ़ हैं, उन्हें खबर नहीं है कि परका तथा विभावका अकर्ता ऐसा ज्ञायक आत्मा क्या वस्तु है। सन्निपातका रोगी हँसता हो तो क्या वह सुखी है?–उसीप्रकार कोई अज्ञानी स्त्री–बच्चे या दस–बीस लाखकी कमाईसे संतोष मानता हो तो वह सन्निपातमें पड़े हुए रोगीकी भाँति पागल है, दुःखी है।

यहाँ तो ऐसा कहना है कि–मार्गमें चलते हुए किसी अच्छे साथीका संग मिल गया हो, परन्तु अन्तर्मुख पुरुषार्थ द्वारा चलकर पूर्ण ध्येय तक पहुँचना तो अपनेको है न! अहा! जिनेश्वर भगवानकी वाणीमें—दिव्यध्वनिमें—जो बात आयी है वही यह है। भाई! यह बात दुनियासे बिलकुल भिन्न है। इस बातका दुनियाके साथ कोई मेल हो ऐसा नहीं है।

*

पावन–मधुर–अद्भुत अहो! गुरु–वदनसे अमृत झरा,
पाया श्रवण सद्भाग्यसे नितप्रति अहो! चिद्रस भरा।
गुरुदेव तारणहारसे आत्मार्थि भवसागर तरे,
गुणमूर्ति करुणावन्तकी स्मृति हृदयमें भर रहे।

—बहिन श्री चम्पाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–११७

दिनांक १२-१०-७८

वचनामृत–३१४

खण्ड–खण्डरूप ज्ञानका उपयोग भी परवशता है। परवश सो दुःखी और स्ववश सो सुखी है। शुद्ध शाश्वत चैतन्यतत्त्वके आश्रयरूप स्ववशतासे शाश्वत सुख प्रगट होता है। ३१४.

'खण्ड–खण्डरूप ज्ञानका उपयोग भी परवशता है।'

तीनलोकके नाथ श्री सर्वज्ञ परमात्माकी वाणीमें ऐसा आया है कि–'शरीर मेरा' ऐसी जो भ्रान्ति वह तो परवशता है ही, परन्तु 'राग मेरा, खण्ड–खण्डरूप ज्ञान सो मैं' वह भी आत्माकी पर्यायमें परवशता है, दुःख है। आत्मा स्वभावसे अखण्ड ज्ञानमूर्ति है; परन्तु उसकी वर्तमान दशामें खण्ड–खण्ड ज्ञान––भावेन्द्रिय––है न? भावेन्द्रियका––खण्ड–खण्ड ज्ञानका––स्वभाव क्रमशः जाननेका है; विषयोंका अवलम्बन लेकर जाननेका स्वभाव होनेसे वह परवश है। अहा! शरीर, वाणी आदि परपदार्थ तो कहीं रह गये, रागादि विभाव भी एक ओर रह गये, परन्तु एक–एक इन्द्रिय द्वारा एक–एक विषयको जाननेवाला जो परलक्षी खण्ड–खण्ड ज्ञान वह भी परवशता है, स्ववशता–स्वाधीनता नहीं है।

भगवान आत्मा तो अखण्ड शुद्ध चैतन्य विज्ञानघन है; उसमें जो दया, दान, व्रत, भक्तिके परिणाम होते हैं वह तो राग है, दुःख है, परन्तु भावेन्द्रिय द्वारा जो खण्ड–खण्ड ज्ञान होता है वह भी पराधीनता और दुःख है। अहा! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धाका शुभराग, महाव्रतका या शास्त्रस्वाध्यायका राग–विकल्प वह परवशता है, दुःख है; वह कहीं आत्माका सच्चा स्वरूप नहीं है। तदुपरान्त आत्मामें जो भावेन्द्रिय–ज्ञानका विकास, एक समयकी पर्यायमें विषयको जानते हुए जो खण्ड–खण्डरूप ज्ञानका उपयोग, वह भी परवशपना है, आत्माका स्वरूप नहीं है।

'परवश सो दुःखी और स्ववश सो सुखी है।'

भगवान आत्मा अखण्ड ज्ञानमूर्ति चैतन्यप्रभु है, उसकी दृष्टि नहीं है और वर्तमान

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्यायमें जो खण्ड–खण्डरूप ज्ञान है, भावेन्द्रियरूप ज्ञान है उतना ही आत्मा है—ऐसी जो मान्यता वही परवशता है, और परवशपना ही दुःख है। विषय जरा सूक्ष्म है। शरीर, कर्म आदि पर द्रव्य तो आत्माके हैं ही नहीं, रागादि विभावभाव भी आत्माका स्वभाव नहीं है, परन्तु पर्यायमें जो परलक्षी खण्ड–खण्ड ज्ञान है वह भी परवशपना है, दुःख है। जड़-इन्द्रिय तो मिट्टी–धूल है, परन्तु अंतरमें क्षायोपशमिकज्ञानरूप जो भावेन्द्रिय है वह जड़-इन्द्रियोंकी सहायतासे एक–एक मूर्तिक स्थूल विषयको जानती है वह भी परवशता, पराधीनता और दुःख है। आत्माको लक्ष्मीवान—धूलका स्वामी—माननेवाला तो दुःखी है ही, परंतु रागवाला या खण्ड–खण्ड ज्ञानवाला मानता है वह भी दुःखी है। निर्धन दुःखी है वह इसलिये दुःखी नहीं है कि उसके पास पैसा नहीं है, परन्तु 'मैं पैसेवाला नहीं हूँ, निर्धन हूँ' ऐसी जो दृष्टिमें परवशता है उसीसे वह दुःखी है।

इन्द्रियोंसे पृथक् और खण्ड–खण्ड ज्ञानसे–इन्द्रिय ज्ञानसे भी निराला ऐसा जो निज परिपूर्ण ज्ञायक आत्मा, उसकी प्रतीतिके बिना मात्र खण्ड–खण्ड ज्ञानको अपनी वस्तु माननेवाला अज्ञानी है, मूढ़ है, परवशताके कारण दुःखी है। पत्नी, पुत्र और परिवार या देव–शास्त्र–गुरु वह तो पर, परन्तु अपनी पर्यायमें जो रागादि भाव और खण्ड–खण्डरूप ज्ञान–वकालतका ज्ञान, वैद्यकका ज्ञान, अरे! धर्मके शास्त्रोंका ज्ञान–वह सब परलक्षी होनेसे परवशता है, दुःख है। परवशताका भाव मोहसे मलिन होनेके कारण बंधका कारण है, अबंधदशाका कारण नहीं है; अबंधपरिणाम तो स्वावलम्बी दृष्टि और ज्ञानसे होते हैं।

'मैं बड़ा चतुर हूँ' इस प्रकार चतुराईकी चंगुलमें चढ़कर खण्ड–खण्ड ज्ञानको अपना माननेवाला मिथ्यार्त्वी है, दुःखी है। बेनने एक बोलमें कहा है न?–"'मुझे आता है' इसप्रकार चतुराईके चंगुलमें मत आना। चतुराईके मानसे दूर रहना अच्छा है। प्रसिद्धिके अवसरोंसे दूर भागनेमें लाभ है। वे सब प्रसंग निःसार हैं; सारभूत एक आत्मस्वभाव है।" अखण्ड ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मामें दृष्टि करना वही सच्चा कर्तव्य है।

देव–शास्त्र–गुरु पर हैं, शरीर और इन्द्रियाँ पर हैं, शुभाशुभ विभावभाव आनन्दनिधि भगवान आत्माका स्वभाव नहीं है तथा इन्द्रियज्ञान–भावेन्द्रिय, परलक्षी खण्ड–खण्ड ज्ञानका विकास–भी अखण्ड परिपूर्ण ज्ञानमूर्ति ज्ञायकदेवका स्वरूप नहीं है; इसलिये उन सबका लक्ष छोड़कर, उन सबसे भिन्न निज अखण्ड चिन्मय ज्ञायकभावका आश्रय करना, दृष्टिमें लेकर उसका अनुभव करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन–धर्मका प्रथम सोपान है।

परवश है वह दुःखी है। व्यवहार रत्नत्रयके रागका भाग भी परवशपना है; वह भी दुःख है। अखण्ड ज्ञानस्वरूप भगवान आत्माकी पर्यायमें एक–एक विषयको टुकड़े–टुकड़े जाननेवाली भावेन्द्रिय, परलक्षी खण्ड–खण्डरूप ज्ञातृत्व—वह भी परवशता है। शास्त्रका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान—सुना हुआ या पढ़ा हुआ—वह भी परलक्षी खण्ड–खण्ड ज्ञान है, परवशता है। 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं'.....परवश है वह दुःखी है।

स्ववश सो सुखी है। आनन्दनिधान निज अखण्ड ज्ञायक द्रव्यस्वभावका आश्रय लेकर, उसका साधन होकर जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–रमणतामय स्वाधीन परिणति हो वह सुख है। स्वचश परिणतिवाला जीव सदा सुखी है; खण्ड–खण्ड ज्ञानका आश्रय था तब तक दुःखी था, अंतरमें अखण्ड परिपूर्ण ज्ञायकतत्त्वका आश्रय लिया—स्ववश परिणमन हुआ—तबसे सुखी हुआ।

'शुद्ध शाश्वत चैतन्यतत्त्वके आश्रयरूप स्ववशतासे शाश्वत सुख प्रगट होता है।'

नित्यानन्दस्वरूप ज्ञायक चैतन्यतत्त्वके जो कि स्वभावतः शुद्ध और शाश्वत परम भाव है, उसके आश्रयरूप स्ववशपनेसे—सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप निर्मल परिणामसे—शाश्वत सुख अर्थात् मोक्षदशा प्रगट होती है। श्री नियमसारमें 'यह 'सार' पद विपरीतके परिहार हित परिकथित है'–ऐसा कहा है। वहाँ 'विपरीत'का अर्थ मात्र मिथ्यात्व नहीं लेना, परन्तु निज शुद्ध चैतन्यतत्त्वके आश्रयरूप स्ववशपनेसे अन्य ऐसे सामायिक, चौवीस तीर्थंकरकी स्तुति, वन्दनादि व्यवहाररत्नत्रयके समस्त भाव लेना हैं। वे भाव स्वरूपसे विपरीत और बंधके कारण हैं। उन व्यवहार भावोंसे प्रतिपक्ष ऐसे निज शुद्ध चैतन्यतत्त्वके अवलम्बनसे जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप निश्चय आवश्यक हो वह, व्यवहाररत्नत्रयरूप विपरीतके परिहार स्वरूप होनेसे सुखरूप है।

वीतराग देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धा, दान–वह सब शुभराग भी दुःख है, उसे धर्म या धर्मका सच्चा कारण मानना सो मिथ्यात्व है, दुःख तथा दुःखका कारण है। त्रिकाल शुद्ध, शाश्वत और पवित्र रहनेवाला जो निज चैतन्यतत्त्व उसका जिसने अंतरमें आश्रय लिया, अवलम्बन लिया, वह साधक जीव स्ववश है, सुखी है। अहा! निज चैतन्यतत्त्वकी ऐसी बातें जगतको कठिन लगती हैं; परन्तु और क्या हो सकता है? वस्तुका जैसा स्वरूप है उसे तो यथार्थ समझना ही पड़ेगा न?

निमयसारमें कहा है कि कथनमात्र व्यवहार—व्रतादिके विकल्प, नववें ग्रैवेयकमें जाय ऐसी शुक्ललेश्या आदि—अनन्तबार किया। उस शुभ रागमें धर्म मानना वह मिथ्यात्वका पोषण है। पराश्रयसे होनेवाले विकल्प पराधीनता, परवशता और दुःखरूप हैं, उन्हें धर्म या धर्मका यथार्थ साधन मानना वह मिथ्या श्रद्धाको—विष समान विभावको—पोषण देने जैसा है। नित्यानन्दस्वरूप निज शुद्ध चैतन्यतत्त्वके आश्रयसे—अंतरमें जो शाश्वत सुखका भण्डार है उसके आलम्बनसे—पर्यायमें जो शाश्वत सुख प्रगट हो उसका नाम भगवानने धर्म कहा है। अहा! ऐसी बात है भाई!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आजकलके उपदेशक कहते हैं कि–व्यवहार करो, व्यवहार करो। किन्तु भाई! व्यवहारका अर्थ क्या? दया, दान, व्रत, तप, भगवानके दर्शन–पूजादि शुभभावरूप व्यवहार तो राग है। ऐसा राग तो अनंतबार किया है; वह कहीं धर्म या धर्मका कारण नहीं है। धर्मका कारण तो त्रिकाल शुद्ध निज ज्ञायक आत्मतत्त्वका आश्रय करना वह है। अहा! संक्षिप्त शब्दोंमें बहिनने बहुत कहा है।

३१५वें बोलमें द्रव्यदृष्टिकी बात आती है। द्रव्य अर्थात् निज शुद्ध ज्ञायक वस्तु; उसकी निर्मल दृष्टि होना सो द्रव्यदृष्टि है। निमित्तकी दृष्टि छोड़कर, रागकी क्रियाके परिणामकी दृष्टि छोड़कर, एकसमयकी अल्प या पूर्ण पर्यायकी दृष्टि भी छोड़कर शाश्वत सुखनिधि ध्रुव शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान निजात्माकी दृष्टि करना सो द्रव्यदृष्टि है। प्रभु! एकबार सुन तो सही। अनादिकालमें एक क्षणमात्र भी निज शुद्ध द्रव्यकी दृष्टि नहीं की। वैसे देव–शास्त्र–गुरुकी उपासना, जीवादि नव तत्त्वकी बहिर्लक्षी श्रद्धा, समयसारादि शास्त्रोंका बहिर्लक्षी ज्ञान, पंचमहाव्रतादिके शुभरागका आचरण और उपवासादि तपके शुभभाव करनेसे आत्मकल्याण हो जायगा ऐसा मानकर जीवने अनंतकाल परिभ्रमण किया है। आया कुछ समझमें?

द्रव्य अर्थात् वस्तु, चैतन्य पदार्थ, नित्य स्थायी वस्तु। उस वस्तुमें क्षण–क्षण परिवर्तित होनेवाले परिणाम तो हैं, परन्तु दृष्टि वर्तमान परिणामको स्वीकार नहीं करती, वह तो त्रैकालिक ध्रुव शुद्ध अन्तःतत्त्वका ही अवलम्बन करती है। जिसमें बाह्य शुभ आचरणकी क्रिया तो नहीं, रागादि विभाव भी नहीं, खण्ड–खण्ड ज्ञान भी नहीं और गुण–गुणीके भेद भी नहीं, ऐसा सर्वज्ञ भगवानका देखा और कहा हुआ जो नित्य शुद्ध अभेद ध्रुव ज्ञायक आत्मा उसीको दृष्टि अवलम्बती है। ऐसी दृष्टियुक्त जो ज्ञान तथा स्वरूपरमणतारूप चारित्र वही सच्चा मुक्तिका मार्ग है। वही जन्म–मरणका अन्त करनेका उपाय है। क्या कहा जाय? लोगोंको इस तत्त्वका अभ्यास नहीं है और बाहरी 'हो–हा' में लग गये हैं।

आत्मा एक वस्तु है न? जिसमें अनंत गुण वसते हों उसे वस्तु कहते हैं। आत्मामें भी ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनंत त्रिकालस्थायी गुणोंका वास है। तथा आगममें भी वस्तुको 'उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्तं' और 'गुण–पर्ययवत्' कहा है। उसमें जो उत्पाद–व्यय होते हैं वह तो पर्याय है और जो ध्रौव्य है वह टंकोत्कीर्ण शुद्ध नित्य द्रव्यसामान्य है। उस ध्रुव द्रव्यस्वभावका अवलम्बन करनेवाली, त्रैकालिक नित्य परमभावका आश्रय करनेवाली जो दृष्टि उसका नाम द्रव्यदृष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शन है।

अहा! वीतराग परमेश्वरका मार्ग बहुत सूक्ष्म है भाई! आज कल तो लोगोंने बाहरकी स्थूल बातोंमें धर्म मनवा दिया है। यहाँ तो कहते हैं कि धर्मका प्रारम्भ ही निज शुद्ध अंतःतत्त्वकी दृष्टि होने पर होता है। निज शुद्ध ध्रुव चैतन्यतत्त्व ही एकमात्र अंतःतत्त्व है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शेष सब—बहिर्लक्षी श्रद्धा, ज्ञान और आचरण, दया–दान और व्रत–तप या भक्तिके परिणाम, अरे! शुद्ध चैतन्यतत्त्वके अवलम्बनसे प्रगट होनेवाली एकसमयकी सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायें और गुणभेद भी—बहिर्तत्त्व हैं। बहिर्तत्त्वके आलम्बनसे सम्यग्दर्शन या साधना प्रगट नहीं होती, उसके अवलम्बनसे तो पर्यायदृष्टिका पोषण होता है। नियमसारमें कहा है न!–

है हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।
अरु कर्मसे उत्पन्न गुणपर्यायसे, वह बाह्य है॥ ३८॥

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष–यह बाह्यतत्त्व हेय हैं; कर्मोपाधिजनित गुणपर्यायसे—औपशमिक, क्षायिकादि चार भावोंसे—व्यतिरिक्त निज त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक आत्मा आत्माको ग्राह्य है–उपादेय है। त्रैकालिक ध्रुव स्वभावके अवलम्बनसे प्रगट होनेवाली सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी पर्याय भी एक समयका बदलता अंश है, त्रैकालिक ध्रुवस्वभावकी अपेक्षासे वह भी बहिर्तत्त्व है, क्योंकि उसका आश्रय लेनेसे मिथ्यात्व और राग उत्पन्न होता है। इसलिये वर्तमान वर्तती शुद्ध पर्यायका भी लक्ष छोड़कर अंतरमें ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणरससे भरपूर ऐसे निज ध्रुव अभेद ज्ञायकको दृष्टिगत बनाना, उसका अनुभव करना, वही सम्यग्दर्शनरूपी प्राथमिक धर्म है। सम्यग्दर्शनके बिना सब—क्रियाकाण्ड या शास्त्रोंका पढ़ना—थोथा है, निरर्थक है।

अज्ञानी भी निज मतिकल्पनासे 'आत्मा.....आत्मा' कहते हैं, परन्तु यहाँ तो सर्वज्ञ परमात्माने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा जो अनन्त आत्मा देखे हैं उनका यथार्थ स्वरूप क्या है उसकी बात है।

"प्रभु! तुम जाननहारे सब जग देखते हो,
निज सत्तासे शुद्ध, सभीको पेखते हो।....."

विदेहक्षेत्रमें वर्तमान सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकर भगवान विराजते हैं। उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं–हे प्रभु! आप तीनलोक और तीनकालके समस्त पदार्थोंको एकसाथ प्रत्यक्ष जैसे हैं वैसे जान रहे हैं। आपने प्रत्येक वस्तुको निज सत्तासे शुद्ध देखा है। आपने हमारे आत्माको भी निज सत्तासे शुद्ध परमब्रह्म देखा है। भगवानने आत्माको जैसा शुद्ध परिपूर्ण देखा है वैसा अन्तर्मुख दृष्टिके पुरुषार्थसे लक्षगत करना, अनुभवगत करना सो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन स्वयं निर्मल पर्याय है, अनित्य है। अनित्य पर्याय नित्य ध्रुव स्वभावका आश्रय करती है; अनित्यके आश्रयसे कल्याण नहीं होता, ध्रुवस्वभावके आश्रयसे ही कल्याण होता है।

व्यवहार-रत्नत्रयको साधन कहा है वह तो कथनमात्र है। वह बहिर्लक्षी भाव कहीं वस्तु नहीं है–शुद्धता नहीं है। ऐसा तो अनन्त बार किया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'मुनिव्रत धार अनन्तवार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।'

अनन्तबार दिगम्बर मुनिपना धारण किया, शुक्ल लेश्या करके अनन्तबार नववें ग्रैवेयकमें गया, परन्तु आत्मज्ञान कभी प्रगट नहीं किया, इसलिये अंशतः भी सुख प्राप्त नहीं किया। लोगोंको स्वात्मसन्मुखताकी यह बात कठिन लगती है इसलिये कहते हैं कि 'एकान्त है, एकान्त है', परन्तु क्या किया जाय भाई!—

"जामें जितनी बुद्धि है, उतनी देय बताय;
वाको बुरो न मानिये, और कहाँसे लाय।"

जिसे कुछ खबर ही नहीं हो उससे क्या कहा जाय?

नियमसारमें कहा है कि—त्रैकालिक ध्रुव आत्मतत्त्वके अतिरिक्त पुण्य—पाप, संवर—निर्जरा आदि सर्व तत्त्व पर्याय हैं, नाशवान हैं, बहिर्तत्त्व हैं, अविनाशी अन्तर्तत्त्व तो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक भगवान है। ज्ञान, आनन्दादि अनन्त गुणोंका महासागर वह प्रभु अन्तर्तत्त्व है। नित्य ध्रुव रहनेवाला है इसलिये वह अन्तर्तत्त्व है; उसका श्रद्धान, ज्ञान और चारित्र—व्रत—तपके शुभभाव वह सच्चा चारित्र नहीं है—जोकि आत्माश्रित निर्मलपर्याय है वह भी अन्तर्तत्त्व नहीं है, बहिर्तत्त्व है, क्योंकि वह नवीन उत्पन्न हुई, उत्पाद—व्ययरूप पर्याय है, ध्रुवतत्त्व नहीं है।

अरेरे! ऐसा स्वरूप जीवोंको कहाँ सुननेको मिलता है? वे कब सुनें और कब समझें? जीवन बीतता जा रहा है। शरीर—वाणी—मन और देव—शास्त्र—गुरु तथा अंतरमें होनेवाले दया, दान, व्रत, भक्तिके शुभपरिणाम बहिर्तत्त्व हैं ही, परन्तु त्रैकालिक निज तत्त्वका आश्रय करके प्रगट होनेवाली एक समयकी शुद्ध पर्याय भी बहिर्तत्त्व है क्योंकि शुद्ध पर्याय भी ध्रुवतत्त्वमें प्रविष्ट नहीं हो पाती। अहा! वीतराग परमेश्वरका पंथ कोई निराला है, ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है।

क्या किया जाय? साधारण प्राणियोंको तो यह बात जमती नहीं है, कठिन लगती है। राग तो बहिर्तत्त्व है। जीव अनादिसे रागके स्वादको अपना मानता है। यहाँ तो अध्यात्मव्यवहार अर्थात् साधनारूप निर्मल दशाको भी त्रैकालिक शुद्ध ध्रुव आत्मस्वभावकी अपेक्षासे बहिर्तत्त्व कहा है। मात्र एक त्रैकालिक शुद्ध ध्रुव ज्ञायकभाव ही अन्तर्तत्त्व है। चैतन्य भगवान जिनस्वरूपी है।

जिन सोही है आत्मा, अन्य होई सो कर्म;
कर्म कटे सो जिनवचन, तत्त्वज्ञानीको मर्म।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतराग त्रैकालिक चैतन्यबिम्ब सो आत्मा; और उसके अवलम्बनसे जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई उसकी सीमा–मर्यादा एक समयकी होती है। त्रैकालिक ध्रुव निर्मल तत्त्वकी अपेक्षासे एक समयके परिणमनको बहिर्तत्त्व कहा है। अहा! ऐसी बात है भाई! क्या करें? पागलपन लगे ऐसी बातें हैं। यह बातें तो महाविदेहमें जो भगवान परमात्मा विराजते हैं उनके पाससे आयी हैं। आया कुछ समझमें?

क्या कहा? प्रभु अनन्त प्रभुतासे भरपूर भगवान आत्मामें एक ईश्वरशक्ति है। अन्य कोई 'कर्ता' ईश्वर नहीं है, चैतन्य आनन्दमूर्ति स्वयं ही ईश्वरस्वरूप है। सर्वज्ञ भगवानने आत्माका जो स्वरूप देखा है उसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव आढ़तियाके रूपमें प्रगट करते हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विक्रम संवत् ४९में हुए हैं। उनकी वाणी अब वर्तमानमें प्रगट हुई है। अरे! भगवान कहें, सम्यग्दृष्टि कहें, पंचम गुणस्थानवर्ती जीव कहें या छट्ठे गुणस्थानवर्ती जीव कहें–सब एक ही बात है। वस्तुतत्त्वमें फेरफार नहीं होता।

*

वचनामृत–३१५

द्रव्यदृष्टि शुद्ध अंतःतत्त्वका ही अवलम्बन करती है। निर्मल पर्याय भी बहिःतत्त्व है, उसका अवलम्बन द्रव्यदृष्टिमें नहीं है। ३१५.

'द्रव्यदृष्टि शुद्ध अंतःतत्त्वका ही अवलम्बन करती है।'

द्रव्यदृष्टि अर्थात् त्रिकाल शुद्ध ध्रुव निज ज्ञायकभावको विषय करनेवाली दृष्टि। दृष्टि कहो, रुचि कहो, प्रतीति कहो, विश्वास कहो या श्रद्धा कहो–यह सब एकार्थवाचक हैं। द्रव्यदृष्टि शुद्ध ज्ञायक परमभावको ही अवलम्बती है। इसी पर पूरा भाव है। जो सम्यग्दृष्टि है वह प्रतीतिमें त्रिकाल शुद्ध निज भगवान आत्माका ही अवलम्बन लेता है। सम्यग्दर्शन स्वयं श्रद्धागुणकी एकसमयवर्ती निर्मल पर्याय है; परन्तु वह श्रद्धा पर्याय देव–शास्त्र–गुरु आदि पर निमित्त, शुभाशुभ विभावपर्याय, अपूर्ण या पूर्ण पर्याय तथा गुणभेदका अवलम्बन नहीं लेती, अरे! श्रद्धापर्याय स्वयं अपना भी अवलम्बन नहीं लेती, मात्र त्रैकालिक शुद्ध ध्रुव ज्ञायकद्रव्य सामान्यको ही अवलम्बती है।

सम्यग्दर्शन जो कि धर्मका प्रथम सोपान है, पहली सीढ़ी है, उसका विषय निर्मल पर्याय भी नहीं है, उसका विषय टंकोत्कीर्ण आनन्दघन त्रिकाल ध्रुव ज्ञायक परमात्मा है। 'अप्पा सो परमप्पा'—आत्मा स्वयं ही परमात्मा है। भाई! तू जो है वही है, आनन्दकन्द है, सच्चिदानन्द है, परमानन्दका पिण्ड है। परमानन्दस्वरूप निज द्रव्यसामान्यका अवलम्बन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लेनेवाली दृष्टि सर्वप्रकारकी पर्यायको दूर रखकर एक निरपेक्ष सामान्य स्वरूपको ग्रहण करती है; द्रव्यदृष्टिके विषयमें गुणभेद भी नहीं होते। ऐसी शुद्ध दृष्टि तू प्रगट कर। द्रव्यदृष्टिवानको अंतरमें इतने अधिक रसकसवाला ध्रुव तत्त्व दिखायी देता है कि उसकी दृष्टि पर्यायमें नहीं चिपकती। भले ही अनुभूति हो, परन्तु दृष्टि अनुभूतिमें—किसी भी प्रकारकी पर्यायमें—चिपक नहीं जाती। 'अहो! ऐसा अद्भुत द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ अर्थात् अनुभवगम्य हुआ!' ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु दृव्यदृष्टि तो शाश्वत स्तंभ पर—ध्रुव द्रव्यस्वभाव पर—जमी सो जमी ही रहती है।

'निर्मल पर्याय भी बहिर्तत्त्व है, उसका अवलम्बन द्रव्यदृष्टिमें नहीं है।'

सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, स्वरूपलीनता आदि निर्मल पर्यायें भले प्रगट हुईं ध्रुव ज्ञायकतत्त्वके आश्रयसे, परन्तु वे निर्मल पर्यायें भी आत्माका क्षणवर्ती परिणमन होनेसे त्रैकालिक ध्रौव्यसे—वस्तुके अपरिणामी स्थायी अंशसे—भिन्न हैं, और इसलिये निर्मल पर्यायोंको भी बहिर्तत्त्व कहा जाता है।

कोई दानमें धनका उपयोग करे, करोड़ों रुपये धर्मादामें दे दे, तथापि उसमें—यदि उसके शुभभाव हों, उसने तृष्णाके भाव कम किये हों, लोभ कषाय मन्द की हो तो—पुण्य है, धर्म नहीं है। धर्मका प्रारम्भ तो निज शुद्धात्मद्रव्यस्वभावके आश्रयसे प्रगट होनेवाले सम्यग्दर्शनसे ही होता है। तत्पश्चात् निज द्रव्यस्वभावके विशेष आलम्बनसे स्वरूप-रमणता–चारित्रदशा प्रगट होती है। पैसा तो परद्रव्य है, अजीव, धूल और मिट्टी है। क्या वे जीवके हैं? यहाँ तो कहते हैं कि–पैसे तो नहीं, किन्तु शरीर–वाणी तथा रागादि विभाव भी जीवके नहीं हैं; अरे! सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति या मोक्षादि निर्मल पर्यायोंमें भी त्रैकालिक ध्रुवतत्त्व नहीं है। द्रव्यदृष्टिके विषयमें कोई भी पर्याय अथवा गुणभेद नहीं आते। अहा! ऐसी बातें। लोगोंको कठिन लगेंगी हो!

सारे भारतमें दस–दस हजार मील संघसहित तीन बार घूमे हैं; परन्तु द्रव्यदृष्टिकी ऐसी बात अन्यत्र कहीं सुनने या देखनेमें नहीं आयी। अहा! वीतरागका यह मार्ग ही कोई अलग प्रकारका है। यहाँ तो कहते हैं कि–लक्ष्मी आदि परपदार्थ तो बहिर्तत्त्व हैं ही; उनका तो स्वामी आत्मा है ही नहीं; परन्तु रागादि विभावभावोंका–अपनी पर्यायमें अपने अपराधसे होते हैं इसलिये ज्ञान-अपेक्षासे आत्मा उनका स्वामी कहलाता है—परन्तु दृष्टि–अपेक्षासे स्वामी नहीं है। सर्व प्रकारके विभावोंसे रहित ऐसे निज ध्रुवस्वभावको—चैतन्यकन्द, आनन्दघन ऐसे निज ध्रुव ज्ञायक को—दृष्टिका विषय बनाकर जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप धर्मदशा प्रगट हुई वह निर्मल पर्याय भी बहिर्तत्त्व हैं, क्योंकि वे निर्मल पर्यायें भी ध्रुव ज्ञायकसे (कथंचित्) भिन्न हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शरीर तो अचेतन, मिट्टी–धूल है; रुपया–पैसा, पत्नी, पुत्र–पुत्री—सब इस आत्माके लिये बहिर्तत्त्व हैं; मार्गमें चलते हुए मुसाफिरके शरीर पर पड़ती हुई वृक्षोंकी छायाकी भाँति सब अध्रुव है। अज्ञानरूप पागलपनके कारण जीव शरीर, वाणी आदि अध्रुव पर वस्तुओंको अपनी मानता है, परन्तु भाई! यदि वे अपनी हों तो पृथक् क्यों होंगी? पृथक् हो वह वस्तु आत्माकी नहीं होती। यहाँ तो एक समयकी निर्मल पर्यायको भी—नाशवान होनेसे—बहिर्तत्त्व कहा है; त्रैकालिक ध्रुव निज ज्ञायकभावको ही—शुद्धात्मद्रव्यसामान्यको ही—अन्तःतत्त्व कहा है।

अहा! वीतरागका यह मार्ग कठिन बहुत है। लोगोंको सुननेको भी नहीं मिलता। शरीर परद्रव्य है। आत्मा विकल्प करता है इसलिये शरीरमें कार्य होता है—ऐसा नहीं है। शरीरकी पर्याय अपने कारणसे—पुद्गलके कारणसे—होती है, आत्मा उसका कर्ता नहीं है। आत्मा तो अपनी सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायोंका कर्ता है; रागादि विभावका भी आत्मा परमार्थसे कर्ता नहीं है। निर्मल पर्यायरूपसे आत्मा परिणमित स्वयं होता है, परन्तु उसे आश्रय ध्रुवस्वभावका है; पर्यायके आश्रयसे निर्मलपर्याय प्रगट नहीं होती। अहा! त्रैकालिक ध्रुवस्वभावकी ओर दृष्टिको–परिणतिको मोड़नेमें कितना पुरुषार्थ है? उस पुरुषार्थकी पर्याय भी दृष्टिका विषय नहीं है।

शुद्धात्मद्रव्यके आश्रयसे होनेवाली रागरहित निर्मल पर्याय भी बहिर्तत्त्व है। बहिर्तत्त्वके आश्रयसे—निर्मल पर्यायके आश्रयसे—शुद्धिमें वृद्धि नहीं होती। सम्यग्दर्शन प्रगट होनेके पश्चात् भी चारित्रकी जो विशेष शुद्धि हुई, वह पर्यायके आश्रयसे नहीं, किन्तु अंतरमें त्रैकालिक ज्ञायकके आश्रयसे हुई है। शुद्धिकी उत्पत्ति, स्थिति और वृद्धि–सब ध्रुव ज्ञायकके आश्रयसे होते हैं, पर्यायके आश्रयसे नहीं। आया कुछ समझमें? अहा! यह समझमें आये तो निहाल हो जाय।

आत्मा सत् है। 'उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्तं सत्।' यह तो तत्त्वार्थसूत्रका वचन है। द्रव्यका स्वरूप सत् है। इस मूल तत्त्वकी लोगोंको खबर नहीं है। व्रत करो, उपवास करो, दया–दान करो, किन्तु भाई! यह सब तो रागकी बातें हैं–बहिर्तत्त्व है। जो अनादि अनन्त शुद्ध ध्रुवतत्त्व है, पूर्णानन्दका नाथ है, चैतन्यस्वरूप ज्ञायक भगवान है ऐसे निज द्रव्यसामान्यको अन्तःतत्त्व कहा है। उसके अवलम्बनसे जो मोक्षमार्गकी—सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी, निर्विकल्प आनन्दकी—पर्याय हुई उसे भी, त्रैकालिक ध्रुव आनन्दतत्त्वकी अपेक्षासे, बहिर्तत्त्व कहा जाता है।

प्रश्न:—अपनी निर्मल पर्याय भी बहिर्तत्त्व है?

उत्तर:—हाँ, हाँ। जैसे शरीर–वाणी–मन, देव–शास्त्र–गुरु और अपनी पर्यायमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होनेवाले शुभाशुभ विभाव बहिर्तत्त्व हैं, क्योंकि उनके आश्रयसे सम्यक्त्व नहीं होता; वैसे ही ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे प्रगट होनेवाली सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप निर्मल पर्याय भी बहिर्तत्त्व है, क्योंकि वह एक समयकी विनश्वर दशा है इसलिये उसके आश्रयसे—अवलम्बनसे नवीन शुद्ध प्रगट नहीं होती। शुद्धिकी उत्पत्ति, शुद्धकी वृद्धि तथा शुद्धिकी पूर्णता त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे होती है। द्रव्यदृष्टि सम्यग्दर्शनादि किसी अपूर्ण या पूर्ण निर्मल पर्यायका तथा गुणभेदका भी अवलम्बन नहीं लेती, उसका अवलम्बन तो एकमात्र निज ध्रुव शुद्धात्मद्रव्यसामान्य ही है।

अरे! ऐसा होगा वीतरागका मार्ग? दया पालना, व्रत करना, तपस्या करना, सम्मेदशिखरकी यात्रा करना–'एकबार बन्दे जो कोई, ताहि नरक–पशुगति नहिं होई'—ऐसा तो कुछ नहीं कहते? अरे भाई! तू भीतर महा सम्मेदशिखर है, अनन्त गुणोंकी पूर्णता हो ऐसा तू शाश्वत धाम है; उसकी अन्तर्यात्रा कर न! उस ध्रुवस्वभावका आश्रय करके पर्यायमें पवित्रता प्रगट कर न! यहाँ तो यह कहना है कि वह निर्मल पर्याय भी त्रैकालिक ध्रुवतत्त्वकी अपेक्षासे पलटता हुआ, मर्यादित एवं बाह्यतत्त्व है। द्रव्यदृष्टिको उसका भी अवलम्बन नहीं है, त्रिकाल शुद्ध ध्रुव निज ज्ञायक द्रव्यका ही आलम्बन है।

*

अनुभवरससे सराबोर ऐसी जो गुरुदेवकी जोरदार वाणी, उसकी गर्जना कोई और थी; पात्र जीवोंके पुरुषार्थको जागृत करे और मिथ्यात्वके टुकड़े–टुकड़े कर दे ऐसी वह दैवी वाणी थी। अपना भाग्य है कि गुरुदेवकी वह मंगलमय कल्याणकारी वाणी 'टेप'में उतरकर जीवन्त रह गई। कल्याणमूर्ति कृपालु गुरुदेवका अपने ऊपर अनन्त–अनन्त उपकार है।

—बहिन श्री चंपाबेन

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–११८

दिनांक १३-१०-७८

वचनामृत–३१६

अपनी महिमा ही अपनेको तारती है। बाहरी भक्ति–महिमासे नहीं परन्तु चैतन्यकी परिणतिमें चैतन्यकी निज महिमासे तरा जाता है। चैतन्यकी महिमावंतको भगवानकी सच्ची महिमा होती है। अथवा भगवानकी महिमा समझना वह निज चैतन्य-महिमाको समझनेमें निमित्त होता है। ३१६.

'अपनी महिमा ही अपनेको तारती है।'

अतीन्द्रिय सहज ज्ञान और अतीन्द्रिय सहज आनन्दस्वरूप ऐसा जो निज चैतन्य महापदार्थ––ज्ञायक भगवान आत्मा––उसकी यथार्थ महिमाको यदि अंतरमें समझा हो तभी आत्माको स्वानुभूतिका उपाय हाथ आता है। अपने ज्ञायकस्वभावकी महिमा ही अपनेको भवसमुद्रसे तारती है। पूजा–भक्ति, दया–दान और व्रत–तपके भाव आते हैं वह शुभराग है, विभाव है। उसकी जिसे महिमा आती है वह जीव मिथ्यादृष्टि, भवसागरमें डूब मरनेवाला अज्ञानी है। सर्व प्रकारके विभावोंसे रहित अपने सहजात्मस्वरूप ज्ञायक महाप्रभुकी अद्भुत महिमा जिसे अंतरमें परिणमित हुई है वह जीव सम्यग्दृष्टि है। उसके हाथमें तरनेका उपाय आ गया है।

'बाहरी भक्ति–महिमासे नहीं परन्तु चैतन्यकी परिणतिमें चैतन्यकी निज महिमासे तरा जाता है।'

देव–शास्त्र–गुरुकी, पंचपरमेष्ठी भगवानकी या प्रत्यक्ष सत्पुरुषकी बाह्यभक्ति तथा बाहरकी महिमासे आत्माका धर्म प्रगट नहीं होता; ज्ञातापरिणतिमें ज्ञायककी निजमहिमासे सम्यग्दर्शन, आत्मशान्ति आदि निर्मल पर्यायरूप आत्मधर्म प्रगट होता है। बाहरकी भक्ति–महिमाके परिणाम शुभराग हैं, विभावस्वरूप होनेसे आत्माके स्वभावसे भिन्न हैं। दया–दान, पूजा–भक्ति या व्रत–तपके शुभ विकल्पोंसे नहीं परन्तु भीतर भगवान आत्माकी निर्मल परिणतिमें आत्माकी निज महिमासे तरा जाता है–भवसागरका अन्त आ जाता है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भीतर चैतन्यस्वभावके भान बिना जीवने अनन्तबार दिगम्बर मुनिव्रत धारण किये, हजारों रानियोंको छोड़ा, किन्तु भाई! वह तो सब रागकी क्रिया है; इस भगवान ज्ञायकके साथ उसका एकत्व नहीं है, तथापि जीवने विभावके साथ एकत्व माना है, वह एकत्व तोड़ना है। रागकी क्रियासे भिन्न होकर—अधिक होकर—निज ज्ञायकदेवकी महिमारूपसे अंतर्परिणमन करे तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। अंतरमें ज्ञायकतत्त्वका यथार्थ लक्ष हुए बिना—अंतरमें निज चैतन्यप्रभुकी महिमा आये बिना—समवसरणमें त्रिलोकीनाथ साक्षात् तीर्थंकर भगवानकी मणिरत्नोंके थाल और कल्पवृक्षके फूलों द्वारा अनन्तबार भक्ति की, रत्नदीपकों से भगवानकी आरती अनन्तबार उतारी, परन्तु उससे क्या? जब तक शुभरागकी महिमा है तब तक मिथ्यादृष्टि है, अनन्त संसारमें भटकनेवाला प्राणी है। शुभरागरूपी छिलकोंसे भिन्न अंतरमें जो चैतन्य ज्ञायकदेव है उसमें दृष्टि लगानेसे, उसकी अंतरंग महिमा करनेसे सम्यग्दर्शनादि आत्मधर्म प्रगट होता है; चैतन्यकी अन्तर्मुख परिणतिमें चैतन्यकी निजमहिमासे भवसमुद्र पार किया जाता है।

ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण ऐसे निज चैतन्यकी स्वसन्मुख परिणतिमें—भगवानकी भक्ति आदिके परिणाम तो शुभराग और परसन्मुख दशा है—चैतन्यकी निजमहिमासे पार हुआ जाता है। वैसे परकी भक्ति आदिके शुभभाव तो जीवने अनन्तबार किये परन्तु उनसे किंचित् आत्मधर्म नहीं हुआ। श्रीमद्ने कहा है न?—

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो;
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।

फिर आगे कहते हैं—

सब शास्त्रनके नय धारि हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये;
वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।

—प्रतिमा और महाव्रत धारण किये, परन्तु वह तो सब शुभराग है, दुःख है। रागसे भिन्न अपने चैतन्यप्रभुका ज्ञान अंतरमें परिणमित होकर कभी नहीं किया, इसलिये स्वरूपका आनंद अनुभवमें कभी नहीं आया। अहा! स्वरूप तो ऐसा है। लोगोंको कठिन लगता है, परन्तु क्या करें? मार्ग तो यही है। त्रिलोकनाथ परमात्माकी दिव्यध्वनिमें यह आया है। समझे कुछ?

भक्ति और व्रतादिके भाव तो शुभरागरूप मलिन दशा है, पुण्यतत्त्व है; उससे आत्माकी महिमा मानना वह मिथ्यादर्शन है। भगवान आत्मा तो पुण्यतत्त्वसे भिन्न त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक तत्त्व है। आशय यह है कि–चैतन्यलोक भगवान आत्मा स्वभावसे समस्त शुभाशुभ रागसे मुक्त ही है, क्योंकि वह परभाव–विभाव होनेसे परवस्तु है न? विकारी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाव कहीं आत्माकी वस्तु नहीं है, वह सब आत्माके ज्ञातास्वरूपसे भिन्न हैं। 'शुभरागसे धर्म होगा' ऐसी मान्यताका नाम मिथ्यात्व–परिणति है। चैतन्यकी वर्तमान परिणतिमें शुभाशुभ विभावसे रहित त्रिकाल शुद्ध ज्ञायकस्वरूपकी दृष्टि होनेसे–निज चैतन्यकी अनुपम महिमा प्रगट होनेसे–तरा जाता है। भवसमुद्र पार करनेका यही एक उपाय है।

लोगोंको यह बात बहुत कठिन लगती है, परन्तु क्या करें? जीवने अशुभभाव अनन्त बार किये, अरे! शुभभाव—व्रत, तप, भक्ति और उपवास किये, मणिरत्नके दीपकोंसे भगवानकी आरती उतारी, करोड़ोंका दान दिया, जिनमन्दिरोंका निर्माण कराया आदि पुण्यभाव—भी अनन्तबार किये हैं। भाई! वह कोई नवीन वस्तु नहीं है। अहा! जिसे रागकी महिमा है उसे निज ज्ञायकदेवकी महिमा नहीं आती, और जिसे निज चैतन्य ज्ञायकदेवकी महिमा है उसे शुभाशुभरागकी महिमा नहीं आती। बाहरकी भक्ति और महिमासे नहीं किन्तु भीतर चैतन्यकी परिणतिमें ज्ञायक प्रभुकी निज महिमासे जीव भवसागर तर जाता है–आत्मकल्याण कर लेता है।

'चैतन्यकी महिमावन्तको भगवानकी सच्ची महिमा होती है।'

जिसे समस्त शुभाशुभ विभावसे रहित ऐसे निज विज्ञानघन चैतन्यप्रभुकी महिमा अंतरसे प्रगट हुई है उसीको जिनेन्द्रभगवानकी सच्ची महिमा होती है। अपने चैतन्यकी पकड़के बिना मात्र बाहरी महिमा—तीर्थंकर जिनेन्द्रदेवका पुण्यातिशय ऐसा होता है कि अपने शरीरकी कान्तिसे दसों दिशाओंको उज्ज्वल करते हैं, अपने उपशान्त रसझरते तेज द्वारा करोड़ों सूर्यके तेजको ढँक देते हैं–निस्तेज बना देते हैं, अपने रूपसे लोगोंका मन हर लेते हैं, दिव्यध्वनिमें भव्योंके कानमें साक्षात् सुखामृतकी वर्षा करते हैं, तथा एक हजार आठ लक्षणोंसे विभूषित हैं, इत्यादि बाहरकी भक्ति—करे तो शुभ भाव होता है, परन्तु वह बहिर्लक्षी शुभराग कहीं तरनेका उपाय नहीं है। वास्तवमें तो जिसे निज ज्ञायक भगवानका निश्चय हुआ है, महिमा आयी है, उसीको भगवानकी सच्ची व्यवहार–महिमा होती है।

'अथवा भगवानकी महिमा समझना वह निज–चैतन्यमहिमाको समझनेमें निमित्त होता है।'

अतीन्द्रिय आनन्दकी मूर्ति, सर्वज्ञ, वीतराग ऐसे भगवान जिनेन्द्रदेवको देखने पर 'मैं भी स्वभावसे ऐसा ही हूँ, विज्ञानघन, अतीन्द्रिय आनन्दका कन्द हूँ'–ऐसे अपने चैतन्य स्वभावकी महिमा आती है। श्री प्रवचनसारमें आता है न?—

जे जाणतो अर्हंतने, गुण, द्रव्य ने पर्ययपणे;
ते जीव जाणे आत्मने, तसु मोह पामे लय खरे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो जीव अरिहंतकी महिमा द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे तथा पर्यायरूपसे जानता है वह निज आत्माको जानता है; निज आत्माकी महिमा जाननेसे उसका मोह अवश्य नष्ट हो जाता है। इसलिये यहाँ बेनने कहा है कि–भगवानकी महिमा समझना वह निज चैतन्यमहिमा समझनेमें निमित्त होती है। अहा! यह तो अध्यात्मकी सूक्ष्म बात है भाई! आया कुछ समझमें?

*

वचनामृत–३१७

मुनिराज वन्दना–प्रतिक्रमणादिमें लाचारीसे युक्त होते हैं। केवलज्ञान नहीं होता इसलिये युक्त होना पड़ता है। भूमिकानुसार वह सब आता है परन्तु स्वभावसे विरुद्ध होनेके कारण उपाधिरूप लगता है। स्वभाव निष्क्रिय है उसमेंसे मुनिराजको बाहर आना नहीं सुहाता। जिसे जो कार्य न रुचे वह कार्य उसे भाररूप लगता है। ३१७.

'मुनिराज वन्दना–प्रतिक्रमणादिमें लाचारीसे युक्त होते हैं।'

जिनको महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुणके परिणाम भी; शुभराग होनेसे, दुःखरूप लगते हैं, जो अपने आनन्दकन्द चैतन्यस्वरूपकी परिणतिमें अतीन्द्रिय आनन्दको उग्ररूपसे देखते हैं—अनुभवते हैं, ऐसे वनवासी नग्न दिगम्बर भावलिंगी मुनिराज वन्दना–प्रतिक्रमण आदि षट् आवश्यकमें ज्यों–त्यों युक्त होते हैं। प्रतिक्रमण, देव–गुरु वंदनादिके शुभविकल्प अस्थिरताके कारण अशक्तिसे आते हैं, परन्तु अंतरमें रागका राग नहीं होनेसे उसके कर्तृत्वका उत्साह नहीं है, विवशतासे अशक्तिके भावसे ज्यों–त्योंकर युक्त होते हैं।

'केवलज्ञान नहीं होता इसलिये युक्त होना पड़ता है।'

पुरुषार्थकी अशक्तिके कारण केवलज्ञान, पूर्णानन्द आदि पूर्णदशा प्रगट नहीं होती इसलिये प्रतिक्रमणादि शुभ विकल्पोंमें लगना पड़ता है। मुनिराजको भूमिकानुसार ऐसे विकल्प बीचमें आते अवश्य हैं, परन्तु वे उन्हें रुचते नहीं हैं, अंतरमें ऐसे शुभरागकी भी रुचि नहीं है। आनन्दमय निर्मल दशामेंसे बाहर आकर ऐसे शुभ विकल्पोंमें लगना पड़े वह बोझ लगता है।

अहा! मुनिदशा किसे कहते हैं? सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति बिना बाहरसे नग्नता आदि द्रव्यलिंग धारण कर ले, पंचमहाव्रतके शुभ परिणाममें प्रयत्नपरायण रहे, वह कोई सच्चा मुनिपना नहीं है। जिनके लिये 'आत्मा मात्र ज्ञान और आनंदस्वरूप है, शुभाशुभ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विभावका एक कण भी मेरा स्वरूप नहीं है'–ऐसा स्वानुभव श्रद्धान तथा ज्ञान प्रगट हुआ है और स्वरूप–रमणता बढ़ जानेसे जिनको पर्यायमें आनन्दसे भरपूर प्रचुर स्वसंवेदन वर्त रहा है उन्हें मुनिराज कहा जाता है।

समयसारमें भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने अपना आत्मवैभव दर्शाया है। कैसा है वह वैभव? निरन्तर झरता आस्वादमें आता हुआ, सुन्दर जो आनन्द उसकी छापवाला जो प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन, उससे जिसका जन्म है। आचार्यदेवने आगमका सेवन, युक्तिका अवलम्बन, परापर गुरुका उपदेश तथा प्रचुर स्वसंवेदन—ऐसे चार प्रकारसे उत्पन्न हुए अपने ज्ञानके विभवसे एकत्व–विभक्त शुद्ध आत्माका स्वरूप बतलाया है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव महासमर्थ भावलिंगी दिगम्बर संत थे, वि. सं. ४९में इस भरतक्षेत्रमें विचरते थे। वे सदेह विदेहक्षेत्रमें श्री सीमंधर भगवानके पास गये थे, वहाँ आठ दिन रहे थे, वहाँ केवली–श्रुतकेवलीकी वाणी सुनकर पश्चात् इन समयसारादि शास्त्रोंकी रचना की है। वे कहते हैं कि अतीन्द्रिय आनन्दके प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप निजवैभव द्वारा मैं इस एकत्व–विभक्त आत्माको दर्शाऊँगा। अहा! धन्य वह दशा!

'भूमिकानुसार वह सब आता है परन्तु स्वभावसे विरुद्ध होनेके कारण उपाधिरूप लगता है।'

जिसे शुभरागका प्रेम है उसे आत्माके आनन्दकी महिमा नहीं है, और जिसे आत्मानन्दकी महिमा है उसे शुभराग दुःखरूप लगता है, विष जैसा भासित होता है। ऐसा होनेपर भी मुनिराजको भी भूमिकानुसार पंचमहाव्रत, पाँचसमिति तथा तीनगुप्तिके शुभ विकल्प आते हैं परन्तु अपने आनन्दस्वभावसे विपरीत उपाधिरूप होनेसे दुःखरूप लगते हैं। चतुर्थ गुणस्थानमें देव–शास्त्र–गुरु तथा प्रत्यक्ष सत्पुरुषके प्रति श्रद्धा–भक्तिके भाव, पंचम गुणस्थानमें अंशतः स्वरूपस्थिरता बढ़ने पर अणुव्रत, प्रतिमाके भाव और छठवें गुणस्थानमें भावलिंगी संतको अट्ठाईस मूलगुणके भाव भूमिकानुसार आते अवश्य हैं, परन्तु वे शुभभाव भी राग होनेसे, वीतरागभावसे विपरीत होनेके कारण, उपाधिरूप हैं, दुःखरूप हैं। सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं जिसे भूमिकानुसार शुभराग आने पर भी उसमेंसे सुखबुद्धि उड़ गई है, रागमात्र दुःखरूप, उपाधिरूप लगता है।

प्रश्न:—यदि ज्ञानीको शुभभाव दुःख और उपाधिरूप लगते हैं तो वह पूजा–भक्तिके तथा व्रत–तपके शुभभाव क्यों करता है?

उत्तर:—ज्ञानी शुभभावोंको कर्ताबुद्धिसे नहीं करता, किन्तु भूमिकानुसार अशक्तिके कारण अशुभसे बचनेके लिये ऐसे भाव आये बिना नहीं रहते। पूजा–भक्तिके भाव, व्रत–तपके भाव, शास्त्रस्वाध्यायके भाव, उपदेशादिके भाव इत्यादि अनेक प्रकारके विकल्प

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भूमिकानुसार आते अवश्य हैं, परन्तु वे सब भाव आनन्दनिधि निज ज्ञायक स्वरूपसे विरुद्ध जातिके हैं, इसलिये उपाधि और दुःखरूप हैं। लोग कहते हैं—शुभभाव व्यवहार है, और व्यवहार करते–करते निश्चय—शुद्धभाव हो जायगा। भाई! लहसुन खाते–खाते क्या कस्तूरीकी डकारें आ सकती हैं? वैसे ही रागकी क्रिया अथवा शुभभाव करते–करते क्या कल्याण—धर्म हो सकता है? उसमें तो धूल भी धर्म या कल्याण नहीं है, अर्थात् शुभभावसे धर्म माने उसे पुण्यानुबंधी पुण्यबंध भी नहीं होता। जिसने शुभरागमें धर्म माना है वह मिथ्यादृष्टि है, उसे मिथ्यात्वके महापापके साथ पापानुबंधी पुण्यबंध होता है। अहा! बड़ी कठिन बात है भाई!

आजकल तो सम्प्रदायमें सब क्रियाकाण्डकी धमालमें फँस गये हैं। व्रत किये और तप किये, प्रतिष्ठा करवायी और गजरथ चलाया, किन्तु भाई! इन सबमें भीतर यदि रागकी मन्दता की हो तो वह शुभभाव है, धर्म नहीं है। जिससे धर्म होता है ऐसी तेरी वस्तु तो अंतरमें समस्त शुभाशुभ विकल्पोंसे रहित शुद्ध आनन्दकन्द है उस पर दृष्टि करनेसे जिसे साधकदशा प्रगट हुई है ऐसे ज्ञानीको भी भूमिकानुसार शुभभाव आते हैं, परन्तु वे उपाधिरूप लगते हैं। अज्ञानीको 'शुभभाव भी उपाधि है' ऐसी खबर ही नहीं है, वह तो उसे धर्मका यथार्थ साधन मानता है। क्या किया जाय? अहा! परम सत्यकी यह बात समझनेके लिये कितना धैर्य चाहिये?

'स्वभाव निष्क्रिय है उसमेंसे मुनिराजको बाहर आना नहीं सुहाता।'

क्या कहते हैं? चैतन्यमूर्ति आनंदकंद भगवान आत्माका स्वभाव तो रागादि समस्त क्रियासे रहित है—निष्क्रिय है। त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक स्वभाव वास्तवमें तो समस्त पर्यायोंसे भी रहित है—रागादि विभाव क्रियासे तो भिन्न है, परन्तु सम्यग्दर्शनादि अपूर्व निर्मल स्वभावक्रियासे भी भिन्न है। त्रैकालिक निष्क्रिय ध्रुव स्वभावके उग्र आलम्बनसे मुनिराजको जो रागादि विभावक्रियारहित निष्क्रिय निर्मलदशा प्रगटी है—ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे निर्विकल्प अभेद निष्क्रिय दशा प्रगट हुई है, उसमेंसे बाहर आना उन्हें रुचता नहीं है—अच्छा नहीं लगता। अहा! ऐसी बाते हैं,....आया कुछ समझमें?

जो सम्यग्दर्शनादि धर्म प्रगट हुआ उस पर धर्मीकी दृष्टि नहीं है, उसकी दृष्टि त्रिकाल निष्क्रिय नित्यानन्द ध्रुव ज्ञायक पर है। मुनिराजको ध्रुव ज्ञायक निष्क्रिय स्वभावका जो आश्रय वर्त रहा है उसमेंसे उन्हें बाहर आना नहीं रुचता। क्या कहते हैं? आनन्दसागर चैतन्यप्रभुमें जिसकी दृष्टि पहुँच गई है—स्थिरता हो गई है उसे उसमें बाहर आना—विकल्पोंमें आना नहीं रुचता। अहा! सच्चे संत उन्हें कहा जाता है जिन्हें सुखकी प्रचुर स्वसंवेदन दशा प्रगटी हो। जो बाह्य क्रियाकाण्डी अथवा द्रव्यलिंगी है वह वास्तवमें मुनि नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सच्चे मुनिको व्रतादिके शुभभाव होते हैं परन्तु उनके अंतरमें उनकी रुचि नहीं है। व्रतादिकी क्रिया जड़की पर्याय है, आत्मा उसका कर्ता नहीं है; शुभभाव आता है परन्तु वह तो राग है। मुनिराजको बाह्य रागमें आना रुचता नहीं है।

'जिसे जो कार्य न रुचे उसे वह कार्य भाररूप लगता है।'

सम्यग्दृष्टि धर्मात्माको तो अपना आनन्द रुचता है। आनन्दके सिवा रागकी क्रिया उसे भाररूप लगती है। अतीन्द्रिय स्वरूपानन्दके स्वादीको भूमिकानुसार जो राग आता है वह बोझरूप लगता है। समयसारके निर्जरा अधिकारमें आता है न? कि—कोई जीव महाव्रत और तपके भारसे—बोझसे दीर्घकाल तक टूट मरते हुए क्लेश प्राप्त करते हों तो करो; परन्तु जो साक्षात् मोक्षरूप है, निरामय पद है और स्वयं संवेद्यमान है ऐसा यह ज्ञान तो ज्ञानगुणके बिना किसी भी प्रकार वे प्राप्त कर ही नहीं सकते। ज्ञानीको तो ज्ञानानन्दस्वभावका वेदन—अनुभव हुआ है; उसे जो भगवानकी भक्ति आदिके शुभभाव आते हैं वे भाररूप लगते हैं; वे भाव उसे नहीं रुचते। कन्दमूल नहीं खाना, ब्रह्मचर्यका पालन करना, व्रत–उपवास करना, भक्ति करना, मन्दिर बनवाना—यह सब तो राग और क्रियाकी बातें हैं। रागमन्द हो तो पुण्यबंध होता है परन्तु उससे वीतरागता नहीं होती।

धर्मात्माको जो धर्मानुराग आता है वह वीतरागका धर्म है ही नहीं, उससे तो भगवानने पुण्यबंध कहा है। 'भावपाहुड'में आता है न?—

पूजादिमां व्रतमां जिनोअे पुण्य भाख्युं शासने,
छे धर्म भाख्यो मोहक्षोभविहीन निज परिणामने।

ज्ञानी धर्मात्माको विषय–वासनाके भाव भी आते हैं, परन्तु वे उसे अच्छे नहीं लगते। पुरुषार्थकी कमजोरी है इसलिये ऐसे भाव आते हैं। ज्ञानीको शुभभाव तो काले नाग जैसे लगते हैं, और जो शुभभाव आते हैं वे उपाधिरूप—बोझरूप लगते हैं। ज्ञानीकी रुचि विभावके कार्यमें नहीं है; जिसमें उसे रुचि नहीं है वह कार्य उसे बोझरूप–दुःखरूप लगता है।

*

वचनामृत–३१८

जीव अपनी लगनसे ज्ञायकपरिणतिको प्राप्त करता है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं विभावभावसे भिन्न हूँ, किसी भी पर्यायमें अटकनेवाला मैं नहीं हूँ, मैं अगाध गुणोंसे भरा हूँ, मैं ध्रुव हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं परमपारिणामिकभाव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हूँ,—इस तरह, अनेक प्रकारके विचार सम्यक् प्रतीतिकी लगनवाले आत्मार्थीको आते हैं। परन्तु उसके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाली सम्यक् प्रतीतिका तो एक ही प्रकार होता है। प्रतीतिके लिये होनेवाले विचारोंके सर्व प्रकारोंमें 'मैं ज्ञायक हूँ' यह प्रकार मूलभूत है। ३१८.

'जीव अपनी लगनसे ज्ञायकपरिणतिको प्राप्त करता है।'

'मैं मात्र ज्ञायक हूँ' ऐसी ज्ञाता परिणतिको जीव अपनी अन्तर्मुख लगनसे ही प्राप्त करता है। ज्ञायकपरिणति अर्थात् 'मैं मात्र ज्ञाता हूँ' ऐसे श्रद्धान–ज्ञानस्वरूप निर्मल दशा। अपनी अंतरंग उत्कंठासे जीव उस दशाको पहुँचता है, धर्मकी निर्मलदशाको प्राप्त करता है।

जालना शहरमें एक दिगम्बर मुनि श्री भव्यसागरजीका चातुर्मास है। बीस वर्षका उनका दीक्षाकाल है और वे शीघ्रकवि हैं। यह पुस्तक (बहिनश्रीके वचनामृत) उनके हाथ आयी, पढ़ी। सोनगढ़का साहित्य पढ़कर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। वे लिखते हैं–अहा! दो सौ वर्षमें ऐसी बात प्रगट नहीं हुई थी; स्वामीजी! यह बात आपने कहाँसे निकाली? जालनाके तथा आसपासके दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी और तेरहपंथी—चारों सम्प्रदायके जैन लोग उनके दर्शन करते जाते हैं। वे उन्हें यह वचनामृत पुस्तक भेंट देते हैं और प्रतिदिन कमसे कम बीस मिनट पढ़नेकी प्रतिज्ञा देते हैं। उन्होंने यहाँसे सातसौ प्रतियाँ मँगवायी हैं। अहा! यह मार्ग तो कोई अलग ही है; लोगोंने सुना नहीं है और यों ही—व्रत करो, तप करो, भक्ति करो और यात्रा करो ऐसी—गाड़ी हाँक रहे हैं। भाई! वह सब तो रागकी क्रिया है; उसे धर्म मानना वह मिथ्यात्वका पोषण है।

भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंसे भरपूर ज्ञायक समुद्र है। जीव अपने अंतरकी लगनसे 'मैं तो मात्र ज्ञाता हूँ, राग नहीं हूँ'—इसप्रकार ज्ञायकपरिणतिको पहुँचता है, रागकी लगनसे नहीं। ज्ञायककी लगनसे रागरहित परिणति प्रगट होती है। अहा! यह क्या कह रहे हैं? भाषा सादी है परन्तु यथार्थ वस्तु तो यही है।

'मैं ज्ञायक हूँ, मैं विभावभावसे भिन्न हूँ, किसी भी पर्यायमें अटकनेवाला मैं नहीं हूँ, मैं अगाध गुणोंसे भरा हूँ, मैं ध्रुव हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं परमपारिणामिक भाव हूँ—इस तरह अनेक प्रकारके विचार सम्यक् प्रतीतिकी लगनवाले आत्मार्थीको आते हैं।'

मैं तो मात्र ज्ञाता.....ज्ञाता.....ज्ञाताद्रष्टा हूँ; शरीर, वाणी आदि परपदार्थ वह 'मैं' नहीं हूँ, उसकी क्रियामें नहीं कर सकता, विषयानुरागरूप अशुभभाव तथा दया–दान और व्रत–भक्ति आदि धर्मानुरागरूप शुभभाव मेरा स्वभाव नहीं है और एक समयकी पर्याय जितना भी मैं नहीं हूँ, मैं त्रिकाल शुद्ध ध्रुव ज्ञायक हूँ;—इसप्रकार जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करना है ऐसे सच्ची अंतरंग लगनवाले आत्मार्थी जीवको अनेक प्रकारके विचार आते हैं।

चतुर्थ गुणस्थानवर्ती ज्ञानी भी ऐसा मानता है कि–मैं तो मात्र ज्ञायक हूँ, सम्यग्दर्शनकी निर्मल पर्याय जितना मैं नहीं हूँ। निर्विकार स्वसंवेदनलक्षण निर्मल पर्याय क्षायोपशमिक ज्ञानरूप होनेसे यद्यपि एकदेश व्यक्तिरूप है तथापि ज्ञातापुरुष ऐसा भाता है कि 'जो सकल निरावरण–अखण्ड–एक–प्रत्यक्षप्रतिभासमय–अविनश्वर–शुद्ध–पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य ही मैं हूँ', परन्तु ऐसा नहीं भाता कि 'मैं खण्डज्ञानरूप हूँ।'

यह ज्ञानस्वरूप आत्मा मुक्त ही है—'स हि मुक्त एव', अबद्धस्पृष्ट है, अनन्य है, नियत है, अविशेष है, असंयुक्त है, एक है, शुद्ध है, सदा अरूपी तथा मात्र ज्ञान–दर्शन और आनन्दमय है—ऐसे अनेक प्रकारके विचार निर्णय करनेवाले जीवको आते हैं।

'मैं विभावभावसे भिन्न हूँ।' यह ज्ञायक आत्मा दया–दान आदि विभावभावसे पृथक् है। अरे! जो शुभरागसे लाभ मानता है उसे 'आत्मा विभावसे भिन्न है' यह कहाँ रहा? वह तो दृष्टि ही मिथ्या हो गई। पंचमहाव्रतके विकल्प भी शुभभाव हैं, विभावभाव हैं, उनसे ज्ञानी लाभ नहीं मानते। चौरासी लाख अवतारोंमें जीव अनन्त बार हजारों रानियोंको त्याग कर दिगम्बर साधु हुआ, बालब्रह्मचारीरूपमें रहकर मुनिपनेका पालन किया, परन्तु वे शुभ परिणाम धर्म हैं ऐसा मानकर वहीं अटक गया, और इसलिये उसे आत्माकी प्राप्ति नहीं हुई।

'किसी भी पर्यायमें अटकनेवाला मैं नहीं हूँ।' क्या कहते हैं? कि—शुभरागमें तो नहीं परन्तु जो आत्मसाधनामय निर्मल पर्याय है उसमें भी अटकनेवाला मैं नहीं हूँ। पं. श्री बनारसीदासजीने कहा है कि—

स्वारथके सांचे परमारथके सांचे चित्त,
सांचे सांचे बैन कहें, सांचे जैनमती हैं।

काहूके विरोधी नाहिं, पर्यायबुद्धि नाहिं,
आतमगवेषी न गृहस्थ हैं न जती हैं॥

अहा! यह चैतन राजा स्वानुभूति आदि शुद्ध पर्यायमें भी अटकनेवाला नहीं है। शुभराग भी संसारपंथ है, शिवपंथ नहीं है। निज ज्ञायकतत्त्वकी निर्मल दृष्टि, अनुभूति और स्थिरता ही शिवपंथ है।

'मैं अगाध गुणोंसे भरा हूँ।' समुद्रकी तो मर्यादा है; भगवान आत्मा तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्दादि अनन्तानन्त अगाध गुणोंसे भरा हुआ अमर्यादित महान पदार्थ है। उसका क्षेत्र भले ही शरीरप्रमाण—असंख्यातप्रदेशी—है, तथापि उसकी गुणगम्भीरता अपार है।

'मैं ध्रुव हूँ।' ज्ञानी ऐसा मानता है कि मैं क्षणिक पर्याय जितना नहीं हूँ, त्रिकाल

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नित्य ध्रुव हूँ। त्रैकालिक शक्तियोंका भण्डार कारणपरमात्मा ध्रुव परमपदार्थ ही मैं हूँ। रागकी बात तो कहीं रह गई परन्तु क्षणवर्ती निर्मल पर्याय तथा गुणभेदमें भी अटकनेवाला मैं नहीं हूँ, मैं तो अखण्ड ज्ञायक परमभाव हूँ।

'मैं शुद्ध हूँ;' शुभाशुभ भाव नहीं, परन्तु समस्त विभावरहित मैं त्रिकालशुद्ध हूँ, पवित्र हूँ।

'मैं परमपारिणामिकभाव हूँ।' कर्मके उदय या क्षय आदिकी अपेक्षारहित जो निरपेक्ष त्रैकालिक शुद्ध परमपारिणामिकभाव सो मैं हूँ।'

—ऐसे अनेक प्रकारके विचार, जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है ऐसे अंतरकी लगनवाले आत्मार्थी जीवको आते हैं।

'परन्तु उनके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाली सम्यक् प्रतीतिका तो एक ही प्रकार होता है।'

प्रतीति सम्बन्धी विचार तो अनेक प्रकारके होते हैं, परन्तु उससे प्रतीतिमें कुछ अनेक प्रकार नहीं हो जाते। उन विचारोंके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली सम्यक् प्रतीतिका तो एक ही प्रकार होता है।

'प्रतीतिके लिये होनेवाले विचारोंके सर्व प्रकारोंमें 'मैं ज्ञायक हूँ' यह प्रकार मूलभूत है।'

सम्यग्दर्शन तथा स्वानुभूति प्राप्त करनेके लिये जो अनेक प्रकारके विचार कहे उन सर्व प्रकारोंमें 'मैं ज्ञायक हूँ' यह प्रकार मूलभूत है। समयसारमें ज्ञायकको ही मुख्यरूपसे दरशाया है। निज आत्माकी ज्ञायकरूपसे प्रतीति ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–११६

दिनांक १४-१०-७८

वचनामृत–३१६

विभावसे पृथक् होकर चैतन्यतत्त्वको ग्रहण कर। यही करना है। पर्यायसन्मुख देखकर पर्यायमें कुछ नहीं करना है। द्रव्यदृष्टि करनेसे पर्यायमें दर्शन–ज्ञान–चारित्र आ ही जायँगे। कुआँ खोद तो पानी आयगा ही, लेने नहीं जाना पड़ेगा। चैतन्यपाताल फूटने पर शुद्धपर्यायका प्रवाह अपने-आप ही चलने लगेगा। ३१६.

'विभावसे पृथक् होकर चैतन्यतत्त्वको ग्रहण कर।'

परलक्षसे होनेवाले शुभाशुभ विकारी भाव वह विभाव हैं। उनसे भेदज्ञान द्वारा पृथक् होकर निर्विकार निज शुद्ध चैतन्यतत्त्वको ग्रहण कर। विभावभाव चैतन्यमूर्ति निज ज्ञायकतत्त्वसे स्वरूपसे सदा भिन्न ही हैं, उनका चैतन्यतत्त्वके साथ कभी एकत्व हुआ ही नहीं है। शुद्ध ज्ञानानन्दकंद चैतन्यतत्त्व शुभभावसे भी स्वरूपमें भिन्न है, तब क्या उन शुभभावोंसे उसका ग्रहण हो सकेगा? देव–शास्त्र–गुरुका बहुमान, पूजा–भक्ति, धर्मका पठन–श्रवण, व्रत–तपादि शुभभाव भी परलक्षी विभावभाव हैं, ज्ञायक चैतन्यतत्त्वका स्वरूप उनसे भिन्न है। शुभाशुभ भाव भी परलक्षी विभावभाव हैं, ज्ञायक चैतन्यतत्त्वका स्वरूप उनसे भिन्न है। शुभाशुभ समस्त विभावोंसे भिन्न होकर निज शुद्ध त्रैकालिक ध्रुव चैतन्यतत्त्वको ग्रहण कर; उसे लक्षमें लेकर अंतरमें शुद्ध परिणमन प्रगट कर। यह मूल वस्तु है।

'यही करना है।'

निज ज्ञायक द्रव्यस्वभावको लक्षगत करके पर्यायमें शुद्धता प्रगट करना वही मुख्य करना है। छहढालामें आता है न!—

लाख बातकी बात यहै, निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द–फन्द, निज आतम ध्याओ॥

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संसारकी सब उपाधि छोड़कर आनन्दरसकन्दरूप निज चैतन्यतत्त्वको विभावसे भिन्न जानो और ध्याओ। अहा! यह बात तो सम्प्रदायमें है ही नहीं। 'त्यागी' नाम धरानेवाले आजके उपदेशक भी ऐसा कहते हैं कि—'वर्तमानकालमें आनन्द या शुद्धोपयोग नहीं हो सकता, व्यवहार रत्नत्रयके शुभभाव होते हैं।' भाई! व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान और चारित्रके शुभभाव भी राग है, विभाव है, आकुलता है और धर्म तो आनन्दमय वीतरागता है; शुद्धोपयोग होनेपर आनन्दमय दशा प्रगट होती है। इस काल शुद्धोपयोगरूप आनन्ददशा प्रगट नहीं होती, इसका तो यह अर्थ हुआ कि इस काल धर्म प्रगट नहीं हो सकता; परन्तु यह बात यथार्थ नहीं है। वर्तमानकालमें भी विभावसे भिन्न निज त्रैकालिक शुद्ध चैतन्यतत्त्वको ग्रहण करे तो अंशतः वीतरागता और आनन्दमय शुद्धता प्रगट होती है।

आत्मद्रव्य स्वभावसे शुद्ध है, उसकी पर्यायमें शुभाशुभ विकार है; इसलिये कहते हैं कि 'पर्यायदृष्टि छोड़ और द्रव्यदृष्टि कर।' शुभाशुभ विकार चैतन्यकी जाति नहीं होनेसे अचेतन है। उन रागादि अचेतनभावोंसे भिन्न प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप निज चैतन्यतत्त्वको ग्रहण कर। यही करना है, बाकी सब बातें हैं। भवके अंतका कारण—सम्यग्दर्शन—जिसे प्रगट करना हो उसके लिये यह विशेष जरूरी बात है। विभावसे भिन्न होकर प्रतीतिमें निज शुद्ध चैतन्यको ग्रहण करे तब उसे सम्यग्दर्शन होगा।

अरे! अभी जहाँ पापके प्रेमसे भी निवृत्ति नहीं है वहाँ शुभभावसे हट जानेपर जो शुद्धता प्रगट होगी उसकी बात उसे कैसे जमेगी? उसे तो 'शुभभाव, देव–शास्त्र–गुरुके प्रति जो शुभराग वह संवर–निर्जराका कारण है' ऐसा जमता है। अरेरे! तू यह क्या कह रहा है भाई! क्या राग वीतरागताका कारण होगा? वीतरागता, अतीन्द्रिय आनन्ददशा प्रगट हो तो निज शुद्ध प्रज्ञाब्रह्मको ग्रहण करके विभावसे भिन्न होना पड़ेगा। 'ग्रहण कर' अर्थात् विभावसे हटकर त्रैकालिक ध्रुव चैतन्यतत्त्वमें जा, पर्यायदृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि कर। यही करना है। अहा! भाषा तो सादी है परन्तु भाव अति गम्भीर तथा उच्च हैं। इसमें वाद–विवादसे कोई अंत नहीं आ सकता।

'पर्यायसन्मुख देखकर पर्यायमें कुछ करना नहीं है।'

वर्तमान पर्यायके सामने देखनेसे नहीं, परन्तु अंतरमें द्रव्यदृष्टि करनेसे धर्म होता है। कोई कहे कि—अधः, अपूर्व और अनिवृत्ति यह सब करण शुभभाव हैं और उनसे सम्यक्त्व होता है। भाई! उसका तो द्रव्यदृष्टि द्वारा अभाव करके अंतरमें जाय तो सम्यक्त्व और शुद्धोपयोग हो। आजकल तो उपदेशक भी ऐसा कहते हैं कि इस कालमें शुद्धोपयोग नहीं हैं, शुभ ही हैं; शुभभावसे सम्यक्त्व, संयम आदि शुद्ध दशा प्रगट होती है। परन्तु ऐसा है नहीं; अंतरमें चैतन्यतत्त्वके ग्रहण द्वारा विभावसे पृथक् होनेपर सम्यक्त्व, शुद्धोपयोग और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संयमादि शुद्ध दशा वर्तमानकालमें भी प्रगट हो सकती है। प्रभु! यह तेरे हितकी बातें हैं। शुभभावसे संवर–निर्जरा मानना वह तो मिथ्यात्वरूपी महापाप है। उससे तू वर्तमानमें दुःखी है। आनन्दसागर निज भगवान आत्माको मिथ्यात्वके कारण दुःख सहना पडें ऐसा तो कौन चाहेगा भाई? आनन्दकन्द भगवान आत्मामेंसे हटकर जो शुभभावमें—पर्यायबुद्धिमें—बह गया उसे पर्यायके सन्मुख देखकर कुछ करना नहीं है। पर्यायके सामने देखकर क्या करेगा?

'द्रव्यदृष्टि करनेसे पर्यायमें दर्शन–ज्ञान–चारित्र आ ही जायँगे।'

आत्माकी पर्यायमें सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र नहीं हैं। वे कब प्रगट होंगे? कि—जब पर्यायदृष्टि छोड़कर त्रैकालिक निज शुद्ध चैतन्यतत्त्वका अंतरमें ग्रहण करेगा तब। अशुभ तथा शुभभावसे तो पृथक् होना है, तब बाकी कौनसा भाव रहा? शुद्ध भाव। द्रव्यदृष्टि करनेसे—चैतन्यको ग्रहण करनेसे—वर्तमान पर्यायमें शुद्धभाव अर्थात् सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र आ ही जाते हैं।

समयसारकी छठवीं गाथामें कहा है :—

नथी अप्रमत्त के प्रमत्त नथी, जे एक ज्ञायकभाव छे,
अे रीत 'शुद्ध' कथाय ने जे ज्ञात ते तो ते ज छे.

पर्यायमें गुणस्थानादिके जितने भेद है वे सब परमार्थतः ज्ञायकभावसे भिन्न हैं। पर्यायमात्रसे स्वरूपमें भिन्न ऐसे त्रैकालिक निज ज्ञायकभावको ग्रहण कर, उसका आश्रय कर, उसका अवलम्बन ले, दृष्टिको उसमें स्थापित कर दे। ज्ञानमें ऐसा निर्णय कर कि बस, करना तो यही है। शुभराग है वह कहीं ज्ञानकी पर्याय नहीं है। ज्ञायकभाव तो अंतर्मुख ज्ञानकी पर्यायसे ही ग्रहण हो सकेगा। अरे! चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमणके वे दुःख!—जीवित कोल्हूमें पेल देते हैं, जीवित दशामें चमड़ी उतारकर नमक छिड़कते हैं। ऐसे दुःख तूने अनन्तबार सहे हैं भाई! वह सब मिथ्यात्वभावके कारण हुआ है। उस भावको छोड़नेकी यह बात है। उस मिथ्यात्वभावको अंतरसे छोड़े नहीं और माने कि—'हम धर्मात्मा हैं', तो उससे तुझे हानि होगी प्रभु! यहाँ तो कहते हैं कि—अंतरमें द्रव्यदृष्टि करनेसे पर्यायमें निर्मलता—सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र—आ ही जायँगे।

'कुआँ खोद तो पानी आयगा ही, लेने नहीं जाना पड़ेगा। चैतन्य-पाताल फूटने पर शुद्ध पर्यायका प्रवाह अपने–आप ही चलने लगेगा।'

जैसे कुआँ खोदने पर पानी आयगा ही, अन्यत्र कहीं लेने नहीं जाना पड़ेगा; वैसे ही भीतर आत्मामें विभावका लक्ष छोड़ने तथा चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मामें लक्ष स्थापित करनेसे चैतन्य-पाताल फूटने पर पर्यायमें निर्मलताका प्रवाह अपने-आप चलने लगेगा। कुआँ खोदने पर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पानी आयगा ही, चैतन्य-पाताल फूटने पर अतीन्द्रिय आनन्दका प्रवाह अपने-आप चलने लगेगा। शुद्ध पर्यायका प्रवाह अर्थात् सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रका प्रवाह। चैतन्य-पाताल तो त्रैकालिक ध्रुवस्वरूप है; उसे ग्रहण करना अर्थात् चैतन्यमें जितनी शक्तियाँ हैं उन सबका पर्यायमें सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रादि स्वरूपमें परिणमित होना। तेरे जिनस्वरूपमें—चैतन्यपातालमें—भीतर सहज ज्ञान और सहज आनन्द आदि सब कुछ भरा है; उसे तू ग्रहण कर। ऐसा करनेसे सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी निर्मल पर्यायका प्रवाह अंतरमेंसे आयगा। अंतरका चैतन्य-पाताल फूटे और उसमेंसे निर्मलताका प्रवाह न आये ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।

ऐसी बातें? ऐसा मार्ग? हाँ; अपनी वर्तमानपर्याय त्रैकालिक ध्रुवमें ले जा, अर्थात् आनन्दकन्द ज्ञायकके अवलम्बनसे शुद्धोपयोग प्रगट कर। शुद्धोपयोग स्वयं निर्मलपर्याय है, परन्तु उस पर्यायसे ध्रुवद्रव्यको पकड़। 'आजकल शुद्धोपयोग नहीं होता' ऐसा कुछ लोग कहते हैं। अरेरे! प्रभु! प्रभु! प्रभु! क्या किया जाय? प्रभु! यह क्या किया? भगवानका विरह हुआ, केवलज्ञान, मनःपर्ययज्ञान या अवधिज्ञानकी उत्पत्ति हो ऐसी योग्यता नहीं रही, सच्चे भावलिंगी संत नहीं रहे; वर्तमानमें तो एक सम्यक् मति–श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिकी योग्यता रह गई है; उसमें यह वाद और विवाद उठ खड़े हुए हैं!!

भगवान आत्मा भीतर शान्तिका कूप है, अकषायभावका समुद्र है, आनन्दका उदधि है प्रभु! 'शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है।' उसे देख—उसका ग्रहण कर। शुभभावसे उसका ग्रहण नहीं होगा, वह पकड़में नहीं आयगा, क्योंकि वह स्वभावसे विरुद्ध भाव है। शुद्धभावसे निज ज्ञायक द्रव्यका ग्रहण होगा, क्योंकि वह स्वभावभाव है। अरेरे! जीव अपने ज्ञानमें ऐसा निर्णय भी नहीं करता! भाई! बिजलीकी चमक जितना यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, अवधि पूर्ण होने पर इसका अंत हो जायगा। एक ऐसा समय आयगा कि–'अरे, भाईको क्या हो गया?'.....ऐसा कहते होंगे इतनेमें तो फड़ाक्से शरीर छूट जायगा। वह कहाँ इसकी वस्तु थी?.....'बिजलीकी चमकमें मोती पिरो लो, झट पिरो लो।' ऐसा मनुष्य शरीर, अरे! ऐसा क्षयोपशम अन्यत्र (चींटी–मकोड़ा आदिमें) कहाँ है भाई! तू शुद्धोपयोगकी शान्ति द्वारा भीतर भरे हुए शान्तिके सागरको ग्रहण कर। उसकी जातके अनुरूप होकर ग्रहण कर–पकड़। वह बाह्य संयोगोंसे या रागादि विभावों द्वारा पकड़में नहीं आयगा।

शुभोपयोगको तो विष कहा है, क्योंकि वह विभाव है। भाई! उसका लक्ष छोड़ दे, वह तेरी वस्तु नहीं है; परमार्थसे वह तुझमें और तू उसमें नहीं है। अहा! ऐसे शुभभावके विभावसे हटकर भीतर शान्तसुधारससिन्धुमें—चैतन्यतत्त्वमें—एकाग्र होकर उसे ग्रहण कर। उसमें एकाग्र हो तो अवश्य तुझे सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्राप्त हो ही जायँगे। चैतन्य-पातालके फूटने पर शुद्ध पर्यायका प्रवाह अपने-आप चलने लगेगा। अहा! शब्द सादे–सरल और भाषा संक्षिप्त होनेपर भी सिद्धान्तोंका सार भरा है!!! *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–३२०

चैतन्यकी धरती तो अनन्त गुणरूपी बीजसे भरी, उपजाऊ है। इस उपजाऊ धरतीको ज्ञान–ध्यानरूपी पानीसे सींचने पर वह लहलहा उठेगी। ३२०.

'चैतन्यकी धरती तो अनन्त गुणरूपी बीजसे भरी, उपजाऊ है।'

चैतन्यमूर्ति ज्ञायकतत्त्वकी धरती–भूमि, स्वभाव–सहज ज्ञान एवं सहज आनन्दादि अनन्त गुणरूपी बीजसे भरी है, उपजाऊ–फलद्रुप है। अनन्त गुणरूपी रसकससे भरपूर ऐसी वह ज्ञायकभूमि 'उपजाऊ' धरती होनेसे आनन्द, शान्ति और वीतरागताको उत्पन्न करनेवाली है।

व्यवहारके कथनमें आता है कि–व्रत करो, त्याग करो, शास्त्र पढ़ो, देवदर्शन करो; श्रावकके 'देवपूजा, गुरुपास्ति.....' आदि श्रावकके षट्कर्म आते हैं न? किन्तु भाई! यह तो शुभभावकी बातें हैं, चैतन्यकी भूमि तो उन शुभभावोंसे भी भिन्न, अनन्त गुणरूपी बीजसे भरपूर, उपजाऊ है। जिसमें ऊँची जातिके चावल पैदा होते हैं और जिसमें साधारण अनाज कोदोंकी उत्पत्ति हो—ऐसी दोनों भूमि अलग–अलग होती हैं। भगवान आत्माकी ऊपजाऊ भूमिमें अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय सम्यग्दर्शन, अतीन्द्रिय स्वच्छता, प्रभुता आदि अनन्त गुणरूपी बीज भरे हैं। भीतर भरे हैं तो बाहर पर्यायमें प्रगट होंगे। इसलिये उस ज्ञायकभूमिका आदर कर, उसमें एकाग्र हो तो तेरी पर्यायमें शुद्धता प्रस्फुटित होगी। अहा! ऐसी बातें हैं।

अरे! ऐसा उपदेश कि जिसमें कुछ भी हाथ नहीं आये? तो फिर करना क्या? भाई! अनन्त जीव इस चैतन्य तत्त्वको समझकर—आराधकर ही मोक्षको प्राप्त हुए हैं। शुभाशुभ राग छूटने पर तू अशरण नहीं हो जाता, परन्तु वीतरागता हाथमें आती है; अनन्त शक्तियोंसे भरपूर उपजाऊ–फलद्रुप चैतन्यभूमि सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान, वैराग्य, स्वरूपरमणता, अतीन्द्रिय आनन्दादि स्वाभाविक अनन्त विशेषताओंको उत्पन्न करती हुई फलद्रुप हो जाती है।

'इस उपजाऊ धरतीको ज्ञान–ध्यानरूपी पानीसे सींचने पर वह लहलहा उठेगी।'

नारियलीकी जड़में चाहे जैसा गंदा पानी डाला हो तथापि वह पानी जड़के रास्तेसे तुरन्त ऊपर चढ़कर नारियलमें पहुँचकर मीठा हो जाता है। वैसे ही भगवान भी ऐसी फलद्रुप भूमि है कि उसमें सम्यग्ज्ञान–ध्यानरूप पानी सींचनेसे—एकाग्रता करनेसे आनन्दकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

फसल उत्पन्न हो जायगी, अंतरमेंसे वीतरागताके तथा आनन्दके झरने झरेंगे। नारियलकी जड़में पानी देनेसे ऊपर नारियलमें पानी भर जाता है और मीठा टोपरा होता है, ऐसे ही यह चैतन्यभूमि ऐसी फलद्रुप है कि उसे ज्ञान और ध्यानरूपी पानी पिलाया जाय तो भीतरसे आनन्द और शान्तिकी फसल पैदा होगी।

व्रत धारण करना, पूजा करना, भगवानके दर्शन करना, चार–छह घन्टे शास्त्र पढ़ना यह सब बाह्य क्रियाएँ हैं भाई! उनमें यदि रागादि कषायोंको मन्द किया हो तो वह शुभभाव है, विकल्प है, विभाव है। जिसमें विभावकी उत्पत्ति होती हो वह चैतन्यकी धरती नहीं है; फलद्रुप भूमिकी बात ही कुछ और है! उसमेंसे तो ज्ञान और आनन्द उत्पन्न हों ऐसी वह रसकसभरी भूमि है। आत्मामें ऐसा कोई गुण नहीं है जो विभाव उत्पन्न करे, परन्तु परके लक्षसे पर्यायमें पुण्य–पापके भाव होते हैं। पुण्य–पापरूप विभावकी फसल कहीं द्रव्यस्वभावमेंसे उत्पन्न नहीं होती, वे तो परके लक्षसे स्वयं नये पैदा किये हुए ऊपरी भाव हैं। वे वास्तवमें फलद्रुप चैतन्यभूमिका उत्पादन नहीं हैं, चैतन्य तो ज्ञान और आनन्दकी ऊपजाऊ धरती है।

ज्ञान और आनन्दादि अनन्त शक्तियोंसे—रसकससे भरपूर ऐसी निज चैतन्यभूमिमें ज्ञान–ध्यानरूप पानी पिला, पर तथा विभावसे भिन्नत्वकी प्रतीति करके स्वरूपस्थिरता कर, तो वह अवश्य फलित हो उठेगी। खेतमें गेहूँ, बाजरा, चना बोये हों तो कहा जाता है कि फसल खूब पकी है; ऐसे ही अनन्त गुणोंकी फलद्रुप भूमि ऐसे भगवान आत्मामें ज्ञानकी एकाग्रतारूप पानी पिलाये तो चैतन्यधरती खूब फलित हो उठेगी; उसकी दशामें सम्यग्दर्शन उत्पन्न होगा, शान्ति उत्पन्न होगी, आनन्द उत्पन्न होगा—अनन्त निर्मलताएँ फलित हो उठेंगी।

अरे! जीव अनादिसे दुःखी है। उसने शुभभाव ग्रहण करके मुनिपना भी अनंतबार धारण किया, परन्तु 'आतमज्ञानके बिना लेशमात्र सुख प्राप्त नहीं कर सका।' ऐसे शुभभाव तो वर्तमानमें हैं भी नहीं। अब उन शुभभावोंमें क्या धर्म मानना? क्या संयम मानना? शुभराग भी अजैनपना है। क्या अजैनपनेसे जैनपना प्रगट होगा? जैनत्व तो वीतराग भाव है, और वह वीतरागभाव तो चैतन्यकी धरतीमें ज्ञान–ध्यानरूप पानी पिलानेसे फलता है। भाई! अपनी फलद्रुप चैतन्यभूमिको श्रद्धा और ज्ञानकी एकाग्रतारूप पानी पिला, तो तुझे अंतरमें शुद्धोपयोग, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता आदि अनन्त शुद्धिओंकी फसल आयगी। अहा! ऐसा मार्ग है भाई!

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

वचनामृत–३२१

पर्याय पर दृष्टि रखनेसे चैतन्य प्रगट नहीं होता, द्रव्यदृष्टि करनेसे ही चैतन्य प्रगट होता है। द्रव्यमें अनन्त सामर्थ्य भरा है, उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ। निगोदसे लेकर सिद्ध तककी कोई भी पर्याय शुद्ध दृष्टिका विषय नहीं है। साधकदशा भी शुद्ध दृष्टिके विषयभूत मूलस्वभावमें नहीं है। द्रव्यदृष्टि करनेसे ही आगे बढ़ा जा सकता है, शुद्ध पर्यायकी दृष्टिसे भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। द्रव्यदृष्टिमें मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्यका ही स्वीकार होता है। ३२१.

'पर्याय पर दृष्टि रखनेसे चैतन्य प्रगट नहीं होता, द्रव्यदृष्टि करनेसे ही चैतन्य प्रगट होता है।'

क्या कहते हैं? कि—आनन्दमूर्ति चैतन्यभगवान जोकि त्रैकालिक ज्ञायक वस्तु है, उसकी वर्तमानदशा उत्पाद–व्यय और क्षणिक शुभाशुभ विभाववाली है, भगवान आत्मा तो भीतर शक्ति-अपेक्षासे ध्रुव तथा समस्त शुभाशुभ विभावोंसे रहित शुद्ध है। वर्तमान पर्याय पर दृष्टि डालनेसे त्रैकालिक ध्रुव चैतन्य लक्षगत नहीं होता। एक समयकी वर्तमान पर्यायमें—भले ही सिद्धकी पूर्णदशा हो फिर भी—स्थायी परिपूर्ण गुण, शक्ति एवं सत्त्व कहाँ हैं?

शुभरागसे तो नहीं किन्तु ज्ञानकी विकसित वर्तमान निर्मल पर्याय पर भी दृष्टि रखनेसे चैतन्य प्रगट नहीं होता। क्या कहा? कि–शुभ रागसे तो चैतन्य दृष्टिगत नहीं होता, परन्तु ज्ञानमें ज्ञातृत्वका जो विकास हुआ—ज्ञानके विकासमें ग्यारह अंग आदि करोड़ों श्लोकोंका ज्ञान हुआ—उस पर दृष्टि रखनेसे चैतन्य अनुभवमें नहीं आता।

जीव ऐसा माने कि मुझे इतनी जानकारी हुई, हम दूसरोंसे चतुर हैं, दूसरोंको समझा सकते हैं, दूसरे हमें 'ज्ञानी' कहें ऐसी हमारी कथनपद्धति है। भाई! यह सब छोड़ दे। बेनके एक बोलमें आता है न?–चेतकर रहना। 'मुझे सब आता है' ऐसे विद्वत्ताके मानमें नहीं चढ़ना। विद्वत्ताके मानसे दूर रहना अच्छा है। प्रसिद्धिके प्रसंगोंसे दूर भागनेमें लाभ है। वे सब प्रसंग निःसार हैं, सारभूत एक आत्मस्वभाव है।

देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धा, शास्त्रका ज्ञान और व्रतादिका शुभाचरण—यह सब पर्यायमें हैं। निर्मलता प्रगट हो वह भी पर्याय है। पर्यायके ऊपर लक्ष रखनेसे निर्मलता प्रगट नहीं होती, क्योंकि पर्यायमें नवीन पर्याय प्रगट करनेकी शक्ति या गुणका सत्त्व नहीं है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसमें सत्त्व हो उसके अवलम्बनसे निर्मलता प्रगट होती है। शास्त्रज्ञान है वह शब्दज्ञान है, आत्मज्ञान नहीं है। परलक्षी ज्ञान वह सम्यग्ज्ञान नहीं है; उसके लक्षसे चैतन्य प्रगट नहीं होता। पढ़े–लिखे लोग अपनी विद्वत्ताके मानमें चढ़ जाते हैं कि–हमें आता है, हम बहुत पढ़े हैं। भाई! धीरज रख! थोड़ी धीरज रख! पढ़ाईके ज्ञानकी पर्याय अथवा शब्दकी पर्याय है वह कोई आत्माके ज्ञानकी पर्याय नहीं है। पढ़ाईके ज्ञानकी पर्याय पर दृष्टि रखनेसे चैतन्य दृष्टिगत नहीं होता, अंतरमें द्रव्यदृष्टि करनेसे ही चैतन्यप्रभु दृष्टिगत होता है। जिसमें ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणरत्नोंका भण्डार भरा है ऐसे निज ज्ञायकतत्त्व पर दृष्टि देनेसे ही चैतन्य प्रगट होता है—आनन्दकन्द ज्ञायक प्रभु लक्षगत होता है और तभी वर्तमान पर्यायमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान तथा चारित्रकी निर्मलताएँ प्रगट होती हैं। अहा! ऐसी बातें हैं भाई!

'द्रव्यमें अनन्त सामर्थ्य भरा है, उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ।'

ज्ञायकवस्तु जो निज प्रभुत्वमय अगाध तत्त्व है उसमें तो अनन्त सामर्थ्य—ज्ञान एवं आनन्दादि अनंत गुण और एक–एक गुणमें भी अनंत सामर्थ्य—भरा है; उस शुद्ध अभेद ध्रुव ज्ञायक द्रव्यसामान्य पर दृष्टि स्थिर करो। शास्त्र पढ़कर दो शब्द बोलना आ जाय तो....भाई! रहने दे उसका अभिमान; वह सब विकार और परलक्षी ज्ञानकी विद्वत्ता है। वह सब बहिर्लक्षी ज्ञान जड़का ज्ञान है, ज्ञाताका ज्ञान नहीं है। वास्तवमें तो वह ज्ञेयनिमग्न ज्ञान है, ज्ञाननिमग्न ज्ञान नहीं है। जो जीव पर ज्ञेयमें निमग्न है उसे ज्ञानमें मग्नता नहीं आती। दूसरोंकी अपेक्षा हम अच्छी चर्चा करते हैं—ऐसा जिसे विद्वत्ताका अभिमान है वह ज्ञेयोंमें निमग्न है, ज्ञानमें नहीं। ऐसी बातें सुनना भी कठिन लगता है, परन्तु भाई! यह बातें अद्भुत और अपूर्व हैं। अनादिसे जो माना है उससे अन्य मानता है। वस्तु तो अनन्त सामर्थ्यसे भरपूर शुद्ध ज्ञायक द्रव्य है, वहाँ दृष्टिको स्थिर करो—लगाओ—ध्रुव शुद्ध परमभाव पर रुचिको रोको।

'निगोदसे लेकर सिद्ध तककी कोई भी पर्याय शुद्ध दृष्टिका विषय नहीं है।'

अरे! जो ज्ञान परलक्षी है, ज्ञेयनिमग्न है, उसकी बात तो छोड़ो, परन्तु जो पूर्ण शुद्ध सिद्धपर्याय है वह भी शुद्ध दृष्टिका विषय नहीं है। शुद्ध दृष्टिका विषय तो त्रैकालिक ध्रुव निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्य है न! उसका विषय निगोदसे लेकर सिद्ध तककी कोई भी पर्याय नहीं है। पर्याय तो नहीं परन्तु कोई गुणभेद भी द्रव्यदृष्टिका विषय नहीं है। दृष्टिका ध्येय अभेद ध्रुवतत्त्व है, उसमें अनंत शक्तियाँ विद्यमान हैं। अनंत सामर्थ्य भरपूर निज द्रव्यसामान्यमें दृष्टि दे; पर्याय तो एक समयकी विनाशीक अवस्था है, उसमें स्थायी अनंत बल कहाँसे आयगा? भले ही केवलज्ञानकी या सिद्धकी पर्यायमें अनंत सामर्थ्य व्यक्त हुआ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, परन्तु वह तो एक समयकी व्यक्त अवस्थाका पूर्ण सामर्थ्य है, वह कहीं द्रव्यका त्रैकालिक ध्रुवसामर्थ्य नहीं है।

'साधकदशा भी शुद्ध दृष्टिके विषयभूत मूलस्वभावमें नहीं है।'

दृष्टिका विषय तो त्रैकालिक शुद्ध निज ज्ञायक भगवान है। ध्रुव द्रव्यस्वभावके अवलम्बनसे जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप निर्मल साधकदशा—मोक्षमार्ग शुद्धोपयोगकी परिणति, वीतराग दशा—प्रगट हुई वह भी शुद्धदृष्टिके विषयभूत, मूलस्वभावमें नहीं है, क्योंकि वह सब तो पर्यायें हैं। द्रव्यस्वभावके आश्रयसे जो दर्शन, ज्ञान एवं स्वरूपलीनता हुई वह साधकपर्याय भी शुद्धदृष्टिके विषयभूत मूलस्वभावमें नहीं है। ऐसा वस्तुस्वरूप है....आया कुछ समझमें? देव–शास्त्र–गुरु आदि पर द्रव्य, शुभाशुभ विभाव या परलक्षी शास्त्रज्ञान तो नहीं, किन्तु स्वलक्षसे प्रगट हुआ सम्यक्त्व, शान्ति और आनन्दकी पर्याय भी शुद्ध दृष्टिका विषय नहीं है।

अरेरे! अनंतकालमें जो करना था वह तो जीवने किया नहीं, और दूसरी माथापच्ची करके मर गया। धर्मके बहाने भी व्रत, उपवास और यात्राकी बाह्यक्रियामें तथा शुभरागमें अटक गया। यहाँ तो कहते हैं कि–बाह्यक्रिया तथा शुभराग तो नहीं, किन्तु अंतरमें द्रव्यदृष्टिके बलसे जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी निर्मल साधकदशा प्रगट हुई वह भी शुद्धदृष्टिका विषय नहीं है; क्योंकि वह भी पर्याय है न? त्रैकालिक ज्ञायकभाव, नित्यानन्द ध्रुवभाव, भूतार्थ स्वभावभाव वह दृष्टिका विषय है; उस विषयमें साधकभाव या अन्य कोई भी पर्याय नहीं है।

'द्रव्यदृष्टि करनेसे ही आगे बढ़ा जा सकता है, शुद्धपर्यायकी दृष्टिसे भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।'

जिसमें ज्ञान और आनन्दादि अनंतगुणोंका माल भरा है ऐसे निज शुद्ध ध्रुव ज्ञायकद्रव्यकी दृष्टि करनेसे—दृष्टि उसमें स्थिर रहनेसे—सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रादिमें आगे बढ़ा जा सकता है; सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायोंके आश्रयसे आगे नहीं बढ़ा जाता, त्रैकालिक ध्रुव स्वभावके आश्रयसे आगे बढ़ा जाता है।

'द्रव्यदृष्टिमें मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्यका ही स्वीकार होता है।'

द्रव्यदृष्टि ही सम्यग्दृष्टि है। सम्यग्दर्शनमें निज अखण्ड एक शुद्ध ज्ञायकभावका ही—निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्यका ही—स्वीकार होता है। द्रव्यदृष्टि बंध–मोक्षादि सर्व प्रकारकी पर्यायोंको दूर रखकर एक निरपेक्ष सामान्य स्वरूपको ही ग्रहण करती है; द्रव्यदृष्टिके विषयमें गुणभेद भी नहीं होते। ऐसी शुद्ध दृष्टि प्रगट करना सो सम्यग्दर्शन अर्थात् धर्मकी प्रथम सीढ़ी है।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१२०

दिनांक १५-१०-७८

वचनामृत–३२२

ज्ञानीकी दृष्टि अखण्ड चैतन्यमें भेद नहीं करती। साथमें रहनेवाला ज्ञान विवेक करता है कि 'यह चैतन्यके भाव हैं, यह पर हैं'। दृष्टि अखण्ड चैतन्यमें भेद करनेको खड़ी नहीं रहती। दृष्टि ऐसे परिणाम नहीं करती कि 'इतना तो सही, इतनी कचास तो है'। ज्ञान सभी प्रकारका विवेक करता है। ३२२.

'ज्ञानीकी दृष्टि अखण्ड चैतन्यमें भेद नहीं करती।'

जिसे चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा प्रतीति, ज्ञान और अनुभवमें आया उसे यहाँ ज्ञानी अथवा धर्मी कहते हैं। ज्ञानीकी दृष्टि अर्थात् धर्मीकी दृष्टि निज अखण्ड चैतन्यतत्त्वमें भेद नहीं करती। पर्यायमें नवतत्त्वके भेद व्यवहार है, परन्तु त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यस्वभावकी अपेक्षासे देखने पर भगवान आत्मा उस भेदरूप व्यवहारसे भिन्न है। दृष्टि नवतत्त्वोंकी पर्यायका भेद नहीं करती। दृष्टि तो निर्विकल्प है न? इसलिये वह ज्ञायक आत्मवस्तुको निर्विकल्परूप ही मानती है; उसका नवतत्त्व आदि कोई भी भेद उसे दिखायी नहीं देता। दृष्टिका काम श्रद्धा करना है, दृष्टि स्वयं श्रद्धागुणकी निर्विकल्प पर्याय है। उसका विषय ज्ञानादि अनन्त गुणोंसे भरा हुआ अभेद अखण्ड एकरूप चैतन्यरत्नाकर है। सम्यग्दर्शनका विषय अभेद एकरूप चैतन्यमात्र आत्मवस्तु है, क्योंकि स्वयं ज्ञानस्वरूप नहीं है इसलिये वह भेदको नहीं जानता। 'यह द्रव्य है, यह गुण है और यह पर्याय है' ऐसे भेदको दृष्टि स्वीकार नहीं करती; वह तो त्रैकालिक ध्रुव अभेद एकरूप अखण्ड चैतन्यपिण्डको स्वीकार करती है। दृष्टि यदि भेदको स्वीकार करे तो वह स्वयं ज्ञान हो जाय।

''साथमें रहनेवाला ज्ञान विवेक करता है कि 'यह चैतन्यके भाव हैं, यह पर है'।''

विवेक अर्थात् जीवादि जो सर्व वस्तुएँ निज–निज स्वरूपसे भिन्न–भिन्न हैं उन्हें तदनुसार जानना। ज्ञान, आनन्द और शान्ति आदि आत्माके भाव हैं। पर्यायमें चाहे जितनी

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हीनता आयी, तथापि वस्तुमें और उसके गुणोंमें हीनता कदापि नहीं हुई। साधक दशा है तबतक पर्यायमें हीन दशा है। साधकको दृष्टिमें पर्यायमात्रका स्वीकार नहीं है, तथापि ज्ञान जानता है कि मेरी पर्यायमें मेरे अपराधसे अभी भी हीन दशा है। ज्ञान सब जानता है—द्रव्यको जानता है, गुणको जानता है और पर्यायको भी जानता है। दृष्टिके साथ वर्तता ज्ञान विवेक करता है कि यह चैतन्यका ध्रुव स्वभाव है, यह स्वभावके आश्रयसे प्रगट हुई शुद्ध परिणति है, यह पुरुषार्थकी अशक्तिसे हुए रागादि विभाव हैं और यह शरीर, वाणी आदि सब पर हैं'। स्वभावसे आत्मा परिपूर्ण है और पर्यायसे अपूर्ण तथा अशुद्ध है—ऐसा ज्ञान विवेकपूर्वक यथार्थ जानता है।

'दृष्टि अखण्ड चैतन्यमें भेद करनेको खड़ी नहीं रहती।'

दृष्टिका विषय पूर्णानन्दसे भरपूर, चैतन्यरसका सागर अभेद अखण्ड एकरूप ध्रुव ज्ञायकवस्तु है। भेदको जानना वह दृष्टिका कार्य नहीं है। दृष्टि स्वयं श्रद्धागुणकी पर्याय है, परन्तु उसका विषय जीवत्व, चिति आदि अनन्तशक्तियोंसे परिपूर्ण अभेद आत्मा है। समयसारकी 'आत्मख्याति' टीकाके परिशिष्टमें ४७ शक्तियोंके वर्णनमें भगवान आत्मामें एक जीवत्व शक्ति कही है न? सुख, सत्ता, चैतन्य तथा अवबोधरूप निज स्वभावप्राणों द्वारा जीवका जीवन सदा स्थिर रहता है वह जीवत्वशक्ति भी जीवमें अभेद और परिपूर्ण है। चितिशक्ति—जीवका जो ज्ञान–दर्शनरूप प्रकाश—भी पूर्ण है। सुखशक्ति भी पूर्ण है। ज्ञान उन सब शक्तियोंको जैसी हैं वैसी जानता है परन्तु दृष्टि उस किसी गुणभेदको स्वीकार नहीं करती, उसका विषय तो गुणोंसे भरपूर अभेद ज्ञायक है।

दृष्टिके विषयभूत अभेद चैतन्य महाप्रभुमें जो अनन्त गुण हैं उनमें वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, स्वच्छत्व आदि भी हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, और अधिकरण आदि कारक शक्तियाँ भी हैं। पर्यायमें न्यूनाधिकता भले हो परन्तु अंतरमें गुणशक्ति तो परिपूर्ण है। पर्यायमें भले ही उत्पाद–व्यय अपूर्ण हो, परन्तु भीतर उत्पाद–व्यय–ध्रुवत्वनामकी शक्ति तो सदैव परिपूर्ण है। आत्मद्रव्यके सत्त्वभूत ध्रौव्यसे आलिंगित सदृश और व्यय–उत्पादसे आलिंगित विसदृश जिसका स्वरूप है ऐसे एक अस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्ति, कर्मबंधके अभावसे व्यक्त की जाने पर, सहज, स्पर्श–रस–गंध–वर्णशून्य ऐसे आत्मप्रदेशोंस्वरूप अमूर्तत्वशक्ति, आत्मा ज्ञातृत्वके अतिरिक्त, कर्म जिनमें निमित्त हैं ऐसे भावोंका कर्ता नहीं होता ऐसी अकर्तृत्वशक्ति, ज्ञातृत्वमात्रसे भिन्न ऐसे विभावपरिणामोंके उपभोगके विरामस्वरूप अभोक्तृत्वशक्ति, स्वयं प्रकाशमान स्पष्ट ऐसे स्वसंवेदनमयी प्रकाशशक्ति, क्षेत्र और कालसे अमर्यादित ऐसे निज चैतन्यके विकासस्वरूप असंकुचितविकासत्वशक्ति, अपने ज्ञानमें अन्यको प्रमेय करना और अन्यके ज्ञानमें स्वयं प्रमेय होना ऐसे प्रमाण–प्रमेयस्वभावरूप परिणम्य–

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणामकत्वशक्ति, जो अन्यका कार्य नहीं है और अन्यका कारण नहीं है ऐसा जो एक द्रव्य उस–स्वरूप अकार्यकारणत्वशक्ति इत्यादि अनन्तशक्तियोंसे परिपूर्ण अभेद द्रव्य पर ज्ञानीकी दृष्टि होती है। दृष्टि गुणभेदकी भी अपेक्षा नहीं रखती, वह तो अनन्त रसकससे भरे हुए शाश्वत स्तम्भ पर—अभेद द्रव्यस्वभाव पर—स्थिर हुई सो स्थिर ही रहती है।

अहा, ऐसी बात! भाई! क्या हो सकता है? भगवानका विरह हुआ, परन्तु यह बात रही जैसीं की तैसी। भले ही भगवान नहीं हों, परन्तु आत्मा तो ज्योंका त्यों विद्यमान है। समयसारकी ७२वीं गाथाकी टीकामें आत्माको 'भगवान आत्मा' कहा है न? वर्तमान पर्यायमें भले अल्पता सही, किन्तु शक्ति-अपेक्षासे तीनोंकाल ज्योंका त्यों परिपूर्ण भगवान है। दृष्टिमें तो ज्ञानीको अपने आनन्दकन्द भगवानका विरह है ही नहीं। अध्यात्मतत्त्वकी ऐसी बातें कठिन लगनेसे लोग क्रियाकाण्डमें चढ़ गये। 'एकान्त है, एकान्त है' ऐसा कहकर इस बातको उड़ा दिया; किन्तु भाई! यह तो तुम्हारे हितकी बात है।

दृष्टि भले औपशमिक, क्षायोपशमिक या क्षायिक भावरूप हो, किन्तु उसके विषयभूत वस्तु तो सदा पूर्ण ही है। औदयिकभावका त्याग करके क्षायिकपर्याय प्रगट हुई; वहाँ औदयिकभावका त्याग नहीं था तब भी वस्तु तो स्वभावसे परिपूर्ण ही थी, और क्षायिकपर्याय हुई उस काल भी वस्तु तो पूर्ण ही है। अहा! वस्तुस्वरूप तो ऐसा है, मार्ग तो यह है भाई! दृष्टिका विषय तो अनन्तगुणोंकी पूर्णतासे भरा हुआ अभेद द्रव्य है। स्वरूप तो ऐसा है; मानो या न मानो.....जगत स्वतंत्र है।

आत्मा ज्ञानरूप है इसलिये तद्रूप और ज्ञेयरूप नहीं है इसलिये अतद्रूप–इसप्रकार वस्तुमें वस्तुपनेको उत्पन्न करनेवाली अस्ति–नास्ति एक–अनेक, नित्य–अनित्य आदि परस्पर विरुद्ध दो शक्तियोंका होना जिसका लक्षण है ऐसी विरुद्धधर्मत्वशक्ति; इसप्रकार तत्त्वशक्ति, अतत्त्वशक्ति, भावशक्ति, अभावशक्ति, भाव–अभावशक्ति, अभाव–भावशक्ति, भावभावशक्ति और अभाव–अभावशक्ति तथा अपना भाव अपना स्व और स्वयं उसका स्वामी—ऐसे सम्बन्धमयी सम्बन्धशक्ति इत्यादि अनन्त शक्तियाँ चैतन्यप्रभुका वैभव हैं। दृष्टि गुणभेदको नहीं देखती, परन्तु साथमें वर्तता हुआ ज्ञान सब विवेक करता है। 'यह पर है, यह परिपूर्ण अभेद एकरूप स्वद्रव्य है, यह ज्ञानादि गुण हैं और यह शुद्ध या अशुद्ध पर्याय है' इसप्रकार ज्ञान जैसा है वैसा बराबर जानता है, तथापि दृष्टिका विषय तो सदा अभेद एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी नहीं छूटता।

आगे बेनके एक बोलमें आयगा कि—साधक जीवकी दृष्टि निरन्तर अभेद ध्रुव शुद्धात्मद्रव्य पर होती है, तथापि साधक जानता सबको है;—वह शुद्ध–अशुद्ध पर्यायोंको जानता है और वह जानते हुए उनके स्वभाव–विभावपनेका, उनके सुख–दुःखरूप वेदनका,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उनके साधक–बाधकपनेका इत्यादिका विवेक वर्तता है। साधकदशामें साधकको योग्य अनेक परिणाम वर्तते हैं, परन्तु 'मैं परिपूर्ण हूँ' ऐसा बल सतत साथ ही साथ रहता है। पुरुषार्थरूप क्रिया अपनी पर्यायमें होती है और साधक उसे जानता है, तथापि दृष्टिके विषयभूत ऐसा जो निष्क्रिय द्रव्य वह अधिकका अधिक रहता है।—ऐसी साधकपरिणतिकी अटपटी रीतिको ज्ञानी बराबर समझता है, दूसरोंको समझना कठिन लगता है।

दृष्टि अखण्ड चैतन्यमें भेद करनेको खड़ी नहीं रहती। विभावके भेद, अपूर्ण–पूर्ण पर्यायके भेद या गुणके भेद—एक भी भेदको दृष्टि स्वीकार नहीं करती। अभेद ध्रुव द्रव्यसामान्य पर स्थिर दृष्टि 'मुझे सम्यग्दर्शन, संयम या केवलज्ञान प्रगट हुआ या नहीं' ऐसा देखनेको नहीं बैठती। वह तो प्रारम्भसे पूर्णता तक, सर्व भेदोंको निकालकर, अखण्ड चैतन्य पर ही संस्थित रहती है। किसी भी प्रकारकी आशाके बिना बिलकुल निस्पृहभावसे ही दृष्टि अभेद पूर्णस्वरूपका अवलम्बन लेती हुई प्रगट होती है। अहा! ऐसी बातें हैं। द्रव्यदृष्टि गुण या पर्यायके किसी भी भेदको स्वीकार नहीं करती।

"दृष्टि ऐसे परिणाम नहीं करती कि 'इतना तो सही, इतनी कचास तो है'।"

दृष्टिका आलम्बन निज अभेद ध्रुव द्रव्यसामान्य है, वह साधक या बाधक पर्यायका अवलम्बन नहीं लेती। वह ऐसे परिणाम नहीं करती कि 'इतनी शुद्धि प्रगट हुई है और अभी इतनी अशुद्धि टलना बाकी है।' साथ रहनेवाली ज्ञानपरिणति बराबर विवेक करती है कि 'इतनी निर्मलता स्वभावके आश्रयसे प्रगटी है और अभी इतनी कचास तो है।' अन्य सब बाहरी योग्यता हो या न हो, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? जो अंतरमें हित–अहितका विवेक करे उसे ज्ञान कहते हैं?

अहाहा! यह (बहिनश्रीके वचनामृत) कोई अद्भुत वस्तु आ गई है! भले ही आज तक दूसरी बीस पुस्तकें छप चुकी हैं परन्तु यह तो मूलवस्तुको सादी भाषामें सरलतासे बतलानेवाली है। अरे! मध्यस्थ होकर, आग्रह छोड़कर एकबार यह पढ़े, विचारे तो उसे खबर पड़े कि सत्य तो ऐसा है; परन्तु क्या किया जाय?.....आजकल तो सम्यग्दर्शनके बिना—भगवान आत्माको जाने बिना—व्रत, तपादि करने लगे हैं; कोई प्रतिमाधारी हुआ, कोई नग्न दिगम्बर साधु बने; किन्तु भाई! यह सब तो अंतरंग कषायोंको मन्द किया हो तो, शुभराग है; उसे धर्म मानना वह मिथ्यात्व भाव है। शुभराग आस्रव है और आस्रवको धर्म—संवर, निर्जरा—मानना वह मिथ्यात्व है। समयसारकी टीकामें (गाथा–३८) आता है न?—'नर, नारक आदि जीवके विशेष, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्षस्वरूप जो व्यावहारिक नवतत्त्व उनसे, टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभावरूप भाव द्वारा, अत्यन्त भिन्न हूँ इसलिये मैं शुद्ध हूँ'। नवतत्त्वोंके भेदभाव तो पर्याय हैं। पर्यायमात्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकसामान्यमें नहीं आती। संवर, निर्जरा और मोक्षस्वरूप निर्मल पर्याय भी त्रैकालिक ध्रौव्यसे स्वरूपमें अत्यन्त भिन्न है। अरे! अभ्यास नहीं होनेसे ऐसी बातें लोगोंको कठिन लगती हैं; इसलिये 'यह किया और वह किया' ऐसे त्यागमें लग जाते हैं, परन्तु जहाँ अभी सम्यग्दर्शनका ठिकाना नहीं है वहाँ त्याग कैसा?

अहा! दिगम्बर जैन सन्तोंकी वाणी तो देखो। श्रीमद् राजचन्द्रने लिखा है न? कि—'दिगम्बरके तीव्र वचनोंके कारण कुछ रहस्य समझा जा सकता है। श्वेताम्बरकी शिथिलतासे रस मन्द होता गया।' श्रीमद् तो अपना कार्य कर गये हैं। अन्तमें कहा कि–भाई मनसुख! माताजीको खेदखिन्न नहीं होने देना, मैं अपने स्वरूपमें लीन होता हूँ। बात अक्षरशः सत्य है। भले चारित्र नहीं था, सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण था, जिससे भवच्छेद करके चले गये। अहा! वस्तु तो ऐसी है। लोग बाह्य त्याग करनेवालेको कहते हैं कि 'यह त्यागी हैं', परन्तु अंतरमें मिथ्यात्वका त्याग क्या वस्तु है उसकी तो उन्हें खबर ही नहीं है। आजकल तो साधु होकर भी ऐसा कहते हैं कि–वर्तमानमें तो शुभभाव ही होता है, शुद्धभाव तो श्रेणी चढ़ने पर ही होगा। अरेरे! भाई! यह तू क्या करता है? बाह्यमें सर्वज्ञ परमात्माका तो विरह हुआ है और अंतरमें पूर्णानन्द प्रभु विराजमान हैं वहाँ जाना तुझे अच्छा नहीं लगता; इसलिये शुभभावमें सम्यक्त्व—धर्म मानकर अटक गया है। यहाँ तो यह बात चल रही है—दृष्टि ऐसे परिणाम नहीं करती कि—इतनी शुद्धि हुई और इतनी कचास है।

'ज्ञान सभी प्रकारका विवेक करता है।'

ज्ञानकी एक समयकी प्रगट पर्यायमें भी इतनी शक्ति है कि वह सर्व प्रकारका विवेक करे। ज्ञानमें शुद्धात्म द्रव्यके प्रति निरन्तर जोर वर्तता है, अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांशकी उपेक्षा भी होती है, शुद्ध पर्यायांशका सुखरूप वेदन होता है और अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावोंका समावेश है—वह दुःखरूपसे, उपाधिरूपसे वेदनमें आता है। दृष्टिके साथ वर्तते हुए ज्ञानमें ऐसा विवेक सहजरूपसे होता है।

*

हे जीव! तू अनादिकालसे शुभाशुभ भाव करता आया है; अब तो शुद्धात्माको ग्रहण कर। अनंत जीवोंने उस शुद्धात्माके मार्ग पर चलकर स्वानुभूतिकी साधना की है, अंतरमें समाधिको साधा है। तू भी उसी मार्ग पर जा। गुरुदेवकी यही शिक्षा थी। —*बहिनश्री चम्पाबेन।*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–३२३

जिसने शान्तिका स्वाद चख लिया हो उसे राग नहीं पुसाता। वह परिणतिमें विभावसे दूर भागता है। जैसे एक ओर बर्फका ढेर हो और दूसरी और अग्नि हो तो उन दोनोंके बीच खड़ा हुआ मनुष्य अग्निसे दूर भागता हुआ बर्फकी ओर ढलता है, उसीप्रकार जिसने थोड़ा भी सुखका स्वाद चखा है, जिसे थोड़ी भी शान्तिका वेदन वर्त रहा है ऐसा ज्ञानी जीव दाहसे अर्थात् रागसे दूर भागता है एवं शीतलताकी ओर ढलता है। ३२३.

'जिसने शान्तिका स्वाद चख लिया हो उसे राग नहीं पुसाता।'

भगवान आत्मा समस्त शुभाशुभ विभावोंसे रहित चिदानन्दकन्द निर्विकल्प शान्तिका सागर है। जिसने अंतर्मुख दृष्टि करके, शान्तिके सागरको यथार्थरूपसे जानकर उसका अंशतः स्वाद चखा है वह जीव सम्यग्दृष्टि है। सम्यग्दर्शन होनेपर स्वानुभूति प्रगट होती है। स्वानुभूतिमें अनन्त गुणसागर आत्मा अपनी शान्ति एवं आनन्दादि गुणोंकी कोई अद्भुत स्वाभाविक पर्यायोंमें केलि करता वेदनमें आता है। शान्तिका सागर जिसको अंशतः भी वेदनमें आया है उसे शुभराग भी नहीं पुसाता।

व्रतादिका शुभराग तो आस्रव है; वह अशुचि, स्वभावसे विपरीत, दुःख और दुःखका कारण है। वह सम्यक्त्व और संयमका कारण कैसे हो सकता है? जो दुःख है वह संवर–निर्जराका कारण? भगवानके तो अंतरमें शान्तरस परिपूर्ण परिणमित हो गया है। 'उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में'; जिनेन्द्र भगवानकी मुद्रा एवं वाणीमें मानो उपशमरसका पिण्ड ढल गया हो! भीतर भगवान ज्ञायक आत्मा स्वयं उपशमस्वरूप है। वह स्वयं अकषायस्वरूप, वीतरागस्वरूप, सम्यक्त्व और चारित्रस्वरूप है। उसकी अकषाय शान्तिका जिसने अंशतः भी स्वाद चखा है उसे किसी भी प्रकारका राग पुसाता–रुचता नहीं है। भूमिकानुसार दया–दानके, पूजा–भक्तिके या व्रत–तपके शुभ विकल्प आयें, परन्तु अंतरकी शान्ति लेनेवालेको वे नहीं रुचते। शुभभाव रुचिकर नहीं लगता, तथापि भूमिकानुसार आये बिना रहता भी नहीं है। अहा! ऐसी बातें हैं।

'वह परिणतिमें विभावसे दूर भागता है।'

अहा! सम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं? कि—जिसे पूर्णानन्दका नाथ निज ज्ञायक प्रभु अपनी प्रतीतिमें, ज्ञानमें और वेदनमें प्रगट रूपसे आ गया है। उसे शान्तिका सागर ऐसा जो निज परमात्मा, उसका स्वाद जिसे आया है वह परिणतिमें पुण्य–पापके विभावरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अग्निसे दूर भागता है। अज्ञानीको शुभरागमें उल्लास आता है, ज्ञानीको उसमें उल्लास नहीं है। ज्ञानीको शुभरागमें भी अशान्ति दिखायी देती है इसलिये वह वहाँसे हटकर शान्तिमें आता है।

जो अनन्त शक्तियाँ स्वरूप-भण्डारमें भरी पड़ी हैं उन सबका यथासम्भव वेदन चौथे गुणस्थानमें आ जाता है। अहा! भाई! सम्यक्त्व किसे कहते हैं? लोग तो मानते हैं कि—'भगवानकी और आचार्यकी वाणीको मानें वह सम्यक्त्व है।' प्रभु! परद्रव्यको मानना वह तो विकल्प, आकुलता और दुःख है। जिसे भीतरसे शान्तिका स्वाद आया उसे विभाव नहीं रुचता, वह विभावसे दूर भागता है।

'जैसे एक ओर बर्फका ढेर हो और दूसरी ओर अग्नि हो तो उन दोनोंके बीच खड़ा हुआ मनुष्य अग्निसे दूर भागता हुआ बर्फकी ओर ढलता है, उसीप्रकार जिसने थोड़ा भी सुखका स्वाद चखा है, जिसे थोड़ी भी शान्तिका वेदन वर्त रहा है ऐसा ज्ञानी जीव दाहसे अर्थात् रागसे दूर भागता है और शीतलताकी ओर ढलता है।'

दृष्टान्तका सिद्धान्त क्या है? एक बर्फका पर्वत हो और दूसरी ओर अग्नि जल रही हो, उन दोनोंके बीच खड़ा हुआ मनुष्य जिस प्रकार अग्निकी जलनसे हटकर बर्फकी शीतलताकी ओर जाता है, उसीप्रकार सम्यग्दर्शन प्रगट करके अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति निज ज्ञायक प्रभुके सुखका किंचित् भी स्वाद व्यक्तरूपसे चखा है, वह रागकी आगसे हटकर आनन्दके पर्वतकी ओर जाता है। उसे भूमिकानुसार शुभभाव आता है, परन्तु वह अग्निसमान लगता है। सम्यक्त्व प्रगट होनेपर वह राग-आगसे दूर भागता हुआ आनन्दादि सर्व गुणोंके आंशिक शुद्ध परिणमनरूप शीतलताकी ओर ढलता है। 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व।' बेनने एक बोलमें कहा है न! कि—आत्मा अखण्ड है, समस्त गुण आत्माके ही हैं, इसलिये एक गुणकी पर्यायका वेदन होनेके साथ-साथ सर्व गुणोंकी पर्यायें अवश्य वेदनमें आती हैं। निर्विकल्प स्वानुभूतिकी दशामें आनन्दगुणकी आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होनेपर आत्माके सर्व गुणोंका यथासम्भव आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और समस्त गुणोंकी पर्यायें वेदनमें आती हैं।

देव-गुरु-धर्मको माने अथवा तो नवतत्त्वको माने-वह कहीं सम्यग्दर्शन नहीं है, वह तो शुभराग है। अहा! बहुत कठिन काम! क्या यह बात सोनगढ़के घरकी है? प्रभु! यह तो वीतरागताका मार्ग है। बेनके वचन हैं वह वीतराग भगवानकी वाणी है। वाणी किसी भी क्षेत्रसे निकले, चाहे जहाँ निकले किन्तु ज्ञानीकी वाणी वह भगवानकी वाणी है।

जिसने भगवान आत्माके किंचित् भी सुखका स्वादा चखा है उस जीवको राग आता है, होता है। परन्तु वह उसे दुःखरूप लगता है। अग्नि जैसा लगता है। निहालचन्द सोगानीने कहा है न! कि—शुभभाव भट्ठी है। भूमिकानुसार देव-गुरुकी भक्ति आदि शुभराग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आये परन्तु ज्ञानी रागमात्रको अग्निसमान जानता है; वह उसे दुःखरूप लगता है, वहाँसे हटकर भीतर वीतरागताकी शीतलताकी ओर जाना चाहता है। राग और वीतरागता—इन दोके बीच भेद किया है न? राग-आगसे हटकर वीतरागी शान्तिकी ओर ढलना चाहता है, शुभरागमें भी अटकना, रहना नहीं चाहता। समयसारके मोक्ष–अधिकारमें मुनिराजको प्रतिक्रमण, प्रतिसरण आदि जो शुभविकल्प उठते हैं उन्हें विषकुम्भ कहा है न! अहा! कैसे बैठेगी यह बात?

धर्मी जीवको अंतरमें शान्तिका वेदन निरन्तर वर्त रहा है। चतुर्थ गुणस्थानमें अंशतः है, पाँचवेंमें चौथेसे विशेष है, छठवेंमें पाँचवेंसे विशेष है और सातवेंमें तो उससे भी विशेष है। साधक जीव विशेष शान्ति हेतु अंतर्स्वरूपमें ढलना चाहता है, रागसे दूर भागता है; क्योंकि सर्वप्रकारका जो राग है वह दाह–अग्निके समान है। छहढालामें कहा है न! कि–

यह राग–आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय–कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये॥

कहा रच्यो परपदमें न तेरो पद यहै, क्यों दुःख सहै।
अब 'दौल'! होउ सुखी स्वपद रुचि, दाव मत चूकौ यहै॥

बाह्यमें अग्निकी दाहकता और बर्फकी शीतलताको सबको समझमें आती है। अंतरमें जो शान्तिका सागर, परमानन्दका पर्वत, वीतरागस्वरूप चैतन्य जिनबिम्ब ध्रुव ज्ञायकतत्त्व विराजता है उसका जिसे सम्यग्दर्शनमें चौथे गुणस्थानमें अंशतः भी स्वाद आया है उसे राग दाहसमान—अग्निसमान लगता है; निर्बलताके कारण आता है परन्तु अंतरसे अच्छा नहीं लगता। अहा! यह तत्त्व समझे बिना बाह्य व्रत–प्रत्याख्यान किये, संलेखना धारण की और हो गया समाधिमरण। यह सब तो अंतरंग कषायोंको कृश किया हो तो, शुभरागकी बातें हैं; उनसे धर्म या आत्माकी यथार्थ शान्ति या अनुभव नहीं होता। अहा! बड़ा कठिन कार्य है भाई! यह तो तेरे हितकी बातें हैं किसीके अनादरकी नहीं हैं।

जिसने अंशतः भी वीतरागताका स्वाद चखा है उसे राग किंचित् भी नहीं रुचता। सम्यग्दर्शन, स्वरूपका ज्ञान, स्वरूपाचरणचारित्र, अकषाय शान्ति—यह सब वीतरागी पर्यायें हैं। उन वीतरागी निर्मल पर्यायोंका मधुर प्रवाह भीतरसे शान्तिके त्रैकालिक ध्रुव पर्वतसे आता है। सम्यग्दृष्टिको रागभाव आते हैं परन्तु वह उनसे हटना चाहता है। रागसे लाभ होगा ऐसा वह नहीं मानता। यह बात सुनकर लोग तो यही कहेंगे कि–'निश्चयको मानते हैं किन्तु व्रतादिके व्यवहारको नहीं मानते।' भाई! बाह्य क्रियाकांडके जितने विकल्प हैं, पंचमहाव्रतादिके भाव हैं–वह सब शुभराग आस्रव है, अशुचि है, स्वभावसे विपरीत और दुःखरूप है। भीतर आनन्दके नाथमें यह वस्तु नहीं है यह तो नवीन उत्पन्न हुई विकृत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दशा है। ज्ञानी उससे दूर भागते हैं और स्वरूप–शीतलताकी ओर जाते हैं। जिसने अल्प सुखका भी स्वाद चखा है, जिसे किंचित् भी शान्तिका वेदन वर्तता है ऐसा साधक जीव राग-आगसे दूर भागता है और चैतन्यकी सुख-शीतलताकी ओर ढलता है। अहा! ऐसा मार्ग है।

अहो ! ज्ञायकदेव और जिनेन्द्रदेवकी अपार महिमा है!

कुदरतमें कैसा सुमेल है। जगतमें ज्ञायकदेव अकृत्रिम स्वयंसिद्ध शाश्वत हैं। ज्ञायकदेवको प्रगट करनेवाले, साक्षात् चैतन्यरत्नाकर ऐसे तीर्थंकर भगवन्त प्रवाहरूपसे नित्य शाश्वत् विराजमान हैं, जगतमें उनका कभी विरह नहीं होता। चैतन्यरत्नाकर तीर्थंकर भगवन्तोंके प्रतीकरूप अकृत्रिम स्वयंसिद्ध रत्ननिर्मित्त जिनबिम्ब भी लोकमें शाश्वतरूपसे विराजमान हैं। जगत्में ऊपर, नीचे, व मध्यलोकमें–वैमानिक स्वर्ग, भवनवासीके भवन, ज्योतिष्क एवं व्यंतरके स्थानोंमें—असंख्यात रत्नमय जिनमंदिर और जिन प्रतिमा हैं। मन्दिर भी रत्नोंके ! भगवान भी रत्नोंके! प्रतिमाएं कितनीक तो ५०० धनुष्य प्रमाण और मन्दिर तो उनसे भी बहुत अधिक ऊँचे! अकृत्रिम, अतिमनोज्ञ हूबहू जिनेन्द्रभगवानके सदृश्य प्रतिमाएं! मानों अभी दिव्यध्वनि छूटी या छूटेगी।

जिनप्रतिमाके दर्शन करने पर 'मैं भगवानसदृश ही हूं' ऐसी भावना आये, आत्मा व परमात्मामें भेद न रहे तो निधत्त एवं निकाचित कर्म भी टूट जाते हैं। किन्तु बिना समझसे नहीं, यह तो अन्तरंग समझपूर्वककी बात है।

जगतमें तीर्थंकर भगवान सर्वोत्तम विभूति हैं। हमें तो यह भविष्यके तीर्थंकर भगवान मिल गये; वर्तमान भगवानकी तरह ही उनकी वाणीके श्रवणका सौभाग्य मिला। गुरुदेवने बरसों तक वाणी बरसाई। इस भरतक्षेत्रमें दिव्यध्वनिकी तरह ही गुरुदेवकी ध्वनि गाजती थी। उसके श्रवण जैसा अन्य सौभाग्य क्या? गुरुदेवने सबको द्रव्यदृष्टिका अर्थात् शुद्धात्मद्रव्यकी ओर झुकनेका उपदेश दिया। तू भी इस ओर झुक जा, निधान तेरे पास ही है कहीं ढूढने जाना पड़े ऐसा नहीं है।

—बहिनश्री चंपाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१२१

दिनांक १६-१०-७८

वचनामृत–३२४

जैसे एक रत्नका पर्वत हो और एक रत्नका कण हो वहाँ कण तो नमूनेरूप है, पर्वतका प्रकाश और उसका मूल्य अत्यधिक होता है; उसीप्रकार केवलज्ञानकी महिमा श्रुतज्ञानकी अपेक्षा अत्यधिक है। एक समयमें सर्व द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावको सम्पूर्णरूपसे जाननेवाले केवलज्ञानमें और अल्प सामर्थ्यवाले श्रुतज्ञानमें—भले ही वह अन्तर्मुहूर्तमें सर्वश्रुत फेरनेवाले श्रुतकेवलीका श्रुतज्ञान हो तथापि—बहुत बड़ा अंतर है। जहाँ ज्ञान अनन्त किरणोंसे प्रकाशित हो उठा, जहाँ चैतन्यकी चमत्कारिक ऋद्धि पूर्ण प्रगट हो गई—ऐसे पूर्ण क्षायिक ज्ञानमें और खण्डात्मक क्षायोपशमिक ज्ञानमें अनंतगुना अन्तर है। ३२४.

'जैसे एक रत्नका पर्वत हो और एक रत्नका कण हो वहाँ कण तो नमूनेरूप है, पर्वतका प्रकाश और उसका मूल्य अत्यधिक होता है; उसीप्रकार केवलज्ञानकी महिमा श्रुतज्ञानकी अपेक्षा अत्यधिक है।'

रत्नके एक छोटे कणकी अपेक्षा रत्नके विशाल पर्वतका प्रकाश तथा उसका मूल्य अत्यधिक होता है; उसीप्रकार श्रुतज्ञानकी अपेक्षा केवलज्ञानका प्रकाश और उसकी महिमा अत्यधिक होती है। केवलज्ञान एक समयमें—एक सेकण्डके असंख्यातवें भागमें—परिपूर्णरूपसे परिणमित होता है; वह ज्ञानप्रकाशका विशाल पर्वत है, तीन काल और तीन लोकको प्रत्यक्ष जानता है; उसकी महिमा श्रुतज्ञानकी अपेक्षा अनन्तगुनी अधिक है।

'एक समयमें सर्व द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावको सम्पूर्णरूपसे जाननेवाले केवलज्ञानमें और अल्प सामर्थ्यवाले श्रुतज्ञानमें—भले ही वह अन्तर्मुहूर्तमें सर्वश्रुत फेरनेवाले श्रुतकेवलीका श्रुतज्ञान हो तथापि—बहुत बड़ा अंतर है।'

केवलज्ञान और श्रुतज्ञानमें बहुत बड़ा अंतर है। केवलज्ञान सर्व द्रव्य, सर्व क्षेत्र,

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्व काल और सर्व भावको एक समयमें परिपूर्णरूपसे प्रत्यक्ष जानता है, और श्रुतज्ञान तो मर्यादित होनेसे अत्यल्प जानता है। भले ही अन्तर्मुहूर्तमें समस्त श्रुतको फेर जानेवाला श्रुतकेवलीका विशाल श्रुतज्ञान हो तथापि वह केवलज्ञानके समक्ष अत्यन्त अल्प है। परोक्ष श्रुतज्ञानरूप कणकी अपेक्षा सम्पूर्ण प्रत्यक्ष केवलज्ञानरूप पर्वतका प्रकाश और उसका मूल्य–महिमा बहुत अधिक है। बारह अंगका श्रुतज्ञान भी स्थूल है, सूक्षम तो प्रत्यक्ष केवलज्ञान है। श्रुतकेवलीके परोक्ष श्रुतज्ञानमें और केवलीके प्रत्यक्ष केवलज्ञानमें महान अंतर है।

बारह अंगके—समस्त द्रव्यश्रुतके—सर्व प्रकारोंको श्रुतकेवली अन्तर्मुहूर्तमें—अड़तालीस मिनटमें—फेर जायँ यह बात भी अहा! आश्चर्यजनक लगती है! श्रुतज्ञानमें इतना सामर्थ्य होनेपर भी वह केवलज्ञानपर्वतके समक्ष तो कण जैसा है, अनंतवें भाग है। अन्तर्मुहूर्तमें समस्त श्रुतको फेर जानेवाले गणधर आदि श्रुतकेवलियोंके श्रुतज्ञानकी अपेक्षा सर्वज्ञ केवलीका केवलज्ञान अति महान है, दोनोंके बीच महान अंतर है। समस्त श्रुतधारी गणधर देव भी कहते हैं कि—हे सर्वज्ञ भगवान! मैं आपके ज्ञानका पार नहीं पा सकता। आपके एक समयके ज्ञानमें सम्पूर्ण विश्व—उसकी तीनोंकालकी पर्यायों सहित—और अपनी भी अनन्त पर्यायें एक साथ प्रत्यक्ष ज्ञात होती हैं। कहाँ आपका अनन्तानन्त द्रव्य–पर्यायोंको जानता हुआ अगाध प्रत्यक्ष ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प परोक्ष ज्ञान! आप अनुपम आनन्दरूपसे भी सम्पूर्णतः परिणमित हो गये हैं। कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द! उसीप्रकार अनन्त गुणोंकी पूर्ण पर्यायरूपसे आप सम्पूर्णतः परिणमित हो गये हैं। आपकी और मेरी दशामें महान अंतर है। आपकी महिमाका क्या वर्णन हो? आपके तो जैसा द्रव्य वैसी ही एक समयकी पूर्ण पर्याय परिणमित हो गई है। मेरी पर्याय तो अनन्तवें भाग है। इसप्रकार प्रत्येक साधक जीव पूर्ण परमात्मदशाके समक्ष अपनी पर्यायकी पामरताको जानता है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षामें कहा है कि—सम्यग्दृष्टि परद्रव्य और परद्रव्यके भावोंमें गर्व नहीं करता; करे तो सम्यक्त्व कैसा? वह निरन्तर उपशमभावोंको भाता है और अपनेको तृणतुल्य मानता है; क्योंकि अपना स्वरूप वह पूर्ण ज्ञानानन्द है। जबतक अपने पूर्ण स्वरूपकी प्राप्ति न हो तबतक वह अपनेको तृणतुल्य मानता है, किन्हीं पर पदार्थोंमें गर्व नहीं करता। धर्मीको वस्तुरूपसे पूर्ण प्रभुता और परमेश्वरता मान्य है, तथापि पर्यायमें अपनेको पामर मानता है।

ज्ञानका स्वभाव स्व–परको पूर्णरूपसे जाननेका है। पर्यायमें पूर्णरूपसे विकसित ज्ञान स्वसहित तीनकाल और तीनलोकके पदार्थोंको न जाने तो वह समस्त ज्ञेयोंको एकसाथ जान लेनेका जिसका स्वभाव है ऐसे अपने आत्माको भी पूर्णरूपसे नहीं जानेगा—स्वयं अपने ज्ञानस्वरूपसे पूर्णतः परिणमित नहीं होगा। प्रवचनसारकी ४८वीं तथा ४९वीं गाथामें क्रमशः कहा है कि :—सर्वको नहीं जाननेवाला एकको (स्वयंको) भी नहीं जानता, और एकको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(स्वयंको) नहीं जाननेवाला सर्वको नहीं जानता। सर्वको सर्व प्रकारसे प्रत्यक्ष जानना वह केवलज्ञानका सामर्थ्य है। कहाँ वह प्रकाशपुंज केवलज्ञानका पर्वत और कहाँ यह रत्नके कणतुल्य अल्प श्रुतज्ञान! बारह अंगधारी श्रुतकेवलीका श्रुतज्ञान भी केवलज्ञानके समक्ष अत्यन्त अल्प है।

प्रवचनसारकी ३३वीं गाथा–टीकामें आचार्य भगवन्तोंने अन्य प्रकारके कहा है–सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञान द्वारा मात्र आत्माको अनुभवते हैं इसलिये 'केवली' हैं और हम भावश्रुतज्ञान द्वारा मात्र आत्माको अनुभवते हैं इसलिये 'श्रुतकेवली' हैं। अहा! शास्त्रकार भगवान कुन्दकुन्दाचार्यको द्रव्यश्रुतके एक अंगका भी पूरा ज्ञान नहीं था, और टीकाकार श्री अमृतचंद्र–आचार्यदेव तो तत्पश्चात् हजार वर्ष बाद हुए; तथापि मूल गाथा और टीकामें गजबकी गहराई है! जिन्हें भावश्रुतज्ञानके क्षयोपशमकी शक्तिका विकास अगाध है ऐसे वे आचार्य भगवन्त कहते हैं कि हमने केवल आत्माको—चैतन्यस्वरूप निज आत्मद्रव्यको—भावश्रुतज्ञानकी पर्यायसे जाना इस अपेक्षासे हम 'श्रुतकेवली' हैं। ऐसा होने पर भी उन्हें केवलज्ञानकी अपेक्षासे अपना भावश्रुतज्ञान अत्यन्त अल्प भासित होता है। यहाँ तो तदुपरान्त जिन्हें बारह अंगका ज्ञान वर्तता है और अन्तर्मुहूर्तमें उस समस्त श्रुतको फेर जानेकी लब्धि प्रगट हुई है ऐसे सकल श्रुतधारी समर्थ मुनिवर भी केवलज्ञानरूपी पर्वतके समक्ष अपने ज्ञानको कणिकातुल्य अल्प जानते हैं, पर्यायमें अपनी अल्पता अनुभवते हैं—ऐसा कहा है।

'जहाँ ज्ञान अनन्त किरणोंसे प्रकाशित हो उठा, जहाँ चैतन्यकी चमत्कारिक ऋद्धि पूर्ण प्रगट हो गई—ऐसे पूर्ण क्षायिक ज्ञानमें और खण्डात्मक क्षायोपशमिक ज्ञानमें अनन्तगुना अंतर है।'

केवलज्ञानी एकसमयमें तीन लोक और तीन कालके सर्व भावोंको प्रत्यक्ष जानते हैं। केवलज्ञान समस्त वस्तुको प्रकाशित करनेवाला अनन्त किरणोंसे जगमगा उठा है। पर्यायमें पूर्णता प्रगट हुई इसलिये भीतर शक्ति कुछ हीन हो गई है—ऐसा नहीं है। अहा! यह क्या वस्तु है! पर्यायमें चैतन्यकी चमत्कारिक ऋद्धि पूर्ण प्रगट हो गई, तथापि वस्तु और उसके गुण सदा पूर्णके पूर्ण ही हैं। वस्तुस्वरूप तो कोई चमत्कारिक वस्तु है, वह साधारण तर्क या विकल्पसे बैठ जाय ऐसी नहीं है। द्रव्यका स्वभाव ही ऐसा है कि पर्यायमें चैतन्यकी चमत्कारिक ऋद्धि पूर्णरूपसे प्रगट हुई, तथापि पूर्णस्वभावमें किंचित् मात्र न्यूनता नहीं हुई। ऐसी बातें तो सम्यग्दृष्टि ही पचा सकता है; वह वस्तुके स्वरूपको तथा उसे प्राप्त करनेकी रीतिको जानता है।

जिसे बारह अंगका ज्ञान होता है ऐसे श्रुतकेवलीको अन्तर्मुहूर्तमें समस्त श्रुत फेर जायें ऐसी लब्धि होती है, परन्तु उनको एक समयमें तीन काल और तीन लोकको प्रत्यक्ष

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रकाशित करनेवाला, अनन्त किरणोंसे विकसित हुआ, चैतन्यकी ऋद्धिसमान केवलज्ञान नहीं होता; क्योंकि अभी साधकदशा–अपूर्ण दशा है न? पूर्ण ऐसे केवलज्ञानमें और अल्प ऐसे श्रुतज्ञानमें महान अंतर है। यहाँ केवलज्ञानके—पूर्ण पर्यायके—माहात्म्यकी बात है। त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य और उसके अवलम्बनसे प्रगट हुई पूर्ण निर्मल पर्यायका माहात्म्य है, शुभाशुभ रागका या छद्मस्थके अल्प ज्ञानका नहीं। द्रव्यश्रुतका विस्तार, साधारण जनको तर्कमें नहीं बैठे ऐसा महान है, तथापि पूर्ण केवलज्ञानके पास वह अति अल्प है। पूर्ण क्षायिक ज्ञानमें और खण्डात्मक क्षायोपशमिक ज्ञानमें अनंतगुना अंतर है।

प्रवचनसारकी ८०वीं गाथामें आता है कि–जो अरिहंत भगवानको द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे और पर्यायरूपसे जानता है वह निज आत्माको जानता है और उसका मिथ्यात्वमोह नाशको प्राप्त होता है। अरिहंत भगवान द्रव्यसे और गुणसे तो परिपूर्ण हैं, किन्तु पर्यायमें भी परिपूर्ण हो गये हैं। अरिहंत भगवानकी भाँति मैं भी द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे परिपूर्ण हूँ, और पर्यायमें परिपूर्ण होनेकी शक्ति मुझमें सदैव विद्यमान है। इसप्रकार अपने आत्माको जो जानता है उसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। अहा! यह बात विकल्पसे बैठे ऐसी नहीं है। भगवान आत्माका स्वभाव ही एक समयमें तीनों कालके सम्पूर्ण ज्ञेयोंको जाननेका है। अनन्त चैतन्यकिरणोंसे प्रकाशमान हुए केवलज्ञान—चैतन्यकी चमत्कारिक पूर्ण ऋद्धि—के समक्ष बारह अंगका श्रुतज्ञान एक कणके समान है, अनन्तवें भाग अल्प है।

आजकल तो उपदेशकोंने लोगोंको व्रत, तप, यात्रा और भक्ति आदिमें लगा दिया है। परन्तु वे सब बातें तो राग और क्रियाकी हैं। प्रभु! तुझे खबर नहीं है कि तेरे द्रव्य, गुण और पर्यायकी शक्ति कितनी है! तुझे तेरे आत्माका ज्ञान करा दे ऐसी शक्ति रागमें नहीं है। भले ही लाख उपवास कर, लाख यात्राएँ कर, करोड़ों–अरबों रुपये दानमें दे दे, परन्तु उस रागके कणमें ऐसी शक्ति नहीं है तुझे आत्माका ज्ञान करा दे। आत्माका ज्ञान करनेकी शक्ति तो भीतर भावश्रुतज्ञानमें है। भावश्रुतज्ञान द्वारा जिसे स्व–परकी प्रतीति हुई है उसे व्यवहारसे देव–शास्त्र–गुरुकी महिमाका विकल्प आता है, तथापि सम्यग्दृष्टि उसे हेयरूप जानता है। यदि हेय मानता है तो फिर करता क्यों है? भाई! भूमिकानुसार ऐसे विकल्प आये बिना नहीं रहते। ज्ञानी कर्तव्यबुद्धिसे विकल्प नहीं करते; विकल्प आते हैं किन्तु उनके प्रति हेयबुद्धि है।

अभी तो सम्यग्ज्ञान बिना, आत्मज्ञान बिना, धारणासे साधारण ज्ञान हो वहाँ कितनोंको ऐसा लगता है कि–'अहा! हमने कितना जान लिया? हम कितने आगे बढ़ गये?' अरे भाई! सुन तो सही! आत्मज्ञान-विहीन धारणाकी बात तो कहीं दूर रह गई, परन्तु भीतर भावश्रुतज्ञानसे आत्माको जाना और बारह अंगका—द्रव्यश्रुतका—ज्ञान हुआ वह भी केवलज्ञानीके निकट खण्डात्मक ज्ञान है। कहाँ वह खण्डात्मक अल्प श्रुतज्ञान और कहाँ वह अखण्ड

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूर्ण केवलज्ञान? जहाँ ज्ञान अनंत रश्मियोंसे प्रकाशित हो उठा, जहाँ चैतन्यकी चमत्कारिक अनंत ऋद्धि प्रगट हो गई—ऐसे परिपूर्ण क्षायिक ज्ञानमें और खण्डात्मक क्षायोपशमिक ज्ञानमें अनन्तगुना अंतर है।

मिथ्यादृष्टिको बारह अंगका ज्ञान नहीं होता, ग्यारह अंग तथा नव पूर्वका होता है। दस पूर्वका ज्ञान हो वह तो सम्यग्दृष्टि होता ही है। जिसने भावश्रुतसे भगवान आत्माको जाना उसे द्रव्यश्रुतका इतना ज्ञान होता है तथापि उसके खण्डात्मक क्षायोपशमिक ज्ञानमें और केवलज्ञानमें अनन्तगुना अंतर है।

*

वचनामृत–३२५

ज्ञानीको स्वानुभूतिके समय या उपयोग बाहर आये तब दृष्टि तो सदा अंतस्तल पर ही लगी रहती है। बाह्यमें एकमेक हुआ दिखायी दे तब भी वह तो (दृष्टि-अपेक्षासे) गहरी अन्तर्गुफामेंसे बाहर निकलता ही नहीं। ३२५.

'ज्ञानीको स्वानुभूतिके समय या उपयोग बाहर आये तब दृष्टि तो सदा अन्तस्तल पर ही लगी रहती है।'

भगवानके दर्शनके, पूजा–भक्तिके, शास्त्रस्वाध्यायके, सत्श्रवणके, गुरुमहिमाके तीर्थयात्राके, व्रत–तपके इत्यादि अनेक प्रकारके बाह्यविकल्प—शुभराग ज्ञानीको आते हैं; परन्तु वह शुभराग कहीं धर्म नहीं है, आस्रव और बंधका कारण है। ज्ञानीको उपयोगकी स्थिति दो प्रकारकी है—उपभोग या तो स्वानुभूतिरूप होता है अथवा तत्त्वचिन्तन, तत्त्वश्रवण, पूजा–भक्ति आदि बाह्य विषयोंमें होता है। धर्मी किसे कहा जाता है?–कि जिसे देहादि समस्त पर पदार्थोंसे बिलकुल भिन्न और शुभाशुभ समस्त विभावोंसे रहित ज्ञानानन्दमूर्ति निज भगवान आत्माका अनुभव हुआ हो। आत्मा विभावजनित आकुलतासे रहित—पूर्णानन्दका पिण्ड—है ऐसी जिसे अंतरप्रतीति हुई है, अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आया है, उसे धर्मी अथवा सम्यक्त्वी कहते हैं। जिसे वर्तमान प्रगट पर्यायमें चैतन्यपिण्ड, पूर्णानन्दके नाथ, निज ज्ञायक प्रभुका अनुभव हुआ हो उसे धर्मकर्ता धर्मी और ज्ञानी कहते हैं। ऐसा धर्मी जीव बुद्धिपूर्वकके राग और विकल्पसे रहित होकर, अंतरात्माका अनुसरण करके स्वानुभूतिमें लीन हो या उसका उपयोग बाह्य विकल्पोंमें—तत्त्वचिन्तन, तत्त्वचर्चा, तत्त्वश्रवण, शास्त्रस्वाध्याय या दया–दानादि शुभभावोंमें अथवा व्यापार–धंधा या विषयोपभोगके अशुभभावोंमें—आये तब उसकी दृष्टि तो तलपर नित्य स्थित रहती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तुमें एकसमयकी पर्याय वह 'ऊपर' है और उसके पीछे जो त्रैकालिक ध्रुव नित्य तत्त्व है वह 'तल' है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रादिकी निर्मल पर्याय भी ऊपर–ऊपर है, परन्तु दृष्टिका विषय तो भीतर त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक 'तल' है। अहा! परमात्मा जो बात कहते हैं वह यहाँ अंतरसे आयी है। यहाँ कहते हैं कि जब धर्मीका आत्मा—उसका उपयोग—राग और मनका सम्बन्ध छोड़कर स्वरूपके अनुभवनमें हो, ज्ञानका व्यापार स्वसन्मुख हो गया हो अथवा तो भक्ति या दयादिके विकल्पोंमें हो, तब भी उसकी दृष्टि तो भीतर ध्रुव ज्ञायकतत्त्वके ऊपर ही है। जैसे समुद्रके ऊपरकी सतह देखते समय भी उसके तलका—गहराईका ख्याल वर्तता रहता है, वैसे ही ज्ञानीको पर्यायरूप सतहके नीचे जो गहरा शक्तिभरपूर ध्रुव चैतन्यतल है उस पर निरन्तर दृष्टि होती है।

जीवोंने वीतरागके मार्गका श्रवण नहीं किया है, तीनलोकके नाथ जिनेश्वर देव जो कहते हैं वही यह बात है। चतुर्थ गुणस्थानमें उपयोग स्वानुभूतिमें हो या बाह्य विकल्पोंमें हो, परन्तु उसकी दृष्टि तो तब भी निज ध्रुवतलके ऊपर ही है। अरेरे! आजकलतो त्यागी लोग भी ऐसा कहते हैं कि शुभोपयोगसे आत्माकी प्राप्ति होती है। अहा! इस चैतन्य हीरेका मूल्य उन्होंने कम कर दिया। यहाँ तो कहते हैं कि शुभरागसे नहीं किन्तु निर्विकल्प स्वानुभूतिसे आत्मा प्राप्त होता है; और प्राप्त होनेके पश्चात् भी उपयोग निर्विकल्प स्वानुभूतिमें हो या बाह्यविषयोंमें हो, तब दृष्टि तो ध्रुवतल पर–शाश्वत द्रव्यस्वभाव पर—स्थिर हुई सो स्थिर ही रहती है।

प्रवचनसारमें—श्री जयसेनाचार्यकी टीकामें—आता है न! कि–श्रावकको सामायिककालमें शुद्धोपयोगकी भावना होती है। वहाँ 'भावना'का अर्थ शुद्धोपयोगकी अभिलाषा या चिन्तवन नहीं किन्तु शुद्धोपयोगरूपसे अंशतः 'भवन' समझना। शुद्धोपयोगरूप भवनको भगवान सामायिक कहते हैं। श्रावकका उपयोग निर्विकल्प सामायिकमें हो या व्रतादिके शुभ विकल्पमें हो, परन्तु उसकी दृष्टि तो सदैव निज ध्रुवतत्त्वके ऊपर ही है, ध्रुवतलके ऊपरसे दृष्टि किंचित् भी नहीं हटती। जिसकी दृष्टि त्रैकालिक ध्रुवज्ञायक भाव, भूतार्थ भाव, सत्यार्थ भाव पर जम गई है और जिसे उस ध्रुवतलके आश्रयसे प्रगट हुई निर्विकल्प स्वानुभूतिमें अतीन्द्रिय आनन्दका वेदन वर्तता है ऐसे जीवकी—भले ही वह चतुर्थ गुणस्थानवाला अविरती हो या पंचम गुणस्थानवाला देशविरति श्रावक हो—यह बात है। जो शुभराग और बाह्यक्रियामें धर्म मानता हो ऐसे सम्प्रदायके श्रावककी यह बात नहीं है; उसकी तो दृष्टि ही मिथ्या है; उसे अभी वस्तुस्वरूपकी ही खबर नहीं है।

भगवान कहते हैं कि—सम्यग्दृष्टि ज्ञानीको अंतरके ध्रुवस्वभावका पर्यायमें निर्विकल्प अनुभव वर्तता हो, पर्यायका अनुभव–वेदन हो, तथापि दृष्टि तो अंतरमें ध्रुवज्ञायकस्वभाव पर है। दृष्टि स्वानुभवकी पर्याय पर नहीं है, परन्तु पूर्ण ध्रुवतल पर ही है। तल अर्थात्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वर्तमान वर्तती प्रगट पर्यायको गौण करके शेष अभेद त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक वस्तु। ज्ञानीका उपयोग बाहर शुभाशुभ विकल्पोंमें आये तब भी उसकी दृष्टि तो ध्रुवतलपर ही स्थिर रहती है।

अरेरे! जीवन बीतता जा रहा है। एक दिन यह शरीर छूटनेका समय आयगा। उससे पूर्व यदि आत्माका कुछ नहीं किया तो मृत्युके समय वह दुःखमें दब जायगा। जिसे पर और रागादि विभावोंसे भिन्न निजतत्त्वका भास नहीं हुआ और जो अशुभभाव कम करके शुभरागकी क्रियामें एकाकार हो गया है, वह दुःखी होकर दब जायगा और परगतिमें भटकनेको चला जायगा। धर्मी जीवको मृत्युकालमें निर्विकल्प उपयोग हो तो ठीक, परन्तु कदाचित् प्रतिकूल परिषहकी ओरका विकल्प आये तब भी उसकी दृष्टि तो सदैव अंतर ध्रुवतलपर है। धर्मी जीवने शान्तरसस्वभावी ध्रुवतलकी शरण प्राप्त की है इसलिये वह रोगकी, वेदनाकी या मरणकी चपेटमें नहीं आता। विपत्तिके समय वह शुद्धात्माके तलमेंसे शान्ति प्राप्त कर लेता है। विकट परिस्थितिमें वह निज शुद्धात्माकी शरण विशेष ग्रहण करता है।

अहा! सम्यग्दृष्टिका मार्ग ही कोई अलग है। 'शुभभावसे धर्म होगा' ऐसे मिथ्यात्वमें अनन्त भव करनेकी शक्ति है। मिथ्यात्वभाव वह अनंत भव करनेका गर्भ है। उसमेंसे भव उत्पन्न होंगे। जिसके स्वरूपमें भव और भवका भाव नहीं है ऐसे निज त्रैकालिक शुद्ध ध्रुव तलका वर्तमान पर्यायमें आश्रय करना वह भवके अभावका मार्ग है। ध्रुव स्वभावका आश्रय करनेसे पर्यायमें अतीन्द्रिय आनंदका अंशतः वेदन हो उसकाल—अनुभवके कालमें—दृष्टि तो ध्रुव तल पर ही नित्य रि ; है।

'बाह्यमें एकमेक हुआ दिखायी दे तब भी वह तो (दृष्टि-अपेक्षासे) गहरी अंतर्गुफामेंसे बाहर निकलता ही नहीं।'

श्री जिनेश्वरदेवने प्रगट किया ऐसा ही यह सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा है। उस ध्रुवतल पर जिसकी दृष्टि है उसे विकल्प आते हैं—बाह्यमें सत्समागम, सत्श्रवण-स्वाध्याय-भक्तिके शुभभाव आते हैं—तथापि वह दृष्टि-अपेक्षासे गहरी-गहरी चैतन्यगुफामेंसे बाहर निकलता ही नहीं है।

सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ, श्री कुन्थुनाथ और श्री अरहनाथ चक्रवर्ती थे। जन्मसे ही तीन ज्ञान साथ लेकर अवतरित हुए थे। वे जब राज्यों पर विजय प्राप्त करने गये तब भी उनकी दृष्टि तो भीतरकी ध्रुव गुफामेंसे कभी बाहर निकली ही नहीं थी। दृष्टि द्रव्यस्वभाव, ध्रुव ज्ञायकस्वभाव, नित्य चैतन्यतलमेंसे कभी बाहर आती ही नहीं, वहाँसे कभी हटती नहीं है। यदि दृष्टि ध्रुवतलमें एक क्षणको भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हट जाय तो मिथ्या हो जाय। फिर भले ही वह पंचमहाव्रत पालनेवाला साधु हो तथापि वह मिथ्यादृष्टि है। भावलिंगी मुनिको पंचमहाव्रतके शुभ विकल्प आयें परन्तु उनकी दृष्टि भीतर ध्रुवतल पर लगी है; वहाँसे उनकी दृष्टि कभी बाहर नहीं आती।

अहा! यह तो भवका अभाव करनेकी बात है। शुभाशुभ भाव करके मनुष्यादि चारों गतिमें भटका, परन्तु उससे कहीं भवका अभाव नहीं हुआ। जो भव और भवके भावरहित वस्तु है, अरे! एकसमयकी पर्यायरहित वस्तु है, ऐसे अपने ध्रुव ज्ञायकभाव पर दृष्टि होनेसे धर्मी जीव विकल्पमें आया होनेपर भी वह ध्रुव चैतन्यकी गहरी–गहरी गुफामेंसे बाहर निकलता ही नहीं; क्योंकि उसने परमानन्दका तल देखा है न! अतीन्द्रिय आनन्दका पर्वत देखा है न! अरेरे! जिसे यह बात सुननेको भी न मिले वह कब समझेगा.....जीवन यों ही बीतता जा रहा है! *

वचनामृत–३२६

जिसने तलको स्पर्श किया उसे बाहर सब थोथा लगता है। चैतन्यके तलमें पहुँच गया वह चैतन्यकी विभूतिमें पहुँच गया। ३२६.

'जिसने तलको स्पर्श किया उसे बाहर सब थोथा लगता है।'

आनन्दके नाथ निज प्रभु ध्रुव ज्ञायक आत्माको जिसने दृष्टिमें ग्रहण किया उसे बाहरका सब––दया–दान, व्रत–तप, पूजा–भक्ति आदिके विकल्प तथा क्रिया सब––थोथा–निरर्थक लगता है। 'तलका स्पर्श किया' अर्थात् क्या? स्पर्श करना वह स्वयं तो श्रद्धा–ज्ञान एवं अनुभूतिकी निर्मल पर्याय है। जिसमें त्रैकालिक ध्रुव अनन्त शक्तियोंका माल भरा है, जिसमें अनन्त सहज ज्ञान, अनन्त सहज दर्शन, अनन्त सहज आनन्द, अनन्त सहज शान्ति, अनन्त सहज स्वच्छता और अनन्त सहज प्रभुता आदि अनन्त सहज गुणोंका भण्डार भरपूर भरा है ऐसे निज ज्ञायक ध्रुव द्रव्यस्वभावकी––चैतन्यतलकी––जिसे दृष्टि हुई, सानुभव स्पर्शन हुआ, उसे बाहरका सब थोथा लगता है, निःसार, छिलकों जैसा तुच्छ लगता है। अशुभसे बचनेके लिये अनेक प्रकारके शुभभाव आते हैं, तत्त्वसम्बन्धी विकल्प भी आते हैं, परन्तु शुद्ध निर्विकल्प स्वरूपकी अपेक्षासे वह सब थोथा–निःसार लगता है।

जिसप्रकार कोई जुआरका साँटा पोला, नीरस और निःसार होता है, उसीप्रकार धर्मीजीवको निज चैतन्यतलके सिवा सब पोला, रसकस रहित और निःसार लगता है; क्योंकि उसने भीतर सारयुक्त–रसकसयुक्त आनन्दनिधि ज्ञायक तलका स्पर्श किया है। उसे घुने हुए अनाजकी भाँति, भूमिकानुसार आनेवाले दया–दान, व्रत–तप, पूजा–भक्ति आदिके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुभभाव कस रहित, पोले और थोथे लगते हैं। उनमें कुछ भी माल नहीं है, माल तो भीतर त्रैकालिक ध्रुव चैतन्यस्वरूपमें है। अहा! यह तो भवके अभावकी बातें हैं!

'चैतन्यके तलमें पहुँच गया वह चैतन्यकी विभूतिमें पहुँच गया।'

शरीर, लक्ष्मी आदि पर द्रव्योंसे तथा शुभाशुभ विभावोंसे भिन्न होकर अंतरोन्मुख दृष्टि करके जो चैतन्यके ध्रुव तलमें पहुँच गया वह आत्मवस्तुमें विद्यमान अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द, अनन्त वीतरागता आदि अनन्त गुणविभूतिमें पहुँच गया। उस गुणवैभवके समक्ष, शुभ–अशुभके जो राग आयें वे सब थोथे लगते हैं। भूमिकानुसार राग आता है, परन्तु वह थोथा–निःसार प्रतीत होता है, उसका कोई मूल्य नहीं लगता; मूल्य–महत्ता तो एकमात्र चैतन्यतलकी लगती है। ऐसा ही वस्तुका स्वरूप है।

*

शुभाशुभ भावमें आकुलता है। चैतन्यकी ओर जाय तो जीवको शान्ति और आनन्द है। वहाँ अनन्त ज्ञान तथा अनन्त आनन्द भरा है। आनन्द अंतरसे प्रगट होता ही रहता है। यदि स्वमें दृष्टि करे, ज्ञान करे तथा लीनता करे तो वह प्रगट हुए बिना रहता ही नहीं। शुभाशुभ भावका आश्रय छोड़कर चैतन्यका आश्रय लेना वही गुरुदेवने बतलाया है।

—बहिनश्री चम्पाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१२२

दिनांक १७-१०-७८

वचनामृत–३२७

देवलोकमें उच्च प्रकारके रत्न और महल हों उससे आत्माको क्या? कर्मभूमिके मनुष्य भोजन पकाकर खाते हैं वहाँ भी आकुलता और देवोंके कण्ठमें अमृत झरता है वहाँ भी आकुलता ही है। छह खण्डको साधनेवाले चक्रवर्तीके राज्यमें भी आकुलता है। अंतरकी ऋद्धि न प्रगटे, शान्ति न प्रगटे, तो वाह्य ऋद्धि और वैभव क्या शान्ति देंगे? ३२७.

'देवलोकमें उच्च प्रकारके रत्न और महल हों उससे आत्माको क्या?'

बाह्य ऋद्धि चाहे जितनी हो उसमें आत्माको कहाँ शान्ति है? अंतरकी ऋद्धि प्रगट न हो, भगवान आत्मा अनन्त शान्तिका रसकन्द है, अनन्त अतीन्द्रिय आनन्दका भण्डार है, उसकी दृष्टिपूर्वक जबतक अंतरसे शान्ति प्रगट न हो, तबतक अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं है।

'कर्मभूमिके मनुष्य भोजन पकाकर खाते हैं वहाँ भी आकुलता और देवोंके कण्ठमें अमृत झरता है वहाँ भी आकुलता ही है। छह खण्डको साधनेवाले चक्रवर्तीके राज्यमें भी आकुलता है। अंतरकी ऋद्धि न प्रगटे, शान्ति न प्रगटे, तो बाह्य ऋद्धि और वैभव क्या शान्ति देंगे?'

बाह्य समृद्धि या ऋद्धि है वह तो दुःखमें निमित्त है, आकुलताके निमित्त हैं। भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द एवं अकषाय शान्तरससे भरा हुआ भण्डार है, उसमेंसे शान्ति न आये तब तक अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं है। "सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसे घटमें प्रगट सदा, अंतरकी लच्छीसों अजाची लच्छपती हैं।" अंतरकी ऋद्धि प्रगट न हो--आत्माका सम्यग्दर्शन, आत्माका ज्ञान, आत्माकी शांति, आत्माकी स्वच्छता, आत्माके त्रैकालिक शान्तस्वभावरूप शक्तिमेंसे व्यक्ति प्रगट न हो--तबतक अंतरमें सच्ची शान्ति प्रगट नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होती। शान्ति न प्रगटे, अंतरकी ऋद्धि न प्रगटे, तो बाह्य ऋद्धि और वैभव क्या शान्ति देंगे?

अनेक सुविधाओंके साधन–यंत्र आ गये इसलिये अब अपनेको शान्ति मिली ऐसा मानते हैं, परन्तु उन साधनोंमें कहाँ शान्ति है? वह सब बाह्य ऋद्धि तो आकुलतामें निमित्त हैं। भगवान तो अनाकुल स्वभाव शान्त–शान्त रसकन्द प्रभु है, उसकी ऋद्धि अंतरसे प्रगट न हो तबतक कहीं शान्ति नहीं है.....तो बाह्य ऋद्धि और वैभव क्या शान्ति देंगे?

आज कल तो सम्यक्त्वके बिना ही साधुपना दे देते हैं, परन्तु स्वयं सम्यक्त्वरहित हैं। बाह्यक्रियासे साधुपना मानते हैं, परन्तु साधुपना—संयम किसे कहा जाय? अभी सम्यग्दर्शनका तो ठिकाना नहीं है, और ले लो पंचमहाव्रत, हो जाओ त्यागी! यह तो अज्ञानताका पोषण है। दीक्षा लेनेवालेको खबर नहीं पड़ती और देनेवालेको भी कि सम्यग्दर्शन क्या है, चारित्र क्या है?

मुनिदशा कैसी होती है, मुनिपना किसे कहना—यह बात अब अलग बोलोंमें आयगी।

*

वचनामृत–३२८

मुनिदशाका क्या कहना! मुनि तो प्रमत्त–अप्रमत्तपनेमें सदा झूलनेवाले हैं! उन्हें तो सर्वगुणसम्पन्न कहा जा सकता है।

'मुनिदशाका क्या कहना!'

क्षणमें छट्ठे और क्षणमें सातवें गुणस्थानमें झूलनेवालेको मुनि कहा जाता है। सम्यग्दर्शन सहित चारित्र—स्वरूपकी रमणता—भी सातवें गुणस्थानमें बहुत प्रगट हुआ है। उस निर्विकल्प प्रचुर स्वसंवेदनरूप अनुभवदशामेंसे नीचे उतरकर छट्ठेमें आयें—विकल्प उठे—वह प्रमत्तदशा, फिर सातवेंमें जायें वह अप्रमत्तदशा। अहा! छट्ठे गुणस्थानमें आयें तो क्षणमें सातवेंमें चले जायँ और सातवाँ आये वहाँसे क्षणभरमें छठवेंमें आ जायें—ऐसी दशा सन्तोंकी–भावलिंगी मुनियोंकी—होती है। इसप्रकार मुनि तो सदा छठवें–सातवेंमें—प्रमत्त–अप्रमत्तदशामें—झूलनेवाले हैं। उन्हें पंचमहाव्रतके परिणाम कहे हैं वह राग है, विकल्प है; और बाह्य नग्नपना वह तो अजीवकी क्रिया है; उसमें आत्मा कहाँ आया? आत्माका—भीतर अतीन्द्रिय आनन्दका जो नाथ उसका—जिसे पहले सम्यग्दर्शनमें अनुभव हुआ है और फिर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चारित्रदशा होनेपर उग्र स्वसंवेदनदशा प्रगट हुई है उसे भावमुनि कहा जाता है।

समयसारकी ३८वीं गाथाकी टीकामें कैसा आया है ! कि विरक्त गुरुसे निरन्तर समझाये जाने पर श्रोता समझकर कहता है कि–इसप्रकार सर्वसे भिन्न ऐसे निजस्वरूपको अनुभवता हुआ यह मैं प्रतापवन्त रहा। इसप्रकार प्रतापवन्त वर्तते ऐसे मुझे कोई भी पर द्रव्य परमाणुमात्र भी अपनेरूप भासित नहीं होता कि जो मुझे भावकरूप तथा ज्ञेयरूपसे मेरे साथ एक होकर फिर मोह उत्पन्न करे; क्योंकि निजरससे ही मोहको मूलसे उखाड़कर—पुनः अंकुर उत्पन्न न हो ऐसा नाश करके, महान ज्ञानप्रकाश मुझे प्रगट हुआ है।

अहा! कैसी शैली! ऐसे भाव गुरुमुखसे जिसके कानमें पड़े और अंतरमें जिसने तलका स्पर्श किया—ध्रुवतलको देखा, जाना और अनुभव किया—वह श्रोता ऐसा कहता है कि—मेरा महान ज्ञानप्रकाश अंतरसे प्रगट हुआ है उससे मुझे जो यह मोहका—मिथ्यात्वका नाश हुआ है वह अब पुनः कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। ऐसा अप्रतिहत भाव लिया है। अहा! गजब बात है! विरक्त गुरुने जीव—आत्मा बतलाया और जिसने अंतर स्वसंवेदनसे उसे जाना—सुनकर नहीं किन्तु अपने स्वसंवेदनसे, आनन्दस्वरूप, शान्तस्वरूप अपने वेदनसे, निर्विकल्प समाधिसे जिसने आत्माको जाना—वह ऐसा कहता है कि–हमने जो इन सर्व परभावोंसे भिन्न ऐसे निजस्वरूपके अनुभव द्वारा मोहका मूलमेंसे नाश किया है वह अब फिरसे हमें कभी उत्पन्न होनेवाला नहीं है।

पंचमकालके मुनि पंचम कालके श्रोतासे कहते हैं। पंचमकाल होनेसे, 'केवलीने समझाया' ऐसी बात नहीं ली है। विरक्त गुरुने—रागकी रक्तता जिनको छूट गई है और अतीन्द्रिय आनन्ददशामें जो रक्त (अन्तर्लीन) हुए हैं, रागसे विरक्त और स्वरूपमें रक्त हुए हैं ऐसे गुरुने—समझाया है। पंचमकालके सन्तोंसे सुनकर पंचमकालका जीव रागसे भिन्न निज आत्माके अनुभवको प्राप्त करता है। इतना ही नहीं परन्तु सम्यग्दृष्टि आत्माको दीपचन्दजीने 'भावदीपिका'में जघन्य 'आप्त' कहा है। जिसको हित अंतरमें प्रगट हुआ है और जो हितकी बात करता है वह 'आप्त' है।

'मुनि तो प्रमत्त–अप्रमत्तपनेमें सदा झूलनेवाले हैं।'

जिनको अतीन्द्रिय आनन्द तथा अतीन्द्रिय ज्ञान तो प्रगट हुआ है—मात्र बहिर्लक्षी शास्त्रज्ञान नहीं—तथा जिन्हें चारित्रदशामें रमणता, अतीन्द्रिय शान्ति बहुत प्रगट हुई है, ऐसे मुनि क्षणमें सप्तम गुणस्थानमें जाते हैं और क्षणमें छठवेंमें आते हैं।

'उन्हें तो सर्वगुणसम्पन्न कहा जा सकता है।'

अहा! सर्वार्थसिद्धिके देव सम्यक्त्वी और एकावतारी हैं। उन्हें जो शांति है उसकी अपेक्षा पंचम गुणस्थानवर्ती जीवको, उसकी अपेक्षा षष्टम् गुणस्थानवर्तीको और उसकी अपेक्षा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सप्तम गुणस्थानवर्तीको उत्तरोत्तर अधिक शान्ति होती है। छठवें–सातवें तो क्षणमें निर्विकल्प और क्षणमें सविकल्प। अहा! वे मुनिराज तो शान्तिके झूलेमें झूलते हैं। धन्य अवतार! धन्य वह मुनिदशा! उन्हें तो सर्वगुणसम्पन्न कहा जा सकता है।

नियमसारकी टीकाके एक श्लोकमें कहा है:.....जो जीव (मुनि) स्ववश है वह जीवन्मुक्त है, जिनेश्वरसे किंचित् न्यून है—उसमें जिनेश्वरदेवकी अपेक्षा किंचित् ही न्यूनता है। किंचित् राग है इसलिये वह पूर्ण नहीं है। फिर, दूसरे श्लोकमें ऐसा कहा है कि—सर्वज्ञ–वीतरागमें और स्ववश योगीमें कभी भी कुछ भी भेद नहीं है; तथापि अरेरे! हम जड़ हैं कि उनमें भेद गिनते हैं। उनमें अन्तर—भेद माने वह जड़ जैसा है। प्रवचनसारमें पंचरत्न समान उत्तम अन्तिम पाँच गाथाओंमेंसे एक गाथामें, ऐसा दर्शन, ज्ञान और चारित्र—वस्तुका दर्शन, उसका ज्ञान और उसकी रमणता—जिन्हें प्रगट हुआ उन मुनिराजको मोक्षतत्त्व कहा है। अहा! उन भावलिंगी—आनन्दकी मस्तीमें झूलनेवाले—मुनिराजकी क्या–क्या बात कहें! वर्तमानमें तो उनके दर्शन भी दुर्लभ हो गये हैं। वीतराग प्रभु तीनलोकके नाथके दर्शन तो दुर्लभ हुए, परन्तु ऐसे सन्तोंका भी विरह हो गया!

प्रश्न:—उनके कहे हुए भाव तो रह गये न?

उत्तर:—भाव तो रह गये, परन्तु वे स्वयं कहाँ हैं? वीतराग सन्तोंके बतलाये भाव—वस्तुस्वरूप और उसे समझनेका मार्ग—रह गये, परन्तु आनन्ददशामें झूलनेवाले उन वीतराग मुनियोंके दर्शन कहाँ हैं? उनका विरह हो गया है। उन्हें सर्वगुणसम्पन्न कहा जा सकता है। सर्वगुणसम्पन्न चारित्र है न? परमेष्ठी हैं न? समयसारकी पाँचवीं गाथाकी टीकामें अपने आत्माका निज वैभव बतलाते हुए कहते हैं कि–निरन्तर झरता—आस्वादमें आता, सुन्दर जो आनन्द उसकी छापवाला प्रचुरसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन उससे जिसका (निज वैभवका) जन्म है। अहा! भावलिंगमें जिन्हें प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ है—अंतर अनुभवमें आनन्दका तथा सर्वगुणोंका यथासम्भव सागर उछलता है—ऐसे मुनिको सर्वगुणसम्पन्न कहा जा सकता है। *

वचनामृत–३२६

मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूपसे चैतन्यनगरमें प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धिका अनुभव करते हैं। उस दशामें, अनन्त गुणोंसे भरपूर चैतन्यदेव भिन्न–भिन्न प्रकारकी चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगोंमें एवं आश्चर्यकारी आनन्दतरंगोंमें डोलता है। मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीवका यह स्वसंवेदन कोई और ही है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनातीत है। वहाँ शून्यता नहीं है, जागृतरूपसे अलौकिक ऋद्धिका अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेवके दर्शन होंगे। ३२८.

मुनिराजका अच्छा अधिकार आया है।

'मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूपसे चैतन्यनगरमें प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धिका अनुभव करते हैं।'

मुनिराज बारम्बार वीतरागतारूपसे, जिसमें अनन्तगुणोंका वास है ऐसे निज चैतन्यनगरमें—अंतर अतीन्द्रिय आनन्दके धाममें—प्रविष्ट होकर अद्भुत ऋद्धिको अनुभवते हैं। अहा! वह अद्भुत मुनिदशा! आज कल तो बिना सम्यग्दर्शनके—आत्माकी प्रतीतिके बिना—सीधा मुनिपना दे देते हैं।

मुनिराजने शुभोपयोगसे भिन्न होकर अंतरमें आनन्दके नाथका अनुभव किया है; आनन्दकी दशा प्रगट हुई उसे रखते हैं और जो प्रगट नहीं हुई उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं। ऐसे मुनिराज निर्विकल्प दशासे परिणमित होकर—बाह्यसे शून्य होकर—अंतरमें प्रवेश करते हैं वहाँ शून्यता नहीं है। मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्दकी अद्भुत दशाको अनुभवते हैं।

'उस दशामें, अनन्त गुणोंसे भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकारकी चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगोंमें एवं आश्चर्यकारी आनन्दतरंगोंमें डोलता है।'

अनन्तानन्त गुणोंसे भरपूर भगवान आत्मा भिन्न-भिन्न प्रकारके चमत्कारिक ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता आदिको—जो वचनगम्य नहीं है ऐसे चमत्कारिक आनन्दादि विविध प्रकारके भावोंको—अनुभवता है; वह भीतर आश्चर्यकारी सुखसागरमें डोलता है। द्रव्यसे और गुणसे तो आत्मा परिपूर्ण है, परन्तु उसका अनुभव होनेपर—सम्यग्दर्शन-ज्ञान होनेपर—भिन्न-भिन्न प्रकारकी चमत्कारिक पर्यायोंमें—शान्तिकी पर्याय, स्वच्छताकी पर्याय, सम्यग्दर्शनकी पर्याय, स्वरूपाचरणकी पर्यायरूप तरंगोंमें—आत्मा डोलता है। तरंग पर्याय है, वस्तु ध्रुव है। वेदन पर्याय है, वेदन ध्रुव नहीं होता। वेदनकी पर्याय वर्तमान दशा है।

प्रवचनसारकी १७२वीं गाथाकी टीकामें अलिंगग्रहणके २०वें बोलमें आता है कि—लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञानका कारण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोधसामान्य वह जिसके नहीं है वह अलिंगग्रहण है; इसप्रकार आत्मा द्रव्यसे नहीं आलिंगित ऐसा शुद्ध पर्याय है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

प्रत्यभिज्ञानका कारण ऐसा नित्य चैतन्य-द्रव्यस्वभाव, उसे जो स्पर्श नहीं करता ऐसा शुद्धपर्यायरूप आत्मा है। प्रत्यभिज्ञानका कारण ऐसा जो यह द्रव्य—जो पहले था वही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह है; जो ज्ञाता पहले था वही यह,—ऐसा जो त्रैकालिक द्रव्य—उसे नहीं स्पर्शता, उसे नहीं छूता, उसे आलिंगन नहीं करता आत्मा–वेदनमें जो वर्तमानदशा आई वह आत्मा—शुद्ध पर्यायस्वरूप है। दृष्टि तो सामान्य पर, द्रव्य पर है, परन्तु वेदन शुद्ध पर्यायका है। दृष्टि तो ध्रुव पर परिणम गई है, पर यहाँ (अलिंगग्रहणके २०वें बोलमें) कहते हैं कि दृष्टिका विषय ऐसा जो द्रव्य उसका आलिंगन नहीं करता ऐसा आत्मा वर्तमान शुद्ध पर्याय है। वेदनपर्याय उसे आत्मा कहा। वेदनकी पर्याय वह तो प्रगट है, ध्रुवमें वह मिल नहीं गई है। ध्रुवको जाननेवाली पर्याय ध्रुवसे स्वरूपमें भिन्न है। सम्यग्दर्शनकी पर्याय—जो द्रव्यको मानती है वह—द्रव्यसे कथंचित् भिन्न है।

मुनि तो आश्चर्यकारी आनन्द तरंगोंमें डोलते हैं। अहा ! उसका वर्णन वाणीसे नहीं हो सकता! जहाँ शक्तिमेंसे व्यक्ति—प्रगटता हुई, ज्वार आया—ज्वार बाहरसे नहीं भीतरसे आता है—शान्तिका, आनन्दका, स्वच्छताका, सम्यग्दर्शनका, स्वसंवेदनका, चारित्रका, वहाँ ज्ञानी आश्चर्यकारी आनन्दतरंगोंमें डोलता है। अंतरमें आनन्दका नाथ उल्लसित हुआ है, उसमें दृष्टि और एकाग्रता होने पर, वह एकाग्रताकी पर्याय आनन्द तरंगोंमें डोलती है। ऐसी बात है भाई! उसे मानकर प्रगट करनेमें ही उद्धार है; इसके बिना परिभ्रमण नहीं मिटेगा।

अनन्त गुणोंसे भरपूर इस आत्मद्रव्यका आश्रय लिया पर्यायने; उस पर्यायने निज द्रव्यतलको देखा; उसे देखने पर—अनुभवने पर भिन्न–भिन्न प्रकारकी चमत्कारिक पर्यायोंके—ज्ञानकी पर्याय, दर्शनकी पर्याय, चारित्रकी पर्याय, आनन्दकी पर्याय, स्वच्छताकी पर्याय, प्रभुताकी पर्याय, जीवत्वशक्तिकी पर्याय आदि अनन्त गुणोंकी पर्यायोंकी—जैसे फव्वारे उछलते हैं तदनुसार निर्मल तरंगें उछलती हैं। इसमें द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों आ गये। अभी जिन्हें यह भी खबर नहीं है कि द्रव्य किसे कहते हैं, गुण किसे कहते हैं, पर्याय किसे कहते हैं और 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं'के पहाड़े पढ़ते रहें उनकी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो अनन्तगुणोंसे भरपूर आत्मा स्वभावके सन्मुख हुआ और रागादि विभाव तथा पर्यायसे विमुख हुआ, तब अंतरमें चमत्कारिक पर्यायोंकी तरंगे उठीं—आश्चर्यजनक ज्ञानपर्याय, आश्चर्यजनक सम्यक्त्व पर्याय, आश्चर्यजनक चारित्र पर्याय, आश्चर्यजनक आनन्द पर्याय आदि अनन्त गुणोंकी अद्भुत पर्यायें मुनिराजको उत्पन्न हुईं। पंचमहाव्रत या नग्नता वह मुनिपना नहीं है, परन्तु भीतर अनन्त गुणोंका समुद्र भरा है उसमें दृष्टि देने पर, उसकी प्रतीति होनेपर आनन्दादि गुणोंकी तरंगें उठें वह धर्म एवं मुनिपना है। जैसे समुद्रमें ज्वार और नदीमें बाढ़ आती है, वैसे ही साधक सन्तोंको—मुनिराजको—अंतरमें आनन्दादि तरंगें उछलती हैं, पर्यायमें अतीन्द्रिय आनन्दका ज्वार आता है।

'मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीवका यह स्वसंवेदन कोई और ही है, वचनातीत है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दृष्टि हो अथवा मुनिराज हों—दोनोंको आत्माके आनन्दस्वरूपका स्वसंवेदन कोई भिन्न प्रकारका होता है। सम्यक्त्वीको रागके, पंचमहाव्रतके विकल्प—पुण्यके परिणाम आते हैं, भक्ति आदिके परिणाम आते हैं परन्तु उसे अंतरमें प्रभु–आत्माका स्वसंवेदन भिन्न है। अंतरके आनन्दका वेदन, वह शान्ति कोई अलग प्रकारकी, वचनातीत है।

अहा! भगवानने उस शान्तरसके स्वसंवेदनस्वरूप धर्म किसे कहा है? कि—पुण्य–पापरूप कषायभावके अभावरूप ऐसा जो अंतर शान्तरसका स्वभाव उसे भगवानने धर्म कहा है।

जैसी निर्मलता रे रत्न–स्फटिककी, वैसा ही जीव स्वभाव रे;
वह जिनवीरने धर्म प्रकाशिया, प्रबल कषाय–अभाव रे।

जीवनमें सुना हो कुछ दूसरा और यह बात आयी कोई दूसरी; इसलिये कहते हैं कि यह तो कोई नई बात करते हैं। नई बात नहीं है भाई! यह तो अनादिकी है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली और अनन्त सन्त मुनि यही बात करते आ रहे हैं भाई! तुझे सुननेको नहीं मिली इसलिये नई लगती है।

यहाँ कहते हैं कि मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीवका यह स्वसंवेदन—स्व अर्थात् आनन्दकन्द शुद्ध आत्मा और संवेदन अर्थात् उसका पर्यायमें वेदन—कोई अलग ही है; रागसे भिन्न है, विस्मयजनक है, आश्चर्यकारी है। चौथे गुणस्थानमें वर्तते हुए सम्यग्दृष्टिका स्वसंवेदन भी कोई भिन्न प्रकारका है। पाँचवें गुणस्थानमें वर्तते सच्चे श्रावकका भी स्वसंवेदन रागसे कोई भिन्न जातिका है। स्व अर्थात् अपना शांत एवं आनन्दस्वभाव; संवेदन अर्थात् उसका पर्यायमें वेदन, वह कोई अन्य जातिका है, वचनातीत है। वह वचन द्वारा कैसे कहा जायगा भाई! गूँगेका गुड़। गूँगा आदमी गुड़ खाता हो, उससे कोई पूछे कि क्यों भाई गूँगे! गुड़ कैसा है? तो वह क्या उत्तर देगा? चेहरेके हावभावसे तथा हाथकी चेष्टासे बतलानेकी चेष्टा करेगा। वैसे ही ज्ञानीका स्वसंवेदन भी कोई अन्य प्रकारका है, वचनातीत है।

२२८वें बोलमें कहा है कि—आत्माके अस्तित्वको पहिचानकर स्वरूपमें स्थिर हो जा, बस!.....तेरा अस्तित्व आश्चर्यकारी अनन्त गुणपर्यायसे भरा है; उसका पूर्ण स्वरूप भगवानकी वाणीमें भी पूरा नहीं आ सकता। उसका अनुभव करके उसमें स्थिर हो जा। श्रीमद्ने 'अपूर्व अवसर'में कहा है :—

जो पद श्री सर्वज्ञने देखा ज्ञानमें,
कह न सके उसको भी श्री भगवान जो;
उस स्वरूपको अन्य वाणी तो क्या कहे?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो। अपूर्व०

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

—इसमें भी यही आया। वस्तु है वह वाणीमें कितनी आयेगी? वाणी जड़, रूपी और भगवान आत्मा चेतन, अरूपी। शत्रुके पास स्वजनकी बात कहलाना हो कि 'तू मेरे स्वजन–मित्रका गुणगान करना', तो वह शत्रु क्या गुणगान करेगा? भीतर भगवान आनन्दका नाथ अरूपी और वाणी जड़रूपी मिट्टी धूल। उसके द्वारा अरूपी चेतनकी महिमा हो सकती है? गोम्मटसारमें कहा है कि—केवलज्ञानी भगवानने जितना जाना है उसका अनन्तवाँ भाग वाणीमें आता है। अहा! इतनी वस्तुस्वरूपकी गम्भीरता है, वस्तुका स्वरूप कथंचित् अर्थात् पूर्णरूपसे वचनातीत है। दूसरी अपेक्षा लेकर समयसारकी पाँचवीं गाथाकी टीकामें स्पष्टीकरण करते हुए पं. जयचन्द्रजीने ऐसा भी कहा है कि–शब्दब्रह्म (जिनवाणी) सब कहता है; परमागममें वस्तुके वचनगोचर सर्व धर्मोंके नाम आते हैं, और वचनसे अगोचर जो भी विशेषधर्म हैं उनका अनुमान कराया जाता है; इस प्रकार शब्दब्रह्म सर्व वस्तुओंका प्रकाशक है।

'वहाँ शून्यता नहीं है, जागृतरूपसे अलौकिक ऋद्धिका अत्यन्त स्पष्ट वेदन है।'

वह वचनातीत स्वसंवेदन कोई और ही है। भगवान आत्मामें आनन्दका जो वेदन है वह स्वसंवेदन है; वह वचनसे नहीं कहा जा सकता इसलिये वचनातीत कहा, परन्तु वहाँ शून्यता नहीं है। वचनसे नहीं कहा जा सकता इसलिये वह शून्य है ऐसा नहीं है। भीतर महाप्रभु आनन्दसे भरपूर है और वेदनमें भी आनन्दकी पर्याय आ गई है। वह वेदन कोई शून्य है ऐसा नहीं है। अहा! ऐसा वीतरागमार्ग! भारी काम है भाई! जीवका यह चमत्कारिक वेदन आश्चर्यजनक एवं वचनातीत है, रागके वेदनसे कोई अन्य बात है। रागका—दया, दान, व्रतादिका विकल्प राग है उसका—वेदन भिन्न प्रकारका है और इस स्पष्ट स्वसंवेदनकी जाति कोई और ही है।

अहा! भारी काम है भाई! त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेव—परमेश्वरकी वाणीमें अमुक आया, पूर्ण नहीं आया; क्योंकि वाणी जड़ है। भगवान आत्मा—चैतन्यदेव—स्व-परप्रकाशक है और वाणी स्वपर-कथक है। स्वपरकी कथा–कथन कर सके ऐसी शक्ति वाणीमें है; तथापि आत्माका पूर्ण स्वरूप कहनेकी शक्ति उसमें नहीं है। आत्मामें अनन्त गुण—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, ज्ञान, दर्शन, सुख आदि—, उन अनन्त गुणोंकी एकसमयकी अनन्त पर्यायें, उनका स्पष्ट वेदन होता है, वहाँ शून्यता नहीं है। भीतर उस अनन्त वैभवसे भरा भगवान है, उस अनन्त गुणऋद्धिसे भरपूर चैतन्यदेव अनुभवमें आने पर, वहाँ शून्यता नहीं है, जाग्रतरूपसे उस अलौकिक ऋद्धिका अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। वह वेदन वचनसे नहीं कहा जा सकता।

कोई कहता है कि—भीतर शून्य हो जाओ; खूब रोओ—खूब रोओ, फिर विकल्प

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

टूटकर शून्य हो जाओगे।—ऐसा मार्ग है ही नहीं। वीतरागमार्गके सिवा अन्य कोई मत सत्य है ही नहीं। परन्तु वीतरागका कहा हुआ यह सत्य महँगा बहुत है, भाई! यह वस्तु दुर्लभ है, बड़ीसे बड़ी वस्तु है। यहाँ ऐसा कहा कि वहाँ (स्वसंवेदनमें) शून्यता नहीं है अर्थात् वेदनमें विकल्प नहीं है और वेदन आया वह कहा नहीं जा सकता इसलिये वेदन कुछ है ही नहीं—ऐसा नहीं है। भीतर आनन्द, शान्ति आदि गुणोंका अस्तिरूपसे–अत्यन्त स्पष्टरूपसे वेदन है।

दूसरे कुछ अभी कहते हैं कि—यह बहिनकी पुस्तक एकबार प्रकाशित हुई, अब दूसरी बार लिखकर वचनामृतका दूसरा भाग प्रकाशित करो। भाई! इसमें—इस एक ही पुस्तकमें—सब आ गया है। कहीं अन्यत्र ऐसी बात है ही नहीं। यह तो बहिनसे (बहिनश्री चम्पाबेनसे) सहज ही बोलनेमें आ गया है और सहज ही पुत्रियोंने लिख लिया है; उन्हें कुछ खबर नहीं थी कि यह सब बातें प्रकाशित होंगी। क्या बहिन (बहिनश्री) या पुत्रियोंको खबर थी? अहा! 'निवेदन'में लिखा है कि जिन्होंने ऐसी बातें लिख ली हैं वे बहिनें भी अभिनन्दनकी पात्र हैं। वचनामृतके एक–एक शब्दमें, एक–एक बोलमें सारा (पूरा) तत्त्व भरा है। इस 'वचनामृत' पुस्तकमें ऐसे ४३२ बोल हैं।

'तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यवेदनके दर्शन होंगे।'

इस बोलमें क्या कहते हैं? कि—ज्ञानी जीवका स्वसंवेदन कोई और है, शब्दातीत है; परन्तु वहाँ शून्यता नहीं है। भगवान आत्मा अनन्त गुणऋद्धिसे परिपूर्ण द्रव्य—चैतन्यदेव—उसका जो अनुभव अर्थात् स्वसंवेदन वह वचनसे नहीं कहा जा सकता, विकल्पसे जाननेमें नहीं आता, इसलिये वह शून्य है ऐसा नहीं है; वह वेदन आनन्द एवं शान्तिसे भरा है। उस अनुभव दशामें जाग्रतरूपसे ज्ञान, आनन्दादि अलौकिक ऋद्धिका—अपनी अलौकिक विभूतिका—अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। वेदन यह पर्याय है। तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेवके दर्शन होंगे।

भावलिंगी मुनिराज तथा अविरत सम्यग्दृष्टिको स्वानुभूतिकी पर्यायमें जो जाग्रतरूपसे अलौकिक निर्मलताओंका ज्ञान और आनन्दादि अद्भुत ऋद्धियोंका–स्पष्टरूपसे वेदन होता है। वहाँ भीतर तू जा, तुझे निज ज्ञायकदेवके दर्शन होंगे। सच्चे मुनिको तथा सम्यग्दृष्टिको आत्मस्वभावके आनन्दका वेदन कोई अलग ही है। वह वेदन कहीं रागकी जातिका नहीं है। रागका वेदन तो जीवको अनादिका है; उसे अपूर्व या अलौकिक कैसे कहा जा सकता है? समस्त प्रकारके रागसे भिन्न हुए साधक जीवका अन्तर्वेदन (स्वसंवेदन) तो कोई अलौकिक, अपूर्व और वचनातीत अतीन्द्रिय आह्लादमय होता है। उस वेदनमें बुद्धिपूर्वक रागकी तथा विकल्पकी शून्यता है, परन्तु ज्ञान और आनन्दकी अलौकिक ऋद्धिकी शून्यता नहीं है। जैसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रागके वेदनके समय रागरूप 'अस्ति'का वेदन है, शून्य नहीं है; वैसे ही ज्ञानीको स्वसंवेदनके समय आह्लादादिरूप 'अस्ति'का वेदन है। वेदन वह 'अस्ति' है, शून्य नहीं है।

जैसे आत्मा अपने ज्ञान और आनन्दादि त्रैकालिक स्वभावसे शून्य नहीं है, और जैसे केवली भगवान केवलज्ञानादि स्वभावचतुष्टयसे शून्य नहीं हैं, वैसे ही साधकसन्त स्वसंवेदनके समय पर्यायमें बुद्धिपूर्वकके रागशून्य होनेपर भी वहाँ सर्वथा शून्यता नहीं है, किन्तु जाग्रतरूपसे आनन्दादि अलौकिक ऋद्धियोंका अत्यन्त स्पष्टरूप वेदन है। जैसे रागका—पुण्य और पापका—वेदन प्रत्यक्ष है, वैसे ही रागसे भिन्न हुए मुनिराजको तथा सम्यग्दृष्टिको अनुभवकालमें स्वभावका संवेदन प्रत्यक्ष है; वह आनन्द और शान्तिसे रिक्त नहीं है—शून्य नहीं है।

अहा! जहाँ पर्यायमें अलौकिक चैतन्यऋद्धिका अत्यन्त स्पष्ट संवेदन है, प्रभु! वहाँ तू जा, तुझे चैतन्यदेवके दर्शन होंगे। जैसे बाह्यमें लक्ष करनेसे रागके तथा विकारके दर्शन होते हैं, वैसे ही अंतरमें जानेपर तुझे आनन्दकन्द ज्ञायकदेवके दर्शन होंगे। अहा! ऐसी बात है। सच्चे मुनि हों या सम्यग्दृष्टि हों—सबके लिये यह एक ही बात है। किसीको ऐसा लगे कि—तो क्या हम सब झूठे? भाई! यह तो सत्य क्या है उसकी बात है। एक बार यह बात सुन तो सही!

गुरुदेवने अत्यन्त स्पष्ट करके बतलाया है कि स्वानुभूतिका मार्ग ही मुक्तिका मार्ग है और वही सुखका उपाय है। बस, यही एक करने योग्य कार्य है। गुरुदेवका परम उपकार है; हम तो उनके दास हैं।

—बहिनश्री चम्पाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१२३

दिनांक १८-१०-७८

वचनामृत–३३०

अहो! मुनिराज तो निजात्मधाममें निवास करते हैं। उसमें विशेष–विशेष एकाग्र होते–होते वे वीतरागताको प्राप्त करते हैं।

वीतरागता होनेसे उन्हें ज्ञानकी अगाध अद्भुत शक्ति प्रगट होती है। ज्ञानका अन्तर्मुहूर्तका स्थूल उपयोग छूटकर एक समयका सूक्ष्म उपयोग हो जाता है। वह ज्ञान अपने क्षेत्रमें रहकर सर्वत्र पहुँच जाता है—लोकालोकको जान लेता है, भूत–वर्तमान–भविष्यकी सर्व पर्यायोंको क्रम पड़े बिना एक समयमें वर्तमानवत् जानते हैं, स्वपदार्थ तथा अनन्त परपदार्थोंकी तीनोंकालकी पर्यायोंके अनन्त–अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदोंको एक समयमें प्रत्यक्ष जानते हैं। —ऐसे अचिन्त्य महिमावंत केवलज्ञानको वीतराग मुनिराज प्राप्त करते हैं।

केवलज्ञान प्रगट होने पर, जैसे कमल हजार पंखुरियोंसे खिल उठता है तदनुसार, दिव्यमूर्ति चैतन्यदेव अनन्त गुणोंकी अनन्त पंखुरियोंसे खिल उठता है। केवलज्ञानी भगवान चैतन्यमूर्तिके ज्ञान–आनन्दादि अनन्त गुणोंकी पूर्ण पर्यायोंमें सादि–अनन्त केलि करते हैं; निजधामके भीतर शाश्वतरूपसे विराज गये हैं, उसमें से कभी बाहर आते ही नहीं। ३३०.

'अहो! मुनिराज तो निजात्मधाममें निवास करते हैं।'

जो यथार्थ सच्चे मुनि हैं वे तो निजात्मधाममें निवास करते हैं। 'शुद्ध, बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;'—वह मुनिराजका निजात्मधाम है, उसमें वे निवास कर रहे हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि निज शुद्धात्मधाममें अल्प निवास करते हैं, देशविरति श्रावक विशेष

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वसते हैं और मुनिराज तो अति उग्ररूपसे वस गये हैं। निरन्तर झरते निजानंदमुद्रित प्रचुर स्वसंवेदनकी उग्र दशा मुनिराजको प्रगट हो गई है। उन्होंने अपना निवास निजात्मधाममें स्थापित किया है।

'उसमें विशेष–विशेष एकाग्र होते–होते वे वीतरागताको प्राप्त करते हैं।'

मुनिराजका निवास शरीर और रागादि विभाव नहीं है, परन्तु अशरीरी और अरागस्वरूप निजानन्दधाम है। वे निजानन्दधाममें, ज्ञानादि अनन्तानन्त गुणसमृद्धिसे परिपूर्ण भगवान निज चैतन्यस्वभावमें अधिकाधिक लीन होनेपर वीतरागदशाको प्राप्त करते हैं। अंतरमें जो प्रगट 'महाव्यक्त' टंकोत्कीर्ण शाश्वत चैतन्यधाम है उसमें वसे हुए मुनिराज अंतरमें विशेष–विशेष एकाग्र होते–होते सातिशय अप्रमत्तदशा प्रगट करके, क्षपकश्रेणी लगाकर बारहवें गुणस्थानमें पहुँच जाते हैं, सम्पूर्ण वीतरागताको प्राप्त करते हैं।

निजात्मधाममें एकाग्रता बढ़ते–बढ़ते वीतराग हुआ जाता है, पंच महाव्रतादिके विकल्प प्राप्त करते–करते नहीं। निजात्मधाममें निवास करनेवाले मुनिराजको छठवीं भूमिकामें अट्ठाईस मूलगुणके शुभ विकल्प आते अवश्य हैं, परन्तु उनमें उनका निवास नहीं है; वे उन्हें नहीं रुचते—अच्छे नहीं लगते, वे तो निजानन्दधाममें पूर्णरूपसे जम जानेके लिये प्रयत्नशील हैं। निजात्मस्वरूपमें स्थिरता करते–करते वे पूर्ण वीतराग हो जाते हैं। अहा! ऐसी वस्तुस्थिति है।

वीतराग चैतन्य जिनबिम्ब ऐसे निज ज्ञायकस्वभावमें निवास करके उसमें अत्यन्त लीन होते–होते अंतरमें जो शक्तिरूप वीतरागता थी वह पर्यायमें व्यक्त हो जाती है। मुनिदशामें वीतरागता प्रगट हुई थी परन्तु अभी वह अपूर्ण थी, अंशतः वीतरागता तो चतुर्थ गुणस्थानमें सम्यग्दृष्टिको भी प्रगट हो जाती है। सम्यग्दर्शन भी वीतराग पर्याय है, सम्यग्ज्ञान भी वीतराग पर्याय है और सम्यग्चारित्र भी वीतराग पर्याय है। उस रत्नत्रयस्वरूप वीतरागी पर्यायरूप उग्रतासे परिणमते—निजानन्दधाममें उग्रतापूर्वक लीन होते–होते—मुनिराज सम्पूर्ण वीतरागताको प्राप्त करते हैं।

'वीतरागता होनेसे उन्हें ज्ञानकी अगाध अद्भुत शक्ति प्रगट होती है।'

मुनिराजको निज पूर्ण विज्ञानघन स्वभावके आलम्बन द्वारा परिपूर्ण वीतरागता होनेसे ज्ञानकी दशामें अगाध अद्भुत शक्ति अर्थात् केवलज्ञान प्रगट होता है। वीतरागतासे ही केवलज्ञान होता है न? वास्तवमें तो केवलज्ञान त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे प्रगट होता है, परन्तु यहाँ साधन लेना है न? मनुष्य शरीर या वज्रऋषभनाराच संहनन आदि निमित्त साधन नहीं हैं, महाव्रतादिका शुभभावरूप व्यवहार भी साधन नहीं है,—यह बतलानेके लिये पूर्ण वीतरागतारूप पूर्वकी शुद्ध पर्यायको केवलज्ञानका साधन कहा है;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं तो केवलज्ञान पूर्वकी वीतराग पर्यायसे भी प्रगट नहीं होता, किन्तु त्रैकालिक द्रव्यस्वभावके पूर्ण आलम्बनभावसे प्रगट होता है; केवलज्ञानकी शक्तिमेंसे पर्यायमें केवलज्ञानकी व्यक्ति होती है।

बारहवें गुणस्थानमें पूर्ण वीतरागता और तेरहवें गुणस्थानमें केवलज्ञान होता है न! इसलिये कथन तो ऐसा होगा न! कि—मोक्षमार्गसे ही केवलज्ञान और मोक्ष होता है। साधन बतलाना हो वहाँ कथन ऐसा ही आता है। वैसे, वास्तवमें तो चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मामें एकाग्रता होनेपर जैसे सम्यग्दर्शन हुआ, विशेष एकाग्रता होनेपर चारित्र हुआ, वैसे ही उसमें पूर्ण एकाग्रता होनेपर वीतरागता और फिर केवलज्ञान होता है।

पंचमहाव्रतादिके विकल्पोंको साधन कहा है वह व्यवहारनयका कथन है; वास्तवमें वे साधन नहीं हैं। वीतरागताको केवलज्ञानका साधन कहना वह भी सद्भूत व्यवहार है; वास्तवमें तो अंतरमें करणशक्तियुक्त भगवान आत्मा स्वयं ही साधन है, जो कि अनन्तानन्त अपार अपरिमित ज्ञानके सातिशय सामर्थ्यवान अचिन्त्य तत्त्व है। त्रैकालिक सातिशय ज्ञानस्वभावमेंसे अगाध अद्भुत शक्तियुक्त केवलज्ञानकी पर्याय होती है, परन्तु जो पूर्व समयकी वीतराग पर्याय व्यय हुई उसमेंसे वह प्रगट नहीं होती; तथापि साधन कहना हो तब और क्या कहा जायगा? मोक्षमार्ग वह मोक्ष अर्थात् केवलज्ञानका कारण है ऐसा कहा जायगा न? साध्यका साधन समझाना हो तब कथन तो ऐसा ही आयगा न?

मोक्षप्रासादका प्रथम सोपान सम्यग्दर्शन भी अंतरमें त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक द्रव्य सामान्यका आश्रय करने पर ही होता है; वह देव–गुरुकी कृपा अथवा रागकी मन्दता हो तब होगा—ऐसी निमित्त या शुभरागकी अपेक्षा नहीं है; एकमात्र द्रव्यस्वभावके अवलम्बनसे ही प्रगट होनेके कारण वह पर, विभाव या पूर्व पर्यायसे निरपेक्ष है। नियमसारमें आता है न कि—निज परमात्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धान–ज्ञान–अनुष्ठानरूप शुद्धरत्नत्रयात्मक मार्ग परम निरपेक्ष होनेसे मोक्षका उपाय है और उस शुद्धरत्नत्रयका फल स्वात्मोपलब्धि—निज शुद्ध आत्माकी पूर्ण प्राप्ति अर्थात् मोक्ष है।

सम्यग्दृष्टिने रागकी एकताके ताले खोल दिये हैं; उसके अंतरमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्दादि अनन्तानन्त गुणसमृद्धिसे भरपूर ध्रुव भण्डार खुल गया है। उस भण्डारमें विशेष–विशेष एकाग्रता होनेपर चारित्र और वीतरागता प्रगट होते हैं। मुनिराजको चारित्रदशा प्रगट हुई है, परन्तु अभी पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हुई है; इसलिये ध्रुव स्वरूपमें विशेष–विशेष एकाग्र होनेपर वे पूर्ण वीतरागता प्राप्त करते हैं।

मोक्षमार्गमें सर्व शुद्धियाँ त्रैकालिक शुद्ध द्रव्यस्वभावके आश्रयसे ही प्रगट होती हैं। प्रथम सम्यग्दर्शन और आत्मज्ञान आनन्दकन्द चैतन्यरत्नाकरकी निर्विकल्प प्रतीति और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान—आत्मसन्मुखता—करनेसे होती है, और उसीके सन्मुख विशेष–विशेष स्थिर होनेपर चारित्र अर्थात् वीतरागदशा प्रगट होती है। इस प्रकार त्रैकालिक ध्रुवके आलम्बनसे ही मोक्षका मार्ग तथा मोक्ष होते हैं तथापि कथनमें तो ऐसा ही आयगा न, कि वीतरागतासे—मोक्षमार्गसे मोक्ष होता है। अहा! ऐसा वस्तुका स्वरूप है; अरे! क्या हो? अनादिकालसे जीव भटक रहा है, उसे अपने मूल स्वभावकी महिमा ही नहीं आयी; क्योंकि उसकी दृष्टि और रमणता सब पर्यायमें ही है; अनादिसे प्रगट पर्यायमें, व्यवहारमें और अंशमें ही उसकी रुचि है। वर्तमान अंशके पीछे महान त्रैकालिक ध्रुव चैतन्य भगवान है उसकी महिमा न आकर रागकी क्रिया तथा दया–दानादि शुभभावोंकी महिमामें लग गया; इसलिये वह मिथ्यादृष्टि रहा।

अहा! अनन्त ज्ञान, आनन्द, ईश्वरता–प्रभुता आदि अनन्त अपार गुणोंसे सुशोभित ऐसे निज ज्ञायक भगवानके प्रति अन्तरमें श्रद्धा सम्बन्धी एकाग्रता होना वह तो प्रथम सम्यग्दर्शन है, स्थिरता सम्बन्धी विशेष एकाग्रता वह चारित्र और उससे भी विशेष एकाग्रता—पूर्ण स्वरूप स्थिरता—वह वीतरागता है। पूर्ण वीतरागता होनेके पश्चात् ही केवलज्ञान होता है ऐसा बतलाना है।

'ज्ञानका अन्तर्मुहूर्तका स्थूल उपयोग छूटकर एक समयका सूक्ष्म उपयोग हो जाता है।'

वीतराग होनेके पश्चात् ज्ञानका उपयोग, जो पहले असंख्य समयका स्थूल था वह छूटकर, एक समयका सूक्ष्म हो जाता है। सम्यग्दर्शनके कालमें समस्त शुभाशुभरूप स्थूल उपयोगरहित होकर सूक्ष्म ज्ञायकको ग्रहण किया होनेसे प्रगट हुआ वह सूक्ष्म उपयोग भी केवलज्ञानकी अपेक्षासे स्थूल है; क्योंकि छद्मस्थको आत्मानुभवके समय भी उपयोगका काल तो असंख्य समयका है। श्रद्धाका कार्य एक समयमें होता है, परन्तु ज्ञानमें ग्रहण करते हुए असंख्य समय लगते हैं, असंख्य समयमें समझमें आता है। जहाँ अंतरमें वीतरागता होकर केवलज्ञान हुआ वहाँ एक समयका सूक्ष्म उपयोग हो जाता है।

'वह ज्ञान अपने क्षेत्रमें रहकर सर्वत्र पहुँच जाता है—लोकालोकको जान लेता है, भूत–वर्तमान–भविष्यकी सर्व पर्यायोंको क्रम पड़े बिना एक समयमें वर्तमानवत् जानते हैं, स्वपदार्थ तथा अनन्त परपदार्थोंकी तीनों कालकी पर्यायोंके अनन्त–अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदोंको एक समयमें प्रत्यक्ष जानते हैं।'

शुद्धात्म द्रव्यसामान्यके पूर्ण आलम्बनभावसे प्रगट हुआ वह केवलज्ञान अपने प्रदेशोंमें रहकर तीन काल और तीन लोकको—सबको एकसाथ जान लेता है, जाननेके लिये उसे परक्षेत्रमें नहीं जाना पड़ता। असंख्यप्रदेशी निज चैतन्यधाममें रहकर एक समयका उपयोग सर्व ज्ञेयोंमें पहुँच जाता है। अरेरे! अभी तो लोगोंको केवलज्ञानके स्वरूपको समझनेमें ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आपत्ति है। ज्ञानस्वभावकी जो सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई—भले ही वह एक समयकी हो—वह अपने क्षेत्रमें रहकर विश्वके सर्व भावोंको पहुँच जाती है, सबको एक समयमें जान लेती है; जाननेके लिये उसे ज्ञेयोंके पास जाना पड़ता है–ऐसा नहीं है। अहा! कैसी होगी वह सर्वज्ञस्वभावकी शक्ति!

'ज्ञ' स्वभाव कहो, सर्वज्ञस्वभाव कहो या केवलज्ञानस्वभाव कहो—सब एकार्थ है। भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी ही है, उसका परिपूर्ण आश्रय लेनेसे सर्वज्ञपर्याय प्रगट होती है। शक्तिमेंसे व्यक्ति प्रगट होती है। अहा! बहुत सूक्ष्म है वीतरागका मार्ग! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वरका मार्ग—सम्यग्दर्शन तथा सम्यक्चारित्र आदि––बहुत सूक्ष्म है।

एक मनुष्य अपने मकानमें खड़ा–खड़ा बाहरकी सब वस्तुओंको जानता है, जाननेके लिये उसे बाहरकी वस्तुओंके निकट नहीं जाना पड़ता; वैसे ही केवलज्ञान समस्त लोकालोकको अपनेमें रहकर जान लेता है, जाननेके लिये उसे लोकालोक तक लम्बा नहीं होना पड़ता। अहा! देखो, यह केवलज्ञानी अरिहंत परमात्माका स्वरूप! वीतराग चैतन्य ज्ञायकबिम्बको पहले यथार्थ रूपमें ग्रहण किया तब तो प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होते हैं; उनमें विशेष एकाग्रता होनेपर चारित्र होता है; और उसमें उससे भी विशेष एकाग्रता होनेसे वीतरागता और केवलज्ञान होता है। केवलज्ञान वास्तवमें तो त्रैकालिक ध्रुवस्वभावके पूर्ण आश्रयसे होता है, तथापि कथनमें ऐसा आता है कि वीतरागतासे केवलज्ञान होता है।

व्रत, उपवास, पूजा, भक्ति आदि बहिर्लक्षी क्रियामें तो राग–विकारके भाव हैं और शुभाशुभ विकारसे रहित अंतरमें पूर्णानन्दके नाथके निकट जाने पर जो अंतर्लक्षी निर्मल परिणाम होते हैं वे तो वीतराग और अबंध परिणाम हैं। स्वभावके समीप जानेसे ज्ञान सम्यक् और परिणाम अबंध होंगे, तथा स्वभावसे दूर जानेसे—रागमें रहनेसे—अज्ञान और बंधन होगा। भाई! वीतराग जिनेश्वरका मार्ग ऐसा है। इसके सिवा अन्य पद्धतिसे करेगा तो कल्याणकी प्राप्ति नहीं होगी; व्रतादि शुभभावोंसे तीनकालमें कल्याण नहीं है; वह तो पुण्यास्रवकी क्रिया है, निरास्रवकी नहीं। निरास्रवकी क्रिया तो पूर्णानन्दके आश्रयसे प्रगट होती है। निरास्रव ध्रुवतत्त्वके आश्रयसे निरास्रव निर्मल पर्याय प्रगट होती है। अबंधस्वरूप भगवान आत्माके आश्रयसे अबंध परिणाम प्रगट होते हैं। अबंध परिणाम कहो अथवा मोक्षमार्ग कहो—दोनों एक ही हैं। अहा! भगवान जिनेश्वर देव गणधरों और इन्द्रोंकी सभामें जो कहते थे वह यही बात है।

पूर्ण वीतरागता प्रगट होनेके पश्चात् जो केवलज्ञान होता है वह एक समयमें—सेकण्डके असंख्यातवें भागमें—सर्व पदार्थोंकी भूत, वर्तमान और भावी पर्यायोंको क्रम पड़े बिना युगपद् वर्तमानवत् प्रत्यक्ष जान लेते हैं। जो बीत चुका है उसे पहले जानते हैं, फिर वर्तमानमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो वर्त रहा है उसे जानते हैं और फिर भविष्यकी पर्यायोंको जानते हैं—ऐसा क्रम केवलज्ञानको जाननेमें नहीं होता, वह तो एक साथ तीनों कालकी पर्यायोंको वर्तमानमें वर्त रही हों इस प्रकार प्रत्यक्ष जानता है।

अहा! अरिहंतदेव कैसे होते हैं? कि—जिनको समयके छोटेसे छोटे भागमें—एक समयमें—समस्त द्रव्य–गुण–पर्यायको तथा भूत–वर्तमान–भविष्यको पकड़ लेनेवाला—जान लेनेवाला—केवलज्ञान प्रगट हुआ है; उनकी महिमाका क्या कहना! वह केवलज्ञान दशा तो कोई अद्भुत है भाई!

प्रश्न:—जो वर्तमानमें नहीं है उसे वर्तमानवत् जाने, वह ज्ञान झूठा नहीं कहा जायगा?

उत्तर:—भाई! सुन तो सही। भूत और भविष्यकी पर्यायें वर्तमानमें हैं ऐसा कहाँ कहते हैं? बीत गई पर्यायोंको और अभी नहीं हुई पर्यायोंको, मानो वर्तमानमें वर्त रही हों—ऐसी स्पष्टतापूर्वक, अत्यन्त प्रत्यक्ष जानते हैं। अवर्तमानको वर्तमानवत् स्पष्ट जानना वह तो ज्ञानकी दिव्यता है। भूतकालमें जैसी पर्यायें हो गई और भविष्यकालमें जैसी पर्यायें होंगी, उन्हें यथातथरूपसे वर्तमानवत् प्रत्यक्ष जाने, उस दिव्यज्ञानको झूठा कैसे कहा जायगा? अरेरे! केवलज्ञान—परमात्मदशा—क्या है उसकी लोगोंको खबर नहीं है। अभी तो लोगोंको सम्यग्दर्शनकी दशा क्या है, मुनिदशा क्या है, इसकी भी खबर नहीं है, वहाँ यह, क्रमके बिना एक समयमें वर्तमानवत् प्रत्यक्ष जाननेवाले केवलज्ञानकी बात कैसे बैठेगी!

केवलज्ञान स्वात्मपदार्थ तथा विश्वके अनन्त पदार्थोंकी तीनों कालकी पर्यायोंके अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेदोंको एक समयमें जान लेता है। आत्माका द्रव्यतत्त्व और गुणतत्त्व तो परिपूर्ण है ही, परन्तु उसका पर्यायतत्त्व, पूर्णता प्रगट होने पर कैसा होता है वह बात यहाँ बतलाते हैं। अनन्तशक्तिका सागर ऐसे निज ज्ञायकतत्त्वके पूर्ण आलम्बनसे ही वह प्रगट होता है, किसी क्रियाकाण्डसे नहीं। सामर्थ्य भरपूर निज ज्ञायकका अवलम्बन लेनेसे वीतरागता प्रगट होती है और पश्चात् केवलज्ञान प्रगट होता है।

केवलज्ञान सर्व पदार्थोंकी तीनों कालकी पर्यायोंको—उनके अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेदों सहित – एक साथ प्रत्यक्ष जानता है।

प्रश्न:—केवलज्ञान तीनों कालकी सर्व पर्यायोंको जानता है; तो द्रव्यकी प्रथम और अन्तिम पर्याय कौन सी?

उत्तर:—भाई! अनादि–अनन्तमें यह प्रथम और यह अन्तिम—ऐसा कुछ होता ही नहीं। केवलज्ञान भी अनादिको अनादिरूपसे और अनन्तको अनन्तरूपसे ही जानता है। अनादि–अनन्तको सादिरूपसे जाने तो वह ज्ञान ही मिथ्या सिद्ध होगा। द्रव्य और पर्याय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दोनों अनादिके हैं। पहले द्रव्य और फिर पर्याय—ऐसा है? पर्यायके बिना द्रव्य नहीं होता और द्रव्यके बिना पर्याय नहीं होती। दोनों मिलकर सम्पूर्ण वस्तु अनादि–अनन्त स्वतःसिद्ध है। अहा! यह जैनदर्शन तो विश्वदर्शन है, स्वभावको बतलानेवाला तत्त्वदर्शन है।

अबंधस्वभावी भगवान आत्माके आश्रयसे जो अबंध पूर्ण पर्याय प्रगट हुई उसकी इतनी शक्ति है कि अपनी तथा अनन्त परपदार्थोंकी—अनन्त पुद्गल, अनन्त आत्मा, अनन्त केवली सिद्धोंकी—तीनोंकालकी पर्यायोंको, उनके अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेदों सहित, अक्रमसे प्रत्यक्ष जान ले।

अविभाग प्रतिच्छेदका अर्थ क्या? कि—पर्यायमें जिसके दो विभाग न हो सकें ऐसा गुणसामर्थ्यका छोटेसे छोटा अंश। केवलज्ञान समस्त वस्तुके ऐसे सर्व अंशोंको एकसाथ प्रत्यक्ष जानता है।

सर्वको युगपद् प्रत्यक्ष जाननेवाले अरिहंत परमात्मा सर्वज्ञ कैसे हुए?—अंतरमें पूर्ण वीतरागता होनेसे। उस सर्वज्ञ दशाकी शक्ति कितनी? कि–अपनी तीनों कालकी तथा परकी भी तीनों कालकी पर्यायोंको, सर्वके अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेदों सहित, अक्रमसे प्रत्यक्ष जाने ऐसी अचिन्त्य शक्ति है। परके अवलम्बन बिना, अपने क्षेत्रमें रहकर, एक समयकी कालमर्यादामें रहकर, सर्वभावोंको एकसाथ अत्यन्त प्रत्यक्ष जाने ऐसी कोई अद्भुत केवलज्ञानकी महिमा है।

'ऐसे अचिन्त्य महिमावन्त केवलज्ञानको वीतराग मुनिराज प्राप्त करते हैं।'

अंतरमें आनन्दकन्द ज्ञायकको जाग्रत करके वीतराग भावरूप परिणमित सन्त ऐसे अचिन्त्य महिमावन्त केवलज्ञानको प्राप्त करते हैं। आया कुछ समझमें? पुस्तकमें बहुत अच्छी व्याख्या आयी है। एकमें बहुत कुछ आ गया। अहा! द्रव्यकी शक्तिके सम्बन्धमें क्या बात करें? वस्तुकी तथा उसके गुणोंकी क्या बात करें? परन्तु जीवके एक ज्ञानगुणकी एक समयकी पूर्ण पर्याय—केवलज्ञानकी ऐसी कोई अद्भुत अनन्त शक्ति है कि वह अपने भूत–वर्तमान–भविष्यकी पर्यायोंको तथा अनंतानंत जीव कि जिनमेंसे अनन्तको प्राप्त हुई सिद्ध दशा अनंतकाल तक ज्योंकी त्यों रहेगी। और अनन्त जीव अभी निगोदमें हैं कि जिनमेंसे अनन्त जीव निकलकर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे—उन सबको–तीनोंकालके सर्व भावोंको—सहजरूपसे प्रत्यक्ष जानता है। यह तर्क या विकल्पका विषय नहीं है; स्वभावका गर्भ अनन्त है।

प्रवचनसारमें कहा है न?—'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं.....' जो जीव अर्हंतको द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे तथा पर्यायरूपसे जानता है वह अंतरमें अपने आत्माको जानता है। जैसा और जितना अर्हंतका आत्मा है वैसा और उतना ही मेरा आत्मा है। उनके जैसे और जितने मुझमें गुण हैं और उनको जो केवलज्ञानादि पूर्ण पर्यायें प्रगटी हैं वे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतरद्रव्यस्वभावके आश्रयसे प्रगट हुई हैं; इसलिये मैं भी अपने द्रव्यस्वभावका आश्रय प्रगट करूँ और पर्यायमें केवलज्ञान आदि पूर्णता प्राप्त करूँ। अरे! कितनोंने तो यह बात सुनी भी नहीं होगी। अहा! यह तो त्रिलोकीनाथ महावीर और वर्तमान विरहमान सीमंधरादि वीतराग तीर्थंकरोंका कथन है।

'केवलज्ञान प्रगट होने पर, जैसे कमल हजार पँखुरियोंसे खिल उठता है तदनुसार, दिव्यमूर्ति चैतन्यदेव अनन्त गुणोंकी अनन्त पँखुरियोंसे खिल उठता है।'

हजार पंखुरीवाला कमल जैसे खिल उठता है, वैसे ही ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंको धारण करनेवाला भगवान आत्मा अनन्त गुणोंकी निर्मलताओंसे पर्यायमें खिल उठता है। अहा! इस स्वभावका अंतरमें विश्वास आ जाना वह अनंत पुरुषार्थ है। भीतर निर्विकल्प दृष्टि होने पर परिणाममें ज्ञायकका विश्वास आता है। अंतरकी यह बात समझमें न आयी हो उसे 'एकान्त' लगता है; किन्तु भाई! भले ही तुझे एकान्त लगे, परन्तु यह तो वीतरागका अनेकान्त सिद्धान्त है। इसमें कहाँ वाद–विवादका स्थान है? अंतरमें चैतन्य ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे सम्यग्दर्शन होता है और देव–शास्त्र–गुरुके दर्शन या व्रत–तपके आश्रयसे सम्यग्दर्शन नहीं होता—उसे अनेकान्त कहते हैं। भगवानके दर्शन या व्रतादि तो रागकी क्रिया है, उसमेंसे वीतरागता कैसे होगी?

भीतर पर्यायमें वीतरागता प्रगट करना हो तो निज चैतन्य बिम्बका अवलम्बन ले। इसके सिवा लाखों क्रियाकाण्ड करे वह सब बंधका कारण है। जैसे कमल हजार पंखुरियोंसे खिल उठता है, वैसे ही दिव्यशक्तियोंका भण्डार भगवान आत्मा पर्यायमें अनन्त अचिंन्त्य गुणोंकी अनन्त निर्मलताओंसे खिल उठता है। एक गुणकी एक पर्याय—ऐसे अनन्त गुणोंकी अनन्त पर्यायोंसे–पंखुरियोंसे खिल उठता है। जो स्वयं ही अचिन्त्य शक्तिवान देव है और चैतन्यरूप चिन्तामणि रत्न है ऐसा यह ज्ञायकभाव अनन्त गुणोंकी निर्मल पर्यायोंरूपसे खिल उठता है।

'केवलज्ञानी भगवान चैतन्यमूर्तिके ज्ञान–आनन्दादि अनन्त गुणोंकी पूर्ण पर्यायोंमें सादि–अनन्त केलि करते हैं; निजधामके भीतर शाश्वतरूपसे विराज गये हैं, उसमेंसे कभी बाहर आते ही नहीं।'

जबसे केवलज्ञान प्रगट हुआ तबसे उसका आदि हुआ, और वह ज्योंका त्यों अनन्तकाल रहना है।

सादि अनन्त, अनन्त समाधिसुखमां,
अनन्त दर्शन, ज्ञान अनन्त सहित जो;
अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! सम्यग्दृष्टिको ऐसी भावना होती है। समाधिसुख अर्थात् अतीन्द्रिय आह्लादस्वरूप आनन्द। अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्दादि अनन्त पूर्ण पर्यायोंमें केवलज्ञानी भगवान सादि-अनन्त काल तक केलि-क्रीड़ा करते हैं। अहा! भगवन्त सिद्ध क्या करते हैं? अतीन्द्रिय पूर्णानन्दमें रमण करते हैं, अनन्तानन्त निर्मल पर्यायें प्रगट हुई उनका वेदन करते हैं।

प्रश्न:—सिद्ध भगवान कुछ नहीं करते?

उत्तर:—अपने और आनन्दादि अनन्त गुणोंकी पूर्ण पर्यायमें सादि-अनन्त क्रीड़ा करनेका अपना कार्य सिद्ध भगवान स्वयं करते हैं; वे अपने कार्य बिना—कार्य रहित नहीं हैं। विश्वका प्रत्येक पदार्थ अपने वर्तमान पर्यायरूप कार्यका स्वयं कर्ता है; अन्य पदार्थ भी अपने-अपने कार्य करते हैं, उनका कार्य यह जीव करे ऐसा कहाँसे आया? अहा! यह जीव परका करे कुछ नहीं; तथापि परको जाने बिना नहीं रहे ऐसा ही वस्तुस्वभाव है। ऐसी बातें हैं भाई! जैनधर्म वह कोई पक्ष या सम्प्रदाय नहीं है, वह तो वस्तुका स्वरूप है।

केवली भगवान निजधामके भीतर शाश्वतरूपसे विराजमान हो गये, उसमेंसे कभी बाहर आते ही नहीं। निजधाम कहो या सुखधाम कहो—'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम।' पूर्ण परमात्मदशा प्रगट होने पर जीव निज सुखधामके भीतर शाश्वतरूपसे स्थित हो जाते हैं—सादि-अनन्त अनन्त समाधिसुखमें परिणमित हो जाते हैं, उसमेंसे कभी बाहर आते ही नहीं।

प्रश्न:—भक्तों पर संकट आये तब परमात्मा अवतार धारण करते हैं—ऐसा आता है न?

उत्तर:—वह कथन सत्य नहीं है। सिद्ध दशाको प्राप्त हुए मुक्त परमात्मा कभी अवतार धारण नहीं करते। पूर्ण स्वरूपके पूर्ण अवलम्बनको प्राप्त हुए पूर्णानन्दकी प्राप्तिका सादि-अनन्तकाल वेदन करनेवाले सिद्ध भगवन्त उस आनन्दमय वेदनमेंसे कभी बाहर आते ही नहीं, भीतर आनन्दमें रमण करते हैं। अहा! उसीको परमात्मपद कहते हैं, और 'स्वद्रव्यके अवलम्बनसे होता है'—वह उसकी प्राप्तिका उपाय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१२४

दिनांक १६-१०-७८

वचनामृत–३३१

कहीं रुके बिना 'ज्ञायक हूँ' इस प्रकार बारम्बार श्रद्धा और ज्ञानमें निर्णय करनेका प्रयत्न करना। ज्ञायकका घोटन करते रहना। ३३१.

"कहीं रुके बिना 'ज्ञायक हूँ' इस प्रकार बारम्बार श्रद्धा और ज्ञानमें निर्णय करनेका प्रयत्न करना।"

मैं ज्ञायक हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, मैं समस्त विभावोंरहित मात्र ज्ञायक ही हूँ—इस प्रकार कहीं—शुभाशुभ निमित्तमें, शुभाशुभ रागमें, एक समयकी अधूरी–पूरी पर्यायमें या गुण–गुणीके भेदमें—रुके बिना निज असंग, अराग, परिपूर्ण, अभेद शुद्धात्मतत्त्वका बारम्बार श्रद्धा और ज्ञानमें निर्णय करनेका उद्यम करते रहना। अहा! मैं ज्ञायक हूँ, एक त्रैकालिक ज्ञायक वस्तु हूँ; ध्रुव ज्ञायक, नित्य ज्ञायक, सदृशरूपसे त्रिकाल अवस्थायी ज्ञायक सो मैं हूँ—इस प्रकार अंतरमें स्वभावका, रुचि और ज्ञानमें निर्णय करनेका सतत प्रयत्न करना। ऐसी बात है, बिलकुल वस्तुके घरकी–आत्माके तलकी!

समयसारकी 'आत्मख्याति' टीकाके परिशिष्टमें ४७ शक्तियोंका वर्णन श्री अमृतचन्द्राचार्यने किया है न? उनमें एक कर्तृत्वशक्ति आयी है। होने रूप और सिद्धरूप भावके भावकत्वमयी कर्तृशक्ति है। विचार तो ऐसा आया था कि ४७ शक्तियोंमें 'भावशक्ति'—३३वीं और ३९वीं ऐसे—दोबार आयी है; उसका क्या कारण? जो ३३वीं 'भावशक्ति' है वह तो भाव, अभाव, भावाभाव, अभावभाव, भावभाव और अभावाभाव—इन छह शक्तियोंमेंसे एक है। उसका अर्थ यह है कि जिसमें अमुक अवस्था विद्यमान हो, कोई न कोई स्थिति जिसमें अवश्य हो, ऐसे रूप जो शक्ति वह 'भावशक्ति' है। और जो ३९वीं 'भावशक्ति' है वह तो 'क्रियाशक्ति'के सामनेके अर्थमें है। कर्ता, कर्म, करण आदि कारकोंके अनुसार परिणमनेरूप जो भाव वह 'क्रियाशक्ति' है; उसके सामने, कारकोंके अनुसार रचित उसी पर्यायको सन्मात्ररूप अस्तित्वमात्ररूप या होनेमात्ररूप बतलानेके लिये, कर्ता–कर्म आदि कारकोंके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुसार जो क्रिया उससे रहित भावनामात्रमयी, अस्तित्वमात्रमयी, होनेमात्रमयी 'भावशक्ति' कही है। इस प्रकार उन दोनों शक्तियोंका नाम एक होने पर भी, उनके अर्थमें फेर है।

जीवमें प्रतिसमय जो नये–नये भाव––परिणाम होते हैं तद्रूप अस्तित्वपनेरूप उस अवस्थाको प्राप्त कर लेने रूप, उस भावके कर्तृत्वरूप द्रव्यकी जो त्रैकालिक शक्ति सो 'कर्तृत्वशक्ति' है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र आदि जो निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं उनमें जीव स्वतंत्ररूपसे व्यापक होनेसे तद्रूप होनेरूप 'कर्तृत्वशक्ति' जीवकी अपनी है। कार्य, कर्तृत्वशक्तियुक्त द्रव्यसे होता है, किसी भी बाहरी निमित्तसे नहीं। 'कर्तृत्वशक्ति' आत्माकी होनेसे और आत्मा तद्-अभिन्न ज्ञान–आनन्दादि अनंत गुणात्मक होनेसे अभेद–अपेक्षासे कर्तृत्वशक्तिका रूप निज आत्मद्रव्यसे अभिन्न ऐसे अनन्त गुणोंमें (विस्तारा जा सकता) है। कर्ताशक्ति आत्माकी होनेसे उसके सर्व गुणोंमें कर्ताशक्तिके रूपको विस्तारकर ज्ञानगुण ज्ञानकी पर्यायका कर्ता, श्रद्धागुण श्रद्धापर्यायका कर्ता, चारित्रगुण चारित्रपर्यायका कर्ता––इस प्रकार एक गुणका रूप निज द्रव्यसे अभिन्न ऐसे अनन्त गुणोंमें कहा जा सकता है। अहाहा! श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने शक्तियोंका वर्णन करके कोई अद्भुत कार्य किया है, केवलज्ञानीके गहरे भाव उनमें भरे हैं।

'मैं विभावसे रहित शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसा सानुभव सच्चा निर्णय सम्यग्दर्शन होने पर होता है। वह निर्णय किसके समक्ष देखकर होता है? कि––त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावके सामने दृष्टि करनेसे। पर्यायमें अनादिसे जो पर लक्ष है वहाँसे दृष्टि–रुचि उठाकर उसे स्वभावसन्मुख झुकाना, ले जाना; बस इतना ही करना है। इसका नाम सम्यग्दर्शन, आत्मसाक्षात्कार तथा आत्मानुभव है। आत्मामें कर्तृशक्ति होनेसे स्वयं ही उस कार्यमें स्वतंत्ररूपसे व्याप्त होकर उस समय उसका कर्ता है। उसमें कोई निमित्त, विकल्प या पूर्व पर्यायकी सहायता नहीं है।

कर्ताशक्तिकी अपेक्षा द्रव्यमें होनेवाली नई–नई पर्यायें 'कार्य' हैं और उन्हीं पर्यायोंको कर्ता आदि कारकोंकी अपेक्षारहित देखा जाय तो वही पर्यायें अस्तित्वरूप होनेरूप 'भाव' हैं। 'भावशक्ति' द्रव्यकी है और द्रव्य तद्-अभिन्न अनंत गुणात्मक है, इसलिये सर्व गुण अपने परिणमनकालमें कारकोंकी अपेक्षारहित 'भाव' मात्र हैं। उस दशारूपसे अस्तित्वपनेरूप––प्राप्त कर लेनेरूप––अस्तित्वरूप 'भावशक्ति' अनन्तगुणात्मक द्रव्यकी अपनी है। ऐसे अभेद द्रव्यस्वभावका––निज शुद्धात्मद्रव्य सामान्यका––दृष्टि––ज्ञानमें आलम्बन लेनेसे सम्यग्दर्शनादिकी यथासंभव निर्मल पर्याय एक साथ प्रगट होती है। अहा! ऐसे वस्तुस्वरूपको नहीं समझे और बाहरकी बातोंमें––व्यवहारकी बातोंमें––झगड़े, झगड़े और झगड़े! अरे भाई! यह तो झगड़े मिटानेकी रीति है। अंतरमेंसे आया नहीं और बाहरसे सत्यश्रवण मिला नहीं, इसलिये अपनी मतिकल्पनाके कारण झगड़े खड़े हुए। भाई! अनुभवी गुरुके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सान्निध्यमें श्रवण किये बिना अथवा अंतरके सच्चे संस्कारोंके बिना यह बात अपने आप बैठ जाय ऐसी नहीं है।

'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा जो ध्रुवस्वभावके लक्षसे निर्णय हुआ वह सम्यग्दर्शन है। वह निर्णय होने पर ज्ञान भी साथ ही सम्यक् हुआ और उसीकाल चारित्र भी स्वरूपाचरणरूपसे—स्थिरताके अंशरूपसे—परिणमित हुआ। अनन्त गुणोंके समुदायरूप सम्पूर्ण द्रव्य वास्तवमें 'भावक'—भावका कर्ता—है, और भावक द्रव्य अपने गुणों द्वारा जिन भावोंरूप होता है, जिस भावको प्राप्त करता है वह दशा उसका 'भाव' है। भावक और भाव दोनों वास्तवमें एक द्रव्यमें ही होते हैं, भिन्न द्रव्यमें नहीं। भावक ऐसे निज आत्मद्रव्यकी ओर दृष्टि करनेसे उसकी पर्यायोंमें यथासंभव निर्मल 'भाव' प्रगट होगा। जीवको तो मात्र एक ही करना है कि—अपने द्रव्यस्वभावको देखना। स्वभावकी ओर देखनेसे पर्यायमें निर्मलता अपने आप प्रगट होगी। अहा! बात कुछ सूक्ष्म है भाई! यह कहीं बाह्य विद्वत्ता या पढ़ाई हो तब आयगी—ऐसा नहीं है। बेनने कहा है न? कि—'जानकारीके मानसे दूर रहना अच्छा है। बाह्य प्रसिद्धिके प्रसंगोंसे दूर भागनेमें लाभ है। वे सब प्रसंग निःसार हैं, सारभूत तो एक आत्मस्वभाव है।' इसलिये जानकारीका अभिमान नहीं करना भाई!

लंडनसे एक भाईका पत्र आया है; यहाँका साहित्य पढ़कर वे अत्यन्त सन्तोष व्यक्त करते हैं। ऐसा लगता है कि 'बेनके वचनामृत' उन्हें मिले नहीं हैं, नहीं तो वे बहुत ही सन्तुष्ट होते। पढ़कर प्रमोद आये बिना न रहे ऐसी यह वस्तु है।

यहाँ तो कहते हैं कि कहीं रुके बिना 'मैं मात्र ज्ञायक ही हूँ, शुभाशुभ विभावभाव लेशमात्र मेरे नहीं हैं' इस प्रकार बारम्बार रुचि और ज्ञानमें निर्णय करनेका उद्यम करना। पूर्णानन्द ध्रुव ज्ञायकस्वभावमें दृष्टि कर तो, उस ध्रौव्यमें भीतर कर्तृत्वशक्ति, कर्मत्वशक्ति और भावकशक्ति आदि अनंत शक्तियाँ हैं इससे पर्यायमें व्याप्त होकर—भावक होकर, निर्मलताका कार्य अवश्य होगा। यह बात न समझें और लोग विवाद करें कि—'ज्ञानमें निर्मलता या न्यूनाधिकता हो वह कर्मके कारण होते हैं'; परन्तु वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। स्वतंत्र वस्तुस्थिति तो ऐसी है भाई! इस बातसे तुझे दुःख हो, मन ही मन आघात लगे तो प्रभु! क्षमा करना, परन्तु सच्चा मार्ग तो यही है। आया कुछ समझमें?

अहा! जिनवाणी कोई अलौकिक है। दिगम्बर जैनाम्नायमें जो यथार्थ वस्तुस्थिति कही है वह यही है; अन्यत्र जिनवाणी है ही नहीं। भगवान आत्मा जो कि स्वभावसे मात्र ज्ञायक है वह सहज ज्ञान और सहज आनन्दादि अनन्त शक्तियोंका संग्रहालय, अनन्त गुणोंका भण्डार, अनन्त सामर्थ्यका सागर है। उसका अन्तर्मुख होकर बारम्बार श्रद्धा और ज्ञानमें निर्णय करनेका प्रयत्न करना। यह एक ही करने योग्य है। छहढालामें कहा है न? कि—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'लाख बातकी बात यहै, निश्चय उर लाओ,
तोरि सकल जग दंद-फंद, नित आतम ध्याओ।'

लाख बातोंकी एक बात यह है कि—आत्माका यथार्थ निर्णय करनेके लिये तुझे भीतर ज्ञायकमें जाना पड़ेगा। अहा! देखो तो दिगम्बर जिनवाणी! किसी भी ओरसे देखो, चारों ओरसे अविरुद्ध। कर्ता, कर्म, क्रिया आदि समस्त शक्तियाँ भीतर द्रव्यमें है। उसका अन्तरमें लक्ष होनेसे पर्यायमें निर्मल कार्य होता है। भाई! यह समझनेके लिये अंतरमें बहुत धीर-गम्भीर होना पड़ेगा। ऐसे ही पुस्तकें पढ़ जाये, अभ्यास कर ले इसलिये 'ज्ञान' हो गया—ऐसा नहीं है। अंतरमें ज्ञायकका यथार्थ निर्णय होनेसे साथ ही अंशतः अतीन्द्रिय आनन्द आये वही 'ज्ञान' एवं सम्यग्दर्शन है।

अनन्त गुणोंको धारण करनेवाले ऐसे निज ज्ञायकद्रव्यकी अंतरमें जहाँ दृष्टि हुई वहाँ पर्यायमें सम्यग्दर्शनका कार्य हुआ। ज्ञायक द्रव्यमें कर्ता, कर्म, भावक आदि शक्तियाँ हैं, इसलिये वह व्यापकर निर्मल श्रद्धापर्यायका भावक हुआ। सम्यग्दर्शन पर्यायकी भाँति अन्य सर्व गुणोंकी निर्मल पर्यायके विषयमें समझ लेना। इसमें कोई अधिक जाननेकी आवश्यकता नहीं है; आवश्यकता है मात्र वस्तुस्वभावकी ओर दृष्टि करने की। अहा! ऐसी बातें हैं, भाई! ऐसे सत्का विरोध नहीं किया जाता। द्रव्यके स्वभावकी—अंतरंग शक्तिकी—तुझे खबर नहीं है इसलिये तूने अपने द्रव्यकी शक्तिका विरोध किया है। इसलिये अब कहीं रुके बिना 'मैं मात्र ज्ञायक हूँ'—ऐसा बारम्बार श्रद्धा और ज्ञानमें निर्णय करनेका प्रयत्न करना।

'ज्ञायकका घोटन करते रहना।'

'ज्ञायक' अर्थात् ज्ञान, आनन्द, वीर्य, कर्ता, कर्म, करण, आधार आदि अनन्त चैतन्य शक्तियोंका अभेद पिण्डस्वरूप निज आत्मवस्तु; उसे बराबर समझकर, अंतरमें महिमा लाकर उसका बारम्बार घोटन करते रहना। उसका घोटन कर तो तेरी पर्यायमें सब कार्य निर्मल होगा—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, स्वरूपाचरणचारित्र, अतीन्द्रिय आनन्दादि यथासंभव निर्मल प्रगट होंगे। द्रव्यमें कर्ता, कर्म, करण, अधिकरण आदि शक्तियाँ हैं इसलिये द्रव्यस्वभावका—ज्ञायकका—आश्रय लेनेसे उसके आधारसे निर्मल कार्य अवश्य होगा।

यह बात सूक्ष्म लगनेसे लोग विरोध करते हैं। वे कहते हैं कि—कार्य उपादान और निमित्त दोनों कारणोंसे होता है, अकेले उपादानसे नहीं; कार्य होनेमें निमित्तका भी थोड़ा भाग है। भाई! 'दो कारणसे कार्य होता है' वह तो कार्योत्पत्तिका प्रमाण-अपेक्षासे ज्ञान कराया है। कार्य होते समय उपादान—वस्तुकी निजशक्ति—स्वयं ही कार्यरूप परिणमती है, निमित्त नहीं। निमित्त अनुकूल होने पर भी कार्यमें वह अकिंचित्कर है। यहाँ तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति आदि निर्मल पर्यायोंकी बात है। वे निर्मल पर्यायें कब होती हैं? कि—ज्ञायकरूपी ध्रुव ध्येयमें लक्ष जाय तब।

यह सब याद रखना कठिन लगे ऐसा है। कितना याद रखें? भाई! यह कोई गोख जानेकी बात नहीं है, परन्तु तेरे ज्ञायक द्रव्यकी शक्ति इतनी अधिक है कि उसका लक्ष होनेसे सर्व शक्तियाँ पर्यायमें यथासम्भव निर्मलरूपसे परिणमित हों। द्रव्य मलिनरूप परिणमित हो ऐसा कोई गुण तुझमें है ही नहीं, मात्र निमित्तके वश होकर पर्यायमें तूने क्षणिक मलिनता उत्पन्न की है। पर्यायमें क्षणिक मलिनता होने पर भी भीतर जो त्रैकालिक निर्मल शक्तियोंको धारण करनेवाला निज ज्ञायकदेव सदा विद्यमान है उसे अन्तर्मुख होकर देखनेसे पर्यायमें विकार करनेका अभाव होकर निर्मलता प्रगट होती है।

प्रश्न:—'कर्मसे विकार होता है' ऐसा करणानुयोगके शास्त्रोंमें आता है न?

उत्तर:—भाई! विकार करनेका आत्माका स्वभाव नहीं है, स्वभाव हो तो वह कभी दूर नहीं होगा—यह बतलानेके लिये करणानुयोगमें व्यवहारसे—निमित्तकी प्रधानतासे—कथन है। कार्य कहीं निमित्तकी प्रधानतासे नहीं होता। उस समय भी अपना अशुद्ध उपादान ही प्रधान है। करणानुयोग हो या चरणानुयोग हो—सबका सार एकमात्र वीतरागता है। विकारी या अविकारी—सर्व पर्यायोंमें आत्मा अपने षट्कारकोंसे स्वतंत्ररूपसे कार्य करता है। अहा! ऐसा मार्ग है भाई! उसे श्रवण करनेका ऐसा अवसर कब आयगा? अरेरे! सर्वज्ञ प्रभुका विरह हुआ और विवाद खड़े हो गये।

यहाँ कहते हैं कि—ज्ञायकका घोटन—मंथन कर। उसका अर्थ यह है कि—अंतर्मुख होकर बारम्बार ज्ञायकस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव, चैतन्यप्रकाशके—नूरके—तेजके पूर ऐसे निज ज्ञायकस्वभावका घोलन–मंथन करते रहना, जिससे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी निर्मल पर्यायें प्रगट होंगी। शुभभाव करते–करते होंगी ऐसा नहीं, परन्तु अंतर ज्ञायकस्वभावका आश्रय करनेसे—अंतरमें जानेसे—निर्मलता प्रगट होगी। बस! उसके लिये ज्ञायकका विचार, ज्ञायकका निर्णय चाहिये। भीतर विचारोंको दीर्घ करो और अंतरमें जाओ, तुम्हारा कार्य निर्मल हो जायगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–३३२

एकान्तसे दुःखके बलसे अलग हो ऐसा नहीं है, परन्तु द्रव्यदृष्टिके बलसे अलग होता है। दुःख लगता हो, सुहाता न हो, परन्तु आत्माको पहिचाने बिना—जाने बिना जाय कहाँ? आत्माको जाना हो, उसका अस्तित्व ग्रहण किया हो, तभी अलग होता है।' २३२.

एकान्तसे दुःखके बलसे अलग हो ऐसा नहीं है, परन्तु द्रव्यदृष्टिके बलसे अलग होता है।'

मात्र दुःखके बलसे अर्थात् रागका जो दुःख लगे उसका आश्रय करके पृथक् हो ऐसा नहीं है, परन्तु रागसे भिन्न ऐसे निज शुद्धात्मस्वभावकी दृष्टिके जोरसे पृथक् होता है; क्योंकि रागसे—विभावसे पृथक् होनेरूप क्रियाके कारक—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण—द्रव्यस्वभावमें हैं। उसमें शुभरागके विकल्प वह कोई साधन नहीं है। कहीं व्यवहारके विकल्पको साधन कहा हो वहाँ, जिस विकल्पसे पृथक् हुआ उस काल उसे निमित्तरूप कहा है। व्यवहारसे हुआ ऐसा कहा जाता है; ऐसे तो व्यवहारसे पृथक् हुआ, विकल्पका अभाव किया, इसलिये विभावसे पृथक् हुआ है।

एकान्तसे दुःखके लक्षसे, रागके बलसे, संसारके जो विकल्प उठें उनके कारण जीव अंतरसे पृथक् हो ऐसा नहीं है। अन्य रीतिसे कहें तो—पर्यायबुद्धि, रागबुद्धि और विभावके प्रेमसे वह पृथक् हो ऐसा नहीं है; परन्तु भीतर द्रव्यदृष्टिके जोरसे पृथक् हो ऐसा है।

भगवान आत्मामें अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व आदि तथा ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति आदि अनन्त शक्तियाँ हैं। प्रत्येक शक्तिमें अनन्त सामर्थ्य है। आत्मामें एक 'अनन्त-धर्मत्व' नामकी शक्ति है न?—परस्पर भिन्न लक्षणोंवाले अनंतस्वभावोंसे भावित—निष्पन्न ऐसा एक भाव जिसका स्वरूप है वह 'अनन्तधर्मत्व' शक्ति है। ऐसे ज्ञानादि अनन्त गुणोंके आश्रयरूप अभेद द्रव्यसामान्यकी अन्तर्मुख दृष्टिके बलसे जीव विभावसे पृथक् होता है। ऐसी बात है।

अरेरे! यह दुर्लभ मनुष्य भव। भव पूरा करके जीव एकके बाद एक चले जाते हैं। किसीकी हृदयकी गति रुक जानेसे, किसीकी दुर्घटनामें, किसीकी बीमारीसे आयु पूर्ण हो जाती है। जिस दिन, जिस समय, जिस कारणसे शरीर छूटनेवाला हो उसी समय, उसी प्रकार छूटेगा ही। उससे पहले भाई! तू अंतरद्रव्यदृष्टिके बलसे श्रद्धा–ज्ञानमें पृथक् हो जा;–तो तुझे अंतरंग शान्ति और सुख प्रगट होगा। शरीर तो अनन्तबार पृथक् हो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गया, परन्तु अब तू शरीरसे और रागसे पृथक् हो जा। परपदार्थकी विस्मयता छोड़ दे नाथ! तुझमें अनन्त विस्मयकारी अचिन्त्य तत्त्व विद्यमान है, अनन्त गुणोंकी आश्चर्यजनक विभूति भरी है उसकी तुझे खबर नहीं है। भाई! तुझे और कुछ नहीं करना है, मात्र अनन्त गुणरत्नोंके भण्डार जिसमें भरे हैं ऐसे अद्भुत अपार ऋद्धिसंपन्न निज स्थायी स्वरूप पर दृष्टि लगा दे; तो तुझे अंतरमें संतोष होगा कि "मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ," और उसमें स्थिर होनेसे तू पर्यायमें भी कृतकृत्य हो जायगा।

दया, दान, व्रत, तप, पूजा, भक्ति, स्वाध्याय आदि शुभरागसे आत्मा स्वभावसे तो सदा पृथक् ही है, परन्तु समस्त विभावसे रहित ऐसे निज द्रव्य पर दृष्टिका जोर होनेसे वह वर्तमान पर्यायमें रागादिसे अंशतः पृथक् होता है, स्वभावमें स्थिरता होनेसे पूर्ण पृथक् हो जाता है। अहा! ऐसी बात है भाई! यह तो जन्म–मरणका अन्त करनेकी बातें हैं। अशुभभाव तो अनन्तबार किया, किन्तु शुभभाव भी अनन्त बार किये हैं। 'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो'—दिगम्बर मुनि हुआ, अट्ठाईस मूलगुण पाले, परन्तु अंतरमें द्रव्यदृष्टि नहीं की, इसलिये भवभ्रमणका अन्त नहीं आया।

वर्तमानमें तो मुनिमार्गमें बहुत फेरफार हो गया है। चौके लगवाकर आहार लेनेके भावमें अधःकर्म और उद्देशिकका दोष लगता है। मुनिके लिये चौका लगाकर आहारदान देनेवाले गृहस्थ 'मन शुद्ध, वचन शुद्ध, काय शुद्ध और आहार शुद्ध—ऐसा बोलते हैं और आहार ग्रहण करनेवाले मुनि वह स्वीकार करते हैं; उसमें एषणा समिति, अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत आदिका भंग होता है।—तो वहाँ मुनिपना कैसे बन सकता है? अरेरे! वीतरागकी अनुपस्थितिके कारण मार्गमें अनेक फिरके हो गये। क्या हो? ऋषभदेव भगवानके साथ चार हजार राजाओंने मुनिदीक्षा ग्रहण की थी। मुनिपनेका पालन कठिन लगनेसे वे इधर–उधर होने लगे। नग्न मुनिदशामें सचित्त वनस्पति आदि जो समझमें आया खाने लगे। उस समय देवोंने आकर उन्हें सम्बोधित किया कि—'मुनिमार्गमें इस प्रकार शिथिलाचार नहीं चलेगा। नहीं पालन कर सकते तो छोड़ दो मुनिपना।' अरेरे! आजकल ऐसा सम्बोधन करनेवाला कोई शक्तिशाली या पुण्यवान नहीं है! इसलिये मार्गमें विपरीतता चल रही है।

यहाँ कहते हैं कि—

दुःख लगता हो, सुहाता न हो, परन्तु आत्माको पहिचाने बिना—जाने बिना जाय कहाँ?

अन्यत्र कहीं अच्छा नहीं लगता हो, संसारके कामभोगमें अधिक दुःख लगता हो, परन्तु आत्माकी प्रतीतिके बिना कहाँ जाय? भीतर आनन्दादि अनन्त गुणोंके चमत्कारसे भरपूर ऐसे निज ज्ञायक भगवानके प्रति दृष्टि आकर्षित नहीं हुई, उसका स्वरूप समझकर जिसे अंतरमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यथार्थ महिमा भासित नहीं हुई, उसका दुःख नहीं टल सकता। चाहे जितने शास्त्रोंका अभ्यास करे, परन्तु यदि अन्तर्मुख दृष्टि नहीं करे तो उसे आत्मा लक्षगत नहीं हो सकता। अरे! जिसे ऐसी बात सुननेको भी नहीं मिली हो वह क्या करेगा? कहाँ जायगा? उसका परिणाम—योगफल—विपरीत आयगा। अंतरमें चिदानंदमूर्ति निज ज्ञायकका आश्रय कर। उसे जाने बिना—पहिचाने बिना अन्यत्र दुःख लगता हो, तब भी तू जायगा कहाँ?

'आत्माको जाना हो, उसका अस्तित्व ग्रहण किया हो तभी अलग होता है।'

ज्ञान और आनन्दादि अनन्त शक्तियोंका सागर, अनंतानंत गुणोंका भण्डार, अनन्त अपार स्वभावसमृद्धिसे सदा भरपूर ऐसे निज भगवान आत्माको अन्तर्मुख होकर जाना हो, पुण्य–पापके समस्त विभावों रहित उसका शुद्ध अस्तित्व बराबर समझमें आया हो, तभी पृथक् होगा और तभी विभावके दुःखसे मुक्त होकर परमानन्दकी प्राप्ति करेगा।

*

वचनामृत–३३३

चेतकर रहना। 'मुझे आता है' ऐसे जानकारीके गर्वके मार्ग पर नहीं जाना। विभावके मार्ग पर तो अनादिसे चल ही रहा है। वहाँसे रोकनेके लिये सिर पर गुरु होना चाहिये। एक अपनी लगाम और दूसरी गुरुकी लगाम हो तो जीव पीछे मुड़े।

जानकारीके मानसे दूर रहना अच्छा है। बाह्य प्रसिद्धिके प्रसंगोंसे दूर भागनेमें लाभ है। वे सब प्रसंग निःसार हैं; सारभूत एक आत्मस्वभाव है। ३३३.

'चेतकर रहना।'

भगवान आत्माका वास्तविक स्वरूप जैसा है वैसा बराबर जानकर भीतर उसकी साधनामें सावधान—सजग—रहना।

"'मुझे आता है' ऐसे जानकारीके गर्वके मार्ग पर नहीं जाना।"

धर्मका अभ्यास करे उसमें कोई गिनती—पहाड़े सीखे, दो–चार हजार गाथाएँ याद कर ले; कोई प्रश्न करे तो, झटसे उत्तर देना आता हो, और माने कि 'मुझे बहुत आता है;' भाई! ऐसे जानकारीके अभिमानमें–विद्वत्ताके अहंमें नहीं रहना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा! बेनने कैसा कहा है? भावको दर्शानेवाले शब्द बहुत सुन्दर जम गये हैं। बेनने तो कहें, किन्तु पुत्रियोंने लिख लिये। फिर हिंमतभाईने संक्षेपमें जमाकर उसका सार रख दिया है।

यहाँ बेन कहती हैं कि—चेतकर रहना, 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा ध्यान रखकर रहना। कुछ सीख लिया इसलिये हम कुछ बढ़ गये, दूसरोंको हमारे जैसी जानकारी नहीं है; हमें व्याख्यान देना आ गया इसलिये लोग हमारा आदर करते हैं। अरे भाई! वह कोई आत्माकी वस्तु नहीं है, राग और विकल्पकी वस्तु है। तू चेतकर रहना भाई, स्वरूपका लक्ष—ध्यान मत छोड़ना और 'मैं जानता हूँ' इस प्रकार अपनी जानकारीका अभिमान नहीं करना। 'जानकारीका गर्व नहीं करना।'—अहा! भाषा कितनी सादी है! प्रवचन करना आता हो और उसके कारण लोग आदर करें—वह कोई योग्यता नहीं है, उसकी मिठास वह तो रागके साथका एकत्व है, मिथ्यात्व है।

'विभावके मार्ग पर तो अनादिसे चल ही रहा है।'

जानकारीके मार्ग पर चलना वह तो विभावके मार्ग पर चलने जैसा है। शास्त्राभ्यास करके विद्वत्ताका अभिमान करना, विभावके मार्ग पर भटकना–वह कोई नई बात नहीं है; वह तो अनादिसे करता आ रहा है। ग्यारह अंगका ज्ञान अनन्तबार किया, उसमें 'आत्मा ज्ञायक है' यह बात क्या नहीं आयी थी? सर्व प्रकारकी धारणा की, परन्तु 'मुझे आता है' ऐसा अभिमान अंतरमें बना रहा जिससे चैतन्यकी अधिकता भासित नहीं हुई, किन्तु शास्त्रोंका ज्ञान और विद्वत्ताकी अधिकता भासित हुई। इन्द्रियज्ञान और परलक्षी शास्त्रज्ञान वह सब एक है। जगतके हजारों—पाँच–पाँच हजार या दस–दस हजार—लोगोंको उपदेश देना आया, भाई! यह क्या है? विद्वत्ताका अभिमान कैसा? स्वरूपके भान बिना बाह्य धारणाके मार्ग पर—विभावके मार्ग पर—तो तू अनादि कालसे चल ही रहा है।

'वहाँसे रोकनेके लिये सिर पर गुरु होना चाहिये।'

विभावके मार्ग पर चलनेसे रोकनेके लिये कोई टोकनेवाला होना चाहिये। जानकारीकी कलासे दुनियाको सन्तुष्ट करे, दुनिया भी उसे बड़ा माने, स्वयं भी स्वीकार करे कि 'मेरे बड़प्पनका दुनिया आदर करती है और मेरे चरण छूती है।' भाई! वह सब भ्रमणा है। 'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो' तब पंचमहाव्रत धारण करके ग्यारह अंग और नवपूर्वका ज्ञान भी किया, चौथे कालमें भगवानके समवसरणमें दिगम्बर मुनि भी अनन्तबार हुआ, प्रभुकी दिव्यध्वनिका भी अनन्तबार श्रवण किया, किन्तु अंतरसे जानकारीका (ज्ञानका) अभिमान नहीं छोड़ा, इसलिये 'पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' किंचित् मात्र धर्म नहीं हुआ। विद्वत्ताका अभिमान छुड़वानेके लिये सिर पर गुरु होना चाहिये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न:—यह बात तो बड़ी कठिन लगती है!

उत्तर:—भाई! मिथ्यात्वका रोग भारी है न? इसलिये उसकी औषधि भी भारी तीव्र होगी न?

'एक अपनी लगाम और दूसरी गुरुकी लगाम हो तो जीव पीछे मुड़े।'

विद्वत्ताकी आड़में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, विद्वत्ताकी आड़में पैसा मिलता है, भोजनादि और आजीविका मिलती है और लोग मानते हैं कि—यह बड़े विद्वान हैं, प्रवचनकार–व्याख्याता हैं, इसलिये हमें चाहिये कि उनको अच्छेसे अच्छा भोजन करायें, तरह–तरहके मिष्टान्न आदि खिलाकर तथा अभिनन्दन–पत्र देकर स्वागत सन्मान करें। अरे प्रभु! इसमें तो तू मर जायगा, इस विद्वत्ताकी ओटसे तू स्वयं हट जा। यह नहीं, यह नहीं—ऐसे योग्यता और विद्वत्ताके अभिमानसे विमुख होनेकी अपनी लगाम चाहिये और साथ ही गुरुकी लगाम हो तो जीव वहाँसे विमुख हो—मुड़ जाय। अहा! कोई बड़ी अद्भुत वस्तु आ गई है! 'वचनामृत'में बहुत बोल आ गये हैं। लोग दूसरा भाग प्रगट करनेकी माँग करते हैं यह खबर है, परन्तु इस एकमें ही समस्त सार आ गया है।

'जानकारीके मानसे दूर रहना अच्छा है। बाह्य प्रसिद्धिके प्रसंगोंसे दूर भागनेमें लाभ है।'

ज्ञान देखकर लोग जन्म–दिवस मनाते हैं, चरणोंमें पैसा चढ़ाते हैं, अभिनन्दन करते हैं। अरे भाई! तू उसमें मर जायगा। आया कुछ समझमें? कठिन कार्य है भाई! बड़ी मुश्किल बात है। भाई! इस सबसे दूर रहनेमें भलाई है। प्रसिद्धिके प्रसंगोंसे दूर भागनेमें लाभ है। मुझे कोई जाने, कोई माने तो मेरी सच्ची बात प्रगट हो। यह सब मान–बड़ाईके भाव हैं भाई!

'वे सब प्रसंग निःसार हैं, सारभूत एक आत्मस्वभाव है।'

प्रसिद्ध होनेके सब प्रकार निःसार हैं, उन प्रसंगोंसे दूर भागनेमें ही कल्याण है। जगतमें एक निज ज्ञायकस्वभाव ही सारभूत है; उसीके अवलम्बनसे आत्मकल्याण प्रगट होता है। उसके सिवा—एक आत्मस्वभावके सिवा—अन्य सब निःसार है; इसलिये अन्य सब उपाधि छोड़कर एक आत्मस्वभावको समझने और प्राप्त करनेका उद्यम अंतरमें करना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१२५

दिनांक २०-१०-७८

वचनामृत–३३४

आत्मार्थीको श्रीगुरुके सान्निध्यमें पुरुषार्थ सहज ही होता है। मैं तो सेवक हूँ—यह दृष्टि रहना चाहिये। 'मैं कुछ हूँ' ऐसा भाव हो तो सेवकपना छूट जाता है। सेवक होकर रहनेमें लाभ है। सेवकपनेका भाव गुणसमुद्र आत्मा प्रगटनेका निमित्त होता है। ३३४.

'आत्मार्थीको श्रीगुरुके सान्निध्यमें पुरुषार्थ सहज ही होता है।'

आत्मा प्राप्त करनेकी जिसे भावना हो, उसीका जो अर्थी हो, उसे आत्मार्थी कहते हैं। भगवान वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा जिसे 'आत्मा' कहते हैं वह, शरीरमें विद्यमान होनेपर भी शरीरसे बिलकुल भिन्न, भीतर शुभाशुभ विभावोंसे भी रहित ज्ञान, आनन्दादि अनंतानन्त गुणसम्पन्न, अनन्त शक्तियोंका संग्रहालय, अनन्त गुणोंका भण्डार, —ऐसा कोई एक समयमें परिपूर्ण आश्चर्यकारी शाश्वत ध्रुव तत्त्व है। आत्मा अपने टंकोत्कीर्ण ध्रुव शुद्ध स्वभावका निर्णय अपनी वर्तमान पर्यायमें करता है। वेदान्त आत्माको कूटस्थ ध्रुव कहता है वह बात मिथ्या है। यदि आत्मा शक्तिस्वभावसे ध्रुव रहकर पर्यायसे परिणमता न हो तो 'मैं ध्रुवतत्त्व हूँ' ऐसा निर्णय किसने किया? निर्णयरूप कार्य पर्यायमें होता है, ध्रौव्यमें नहीं।

गुरुगम द्वारा आत्माको लक्षगत करनेसे आत्मा प्राप्त होता है; दया, दान, पूजा, भक्तिके शुभपरिणामसे आत्माकी प्राप्ति नहीं होती, वह तो राग और विकल्प है। शुभ भाव आता अवश्य है परन्तु उससे ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान ज्ञायक आत्मा प्राप्त नहीं होता। भगवान आत्मा शरीर, वाणी और मनसे तो भिन्न ही है, परन्तु ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मोंसे तथा पुण्य–पापके विकल्पोंसे—जो कि राग हैं, विभाव हैं, अशुचि हैं, बंधके कारण हैं, दुःख हैं और दुःखके हेतु हैं उनसे—भी भिन्न है। ऐसा आत्मतत्त्व प्राप्त करनेकी जिसे अंतर अभिलाषा है वह आत्मार्थी है।

सर्वज्ञ परमेश्वरने नवतत्त्व कहे हैं; उनमें शरीर, वाणी, कर्म तो अजीवतत्त्व है,

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना परिग्रह संचयकी भावना, क्रोधादि कषाय आदि पापतत्त्व है, दया, दान, नामस्मरण, पूजा–भक्ति आदि पुण्यतत्त्व है—उन सर्वसे भिन्न ज्ञायक आत्मा भीतर ज्योंका त्यों परिपूर्ण शुद्ध पदार्थ है। आत्मवस्तु स्वभावसे तो वर्तमानमें भी परिपूर्ण निर्मल है, 'निर्मल होऊँगा' ऐसा नहीं किन्तु वर्तमानमें ही सामर्थ्य-अपेक्षा पूर्ण शुद्ध हूँ। 'शुद्ध होगा' वह तो व्यक्त पर्याय-अपेक्षाकी बात है। सूक्ष्म बात है भाई! जीवको, अनन्तकालमें सम्यग्दर्शन–आत्मदर्शन क्या वस्तु है उसकी खबर ही नहीं है। यों ही बिना समझे पूजा–भक्ति एवं व्रतादि करता रहे, परन्तु वह तो सब रागकी क्रिया है, बंधनके भाव हैं, उनसे तो संसार ही फलित होता है।

'आत्मार्थी'का अर्थ चलता है। आत्मा क्या वस्तु है? आत्मा शरीर और कर्ममें तथा पुण्य–पापके विभावरूप एकसमयकी पर्यायमें तो नहीं है, परन्तु ध्रुवस्वभावके अवलम्बनसे प्रगट होनेवाली निर्मल पर्याय जितना भी नहीं है। ध्रुवतत्त्व तो पलटती पर्यायसे भी कथंचित् भिन्न है। श्रद्धापर्यायरूप परिणत धर्मी ऐसी श्रद्धा करता है कि—मैं तो सकलनिरावरण–अखण्ड–एक–प्रत्यक्षप्रतिभासमय–अविनश्वर–शुद्ध–परमपारिणामिकभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य हूँ। ऐसे आत्माका जिसे प्रयोजन है—'काम एक आत्मार्थका, अन्य नहीं मन रोग'—वह आत्मार्थी है। मुनिव्रत धारण किये, दिगम्बर मुनि हुआ, अट्ठाईस मूलगुणोंका निर्दोष पालन किया, परन्तु वे परिणाम तो सब आस्रवतत्त्व हैं, पुण्यतत्त्व हैं, आत्मतत्त्व या संवर–निर्जरातत्त्व नहीं हैं। शुद्धाशुद्ध विशेषभावोंसे भी कथंचित् भिन्न ऐसे निज त्रैकालिक सच्चिदानन्दस्वरूप ज्ञायक आत्माका ही जिसे प्रयोजन है, उसीका जो अर्थी है वह आत्मार्थी है। सूक्ष्म बात है भाई! बाहरसे मिल जाय ऐसी यह वस्तु नहीं है।

ऐसे आत्मार्थीको श्रीगुरुके सान्निध्यमें पुरुषार्थ सहज ही होता है। निर्मानता रखना। आत्मार्थी जीव सद्गुरुके समीप निर्मानरूपसे रह सकता है। 'हम भी जानते हैं' ऐसा मान आ जाय तो आत्मार्थिता नहीं रहती। श्रीमद्ने कहा है न!—

मानादिक शत्रु महा, निज छन्दे न मराय;
जातां सद्गुरु शरणमां, अल्प प्रयासे जाय।

प्रश्न:—यह तो व्यवहारकी बात है न?

उत्तर:—हाँ, है तो व्यवहार और निमित्तकी बात; फिर भी व्यवहारमें निर्मानता होना चाहिये। अरेरे! अनन्तकालमें जीवने आत्माका कुछ नहीं किया; व्रत–तप, पूजा–भक्ति, गजरथ चलाना आदि क्रियाकाण्डमें लगा रहा। भाई! उसका फल तो संसार ही है। भीतर पूर्णानन्दघन चैतन्यप्रभु कि जिसमें आवरण, अशुद्धि और अपूर्णता नहीं है उसका जो अर्थी है उसे गुरुके सान्निध्यमें—सत्समागममें सहज ही पुरुषार्थ होता है। वह निर्मानतासे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहता है। 'हम बहुत जानते हैं'—ऐसे ज्ञानके अभिमानमें चूर हो जाय तो वस्तु—निज ज्ञायकस्वभाव—हाथ नहीं आयगा। आया कुछ समझमें?

'मैं तो सेवक हूँ—यह दृष्टि रहना चाहिये।'

जिसे मात्र निज शुद्ध आत्मा प्राप्त करनेकी लगन है ऐसे आत्मार्थी जीवको गुरुके सान्निध्यमें निर्मानतापूर्वक सेवकपनेकी दृष्टि रहना चाहिये। गुरुके सत्संगमें उसे स्वभावकी महिमा जाग्रत हुई होनेसे अंतरमें पुण्यकी तथा बाह्य जानकारीकी महिमा छूटकर उनकी तुच्छता भासित होती है। उसे निज शुद्धात्म स्वभावको समझनेमें निमित्तरूपसे उपकारी ऐसे देव–शास्त्र–गुरुका माहात्म्य आता है, उनके प्रति अति निर्मानतापूर्वक सेवकपनेकी बुद्धि रहती है। मैं तो सेवक हूँ—यह दृष्टि रहनेके साथ कोई भी कार्य करते हुए उसे निरन्तर शुद्धात्मस्वभाव प्राप्त करनेकी आकांक्षारूप आत्मार्थिता तो बनी ही रहती है।

'मैं कुछ हूँ' ऐसा भाव हो तो सेवकपना छूट जाता है।'

मैं दूसरोंकी अपेक्षा कुछ विशेष अच्छा हूँ' ऐसा अंतरमें अभिमान आ जाय तो अंतरमें आत्मार्थिता और बाह्यमें गुरुका सेवकपना—दोनों छूट जाते हैं।

'सेवक होकर रहनेमें लाभ है।'

गुरुके समीप निर्मानतापूर्वक सेवक होकर निवास करनेमें लाभ है। शास्त्रका थोड़ा ज्ञान हो वहाँ ऐसा मान ले कि—मुझे तो आत्मज्ञान हो गया है। भाई! यह तो भटक मरनेका धंधा है। श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षामें सम्यग्दृष्टिकी निर्मानता बतलाते हुए कहा है कि—

जो ण कुव्वदि गव्वं पुत्तकलत्ताइसव्व अत्थेसु।
उवसमभावे भावदि अप्पाणं मुणदि तिणमित्तं॥

जिसे अपने ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्माकी प्रतीति अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होकर स्वरूपरमणतारूप निर्मल चारित्र दशा प्रगट हुई है, वह पर्यायमें अपनेको केवलज्ञानके साथकी तुलनामें पामर मानता है। सम्यग्दृष्टि जीव परद्रव्य तथा परद्रव्यके भावोंमें गर्व नहीं करता। यदि परद्रव्यभावोंसे अपनेको बड़ा माने तो उसे सम्यक्त्व कैसा? वह तो निरन्तर उपशमभावोंकी भावना रखता है और अपने आत्माको तृणवत् तुच्छ मानता है। जबतक पर्यायमें केवलज्ञानादिरूप पूर्णता प्रगट न हो तबतक वह अपनेको तृणसमान पामर मानता है; इतना निर्मान है कि किसी पदार्थमें गर्व नहीं करता।

'सेवकपनेका भाव गुणसमुद्र आत्मा प्रगटनेका निमित्त होता है।'

गुरुके प्रति सेवकपनेका भाव गुणरत्नाकर आत्मा प्रगट होनेका निमित्त होता है। यह कथन निमित्तकी अपेक्षासे है। वास्तवमें तो गुणरत्नाकर आत्मा प्रगट होनेका उपादानकारण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो आत्मा स्वयं है। भगवान आत्मा अनन्तानन्त गुणोंसे सदा भरपूर चैतन्यसमुद्र है। राग और विकार अथवा दया–दानादिके विकल्पका समुद्र वह आत्मा नहीं है, परन्तु सहज ज्ञान, सहज आनन्दादि अनन्तानन्तगुणोंका सागर वह निज ज्ञायक आत्मा है। अहा! भाषा सरल है परन्तु भाव तो अति गंभीर हैं। जिसप्रकार क्षेत्रका—अलोकाकाशका—कहीं अन्त नहीं है। उसीप्रकार गुणसमुद्र भगवान आत्माके गुणोंका भी कोई पार नहीं है। दसों दिशाओंमें सर्वत्र आकाश है। आकाशके जितने भागको एक पुद्गलपरमाणु रोके उसे प्रदेश कहते हैं। आकाशके ऐसे अनन्त प्रदेश हैं। आकाशके अनन्त प्रदेशोंकी अपेक्षा आत्माके ज्ञानादिगुण अनन्तगुने अनन्त हैं। आत्माका वह समस्त वैभव भीतर खचाखच भरा है, परन्तु जीवको उसकी खबर नहीं है। ऐसा गुणसमुद्र भगवान आत्मा अरिहंत भगवानको तो पर्यायमें प्रगट हो गया है, परन्तु शक्ति-अपेक्षासे तो सबका आत्मा ऐसा ही है—'सर्व जीव हैं सिद्धसम'। निर्मानरूपसे गुरुके प्रति सेवकपनेका ऐसा भाव गुणसमुद्र आत्मा प्रगटनेका निमित्त होता है।

जिसे ऐसा गुणसमुद्र आत्मा प्राप्त करना हो उसकी दृष्टिमें कितनी दीर्घता और कितना सामर्थ्य होना चाहिये? क्या वह दया–दानादिके विकल्पोंसे प्राप्त किया जा सकता है? कदापि नहीं। एक समयकी क्षणिक पर्यायपर तो जीवकी दृष्टि अनादिकी है, ज्ञानके विकास पर भी अनादिकी दृष्टि है, परन्तु एक समयवर्ती पर्यायके पीछे अखण्ड परिपूर्ण शुद्धतत्त्व विद्यमान है उसकी उसे खबर नही है। एक समयकी प्रगट पर्याय व्यक्त है और उसके सिवा सामर्थ्यसे परिपूर्ण ध्रुव वस्तु अव्यक्त है। पर्यायमें प्रगट नहीं हुआ इसलिये स्वभावको अव्यक्त कहा, वैसे शक्ति-अपेक्षासे तो द्रव्य सदा व्यक्त ही है।

अरेरे! आजकल तो वीतराग मार्गके नामसे अंधाधुंधी चल रही है। वीतराग मार्गमें तो वस्त्रका एक टुकड़ा रखे और मुनिपना मनाये तो वह मिथ्यादृष्टि है, अनन्त संसारी है। वस्त्र रखनेका भाव वह ममत्व है; ऐसा ममत्व मुनिदशामें नहीं होता। वस्त्र सहित मुनिपना वह वीतरागका मार्ग नहीं है। अहा! मार्ग बहुत कठिन है। विदेहक्षेत्रमें त्रिलोकीनाथ श्री सीमंधर प्रभु विराजमान है, वहाँसे आयी हुई यह वाणी है। आत्माके अनुभवसहित अंतरमें विशेष स्थिरतापूर्वक जिन्होंने वस्त्र–पात्रका त्याग किया है और जिनके अंतरमें अनन्त शान्तिका सागर उछल रहा है उन्हें मुनिराज कहते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि—आत्मार्थीको गुणसमुद्र भगवान आत्माकी प्राप्तिके लिये सद्गुरु निमित्त होते हैं, कुगुरु नहीं। सद्गुरु निमित्त होते हैं परन्तु उनसे प्राप्ति नहीं होती, प्राप्तिको अपने उपादानसे होती है। आता है कुछ समझमें? आता है न!—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेवकी, आतम दियौ बताय॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग और विकल्पसे सम्बन्ध रहित अंतरमें जो निर्दोष और निरावरण पूर्णानन्द चैतन्य प्रभु उसका भान प्रत्यक्ष वर्तते गुरुदेवने कराया, इसलिये परोक्ष गोविन्दकी अपेक्षामें अपने साक्षात् गुरुको विशेष उपकारी मानता हूँ। अहा! वह गुणसमुद्र भगवान आत्मा क्या वस्तु है उसका जीवको लक्ष नहीं है, परन्तु अनादिसे वर्तमान एक समयकी पर्याय पर ही लक्ष है। गुणसमुद्र भगवान आत्मा जो कि सम्यग्दर्शनका विषय है उसे प्रथम लक्षमें ले, ध्येय बनाये तो सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति प्रगट हो। उसमें निमित्तरूपसे गुरु हैं। गुरुके प्रति सेवकपनेका भाव गुणसमुद्र–ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्थिरता आदि अनंत गुणोंका सागर—ऐसा निज ज्ञायक आत्मा प्रगटनेका निमित्त होता है। अन्तर्मुख दृष्टि हुई है अपने उपादानसे, परन्तु साथ ही अंतरमें उपकारी गुरुके प्रति अपनी निर्मानता होती है; इसलिये गुरुने 'गुणसमुद्र आत्मा बतलाया' ऐसा निमित्तसे कहा जाता है।

अहा! बेनकी अंतर्स्थिति धन्य है! अपनेको इतना–इतना आत्मज्ञान एवं अनुभवकी स्थिति होने पर भी वे लिखती हैं कि–"आत्मा" शब्द बोलना सीखे हों तो वह भी गुरुदेवके प्रतापसे। 'चैतन्य हूँ', 'ज्ञायक हूँ'—इत्यादि–इत्यादि सब गुरुदेवके प्रतापसे ही जाना है।" अहा! धन्य है उनकी विनय और उनकी विनम्रता! श्रीमद्ने कहा है न! कि—

प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार;
ऐसा लक्ष हुए बिना, उगे न आत्मविचार।

गुणसमुद्र ज्ञायक आत्मा प्रगट होनेमें उपादानकारण तो अपनी अन्तर्मुख दृष्टि है, उसमें गुरु निमित्त होनेसे 'वह तो प्रभुने दिया है'—गुरुदेवके प्रतापसे आत्मा प्रगट हुआ ऐसा कहा जाता है।

अरेरे! जीवका सारा जीवन 'यह कर लूँ, वह कर लूँ' में ही व्यतीत हो जाता है। दिनभर कमाना, स्त्री–बच्चोंको सम्हालना, अकेला पाप, पाप और पाप! मैं मरकर कहाँ जाऊँगा—उसका जरा भी विचार नहीं करता। उसमें धर्म तो नहीं है किन्तु पुण्य भी नहीं है। पुण्य तो सत्समागममें दो–चार घन्टे तक शास्त्रस्वाध्याय करे, तत्त्वविचार करे तो होता है। पठन-मनन शुभराग है धर्म नहीं है; धर्म तो कोई और ही वस्तु है! परसे भिन्न तथा रागादि विभावोंसे रहित त्रैकालिक निज ज्ञायकस्वभावकी दृष्टि तथा अनुभूति प्रगट करना वह प्रथममें प्रथम सम्यग्दर्शन नामका धर्म है। धर्मका प्रारम्भ सम्यग्दर्शनसे होता है। चारित्रकी बात तो अभी दूर है, सूक्ष्म है। यहाँ तो ऐसा कहा है कि गुणसमुद्र आत्मा प्रगट होनेमें—सम्यग्दर्शन तथा स्वानुभूति प्रगटनेमें—गुरुके प्रति सेवकपनेका भाव निमित्त है। अहा! यह 'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तक कोई अमूल्य वस्तु है भाई!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–३३५

बाहरके चाहे जैसे संयोगमें धर्मको नहीं छोड़ना, चैतन्यके ओरकी रुचि नहीं छोड़ना। धर्म या रुचि छूटी तो अमूल्य मनुष्य भव हार गये। ३३५.

'बाहरके चाहे जैसे संयोगमें धर्म नहीं छोड़ना, चैतन्यके ओरकी रुचि नहीं छोड़ना।'

प्रतिकूल संयोग हो या अनुकूल, परन्तु 'मैं अंतरमें आनंदमूर्ति विज्ञानघन शाश्वत परम पदार्थ हूँ' ऐसी दृष्टि नहीं छोड़ना। अपने ज्ञायक प्रभुकी दृष्टि यदि छूटी तो धर्म गया। चाहे जैसी परिस्थितिमें सर्वज्ञ जिनेश्वर परमात्माके बतलाये हुए निज ज्ञायकतत्त्वकी दृष्टि नहीं छोड़ना। जिसे रुचिमें मात्र निज ज्ञायक आत्मा रुचता हो उसे उसकी रुचि नहीं छोड़ना चाहिये। व्यापारीको तीन रुपयेके मालके साढ़े तीन मिलते हों तो वह माल बेचना पोसाता है, परन्तु उसके ढाई रुपये मिलते हों तो नहीं पोसाता—व्यापारी ऐसा धंधा नहीं करता; उसीप्रकार जिसे भगवान आत्मामें राग तथा एक समयकी पर्याय भी नहीं पोसाती, मात्र त्रैकालिक परिपूर्ण ध्रुव ज्ञायकभावकी ही रुचि हो गई है उसे चाहे जैसे प्रतिकूल संयोग हों—निर्जन वन हो, अन्न–जल न मिले, अकाल पड़ा हो, सारी दुनिया दुश्मन हो जाय—तथापि अपने धर्मको नहीं छोड़ता, ज्ञायकस्वभावकी रुचि छोड़ना नहीं। नियमसारमें आता है न!—

पण कोई सुंदर मार्गनी निंदा करे ईर्षा वडे,
तेना सुणी वचनो करो न अभक्ति जिनमारग विषे।

ईर्ष्याभावसे कोई लोग आत्मसाधनाके जिनेन्द्र कथित सुन्दर मार्गकी निंदा करते हैं कि—'यह तो मात्र निश्चयकी ही बातें करते हैं'—ऐसा कहकर विरोध करते हैं, तो उनके वचन सुनकर जिनेन्द्रदेव द्वारा कहे गये वीतरागमार्गके प्रति अश्रद्धा, अभक्ति नहीं करना। जिसे स्वयमेव अंतरमें ज्ञायककी रुचि हुई है उसे चाहे जैसे प्रतिकूल संयोग आयें, सारी दुनिया बदल जाय, तथापि उसकी रुचि और दृष्टि बदलती नहीं है, शंकित या अस्थिर नहीं होती। आया कुछ समझमें?

'धर्म या रुचि छूटी तो अमूल्य मनुष्य भव हार गये।'

निज चैतन्य ज्ञायकप्रभु जो कि अनन्तानन्त ज्ञान–आनन्दादि गुणोंका सागर है, उसकी अंतर्मुख पुरुषार्थ द्वारा जो अपूर्व रुचि हुई, धर्मका प्रारम्भ हुआ, वह यदि छूट जाय तो यह अमूल्य मनुष्य भव हार गये। अन्तर्मुख आत्मसाधनाके इस मार्गको दुनियामें माननेवाले न मिलें, विरोध करनेवाले दिखायी देते हों, तब भी धर्मकी रुचि छोड़ना नहीं। मैं तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूर्णानन्दका नाथ ज्ञायक प्रभु गुणोंका समुद्र हूँ, मैं राग अथवा क्षणवर्ती पर्याय जितना नहीं हूँ, त्रैकालिक शुद्ध ध्रुव चैतन्यभगवान हूँ—ऐसी दृष्टि, अनुभूति और रमणता छोड़ना नहीं। दुनिया माने या न माने, सत्यके माननेवालोंकी संख्या अधिक हो या न हो, तथापि भगवान जिनेन्द्रदेव द्वारा कहा हुआ जो परम तत्त्व—निज ज्ञायकभाव—उसकी जो रुचि हुई, धर्मकी दशा प्रगटी, उसे नहीं छोड़ना। चाहे जैसे प्रतिकूल संयोग हों तथापि अंतरमें धर्म या रुचि छोड़ना नहीं, नहीं तो अमूल्य मनुष्यभव हार जायगा। अनन्तकालमें ऐसा मनुष्यभव मिलना दुर्लभ है; इसलिये इस दुर्लभ मनुष्यभवमें आत्माकी रुचि और धर्मकी परिणति अपने पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त करके उसे टिका रखना।

*

वचनामृत—३३६

कर्मोंके विविध विपाकमें ज्ञायकभाव चलित नहीं होता। जिसप्रकार कीचड़में कमल निर्लेप रहता है, उसीप्रकार चैतन्य भी चाहे जैसे कर्मसंयोगमें निर्लेप रहता है।३३६.

'कर्मोंके विविध विपाकमें ज्ञायकभाव चलित नहीं होता।'

क्या कहते हैं? कि—ज्ञायकस्वरूप, द्रव्यस्वरूप, त्रैकालिक पदार्थस्वरूप, ध्रुव तत्त्व-स्वरूप जो शुद्ध चैतन्य विज्ञानघन भगवान आत्मा वह, कर्मके निमित्तसे, कर्मके अनेक प्रकारके विपाकमें चाहे जैसे शुभाशुभभाव हों तब भी, अपने पारिणामिक मूल शुद्ध स्वभावसे चलित नहीं होता; विकार कालमें भी अपना सामर्थ्यपूर्ण ध्रुव स्वभाव ज्योंका त्यों टंकोत्कीर्ण शुद्ध रहता है। ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंके सामर्थ्यसे सदा परिपूर्ण ऐसे निज ज्ञायकभावकी जिसे प्रतीति हुई है ऐसे ज्ञानीको कर्मके विविध उदयकालमें अपनी पर्यायमें अस्थिरताजनित शुभाशुभ विभावभाव होते हैं, कदाचित् रौद्रध्यान भी हो आता है, तथापि 'मैं द्रव्यस्वभावसे शरीरादि परसे बिलकुल भिन्न तथा शुभाशुभ विकारसे रहित शुद्ध ज्ञायकतत्त्व हूँ' ऐसी द्रव्यदृष्टिसे वह किंचित् मात्र चलित नहीं होता। आया कुछ समझमें? वस्तु तो अपने मूल शुद्ध ध्रुव स्वभावसे कभी चलित होती ही नहीं, परन्तु वस्तुदृष्टिवन्त भी, भले ही उसे अशुभभाव आ जाय तथापि, वस्तुस्वभावसे—ज्ञायकभावसे—चलित नहीं होता।

'जिसप्रकार कीचड़में कमल निर्लेप रहता है, उसीप्रकार चैतन्य भी चाहे जैसे कर्म संयोगमें निर्लेप रहता है।'

कमल कीचड़में उगता है। कीचड़के साथ रहने पर भी उसे कीचड़का लेप नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लगता, वह कीचड़से अलिप्त ही रहता है। उसीप्रकार चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा पर्याय-अपेक्षासे कर्मके साथ रहा होनेपर भी, उसे अनेक प्रकारके कर्मोदय वर्तने पर भी द्रव्यस्वभावसे तो सदा निर्लिप्त ही रहता है, अपने ज्ञायक शुद्धस्वभावसे किंचित् भी च्युत नहीं होता। द्रव्यपर्यायात्मक चैतन्यवस्तुमें पर्याय ऊपर–ऊपर है और द्रव्यस्वभाव तो भीतर ध्रुव टंकोत्कीर्ण शाश्वत एकरूप है। ध्रुव स्वभावको लक्षगत करनेवाली दृष्टि भी श्रद्धागुणकी निर्मल पर्याय है, वह भी ऊपर–ऊपर है; उससे भी पैलेपार ध्रुवज्ञायक द्रव्यस्वभाव है। पर्याय जो वर्तमान बाहर प्रगट दिखती है—शुभाशुभ विकारकी, ज्ञानकी, श्रद्धाकी या चारित्रकी—वह एक समयकी है और भीतर वस्तुका ध्रुव दल तो त्रैकालिक शाश्वत है। जिस पर्यायसे निर्णय होता है वह भी ऊपर–ऊपर तैरती है; ध्रुव स्वभावमें प्रविष्ट नहीं होती।

'द्रव्यदृष्टिप्रकाश'में सोगानीजीने कहा है न! कि—पर्याय मेरा ध्यान करती हो तो करो, मैं किसका ध्यान करूँ? तथा उन्होंने कहा है कि—अभिप्रायमें थोड़ी भूल वह भी पूरी भूल है। 'राग मेरा स्वरूप है', पर्याय जितना ही मैं हूँ—ऐसा मानना वह भी महान भूल है। ध्यान स्वयं पर्याय है। जीव अनादिसे अपनी वर्तमान पर्यायमें जो 'अपना'पन स्थापकर वर्त रहा है उसे पलटकर उसको अपने सामर्थ्यपूर्ण त्रैकालिक ध्रुव स्वभावमें 'अपना'पन स्थापित करना है। अपनी ध्यान पर्याय द्वारा अपने ध्रुव द्रव्यस्वभावको ध्येयभूत करना है। देव–शास्त्र–गुरु नहीं, शरीर नहीं, राग नहीं, अपूर्ण–पूर्ण पर्याय नहीं, अरे! गुणभेद भी नहीं, परन्तु अभेद निज ज्ञायक द्रव्यसामान्य ही ध्येयभूत बनाना है। ध्यानका विषय जो त्रैकालिक ध्रुववस्तु सो मैं हूँ; वर्तमान पर्याय जो कि उसे विषय बनाती है वह ध्यान है। वस्तु अपने ध्रुवस्वभाव द्वारा अपने ध्रुव स्वभावका ध्यान नहीं करती, किन्तु अपनी वर्तमान दशा द्वारा ध्रुव परमभावका आश्रय करती है। अहा! ऐसा वीतरागमार्ग जीवने कभी सुना नहीं है, जाना नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि कीचड़में कमलकी भाँति यह चैतन्य ज्ञायक प्रभु भी चाहे जिस कर्म संयोगमें सदा निर्लिप्त ही रहता है। ध्यान तो वर्तमान पर्याय है और मैं तो अनन्त आनन्दका कन्द, अनन्तगुणोंका समुद्र, परिपूर्ण परमात्मस्वरूप हूँ। यदि वर्तमानमें ही शक्तिरूपसे परिपूर्ण परमात्मा न होऊँ तो पर्यायमें केवली और अरिहंत परमात्माकी दशा प्रगट होती है वह कहाँसे आयगी? भीतर सामर्थ्यसे भरपूर ध्रुवस्वभाव विद्यमान है उसके पूर्ण आलम्बनसे पर्यायमें पूर्ण परमात्मदशा प्रगट होती है।

भगवान आत्मा द्रव्य-अपेक्षासे ध्रुव.....ध्रुव.....त्रिकाल ध्रुव है। तत्त्वार्थसूत्रमें उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्तं सत्' आता है न? उसमें उत्पाद–व्यय वह पर्याय-अपेक्षासे है और ध्रौव्य वह द्रव्य-अपेक्षासे है। ध्रौव्य भी द्रव्यार्थिकनयका विषय होनेसे द्रव्य कहलाता है। 'द्रव्य' शब्द दो अर्थमें प्रयुक्त होता है : (१) प्रमाणके विषयभूत द्रव्य–पर्यायात्मक सम्पूर्ण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तुके अर्थमें, और (२) पर्याय तथा गुणभेदको गौण करके द्रव्यार्थिकनयके विषयभूत त्रैकालिक अभेद ध्रुव स्वभावके अर्थमें। यहाँ ऐसा कहते हैं कि जो सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा है वह, राग और पर्यायादिके भेदको गौण करके 'मैं त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यसामान्य—एक शुद्ध ज्ञायकभाव—हूँ' ऐसा मानता है। 'मैं ध्रुव ज्ञायक हूँ' ऐसा स्वीकार अपनी पर्यायमें होता है; क्योंकि कार्य सदा पर्यायमें ही होता है, ध्रौव्यमें नहीं। अपने ज्ञायकभावरूप ध्रौव्यांशके ध्यानस्वरूप कार्य भी अपनी पर्यायमें ही होता है, इसलिये पर्याय द्वारा जीव अर्थात् ध्यातापुरुष ऐसे ध्याता है कि 'मैं ध्रुव शुद्ध ज्ञायकभाव हूँ'। अहा! ऐसी बातें हैं। वीतराग सर्वज्ञपरमेश्वरका मार्ग कोई अलौकिक है। लोग–बेचारोंको यह बात सुननेको नहीं मिली; अजैनत्वमें जैनत्व मानकर जीवन चला जा रहा है।

द्रव्यसामान्य—शुद्ध एक ज्ञायकभाव—ध्यानका विषय है, ध्यानका करनेवाला नहीं; ध्रुव ध्येयको ध्यानगत करनेवाली तो मेरी वर्तमान निर्मल पर्याय है। ध्यानके ध्रुव विषयमें और ध्यानपर्यायमें थोड़ा नहीं किन्तु रात–दिन जितना बड़ा अन्तर है। ध्येय तो त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यसामान्य है और ध्यान तो एक समयकी पर्यायविशेष है। ध्रौव्यके प्रति जोर द्रव्यदृष्टि है और पर्यायके प्रति जोर पर्यायदृष्टि है। एक द्रव्यबुद्धि है और एक पर्यायबुद्धि है। एक सम्यग्दृष्टि है और एक मिथ्यादृष्टि है। इसलिये पर्यायमात्रको गौण करके द्रव्यसामान्य—ध्रुवज्ञायकभाव—पर दृष्टि करनेसे सम्यग्दर्शन और धर्म प्रगट होता है।

*

यह जो बाह्य लोक है, विभावका लोक है, उसमें तो सब धमाल ही धमाल दिखायी देती है, कहीं शान्ति नहीं है। अंतरका लोक—चैतन्यलोक—अद्भुत है, उसमें सब सुन्दर दिखता है, वहाँ सर्वत्र शान्ति है।

सर्व दुःखोंका अत्यन्त नाश करनेके लिये चैतन्यलोकमें निवास करनेकी विधि बतलानेवाले गुरुदेव सदा जयवन्त वर्तो। *—बहिनश्री चम्पाबेन*

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१२६

दिनांक २१-१०-७८

वचनामृत–३३७

द्रव्यको ग्रहण करनेसे शुद्धता प्रगट हो, चारित्रदशा प्रगट हो, परन्तु ज्ञानी उन पर्यायोंमें नहीं रुकते। आत्मद्रव्यमें बहुत पड़ा है, बहुत भरा है, उस आत्मद्रव्यके ऊपरसे ज्ञानीकी दृष्टि नहीं हटती। यदि पर्यायमें रुके, पर्यायमें चिपक जायँ तो मिथ्यात्वमें आ जायँ। ३३७.

'द्रव्यको ग्रहण करनेसे शुद्धता प्रगट हो, चारित्र प्रगट हो, परन्तु ज्ञानी उन पर्यायोंमें नहीं रुकते।'

इस बोलमें बड़ी सरस बात आयी है। जैनदर्शनका मक्खन है! वीतरागको बारह अंगोंमें क्या कहना है, उनका तात्पर्य क्या है, यह बात इस बोलमें आयी है। यह तात्पर्य समझना लोगोंको कठिन लगता है; क्या किया जाय? यहाँ कहते हैं कि—'द्रव्यको ग्रहण करने पर शुद्धता प्रगटती है'; वहाँ द्रव्य अर्थात् क्या? शरीरसे भिन्न भीतर जो 'आत्मा' वस्तु है उसमें द्रव्य, गुण और पर्याय—तीन हैं। उन तीनमें सम्पूर्ण ज्ञायक वस्तु यह द्रव्य है, उसमें जो ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि त्रैकालिक शक्तियाँ हैं वे गुण हैं और द्रव्य तथा गुणोंकी वर्तमानमें होनेवाली जो दशाएँ—हालतें—अवस्थाएँ सो पर्यायें हैं।

शरीर, वाणी और मन आदि तो जड़ हैं, अचेतन हैं तथा पर हैं, और आत्माकी दशामें होनेवाले पुण्य–पापके भाव भी, विकारीभाव होनेसे चेतनकी जातिके नहीं है इसलिये पर हैं। परसे तथा विभावसे रहित भीतर जो त्रैकालिक ध्रुव, ज्ञानानन्द आदि अनन्त सामर्थ्यसे परिपूर्ण, चैतन्य ज्ञायक वस्तुसामान्यको यहाँ 'द्रव्य' कहा है। वस्तुसामान्य कहो, ध्रौव्य कहो या द्रव्यदृष्टिके विषयभूत 'द्रव्य' कहो—वह सब एक ही है।

धर्मीको—जिसे धर्म करना है उसे, दृष्टि द्रव्यको ग्रहण करने पर, पर्यायमें शुद्धता प्रगटती है। 'उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्तं सत्' आता है न? उनमें जो उत्पाद–व्यय हैं वह पर्याय है और जो ध्रौव्य है उसे यहाँ 'द्रव्य', नित्य स्थायी रहनेवाला शुद्धस्वभाव, सामान्य

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहते हैं। निज आत्मवस्तुको ध्रुवरूपसे ग्रहण करने पर, उसमें दृष्टि देने पर द्रव्यसामान्य अर्थात् ध्रुवस्वभावको श्रद्धामें लेनेसे, शुद्धता प्रगटती है, उसके आश्रयसे विशेष रमणता प्रगट करने पर चारित्र प्रगट होता है। अनन्त गुणोंकी पर्यायोंमें निर्मलतारूप विशेषता प्रगट होती है; परन्तु ज्ञानीका आश्रयरूपमें वजन उन पर्यायों पर नहीं है, त्रैकालिक ध्रुव 'ज्ञायक'भावके ऊपर है।

प्रश्न:—'द्रव्यको ग्रहण करने'का क्या अर्थ है?

उत्तर:—'द्रव्यको ग्रहण करना' अर्थात् ध्रुव शुद्धात्म द्रव्यस्वभावको रुचिभावसे पकड़ना, वर्तमान ज्ञान पर्यायको रुचिपूर्वक उस ओर ले जाना, वर्तमान दशाको स्वभावोन्मुख करना। अहा! वीतरागका मार्ग बहुत सूक्ष्म है। स्वभावको ग्रहण करनेके सिवा जो भी कुछ पूजा–भक्ति आदि किये जायँ वह सब मजदूरी है।

प्रश्न:—लाभके लिये मजदूरी तो करना पड़ती है न?

उत्तर:—काहेका लाभ? धूलका? विभावका फल तो धूल है, वह कहाँ आत्माकी वस्तु है? पुण्य और उसके फलका—परवस्तुका—ग्रहण तो आत्मामें है ही नहीं, परन्तु अपनी पर्यायमें जो शुभाशुभभाव हों वे भी विभावभाव हैं, आत्माका स्वरूप नहीं हैं; उनका भी ग्रहण नहीं; अरे! वर्तमान वर्तती एक समयकी जो दशा तथा ज्ञान, आनन्दादि जो गुणभेद उन पर धर्मीकी दृष्टि नहीं है; वह तो गुणगुणीके भेदरहित त्रैकालिक अभेद ज्ञायक परमभावका ही ग्रहण करता है, उसीका आश्रय लेता है। यहाँ गुणीका अर्थ बारदान नहीं है भाई! चावलकी गुणी (बोरे)की यह बात नहीं है। यहाँ गुणी अर्थात् भीतर आत्मामें जो ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनंत गुण हैं उनके आधाररूप—आश्रयरूप जो अभेद ज्ञायक द्रव्य वह। उस अभेद निज ज्ञायकद्रव्यको ग्रहण करनेसे, उसपर दृष्टि देनेसे ज्ञानकी पर्यायमें उसे पकड़नेसे, अंतरमें निर्मलता प्रगटती है, स्थिरता प्रगटती है, परन्तु ज्ञानी उस प्रगट हुई निर्मल पर्यायमें भी अटकते नहीं हैं; उनकी दृष्टि रसकससे परिपूर्ण ऐसे निज द्रव्यसामान्यके ऊपरसे किंचित् नहीं हटती। अहा! त्रिलोकीनाथ जिनेश्वर-देवका यह मार्ग सारी दुनियासे निराला ही है। आजकल तो 'जैन' नामके सम्प्रदायमें भी घोटाला हुआ है; बाह्य क्रियाकाण्डमें तथा शुभभावमें धर्म मान बैठे हैं।

यहाँ तो बेन ऐसा कहती हैं कि—द्रव्यको ग्रहण करने पर शुद्धता अर्थात् धर्म प्रगट होता है। आत्मा वस्तु है, उसमें ज्ञानादि अनंत गुणोंका वास है। उस सामर्थ्यपूर्ण त्रैकालिक अभेद वस्तुको श्रद्धामें पकड़नेसे ज्ञानकी वर्तमान दशामें उसका ग्रहण करने पर—उस ओर ढलने पर—वर्तमान पर्यायमें जो शुद्धता प्रगटती है वह सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप धर्म है। भाषा सादी है परन्तु भाव तो बहुत ऊँचे हैं भाई!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'द्रव्यको ग्रहण करने पर' उसमें द्रव्यका अर्थ त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यसामान्य है। 'द्रव्य' शब्द दो अर्थोंमें कहा होता है—

(१) प्रमाणके विषयभूत जो द्रव्य–पर्यायस्वरूप पूर्ण वस्तु वह;

(२) शुद्धनयके विषयभूत त्रैकालिक शुद्ध अखण्ड चैतन्य वस्तु कि जिसमें पर्याय तथा गुणभेदको गौण किया जाता है वह। यहाँ शुद्ध निश्चयनयके विषयभूत अभेद ज्ञायक द्रव्यको ग्रहण करनेकी बात है, क्योंकि दृष्टिके विषयभूत अभेद ध्रुव द्रव्यसामान्यको ग्रहण किये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। पुण्य–पाप तो विभाव होनेसे उनका तो निषेध ही है, परन्तु जिस नयमें पर्यायोंका, गुणभेदका—उन्हें गौण करके—निषेध हो उस नयके द्वारा ही—निश्चयनयके द्वारा ही—निज शुद्धात्म द्रव्यका यथार्थ दर्शन होता है। अरे! जैनकुलमें जन्म लेनेवालोंको अभी 'द्रव्य' क्या, पर्याय क्या उसकी भी खबर नहीं है। यहाँ स्वाध्याय–मन्दिरमें 'द्रव्यदृष्टि सो सम्यग्दृष्टि है'—ऐसा एक सूत्र–वाक्य दीवार पर लिखा है; उसे पढ़कर एक भाई पूछते थे कि 'साहब! इस द्रव्यदृष्टिका अर्थ क्या लक्ष्मीकी दृष्टि है? क्या पैसेवाले हों वे सम्यग्दृष्टि? भाई! यहाँ 'द्रव्य' अर्थात् पैसेकी बात नहीं है। पैसा तो धूल है, जड़ है, पर है। यहाँ तो त्रैकालिक ज्ञायक आत्मा जो कि एक समयवर्ती पर्यायके समीपमें विद्यमान अंतर ध्रुव है, अनन्तगुणोंके पुंजरूप अभेद एकरूप है उसे यहाँ सर्वज्ञ परमात्मा 'द्रव्य' कहते हैं। आया समझमें?

उस 'द्रव्य'को ग्रहण करने पर, उसका आश्रय लेने पर, शुद्धता प्रगटती है। शुद्धता कहो या धर्म कहो—दोनों एक ही हैं। आत्मवस्तुको त्रैकालिक ज्ञायकस्वरूपसे ग्रहण करने पर उसकी पर्यायमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों एक साथ प्रगटते हैं। पहले श्रद्धा–ज्ञान इन दो की शुद्धताकी बात ली, स्वरूपमें विशेष रमणतारूप चारित्रकी बात फिर लेंगे। श्री जिनेन्द्रदेवकी वाणीमें जो आया वह यहाँ कहा जा रहा है। आत्मा द्रव्य और पर्यायस्वरूप वस्तु है। निश्चयनयके विषयभूत निर्विकार और निर्भेद त्रैकालिक ध्रौव्यको यहाँ 'द्रव्य' कहा है। वस्तुकी वर्तमान दशाको पर्याय कहते हैं। वस्तुमें द्रव्य और पर्यायके सिवा कर्म–नोकर्म आदि दूसरा तो कुछ है नहीं। वहाँ, पर्यायमें 'पर्याय'को ग्रहण न करके 'द्रव्य'को ग्रहण करे, उसका आश्रय करे, तो शुद्धता प्रगट हो।

शरीर, वाणी अथवा स्त्री, पुत्रादि बाह्य वस्तुओंका तो ग्रहण है ही नहीं, परन्तु अपनी पर्यायमें प्रथम पुण्य–पापके विभावोंका—पर्यायका अनादिसे जो ग्रहण है वह मिथ्यादृष्टि है। अब, उस वर्तमान पर्यायको द्रव्योन्मुख करते, पर्याय द्वारा द्रव्यका ग्रहण करनेसे शुद्धता प्रगट होती है। ऐसी बात है। किसीको ऐसा लगे कि यह तो कोई नया धर्म होगा? अभी तक तो दया पालन करना, उपवास करना, यह सब धर्म है ऐसा सुना था। भाई! यहाँ तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परमेश्वरने जो कहा है वह बात इन बेनके वचनोंमें है। प्रभु! तू अंतरमें अनंतानंत ज्ञानादि गुणोंसे भरा हुआ भगवान—'द्रव्य' है न! जैसे मिसरी सफेदी, मिठास और कोमलता आदि गुणोंसे भरपूर है, उसीप्रकार आत्मामें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनंद और अनन्त वीर्य आदि अनन्त गुण भरे हैं; उसे यहाँ 'द्रव्य' कहा है। अहा! भाषा सादी तो है परन्तु उसका मर्म गहरा है। अहा! यह बेनके शब्द हैं वे वीतरागके ही शब्द हैं, किसीके घरकी कल्पना नहीं है।

पैसा आदि सब धूल है, उनके लक्षसे जो ममत्व होता है वह भी आत्माका स्वरूप नहीं है। उस वर्तमान विकारी या ज्ञानादिकी अल्प पर्यायके समीप अंतरमें जो त्रैकालिक पूर्ण तत्त्व विद्यमान है उसे यहाँ 'द्रव्य' कहा है। द्रव्य कहो, ध्रौव्य कहो, सामान्य कहो या एकरूप रहनेवाला तत्त्व कहो—सबका अर्थ एक ही है परिणमन अर्थात् पलटना भी जिसमें नहीं है ऐसे निज शुद्धात्म–द्रव्यसामान्यका ग्रहण करने पर, त्रैकालिक ध्रुव चैतन्य वस्तुसामान्यको ग्रहण करने पर—त्रैकालिक चैतन्य वस्तुसामान्यको ग्रहण करने, उस पर दृष्टि पड़ने पर—पर्यायमें शुद्धता—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं स्वानुभूतिरूप धर्मकी दशा—प्रगट होती है।

त्रैकालिक ज्ञायकको विशेष स्थिरतापूर्वक ग्रहण करने पर चारित्र दशा प्रगट होती है। शुभाशुभभाव तो मैल हैं, विभाव हैं, दुःखके कारण हैं। द्रव्यको ग्रहण करने पर वे विभाव कहीं उत्पन्न नहीं होते, शुद्धता अर्थात् धर्म ही उत्पन्न होता है। अहा! बेनकी ऐसी सरस पुस्तक प्रकाशित हो गई। चालीस–पचास हजार प्रतियाँ छप चुकी हैं। गुजराती और हिन्दी 'आत्मधर्म'के ग्राहकोंको भेट दी गई हैं। अरे! ऐसी वस्तु और कहाँ है? त्रैकालिक द्रव्यस्वभावको ग्रहण करनेसे धर्मदशा प्रगट होती है। धर्म प्रगट होनेका यह एक ही उपाय है। शास्त्रोंके बहिर्लक्षी अध्ययनसे धर्म—सम्यग्दर्शन—ज्ञान प्रगट नहीं होते। अरे! कैसे बैठे यह बात?

निज शुद्धात्मद्रव्यका आश्रय करने पर पर्यायमें सम्यग्दर्शन–ज्ञानकी शुद्धता प्रगटती है, और शुद्धात्मद्रव्यसामान्यमें विशेषरूपसे एकाग्र होनेपर चारित्रधर्म प्रगट होता है। अहा! चारित्रधर्म किसे कहा जाय? नग्नता आदि शरीरकी क्रिया अथवा पंच महाव्रतादिके शुभभाव आयें वह कोई चारित्र नहीं है। शरीरकी क्रिया जड़ है और व्रतादिके परिणाम राग हैं, उन्हें चारित्र कैसे कहा जाय? अनन्त गुणोंके सागर पर दृष्टि पड़नेसे भीतर भूतार्थ परमभावका आश्रय होनेपर, जो विशेष स्थिरतावाली स्वरूपरमणता प्रगट हो उसे भगवानने चारित्र कहा है।

द्रव्यका आश्रय करने पर श्रद्धा, ज्ञान और अनुभूतिकी शुद्धता प्रगट होती है; उसका विशेष आश्रय करने पर चारित्रदशा प्रगटती है, परन्तु ज्ञानी उन पर्यायोंमें अटक नहीं जाते। ज्ञानीकी दृष्टिका लक्ष्य तो सदैव द्रव्य—ध्रौव्यसामान्य—पर ही स्थिर होता है। जिसप्रकार समुद्रमें जहाज 'ध्रुव' तारेके आधारसे चलता है वैसे ही यहाँ आत्माको सामर्थ्यपिण्ड

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निज 'ध्रौव्य'के लक्षसे पर्यायमें शुद्धता प्रगट होती है, बढ़ती है और पूर्ण होती है। अरे! यह कैसी भाषा? जैनधर्म ऐसा होगा? हमने तो जीवनभर 'दया पालो, व्रत धारण करो' ऐसी बातें सुनी हैं। भाई! वे तो सब राग और विकल्पके प्रकार हैं, पुण्यबन्धके कारण हैं, वह कोई परमार्थ जैनधर्म नहीं है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने भावप्राभृतमें कहा है न!—

पूजादिमां, व्रतमां जिनोओ पुण्य भाख्युं शासने;
छे धर्म भाख्यो मोहक्षोभविहीन निज परिणामने।

यम, नियम, संयम, तपादि सब विकल्पस्वरूप होनेसे पुण्यबंधका कारण है, अंतरमें त्रैकालिक ध्रुव चैतन्यस्वभावके आलम्बनसे मोहक्षोभरहित निज शुद्ध परिणाम—पर्यायमें सम्यग्दर्शन, भेदविज्ञान, आत्मरमणता, अतीन्द्रिय आनन्द, स्वरूप-ऐश्वर्य आदि निर्मलता—प्रगट हो उसे जिनेन्द्रभगवानके धर्म कहा है। भूतार्थ स्वभावके आलम्बनसे वे निर्मल दशाएँ प्रगट होती हैं परन्तु ज्ञानी उन पर्यायोंमें रुकते नहीं हैं, अटक नहीं जाते।

सैंकड़ों मील लम्बा विशाल समुद्र ऊँची ऊँची तरंगोंसे लहराता है, परन्तु किनारे पर देखनेवालेके सामने चार हाथ लम्बी चादरकी ओट हो तो वह विशाल समुद्र दिखायी नहीं देगा; वैसे ही जिसे दया–दानादिके कर्तृत्वरूपी चादरकी ओट है—विभाव और पर्यायका प्रेम है—उसे ज्ञान–आनन्दादि अनन्तगुणोंका समुद्र ऐसा निज भगवान आत्मा दृष्टिगत नहीं होगा। लोगोंको अभी 'आत्मा' क्या है उसकी भी खबर नहीं है। भाई! जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्दादि, अनन्त सामर्थ्य सदा परिपूर्ण विद्यमान है वह 'आत्मद्रव्य' है; उसे दृष्टि और ज्ञानमें ग्रहण करनेसे जो शुद्धता प्रगट होती है, चारित्र दशा प्रगट होती है उसे भगवान धर्म कहते हैं। शुद्धिका प्रारम्भ और उसकी वृद्धि पर्यायके आलम्बनसे नहीं होती; परन्तु भीतर जो समृद्धिभरपूर त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक द्रव्यस्वभाव है उसके अवलम्बनसे ही नवीन शुद्धता प्रगटती और बढ़ती है।

जिसप्रकार मंत्रसे सर्पका विष उतारते हैं, उसीप्रकार जीवको जो रागकी एकताका विष अनादिसे चढ़ा हुआ है उसे उतारनेके यह अनुपम मंत्र हैं। आचार्यदेव जीवको 'भगवान' कहकर ही बुलाते हैं। पुण्य–पापके भाव तो अशुचि, जड़ तथा दुःखरूप हैं' और भगवान आत्मा तो सदा पवित्र, विज्ञानघन एवं सुखरूप है। आनन्दमूर्ति विज्ञानघन निज आत्मद्रव्यके आश्रयसे पर्यायमें जो निर्मलता प्रगट होती है वह धर्म है। शान्तिकी पर्याय, वीतरागताकी पर्याय प्रगट होने पर भी धर्मी उन पर्यायोंमें रुकते नहीं हैं; उनका जोर तो त्रैकालिक ध्रुव वस्तु पर है। समुद्रमें जो ज्वार आता है उसे मत देखो, परन्तु ज्वार कहाँसे आता है उस मध्यविन्दु पर दृष्टि करो; वैसे ही आत्माको पर्यायमें निर्मलताका जो ज्वार आता है—पर्यायमें शुद्धि और उसकी वृद्धि होती है—उसे मत देखो—उसमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानी अटक नहीं जाते—परन्तु पर्यायमें निर्मलताका ज्वार आनेके लिये जो मध्यविन्दु—सामर्थ्यपरिपूर्ण निज ज्ञायक भगवान आत्मा—उसे देखो, उसका अवलम्बन लो। अहा! जिनेश्वरदेव कथित धर्मका स्वरूप यह है।

अनन्तानन्त गुणोंसे परिपूर्ण यह आत्मा एक समयकी पर्यायके समीप अंतरमें सदा विद्यमान है। उसमें ज्ञान, आनंद आदि अनन्त गुण हैं वे कोठीमें भरी हुई जुआर जैसे नहीं हैं; कोठी और जुआर भिन्न वस्तुएँ हैं, परन्तु जैसे दूधमें सफेदी और मिठास भरी है वैसे ही गुण–गुणी अभिन्न एक वस्तु हैं। ऐसी बात सुनकर एक वकील बोले कि—आत्मा ज्ञानादि अनन्त गुणोंसे भरा है तो वह गया कहाँ? दिखायी क्यों नहीं देता? अरे भाई! भगवान आत्मा तो भीतर शरीर और रागसे भिन्न जहाँ है वहीं है, परन्तु तुम्हारी दृष्टि वहाँ नहीं है, इसलिये तुम्हें वह दिखायी नहीं देता।

धर्मी जीव पर्यायमें नहीं रुकते, क्योंकि—

'आत्मद्रव्यमें बहुत पड़ा है, बहुत भरा है, उस आत्मद्रव्यके ऊपरसे ज्ञानीकी दृष्टि नहीं हटती।'

अहा! आज यह बहुत अच्छा बोल आ गया है।

जिज्ञासु :—भाग्यशालीको ऐसी बात सुननेको मिलती है।

सच्ची बात है भाई! भाग्यवानको ही ऐसी बातें मिलती हैं। यहाँ कहते हैं कि—ज्ञानी पर्यायमें नहीं रुकते, क्योंकि उनकी दृष्टि अंतरमें अनन्त रसकससे भरपूर निज ध्रुव आत्मद्रव्य परसे किंचित् नहीं हटती। शरीर, लक्ष्मी आदि तो पर हैं, धूल हैं, वे तुझमें नहीं हैं और तू उनमें नहीं है, परन्तु तेरी पर्यायमें जो शुभाशुभ विभावभाव होते हैं वह भी तेरा स्वभाव नहीं है, और पर्यायमें जो अपूर्णता है वह भी तेरा पूर्ण स्वरूप नहीं है, अरे! कोई भी पर्याय या गुणभेद तेरे अभेद स्वरूपमें नहीं है इसलिये उसका लक्ष छोड़कर, जिसमें बहुत भरा है, बहुत गुणसमृद्धि भरी पड़ी है, उस पर दृष्टि कर तो तुझे शक्तिभरपूर द्रव्यस्वभावके अवलम्बनसे शान्ति और सुख प्रगट होंगे। भीतर द्रव्यस्वभावमें शक्तिरूपसे जो भरा हो वह पर्यायमें व्यक्तरूपसे प्रगट होता है। सर्वज्ञ भगवानको केवलज्ञानकी पर्याय आयी कहाँसे? कहीं बाहरसे आयगी? अरे! पर्यायका अर्थ क्या और वह कहाँसे आती है यह भी खबर नहीं है!

पर्याय अर्थात् क्या? पर्याय अर्थात् वस्तुकी वर्तमान दशा, स्थिति, अवस्था, परिणति, वस्तुका उत्पाद–व्ययस्वरूप पलटता अंश। अरे! जिनको यह भी खबर नहीं है कि अपने द्रव्य–गुण–पर्याय क्या हैं, अंतरमें अपना स्वरूपवैभव कैसा है, वे सब पुण्यके अर्थी, भोगके अर्थी, रागके अर्थी भिखारी हैं—रंक हैं। समयसारमें उन्हें 'वराकाः' कहा है। अपनी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानानन्दमयी स्वरूपलक्ष्मीको भूलकर अपनेको बाहरकी—धूलकी लक्ष्मीवाला, स्त्रीवाला, कीर्तिवाला जो मानता है वह बड़ा भिखारी है–माँगनेवाला है। भावनगरके राजा एक बार व्याख्यान सुनने आये थे, तब कहा था कि—दरबार! महिनेमें जो एक लाख रुपये माँगे वह छोटा भिखारी है, पाँच लाख माँगे वह बड़ा भिखारी है और करोड़ माँगे वह तो भिखारीसे भिखारी—बहुत बड़ा भिखारी है। भीतर ज्ञान और आनन्दकी लक्ष्मीका भण्डार भरा है उसे नहीं देखता और बाहरकी वस्तुएँ माँगता रहता है वही भिखारीपना है। भाई जीवन ऐसे ही चला जा रहा है, वस्तुस्वरूपको समझे बिना चौरासीके अवतारोंमें भटकना नहीं मिटेगा। इसलिये यहाँ कहा है कि—अपने द्रव्यस्वभावको ग्रहण कर। उसे ग्रहण करने पर शुद्धता प्रगटेगी, चारित्र दशा प्रगटेगी और परिभ्रमणका अन्त आयगा।

आत्मद्रव्यमें सब कुछ भरा है, उस आत्मद्रव्यके ऊपर ज्ञानीकी दृष्टि सदा स्थिर रहती है। धर्मीकी दृष्टि त्रैकालिक ध्रुवस्वभाव परसे किंचित् नहीं हटती। खम्भेके साथ बैल या गायको बाँधा हो तो वह वहींकी वहीं रहेगी वहाँसे हटेगी नहीं; वैसे ही अपने ध्रुवस्तम्भ पर जो दृष्टि केन्द्रित की है वह वहाँसे किंचित्मात्र नहीं हटती, वह पर्यायमें नहीं चिपकती।

'यदि पर्यायमें रुकें, पर्यायमें चिपक जायँ, तो मिथ्यात्वमें आ जायँ।'

ज्ञानीका ध्येय तो त्रैकालिक ध्रुव स्वरूप है। यदि वह ध्रुव स्वरूपसे हटकर पर्यायमें—अंशमें, एकसमयकी दशामें—रुक जायँ तो मिथ्यात्वमें आ जायँगे, मिथ्यादृष्टि हो जायँगे।

क्या कहा यह? धर्मीकी दृष्टि पूर्णज्ञायकस्वरूप पर होती है, उसे पर्यायमें रुकना अच्छा नहीं लगता। यदि उसकी रुचि पर्यायमें लग जाय तो द्रव्यदृष्टि छूट जाती है, मिथ्यादृष्टि हो जाती है। प्रवचनसारमें कहा है न!–'पज्जयमूढा हु परसमया'! त्रैकालिक ध्रुव निज सहज स्वरूपसे च्युत होकर एक समयकी वर्तमान पर्यायकी महत्ता आ जाय तो दृष्टि मिथ्या हो जाती है।

अरे! जगतके साथ इस बातका मेल बैठे ऐसा नहीं है। भाग्यवान हो उसके कानोंमें यह बात पड़े ऐसी है। 'भवि भागनवश जोगे वशाय, तुम धुनि है सुनि विभ्रम नशाय।' भगवान वाणीके कर्ता नहीं हैं, भव्य जीवोंके भाग्यवश वह सहज ही छूटती है। इस समय महाविदेहमें श्री सीमंधर परमात्मा विराज रहे हैं। सौधर्म इन्द्र, उनकी शची इन्द्रानी आदि असंख्य देव–देवियाँ भगवानकी वाणी सुननेको आते हैं। सौधर्म इन्द्र सम्यक्त्वी हैं, तीन ज्ञानके धारी हैं, उनकी दृष्टि अंतर द्रव्यस्वभावमें जम गई है। उन्हें पर्यायमें वर्तती अपूर्णताका ज्ञान होता है परन्तु रुचि पर्यायमें नहीं अटकती। पर्यायमें रुचि चिपक जाय तो मिथ्या–दृष्टि हो जाय, जैनत्व न रहे। अहा! वस्तुस्वरूप ऐसा गंभीर है भाई! *

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१२७

दिनांक २२-१०-७८

वचनामृत–३३८

शुभभावमें श्रम पड़ता है, थकान लगती है; क्योंकि वह आत्माका स्वभाव नहीं है। शुद्धभाव आत्माका स्वाधीन स्वभाव होनेसे उसमें थकान नहीं लगती। जितना स्वाधीन उतना सुख है। स्वभावके सिवा सब दुःखी ही है। ३३८.

'शुभभावमें श्रम पड़ता है, थकान लगती है; क्योंकि वह आत्माका स्वभाव नहीं है।'

दया, दान, व्रत, भक्ति या उपवासादिके भाव शुभ हैं। शुभभाव परके लक्षसे होते हैं, आत्माका स्वभावभाव नहीं है; इसलिये उनमें श्रम पड़ता है और थकान लगती है। जिसमें श्रम पड़े, थकान लगे वह सुख या सुखका कारण कैसे होगा? जैसे खिचडी जल जाय तो बरेल होती है, उसीप्रकार आत्माका गुणस्वभाव जले—विकृत हो—तब शुभभाव होते हैं। अशुभभाव तो दुःखरूप हैं ही, परन्तु ज्ञानीको तो शुभभाव भी दुःखरूप लगते हैं। समयसारमें कहा है न! कि—प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निन्दा, गर्हा और शुद्धि—ऐसे आठ प्रकारका विषकुम्भ है। अरे भाई! जहाँ प्रतिक्रमणको ही विष कहा है, वहाँ अप्रतिक्रमण अमृत कहाँसे होगा? अर्थात् नहीं ही होगा। तब फिर लोग नीचे गिरते हुए प्रमादी क्यों होते हैं? निष्प्रमादी होते हुए ऊपर–ऊपर क्यों नहीं चढ़ते? जहाँ शुभराग भी विष है, जलन है, वहाँ अशुभभावकी तो बात ही कहाँ रही? वह तो तीव्र विष है, अग्निकी भट्ठी है।

अरेरे! वर्तमानमें तो वेषधारी साधु भी ऐसा कहते हैं कि—इस पंचमकालमें तो आजकल मात्र शुभ योग ही होता है, शुद्धभाव नहीं होता। भाई! शुभभाव तो पुण्यबंधका कारण है। क्या इस कालमें मात्र बंधका ही मार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं है? भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो कहते हैं कि इस पंचमकालमें भी मोह–क्षोभके अभावस्वरूप शुद्धभाव

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रगट हो सकता है। ज्ञानीको भी शुभभाव हेयबुद्धिसे आता अवश्य है, परन्तु वह विश्राम लेनेकी वस्तु नहीं है, उसमें उन्हें थकान लगती है। भगवान ज्ञानानन्दमूर्ति—'स्वयंज्योति सुखधाम'—वही उनका विश्रामस्थान है। अहाहा! अनादिकालीन परिभ्रमणकी थकान उतारनेवाली वस्तु तो वही है। दया पालनेका—अहिंसाका भाव, सत्य बोलनेका भाव, अचौर्यका भाव, ब्रह्मचर्य पालनका भाव आदि शुभभावोंमें श्रम पड़ता है, थकान लगती है; क्योंकि वह आत्माका स्वभाव नहीं है।

यह ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दका पिण्ड—अमृतका सागर है। आनन्दस्वरूप आत्मामें अशुभभाव हो वह बोझ, भार और दुःख है—बाह्य उपाधिकी यहाँ बात नहीं है—वह तो ठीक परन्तु जो शुभभाव आये वह भी आकुलता, अशान्ति और दुःख है। शुद्ध स्वभावरूप परिणमनके सिवा सब दुःख ही है। अतीन्द्रिय आनन्द एवं शान्तिमय ऐसे निज ध्रुवस्वभावको ग्रहण करनेमें—उसरूप परिणमित होनेमें—जो शुद्ध परिणाम हों उन्हींमें सुख, शान्ति और विश्राम है। अहा! ऐसी हैं धर्मकी बातें; आया कुछ समझमें?

शुभभावमें भी श्रम, थकान और आकुलता है। उसके पुरुषार्थमें स्थूलदृष्टिसे सुख जैसा लगे, परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे देखो तो उसमें भी दुःख लगता है। शुभभावका पुरुषार्थ वह तो विपरीत—रागका—पुरुषार्थ है; उसमें श्रम पड़ता है, थकावट लगती है। वह आत्माका स्वभाव नहीं है इसलिये जीव वहाँ अधिक नहीं रह सकता। जिस प्रकार चलते चलते किसीको पाँवमें थकावट लगे उसीप्रकार ज्ञानीको अशुभ तथा शुभ—दोनोंमें थकान लगती है। थकावट दूर करनेका और विश्राम लेनेका स्थान तो अंदर ध्रुव ज्ञायकस्वभावी निज आत्मवस्तु है।

'शुद्धभाव आत्माका स्वाधीन स्वभाव होनेसे उसमें थकान नहीं लगती।'

दया–दान और पूजा–भक्ति आदि शुभभाव आत्माका पराधीन विभावभाव होनेसे उसमें थकान लगती है। अनादिसे जिसकी दृष्टि उसीमें है ऐसे अज्ञानीको थकान क्या और आराम क्या—उसकी कोई खबर नहीं है। आनन्दके पिण्डस्वरूप निज ज्ञायक प्रभु पर जिसकी दृष्टि नहीं है उसे विभावमें—शुभभावमें आकुलता है, श्रम है, थकावट है—ऐसा नहीं लगता; क्योंकि उसने शुद्धभावके कारणस्वरूप अनाकुल स्वभावको कभी देखा–जाना नहीं है, उसका अनुभव नहीं किया है। आजकल तो मात्र शुभभाव ही होता है—ऐसा कोई कहे, तो भाई! क्या आजकल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूप शुद्धभाव नहीं होता? वह न हो तो धर्म ही नहीं होगा।

शुद्ध चैतन्यघन भगवान आत्माकी दृष्टि और एकाग्रता करने पर परिणतिमें जो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्धभाव प्रगट हो वह आत्माका सहज स्वाधीन स्वभाव होनेसे उसमें श्रम नहीं पड़ता या थकान नहीं लगती। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्रकी एकतास्वरूप जो शुद्धभाव—मोक्षमार्ग—प्रगट होता है उसका अवलम्बन त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक है। साधनामय निर्मल अंश ध्रुव स्वभावके—त्रैकालिक स्वपिण्डके आश्रयसे—अवलम्बनसे होता है; वह आत्माका स्वाधीन स्वभाव होनेसे उसमें खेद, थकान या आकुलता नहीं है।

हिरनकी नाभिमें कस्तूरी है परन्तु उसकी उसे खबर नहीं है;—ऐसे ही भीतर अतीन्द्रिय आनन्द एवं शान्तिरूपी कस्तूरीसे सदा परिपूर्ण है ऐसे निज ज्ञायकप्रभुकी जिसे खबर नहीं है और आदर नहीं है वह शुभभावरूप विभावका—दुःखका आदर करता है। शुद्ध चैतन्यके आश्रयसे होनेवाला भाव स्वाधीन, सहज और शुद्ध होनेसे उसमें पराधीनता, खेद या दुःख नहीं है। अहा! ऐसी बात है। अंतरकी यह बात समझमें नहीं आती इसलिये लोग रथयात्रा जुलूस गजरथ आदि बाह्य धामधूममें धर्म मान बैठे हैं। भाई! यह तो सब बाह्य क्रिया है। उस समय तूने शुभ परिणाम किये हों वह विभाव है। विभावमें श्रम पड़ता है और थकान—दुःख होता है। अंतरमें जो विश्रामधाम–अतीन्द्रिय अमृतका सागर—है उसमें एकाग्रता होनेपर उसमें जो अतीन्द्रिय आनन्द झरे उसे यहाँ 'शुद्धभाव' कहा है। वह शुद्धभाव स्वभावके आश्रयसे होनेके कारण उसमें पूर्ण स्वाधीनता है, और इसलिये उसमें थकान या दुःख नहीं है; स्वभावसे कृतकृत्य ऐसे चैतन्यद्रव्यके आश्रयसे पर्यायमें जो कृतकृत्यता प्रगट हुई वह आत्माका स्वाधीन होनेसे, उसमें थकान या दुःख नहीं है; वह भाव तो सुखमय ही है।

शुभाशुभ विभाव चैतन्यस्वभावके आश्रयसे नहीं होते, परके आश्रयसे होते हैं; इसलिये वे भाव पराधीन हैं। भगवान ज्ञायकके अवलम्बनसे जो परिणाम हों वे स्वाधीन भाव होनेसे शुद्ध हैं। वे वीतरागी परिणाम जैनधर्म हैं। पूजा या उपवासादिके भाव तो रागमय परिणाम होनेसे वे जैनधर्म नहीं हैं।—ऐसी बात समझमें नहीं आती इसलिये विरोध करते हैं। परन्तु भाई! सुन तो सही! तुझे यह सब बाह्य कर्तृत्वका अहंकार क्यों हो गया है? 'मैं शरीरवाला, मैं पैसेवाला, मैं समाजसेवाके कार्य करनेवाला'—ऐसे सब मिथ्या अभिमान तो महापाप और महादुःखरूप हैं। वह सब अहंकार छोड़कर, अंतरमें अमृतभरपूर निज ज्ञायक प्रभुको दृष्टि और ज्ञानकी पर्यायमें लक्षगत करनेसे जो निर्मल परिणाम हों वे स्वाधीन एवं सुखरूप हैं। अरेरे! दुनिया बाहरी चकाचौंधमें पड़ी है; शुभभाव और बाह्य क्रियाओंमें धर्म मान बैठी है। यहाँ तो कहते हैं कि—जड़की क्रियाकी बात तो दूर रही, परन्तु ज्ञानीको जो शुभभाव आता है उसमें उसे थकान और दुःख लगता है। शुद्ध चैतन्यके आश्रयसे जो परिणाम हों, वे परिणाम शुद्ध, सुखरूप और जैनधर्म हैं। अहाहा! यहाँ तो परमात्मा जो कहते हैं वही यह 'बेन'की वाणी है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भाई! शुभभावमें तो थकान और दुःख है। सच्चा विश्रामधाम तो तेरा आनन्दभरपूर ध्रुव चैतन्य है। नित्यस्थायी पर दृष्टि करे तो तेरी दृष्टि नित्यस्थायी हो जायगी। ध्रुवके ऊपर दृष्टि करनेसे जो स्थायी दृष्टि प्रगटे उसे भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह परिणाम स्वाधीन, सहज, शुद्ध और सुखमय है। अरेरे! आजकलके युवकोंको ऐसी बातें सुनकर ऐसा लगेगा कि—क्या ऐसा जैनधर्म होगा? भाई! यह जैनधर्म तो कोई अलौकिक है, वीतरागके सिवा यह बात किसी अन्य धर्ममें नहीं है; अरे! जैनधर्मके सिवा दूसरा कोई धर्म ही नहीं है।

अंतरमें आत्माका अवलम्बन लेकर जो परिणाम हो वह शुद्धभाव है। शुद्धभाव आत्माका स्वाधीन स्वभाव होनेसे उसमें थकान नहीं लगती।

'जितना स्वाधीन उतना सुख है।'

लोकमें कहावत है कि—'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं'। परन्तु स्वाधीनता किसे कहना? और पराधीनता किसको कहना—उसकी भी खबर नहीं है। लोग जिसे धर्म मानते हैं वे व्रत–तपके शुभभाव भी पराधीन भाव हैं; क्योंकि वह तो राग है, स्वभावकी जाति नहीं है। उसमें थकान लगती है; क्या स्वभावमें थकान लगती है? जिसमें थकान और दुःख है ऐसे पराधीन शुभभावको भी लोग धर्म मानते और मनवाते हैं। प्रभु! क्या हो? भाई! उसका फल भयंकर आयेगा, उन्हें दुःख होगा। यहाँ कहते हैं कि—ध्रुव ज्ञायकके अवलम्बनसे हुए शुद्धभावमें थकान या दुःख नहीं लगता; क्योंकि वह स्वाधीन स्वभाव है। जितना स्वाधीन उतना सुख और पराधीन उतना दुःख।

'स्वभावके सिवा सब दुःख ही है।'

'सब' अर्थात् क्या? 'सब' अर्थात् यह बाह्य संयोग दुःख नहीं है। संयोग दुःख नहीं है, वे तो परवस्तु हैं। भीतर स्वभावके सिवा जितने शुभाशुभ विकल्प उठते हैं वह दुःख है। स्वभावसे च्युत होकर अंतरमें जो भ्रान्ति और राग–द्वेषके परिणाम हों वह दुःख है। अहा! क्या कहे?—वीतराग सर्वज्ञकी पुकार है कि—तुझमें परके लक्षसे जितने भाव होते हैं वे सब दुःखरूप हैं। पत्नी, पुत्र और पैसोंके प्रति ममताका जो भाव होता है वह अशुभ, पराधीन और दुःखरूप है, परन्तु वीतराग देव–शास्त्र–गुरुके लक्षसे जो भाव होते हैं वे भी शुभ, पराधीन और दुःखरूप हैं। अरेरे! वीतरागका मूलमार्ग कहीं पड़ा रहा, और लोगोंने मान लिया कहीं—शुभरागमें। वास्तवमें तो 'आत्मानुभूति' वह जैनधर्म है। त्रैकालिक आनन्दमूर्ति ज्ञायक स्वभावका अनुभव होना—मोह–राग–द्वेषरहित शुद्धभाव होना—वह जैनधर्म है।

श्री योगीन्द्रदेवने योगसारमें कहा है न!—

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिन सुमरो जिन चिन्तवो, जिन ध्यावो मन शुद्ध;
वह ध्याते क्षण एकमें, लहो परमपद शुद्ध।

यह ज्ञानानन्दस्वरूप निज भगवान आत्मा स्वभावसे जिनस्वरूप है—ऐसा उसका स्मरण करो, चिन्तन करो और शुद्धमनसे ध्यान करो; उसका ध्यान करनेसे एक क्षणमें—अल्प समयमें—शुद्ध परमपदकी प्राप्ति होती है। अरे! जो रागके एक छोटेसे छोटे कणमें सन्तुष्ट हो जाता है उसे 'आत्मा रागरहित जिनस्वरूप है' यह बात कैसे वैठेगी? भगवान आत्मा अंतरमें—अभी वर्तमानमें भी—स्वभावसे जिनस्वरूप है। अंतरमें स्वसन्मुखताके पुरुषार्थ द्वारा साधना करे तो पर्यायमें प्रगट जिनस्वरूप हो जाय। अंतरमें त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक वस्तु जिनस्वरूप है, जिनबिम्ब है, जिनप्रतिमा है। उस ध्रुव चैतन्यप्रतिमाका आश्रय करने पर जो परिणाम होते हैं वे शुद्ध और सुखस्वरूप हैं। त्रैकालिक शुद्धस्वभावके अवलम्बनसे प्रगट होनेवाले स्वभावपरिणामके सिवा शुभाशुभ विकल्प आदि सब दुःख ही है।

*

वचनामृत—३३६

यह तो गुत्थी सुलझाना है। चैतन्यडोरेमें अनादिकी गुत्थी पड़ी है। सूतकी लच्छीमें गुत्थी पड़ गई हो उसे धैर्यपूर्वक सुलझाये तो सिरा हाथमें आये और गुत्थी सुलझ जाय; उसीप्रकार चैतन्यडोरेमें पड़ी हुई गुत्थीको धीरजसे सुलझाये तो गुत्थी दूर हो सकती है। ३३६.

'यह तो गुत्थी सुलझाना है।'

पहले ऐसा रिवाज था कि विवाह करने आये हुए दूल्हेराजाको उसकी बुद्धि और धैर्यकी परीक्षाके लिये, उलझे हुए सूतकी लच्छी दी जाती थी; दूल्हेराजा धैर्यपूर्वक सिरा ढूँढ़कर गुत्थी सुलझा देता था; अधीरा और जल्दबाज हो तो अधिक उलझा देगा।—वैसे ही इस भगवान आत्मामें जो अनादि अज्ञानकी गुत्थी पड़ी है उसे सुलझाना है।

'चैतन्यडोरेमें अनादिकी गुत्थी पड़ी है।'

नित्यानन्दस्वरूप भगवान ज्ञायक प्रभु चैतन्यडोरा स्वभावसे शुद्ध तथा सरल होनेपर भी उसे अनादिसे पर्यायमें रागके एकत्वकी गुत्थी पड़ गई है। चैतन्यडोरा स्वभावसे चैतन्य.... चैतन्य.....ज्ञायकस्वरूप, सरल और शुद्ध है; उसमें शुभ और अशुभ राग वह मेरा स्वरूप है, ऐसी अनादिसे जो गुत्थी—वक्रता—ग्रन्थि पड़ गई है उसे, चैतन्यस्वभावका पता लगाकर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धैर्यपूर्वक अन्तर्मुख पुरुषार्थ द्वारा सुलझाना है। चैतन्यसत् सत् ही है, सरल है, सर्वत्र उसकी प्राप्ति होती है—अंतरमें नित्य प्रकाशमान शुद्ध चैतन्यप्रभु शाश्वत विराजमान है; परन्तु उसे अनादिसे पर्यायमें जो शुभाशुभ रागके एकत्वकी गुत्थी पड़ गई है उसे सुलझाना है।

'सूतकी लच्छीमें गुत्थी पड़ गई हो उसे धैर्यपूर्वक सुलझाये तो सिरा हाथमें आये और गुत्थी सुलझ जाय; उसीप्रकार चैतन्यडोरेमें पड़ी हुई गुत्थीको धीरजसे सुलझाये तो गुत्थी दूर हो सकती है।'

जादूगर डोरीमें युक्तिपूर्वक गाँठें लगाता है और फिर युक्तिसे सब गाँठोंको कैंचीसे काट देता है; पश्चात् डोरी खींचता है तो बिना टुकड़ोंके सीधी लम्बी एक सी डोरी निकलती है; उससे लोग आश्चर्यमें पड़ जाते हैं। भाई यह सब तो हाथकी सफाईके प्रयोग हैं, उनमें चमत्कार–फमत्कार कुछ नहीं है। लड़कीके टुकड़े करके दिखाते हैं और फिर जीवित कर देते हैं—यह सब हाथकी चालाकीके बनावटी काम हैं, उनमें सत्य कुछ नहीं है। जादूगरकी भाँति जगतके यह जीव भी चालाकीके अहंकारमें डूब रहे हैं।

गुत्थी पड़े हुए सूतको धीरजसे सुलझाये, सिरा ढूँढ निकाले तो सरलतासे गुत्थी सुलझ सकती है; उसीप्रकार चैतन्य ज्ञायक प्रभुमें जो रागकी गाँठ लगी है, विभावकी गुत्थी उलझ गई है, शुभाशुभकी गाँठ पड़ गई है, उसको अंतर्मुख लक्ष करके सुलझाये तो गुत्थी सरलतासे सुलझ सकती है। वैसे ही चैतन्यमूर्ति भगवान आत्माको यदि अंतरसे ग्रहण करे तो गुत्थी सुलझ जाय। आया समझमें?

समयसारकी 'आत्मख्याति' टीकामें कर्ताकर्म अधिकारकी १४४वीं गाथामें कहा है न! कि—प्रथम श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चय करके, पश्चात् आत्माकी प्रगट प्रसिद्धिके लिये पर पदार्थकी प्रसिद्धिके कारण जो इन्द्रिय द्वारा और मन द्वारा प्रवर्तती बुद्धियाँ उन सबको मर्यादामें लाकर जिसने मतिज्ञानतत्त्वको आत्मसम्मुख किया है ऐसा, तथा नाना प्रकारके नयपक्षोंके अवलम्बनसे होनेवाले अनेक विकल्पों द्वारा आकुलता उत्पन्न करनेवाली श्रुतज्ञानकी बुद्धियोंको भी मर्यादामें लाकर श्रुतज्ञानतत्त्वको भी आत्मसम्मुख करता हुआ, यह आत्मा जब समयसारको अनुभवता है उस काल ही उसे आत्मा सम्यक्रूपसे दिखता है—श्रद्धामें आता है और ज्ञात होता है।

मति–श्रुतकी पर्याय अनादिसे जो बाहरकी ओर ढल गई है उसे मर्यादामें लाकर स्वभावकी ओर ले जा, तो भीतर जो चैतन्य ज्ञायक प्रभु विद्यमान है वह दृष्टिगत होगा और अनादि रागके साथके एकत्वकी गुत्थी सुलझ जायगी। अहा! समयसार तो महान समुद्र है। क्या है उसकी एक–एक गाथा! और क्या है उसका एक–एक पद! जगतके भाग्य हैं कि कि ऐसा महान परमागम रह गया। सन्तोंको विकल्प आया और उसकी रचना हो गई।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानानन्दसागर शुद्ध ज्ञायक नाथमें पर्याय-अपेक्षासे शुभाशुभ विकल्पकी गुत्थी है अर्थात् 'वह मैं हूँ' ऐसे अहंपनेके भावकी गुत्थी है, परन्तु वह अहंपना छोड़कर अंतरमें जो सीधा सरल चैतन्यभगवान विराजता है उसे देख, धैर्यपूर्वक दृष्टि वहाँ ले जा, तो गुत्थी सुलझ जाय—रागकी एकता टूट जाय। अहा! ऐसी बात है भाई! अंतरमें वीतरागमूर्ति—चैतन्य जिनबिम्ब ज्ञायक प्रभु विराजता है, उसके साथ एकता करने पर जो रागकी एकता टूट जाय और वर्तमान परिणतिमें अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो—वही गुत्थी सुलझ गई।

श्रीमद् राजचन्द्रने कहा है कि—

'मूलमारग सुनो जिनदेवका रे,
करके वृत्ति अखण्ड सन्मुख.....मूल०'

भाई! अनादिकालसे अपनी पर्यायमें तू परके तथा रागके सन्मुख देख रहा है, अब अपनी दृष्टिको अन्तर्मुख करके अपने त्रैकालिक ध्रुव अखण्ड ज्ञायक सत्त्वके सन्मुख देख। वृत्ति अखण्ड करके अखण्ड सन्मुख हो, तो पर्यायमें जो अनादिकालीन विभावकी गुत्थी पड़ गई है वह सुलझ जाय। ज्ञायक वस्तु भीतर अखण्ड विद्यमान है उसकी स्पष्टता करते हुए कहते हैं कि—

'है देहादिसे भिन्न आतमा रे,
उपयोगी सदा अविनाश.....मूल०

कैसा है भगवान आत्मा?—शरीर, वाणी, मन तथा घरबार आदि परपदार्थोंसे अत्यन्त भिन्न है, ज्ञान–दर्शनस्वरूप उपयोगका पिण्ड है और अविनाशी ध्रुववस्तु है। ऐसे भिन्न आत्माकी जिसे अन्तरमें यथार्थ प्रतीति हो—अनुभवसहित सम्यग्दर्शन हो—उसके मिथ्यात्वकी ग्रन्थि निकल जाती है। आया कुछ समझमें?

चैतन्यडोरेमें पड़ी हुई अनादि मिथ्यात्वकी गुत्थीको धीरजसे सुलझाये, वर्तमानदशाको द्रव्यकी ओर मोड़े, वर्तमान पर्याय जो कि परोन्मुख हो रही है उसे स्वोन्मुख करे, तो उसे सरल स्वभावकी—ज्ञायकके अनुभवकी—प्राप्ति हो। बेनकी भाषा तो सादी है भाई! परन्तु उनके अंतरका पुरुषार्थ.....अहाहा! कोई अलौकिक है!

भीतर चैतन्य भगवान समृद्धि भरपूर जिनबिम्ब विराजमान है; अपनी वर्तमान पर्यायको उस ओर मोड़ दे। 'करके वृत्ति अखण्ड सन्मुख रे.....' अखण्ड तत्त्वके सन्मुख अपनी परिणतिको—वृत्तिको अखण्ड कर। ऐसे तो श्रीमद्का व्यापार जवाहिरातका था, परन्तु उन्होंने वस्तुदृष्टि प्राप्त कर ली थी—उन्हें सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ था।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–३४०

'इसका करूँ, इसका करूँ'—इस प्रकार तेरा ध्यान बाह्यमें क्यों रुकता है? इतना ध्यान तू अपनेमें लगा दे। ३४०.

"'इसका करूँ, इसका करूँ'—इस प्रकार तेरा ध्यान बाह्यमें क्यों रुकता है?"

इसका करना, इसका करना—स्त्रीका करना, बच्चोंका करना, व्यापार करना, जातिका करना, गाँवका करना, देशका करना—इस प्रकार बाहरका करनेमें तेरा ध्यान क्यों रुकता है?

दूसरोंको धर्म समझा दूँ, मन्दिर बनवा दूँ, भक्ति करूँ, यात्रा करूँ, शिष्योंको पढ़ाऊँ—इस प्रकार तेरा चित्त बाह्यमें क्यों भटकता है? अहा! वीतरागका मार्ग कठिन है।

'इतना ध्यान तू अपनेमें लगा दे।'

यह करूँ और वह करूँ, पुत्रका विवाह करूँ और सगे–सम्बन्धियोंको अच्छी भेंट दूँ, दया पालूँ और दान करूँ, औषधालय खोलूँ और गरीबोंको कपड़े बाँटूँ,—इसप्रकार तेरा मन बाह्य कार्योंमें लगा है। तू उनमें रुक गया है, उसके बदले इतना ध्यान तू अपनेमें लगा दे न! अपनी वर्तमान पर्यायमें ध्यानका ध्येय निज आत्माको बना ले न! अरे, ऐसा उपदेश! सम्प्रदायमें चलती बातोंसे यह बात बिलकुल भिन्न है। यात्राके निमित्तसे तीन बार दस–दस हजार मील घूमे हैं, सारा हिन्दुस्तान देख लिया है। जहाँ भी गये वहाँ सब बाहरकी बातें हैं। गजरथ चलाओ, विशाल रथयात्रा निकालो, बड़ी–बड़ी बोलियाँ बोलो—इस प्रकार बाह्यमें धर्म मनवा दिया है। पैसे खर्च करनेवाले भी ऐसा मानते हैं कि हमने धर्म किया। भाई! इसमें धूल भी धर्म नहीं है। आत्माका धर्म आत्मामें होगा या बाहरी धामधूममें? तेरा चित्त बाहर आर्त्त एवं रौद्रध्यानमें रुक गया है, अब उसे वहाँसे हटाकर आत्माको समझकर उसमें लगा दे।

सहज ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त समृद्धिसे भरपूर ज्ञायकदेव अंतरमें विराजता है वहाँ अपना ध्यान लगा दे। अरेरे! जीवको अपना हित करनेके लिये अवकाश नहीं है। चौवीस घन्टेमेंसे बाईस घन्टे तो व्यापार और विषयमें जाते हैं; कठिनाईसे एक–दो घन्टेका समय मिले और साधुओंके समीप सुनने जाय, वहाँ 'यह करो और वह करो' ऐसी विपरीत बातोंमें उसका समय बर्बाद हो जाता है। अहा! यह बात जरा कठिन है; 'जन्म–मरणका अन्त लानेकी यह बात है। भाई! अनादिकालसे जन्म–मरणके दुःख सहन करके तू हैरान–परेशान हो गया; अब तो उन भयंकर दुःखोंसे छूटनेका मार्ग ढूँढ़! सर्व विभावोंसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहित अंतरमें आनन्दका नाथ ज्ञायकदेव विराजता है उसे पहिचानकर ग्रहण कर, वहाँ अपना ध्यान लगा दे, तेरे दुःखोंका अन्त आ जायगा।

एक हलवाईकी दुकानमें छप्परमेंसे एक बड़ा सर्प गिरा—आधा तो उबलते हुए तेलकी कहाड़ीमें गिरा और आधा बाहर रह गया। हलवाईको दया आयी और उसने बड़ा तवेथा लेकर उसे उछालकर दूक फेंकना चाहा, तो गिरा ऊलमें! वह सर्प इतना घबरा गया था कि किधर भागे वह उसे सूझ नहीं रहा था। ऊलमेंसे घुस गया सुलगते हुए चूलमें! अरेरे! पूरेका पूरा भट्टीमें जल गया। बेचारा! अहा! भट्टीमें सिकनेका भयंकर दुःख, दुःख और दुःख! उसी प्रकार अज्ञानी जीव भी 'यह राग आग दहै सदा'—रागकी आगमें जल रहे हैं। दुःखके जले हुए विषयोंमें सुखकी आशासे, अधिकाधिक दुःखमें गिर रहे हैं। भगवानकी पूजा करना, जीवोंकी दया पालना, व्रत–उपवासादि यह सब रागकी क्रियाएँ है, वह कोई तेरा विश्रामस्थान नहीं है, वह तो स्वभावसे विमुखवृत्ति है; विश्रामस्थान तो भीतर रागरहित जो ज्ञायक प्रभु विराजता है वह है; उसके सन्मुख जा न! जिससे तेरा अनादिका दुःख दाह मिट जाय।

जैसे पर और रागकी लगन अनादिसे लगी है, वैसे ही तीव्र लगन अंतरमें लगा न! जहाँ पूर्णानन्दका नाथ भगवान निज ज्ञायकदेव विराजता है वहाँ लगन लगा। श्री आनन्दघनजीने कहा है न!—

लागी लगन हमारी, जिन राज सुयश सुन्यो मैं.....लागी०
काहूके कहें कबहुँ न छूटै, लोकलाज सब डारी,
जैसे अमली अमल करत समै लागी रहै खुमारी.....जिन०

'भगवान आत्मा जिनवर स्वरूप है'—ऐसा गुरुमुखसे सुना और चढ़ गया स्वभावमें, अंतरमें स्वरूपकी मस्ती–खुमारी चढ़ गई, स्वभावमें समा गया। जैसे अफीमचीको अफीमका नशा चढ़ जाता है, वैसे ही स्वभावका यथार्थ ग्रहण होनेपर स्वरूपप्राप्तिकी मस्ती चढ़ जाती है। मैं अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप हूँ, शुद्ध चैतन्यघन हूँ—ऐसे स्वरूपसन्मुखताके जो परिणाम हुए, स्वरूपमें जाते हुए जो मस्ती चढ़ गई, उस परिणामको 'शुद्ध' कहा जाता है। शुद्ध कहो, मोक्षका मार्ग कहो, सुख कहो अथवा जैनधर्म कहो—सब एक ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१२८

दिनांक २३-१०-७८

वचनामृत–३४१

निज चेतनपदार्थके आश्रयसे अनन्त अद्‌भुत आत्मिक विभूति प्रगट होती है। अगाध शक्तिमेंसे क्या नहीं आता? ३४१.

'निज चेतनपदार्थके आश्रयसे अनन्त अद्‌भुत आत्मिक विभूति प्रगट होती है।'

जिसे त्रैकालिक ध्रुव, ज्ञायक, भूतार्थ, सत्यार्थ, परमपारिणामिक भाव कहा जाता है ऐसा जो निज चेतनपदार्थ उसका वर्तमान परिणतिमें आश्रय लेनेसे जीवको सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति आदि अनन्त अद्‌भुत शुद्धता प्रगट होती है। ऐसे तो सर्वज्ञ वीतराग भगवान भी चेतनपदार्थ हैं, परन्तु वे भगवान तो इस आत्माके लिये पर हैं। पर चेतनपदार्थके आश्रयसे शुद्धता प्रगट नहीं होती, इसलिये यहाँ 'निज चेतनपदार्थके आश्रयसे' ऐसा लिया है।

जगतके लोगोंको शरीरकी क्रिया और शुभाशुभ विभावोंसे भिन्न ऐसे निज ज्ञायकभावके आश्रयकी बातमें 'एकान्त' लगता है। साथ ही दया, दान, व्रत, व्यवहाररत्नत्रयसे भी मोक्ष होता है—ऐसा कहो तो 'अनेकान्त' होगा, ऐसी उनकी मान्यता है। भाई! वह तो मिथ्या अनेकान्त है। सम्यक् अनेकान्त तो उसे कहा जाता है कि—निज ध्रुव परमभावके आश्रयसे पर्यायमें शुद्धि प्रगट होती है, शुभक्रिया अथवा रागसे प्रगट नहीं होती। वर्तमान परिणामने ध्रुव सामान्यका आश्रय लिया इससे वह शुद्ध हुआ; उसमें ध्रुव ज्ञायक वह आश्रयभूत सामान्य और आश्रय लेनेवाला परिणाम वह विशेष। इसप्रकार सामान्य–विशेषस्वरूप अनेकान्त इसीमें बराबर सिद्ध होता है। ध्रौव्यका आश्रय करनेवाले परिणाम तो क्षणस्थायी परिणाम ही हैं, परन्तु वह अनादिसे जो पर और विभावकी ओर ढलते थे वे अब निज चेतनपदार्थकी ओर ढलते हैं इसलिये उनका 'आश्रय किया' ऐसा कहा जाता है। ध्रौव्यका आश्रय करनेसे परिणाम ध्रौव्य हो जाते हैं ऐसा नहीं है।

'निज चेतनपदार्थको पकड़ना' अर्थात् क्या? कि—परिणाम जो पर तथा रागकी ओर ढले हुए हैं उन्हें इस ओर—निज ध्रुव ज्ञायकस्वभावकी ओर—ढालना। वर्तमान

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्यायमें राग होनेपर भी रागरहित द्रव्यस्वभावमें नवीन पर्यायको मोड़कर निज चेतनपदार्थ सामान्यको पकड़ना—ध्रुव परमभावको नवीन पर्यायमें ग्रहण करना, नवीन पर्यायमें उसका अवलम्बन लेना।

शुभाशुभभाव विभाव हैं, चैतन्यकी जातिके नहीं हैं। जीवके स्वभावकी जातिके नहीं होनेसे वे परमार्थतः जीव नहीं कहे जाते। उनके आश्रयसे आत्माकी विभूति प्रगट नहीं होती, परन्तु भीतर जो निज त्रैकालिक ज्ञायकभाव है उसके आश्रयसे ही आत्माकी समस्त अद्भुत विभूतियाँ प्रगट होती हैं।

उपयोगस्वरूप निज चैतन्यपदार्थ जो कि प्रमत्त या अप्रमत्त दशा रहित एक ज्ञायकभाव है उसके आश्रयसे सम्यक्त्व, ज्ञान, शान्ति आदि अनन्त अद्भुत वैभव प्रगट होता है; क्योंकि जितने गुण हैं उन सबका अभेद एकरूप वह वस्तु अर्थात् चैतन्यपदार्थ है। उसका आश्रय करने पर अर्थात् परिणामको द्रव्यकी भेंट होनेपर 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'—अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति—प्रगट होती है। भाई! सच्चे सुखका यह एक ही उपाय है, अन्य कोई मार्ग नहीं है।

प्रवचनसारमें आता है कि—प्रचण्ड कर्मकाण्डसे अखण्ड ज्ञानकाण्ड प्रचण्ड होता है। भाई! उसका अर्थ क्या? क्या शरीरकी क्रिया या शुभरागसे अखण्ड ज्ञानकाण्ड प्रचण्ड होगा? शरीरकी क्रिया तो अजीवतत्त्व है। अंतरमें आत्माश्रित वर्तती शुद्धिके साथ मेलवाला भूमिकानुसार शुभराग आस्रवतत्त्व है—पुण्यास्रव है। शुभरागसे अखण्ड ज्ञानकाण्ड प्रचण्ड नहीं हो सकता। जिससे पृथक् होना है उसके आश्रयसे अंतरमें नहीं पहुँचा जा सकता; और अंतरमें गये बिना अखण्ड ज्ञानकाण्ड प्रचण्ड नहीं हो सकता। बाहरी कर्मकाण्ड जीवने अनन्तबार किये तथापि ज्ञानकी प्राप्ति क्यों नहीं हुई?.....तब फिर इसका अर्थ क्या समझना? भाई! प्रवचनसारमें वहाँ निमित्तका ज्ञान कराया है। जिसके अंतरमें प्रचण्ड कर्मकाण्ड वर्तता है उस जीवको अंतरमें शरीर और रागसे भिन्न निज चेतनपदार्थकी प्रतीति और ज्ञानमें उसका आश्रय तो प्रगट हुआ है; स्वरूपस्थिरता अल्प होनेसे उसे शुद्धिके साथ व्यवहाररत्नत्रयके विकल्पोंरूप कर्मकाण्ड वर्तता है। उस प्रचण्ड कर्मकाण्डसे अखण्ड ज्ञानकाण्ड (—अभेदरत्नत्रय) प्रचण्ड होता है वह कथन व्यवहार और निमित्तका है; उसका मर्म ऐसा है कि—प्रचण्ड कर्मकाण्ड (—भेदरत्नत्रय)के साथ अंतरमें वर्तती शुद्धि प्रचण्ड होनेसे अखण्ड ज्ञानकाण्ड (—अभेदरत्नत्रय) प्रचण्ड होता है। वहाँ ज्ञानीके भेदरत्नत्रयरूप व्यवहारको कर्मकाण्ड कहा है, अज्ञानीके क्रियाकाण्डकी बात नहीं है।

जिसमें ज्ञान, आनन्दादि अविनाभावी अनन्तगुण हैं ऐसे निज चैतन्यपदार्थका आश्रय कर, क्योंकि समयसारमें कहा है कि—'कर्मक्षयका विधान तो परमार्थ आश्रित संतको।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कर्मका क्षय अर्थात् मोक्ष तो निज ज्ञायक आत्माके आश्रयसे ही होता है। मार्गका आरम्भ, वृद्धि और पूर्णता—सब त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे होते हैं।

स्वयं अनन्त चैतन्यमय गुणसमृद्धिसे परिपूर्ण भरा होने पर भी, परसे मुझे सुख होगा, रागसे कल्याण होगा ऐसी भीख बाह्यमें माँगता है। अरे प्रभु! यह भिखारीपना छोड़ दे। ज्ञायकभाव, भूतार्थभाव, सत्यार्थभाव, एकरूप या सादृश्यभाव ऐसे भगवान निज चैतन्यपदार्थको यथार्थ लक्षगत करके उसका आश्रय कर, तो तुझे शक्तिमेंसे पर्यायमें अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति प्रगट होगी भाई! शुभाशुभभाव अनन्तबार किये, परन्तु अभी निज ज्ञायक भगवान हाथ नहीं आया। इसलिये अब विभावका लक्ष छोड़कर आत्माका अपूर्व आश्रय कर।

समयसार-कलशटीकामें कहा है कि—किसीको ऐसा लगे कि बारह अंगका ज्ञान वह कोई अपूर्व लब्धि है, परन्तु भाई! वह ज्ञान भी विकल्प है। बारह अंगमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है। इसलिये शुद्धात्मानुभूति होनेपर शास्त्र पढ़नेका कोई बंधन नहीं है। श्रीमद् राजचन्द्रजीने भी कहा है कि—'अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपदकी प्राप्तिके सिवा अन्य हेतुसे उपकारी नहीं है।' प्रत्येक वस्तुमें वस्तुपनेको उत्पन्न करनेवाले द्रव्यत्व और पर्यायत्व, एकत्व और अनेकत्व, नित्यत्व और अनित्यत्व, सत्त्व और असत्त्व आदि परस्पर विरोधी अनन्त धर्मोंका प्रकाशन वह 'अनेकान्त' है। 'अनेकान्त' भी अनेकान्त है—कथंचित् अनेकान्त और कथंचित् एकान्त। अनेकान्तस्वरूप भगवान आत्माका यथार्थ स्वरूप समझकर समस्त विभाव तथा भेदको गौण करके त्रैकालिक शुद्ध अभेद ज्ञायक स्वभावका आश्रय करना वह सम्यक् एकान्त है। सम्यक् एकान्त ऐसा जो आश्रयभूत परमभाव—निजपद—उसकी प्राप्तिके सिवा अन्य हेतुसे अनेकान्त उपकारी नहीं है।

अहा! प्रभु! तुझे अपनी प्रभुताका माहात्म्य नहीं आता और बाह्य क्रिया तथा रागका माहात्म्य आता है, परन्तु वह तो अजीव और विभावका माहात्म्य है। राग और क्रियामें जो एकत्ववृत्ति है वह तो अधोभूमि है; तुझे अंतरमें ऊपर जाना हो तो त्रैकालिक निज चैतन्यपदार्थका आलम्बन लेना पड़ेगा। उसके आलम्बनसे अन्तरमें अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति—ऊर्ध्वता प्रगट होगी।

भाई! मौतके नगाड़े सिरपर बज रहे हैं। किस समय आयु पूर्ण हो जाय उसकी खबर नहीं है। यह शरीर तो हड्डियोंका पिंजरा है। अंतरमें चैतन्य भगवान भिन्न है। अहा! वस्तुस्वभावमें उलझन नहीं है, पर्यायमें परको अपना मानकर जीव आकुलित हो रहा है। पर और विभावके साथ जो एकत्वबुद्धिस्वरूप अध्यवसान वह मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व वस्तुस्वभावमें नहीं है। आत्माका असाधारण स्वभाव तो ज्ञान है, क्योंकि ज्ञानत्व अन्य द्रव्योंमें तथा अपने अन्य गुणोंमें भी नहीं है। अन्य गुण अपनी–अपनी अर्थक्रियापूर्वक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अस्तित्व धारण करते हैं, परन्तु वे अपनेको या परको नहीं जानते। मात्र एक ज्ञान ही सबको—अपनेको तथा परको—जानता है। ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे जो ज्ञानपर्याय हुई वह निर्मल परिणति अनन्त अद्भुत आनन्दादि विभूतिसहित प्रगट हुई है। आत्माकी वह निर्मल परिणति स्वतंत्र अपनेसे हुई है। उसमें किसी निमित्त या विभावकी अपेक्षा नहीं है। आत्माके अपने ही अभिन्न षट् कारकोंसे निर्मल पर्याय हुई है, उसमें विभावकी या भिन्न कारकोंकी किंचित् भी अपेक्षा नहीं है। अहा! अन्य सम्प्रदायमें अध्यात्मकी ऐसी बातें कहाँ हैं? भाई! दिगम्बर संत अर्थात् केवलीके पथके पथिक। यह किसी पक्षकी नहीं किन्तु वस्तुस्वरूपकी बातें हैं।

वीतराग ज्ञायक प्रभुके आलम्बनसे पर्यायमें जो विभूति प्रगट हो वह वीतरागी ही होती है। जो मत रागसे धर्म मनाये वह वीतराग मत नहीं है, अन्य मत है। जिनेन्द्र भगवानने पूजादिके या व्रतादिके शुभरागको पुण्य कहा है और मोहक्षोभरहित निज शुद्ध परिणामको धर्म कहा है। अहा! व्रतादिके शुभरागको धर्म मानना वह तो बंधमार्गको मोक्षमार्ग मानना हुआ, इसलिये वह तो मिथ्यात्व है। ऐसी बात लोगोंको नहीं रुचती, परन्तु भाई! ऐसी कौनसी बात है जो सबको अच्छी लगे? अंतरमें भगवान आत्मा कृतकृत्य ज्ञायकस्वरूपसे विराजता है; उसके आश्रयसे लाभ होता है, पर और विभावके आश्रयसे कदापि आत्माका लाभ नहीं होता। प्रभु ज्ञायक अपनी प्रभुताको भूलकर, अपनेको पामर मान बैठा है; यदि अपनी प्रभुताका आश्रय करे, उसका अंतरमें अवलम्बन ले तो पर्यायमें अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति प्रगट हो।

'अगाध शक्तिमेंसे क्या नहीं आता?'

जिसे समयसारकी छठवीं गाथामें 'ज्ञायक' कहा, ग्यारहवीं गाथामें 'भूतार्थ' कहा और १५६वीं गाथामें 'विद्वत्जनो भूतार्थ तजी, व्यवहारमां वर्तन करे',—इस प्रकार भूतार्थ कहा है उस त्रैकालिक शुद्ध परमभावके आश्रयसे निर्मलताकी विभूतियाँ प्रगट होती हैं। धर्मीको भूमिकानुसार शुभभाव आते हैं परन्तु उनमें उसे रुचि या रस नहीं है। ज्ञानीको जहाँ शुभका भी रस नहीं है, वहाँ यदि कोई अशुभभावके रसमें युक्त हो जाय तो उसे दृष्टि कहाँसे रहेगी? साधकको शुभभाव भी नहीं सुहाता, उसका रस नहीं है; उसे तो मात्र स्वभावका रस है।

कोई जीव अशुभके रसमें लगकर माने कि—'ज्ञानीका भोग निर्जराका हेतु है'; इस प्रकार जो स्वच्छन्दी होता है उससे आचार्यदेव कहते हैं कि—भाई! ऐसा नहीं है; यदि विषयभोगके अशुभभावसे निर्जरा हो तो 'भोगके भाव छोड़ना' ऐसा रहेगा ही नहीं। जिसकी दृष्टिमें ज्ञायक चैतन्य महाप्रभु मुख्यरूपसे वर्तता है उसे भोगादिका कोई अशुभभाव आ जाय,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परन्तु वह भाव दृष्टिकी अपेक्षा गौण है, उसके निमित्तसे जो अल्पस्थिति–रस आया उसकी गिनती न होनेसे ऐसा कहा जाता है कि ज्ञानीका भोग निर्जराका हेतु है। ज्ञानीको यदि उस अशुभभावमें रस–प्रेम आ जाय तो अंतरमें ध्रुव ध्येयका आश्रय नहीं रहता, दृष्टि द्रव्यके ऊपरसे हट जाती है। ज्ञानीके अभिप्रायमें तो राग है वह विष है, काला नाग है। ज्ञानी शुभाशुभ विभावके बीच स्थित होनेपर भी विभावसे भिन्न हैं, न्यारे हैं।

भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दादि अनंत अगाध शक्तियोंका अक्षय भण्डार है। अगाध शक्तियोंमेंसे क्या नहीं आयगा? जैसे सिद्धकी पर्यायके पीछे उसकी शक्तिरूप महानताका पार नहीं है, वैसे ही प्रत्येक आत्मामें शक्तिरूप समृद्धिका पार नहीं है। अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति जिसके आलम्बनसे प्रगट होती है ऐसे सामर्थ्यभरपूर निज चेतनपदार्थकी अनुपम महिमाका क्या कहना! अगाध शक्तिके भण्डार ऐसे निज ज्ञायकमेंसे क्या प्रगट नहीं होता? अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त आनन्दादि सब प्रगट होता है।

*

ज्ञानीको किसी भी प्रसंगमें ज्ञायकता नहीं छूटती; पुण्य–पापके भावमें वह ज्ञायक ही है। चाहे जैसे उच्च शुभभाव हों, पंच परमेष्ठीकी पूजा–भक्तिके भावोंमें अत्यन्त रस दिखता हो अथवा गुणभेदके विचार करता हो, तथापि ज्ञायक ही है, कहीं एकत्वबुद्धि नहीं है।

गुरुदेवका अपार उपकार है। चैतन्यकी चमत्कारिक ऋद्धि उन्होंने बतलायी है।

—बहिनश्री चम्पाबेन।

*

परके साथकी एकत्वबुद्धि तोड़ना। विभावभाव भी आत्माका स्वभाव नहीं है, उनसे भी स्वयं भिन्न है। गुणोंके भेद और पर्यायोंके भेद—वह भी चैतन्यका अखण्ड स्वरूप नहीं है। सर्व प्रकारसे चैतन्यको—शुद्धात्माको भिन्न ग्रहण करना, पृथक् प्रतीति करना। ऐसा करके, उसीका बारम्बार अभ्यास करके उसीमें लीनता करना। ऐसा करनेसे स्वानुभूति प्रगट हुए बिना रहती ही नहीं। गुरुदेवने कोई अद्भुत मार्ग बतलाया है!

—बहिनश्री चम्पाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वचनामृत–३४२

अंतरमें तू अपने आत्माके साथ प्रयोजन रख और बाह्यमें देव–शास्त्र–गुरुके साथ; बस, अन्यके साथ तुझे क्या प्रयोजन है?

जो व्यवहारसे साधनरूप कहे जाते हैं, जिनका आलम्बन साधकको आये बिना नहीं रहता—ऐसे देव–शास्त्र–गुरुके आलम्बनरूप शुभभाव भी परमार्थसे हेय हैं, तो फिर अन्य पदार्थ या अशुभ भावोंकी तो बात ही क्या? उनसे तुझे क्या प्रयोजन है?

आत्माकी मुख्यतापूर्वक देव–शास्त्र–गुरुका आलम्बन साधकको आता है। मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवने भी कहा है कि 'हे जिनेन्द्र! मैं किसी भी स्थान पर होऊँ, (परन्तु) पुनः पुनः आपके पादपंकजकी भक्ति हो'!—ऐसे भाव साधक दशामें आते हैं और साथ ही साथ आत्माकी मुख्यता तो सतत बनी ही रहती है। ३४२.

'अंतरमें तू अपने आत्माके साथ प्रयोजन रख और बाह्यमें देव–शास्त्र–गुरुके साथ; बस, अन्यके साथ तुझे क्या प्रयोजन है?'

अंतरमें शुद्ध चैतन्यघन—शुद्ध विज्ञानघन ऐसे निज भगवान आत्माके साथ प्रयोजन रख—प्रीति कर; और बाह्यमें, यदि विकल्प आये तो, सच्चे वीतराग देव–शास्त्र–गुरुके साथ; बस, अन्यके साथ तुझे क्या प्रयोजन है? स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी और बँगलेके साथ प्रभु! तुझे क्या काम है? प्रजाको राजाके साथ और राजाको प्रजाके साथ क्या प्रयोजन है? अंतरमें पूर्णानन्दका नाथ ऐसे निज ज्ञायक प्रभुके साथ प्रयोजन रख, उसके साथ परिणतिके प्रवाहको जोड़ दे, जिससे तुझे कोई अपूर्व अतीन्द्रिय आनन्दकी प्राप्ति होगी।

'जो व्यवहारसे साधनरूप कहे जाते हैं, जिनका आलम्बन साधकको आये बिना नहीं रहता—ऐसे देव–शास्त्र–गुरुके आलम्बनरूप शुभभाव भी परमार्थसे हेय हैं, तो फिर अन्य पदार्थ या अशुभ भावोंकी तो बात ही क्या? उनसे तुझे क्या प्रयोजन?'

साधन तो वास्तवमें निज चैतन्य ध्रुव पदार्थके आश्रयसे प्रगट होनेवाली शुद्ध परिणति ही है और शुद्ध परिणतिका आलम्बन भी निश्चयसे त्रैकालिक ज्ञायकभावरूप स्वद्रव्य है। साधकको निचली भूमिकामें, जिनको साधनामें व्यवहारसे साधनरूप कहा जाता है ऐसे सच्चे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देव–शास्त्र–गुरुके आलम्बनरूप या अणुव्रत–महाव्रतादिरूप शुभ विकल्प आते हैं परन्तु वे भी परमार्थसे हेय हैं। देव–शास्त्र–गुरुके प्रति शुभभावको वीतराग सर्वज्ञ भगवानने आस्रवतत्त्व कहा है, कर्मबन्धका कारण कहा है। देव–शास्त्र–गुरुके प्रति प्रेम वह कोई चैतन्यकी जातिका भाव नहीं है; आत्माके आलम्बनसे जो ज्ञान, शान्ति, आनन्द आये वह चैतन्यकी जाति है, और वह शुभराग तो अशान्ति तथा आकुलताका भाव है। वह भाव चैतन्यकी जातिका नहीं होनेसे भगवान सर्वज्ञदेव उसे जीव तत्त्व नहीं कहते, आस्रव–बन्धस्वरूप हेय तत्त्व कहते हैं। जहाँ देव–शास्त्र–गुरुके आलम्बनरूप शुभभावको भी परमार्थसे हेय कहा है वहाँ अन्य पदार्थ या उनके आलम्बनसे होनेवाले अशुभ भावोंकी तो बात ही कहाँ रही? उनसे कौनसा हितसाधन होता है?

निचली भूमिकामें विकल्पके समय जिनका आलम्बन आये बिना नहीं रहता ऐसे वीतराग देव–शास्त्र–गुरुको, वे साधनामें निमित्त होनेसे, व्यवहारसे साधनरूप कहे जाते हैं। निश्चयसाधन तो स्वसन्मुखताके पुरुषार्थरूप परिणमित अपना आत्मा ही है। त्रिलोकीनाथ वीतराग सर्वज्ञदेव, उनकी वाणी—परमागम और शुद्धात्मसाधनापरिणत गुरुके आलम्बनरूप विकल्प—वह शुभ है और निज शुद्धात्म द्रव्यके आलम्बनरूप परिणमन वह शुद्धभाव है। अहा! उस शुद्धभावको प्राप्त न कर सकें उससे क्या शुभभावको धर्म मान लिया जाय? शुभभाव तो आस्रव–बन्ध तत्त्व है और शुद्धभाव संवर–निर्जरातत्त्व है। उन दोनोंकी एकता करना वह तो मिथ्यात्व है। पूर्णानन्दनिधान निजज्ञायकभावके अवलम्बनसे ही शुद्धभाव प्रगट होता है; और शुभभाव तो देव–शास्त्र–गुरु आदि परके अवलम्बनसे—लक्षसे प्रगटता है, इसलिये वह विभावभाव हेय है।

प्रश्न:—देव–शास्त्र–गुरुको साधन कहना और फिर उनके आलम्बनरूप भावको हेय मानना?

उत्तर:—हाँ, उन्हें व्यवहारसे साधन कहा है न? निश्चयसाधन तो रागरहित स्व-परके भेदविज्ञानरूप प्रज्ञाछैनी कही है। स्वभावका अनुभव ही सच्चा साधन है। नीचे विकल्पकी भूमिकामें व्यवहारसे आलम्बनरूप ऐसे देव–शास्त्र–गुरुको साधन कहना वह उपचारसे है। अहा! कठिन काम है; सम्प्रदायमें तो यह बात सुननेको भी नहीं मिलती।

सम्यग्दर्शन बिना अज्ञानीको जो शुभभाव आता है वह तो मिथ्यात्व सहित है, वह तो हेय है, परन्तु यहाँ जो सम्यग्दर्शन सहित देव–शास्त्र–गुरुके आलम्बनका शुभभाव आता है उसे भी हेय कहा है। जिसे अंतरमें आनन्दसागर ऐसे निज चैतन्यपदार्थका आश्रय वर्तता है उसे सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप धर्म होता है। उसे देव–गुरु आदिके आलम्बनरूप शुभभाव आये वह परमार्थसे हेय है, आदरणीय नहीं है। तो फिर वह आता क्यों है?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वरूपरमणतामें कचास–अशक्तिके कारण आता है, परन्तु वह भाव है शुभ–पुण्य। धर्म तो वीतरागभाव है। वह अंतरमें त्रैकालिक ध्रुव वीतराग शक्तिके अवलम्बनसे प्रगट होता है। वीतरागमूर्ति भगवान आत्मा भीतर प्रभुतापूर्ण जिनबिम्ब है।

घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन;
मति–मदिराके पानसों, मतवाला समुझै न।

जिनत्व और जैनत्व अर्थात् पूर्णत्व और साधकत्व—दोनों भीतर घटमें—आत्मामें निवास करते हैं; परन्तु जिन्होंने स्वच्छंद मति अथवा अपने मतरूप मदिरापान किया है वे जिन और जैनस्वरूप निज आत्माको नहीं समझते। भीतर अंतरमें जो जिनस्वरूपी प्रभु आत्मा है वह स्वभावसे ज्ञान–आनन्द सामर्थ्यसे भरा है; उसका आश्रय लेने पर पर्यायमें जैनधर्म—वीतराग दशा प्रगट होती है।

देव–शास्त्र–गुरुके आलम्बनरूप शुभभाव आता है, परन्तु वह हेय है, आदरणीय नहीं है। आदरणीय माने तो दृष्टि मिथ्या हो जाय। परमात्मप्रकाशमें कहा है कि—जो कोई दृष्टिमें शुभभावको उपादेय मानता है उसे भगवान आत्मा हेय है। अहा! देखो संतोंकी वाणी! जो शुभरागको उपादेय मानता है उसे रागरहित भगवान ज्ञायक आत्मा हेय है, और जो भगवान ज्ञायक आत्माको उपादेय मानता है उसे शुभभाव हेय है। व्यवहारसे उसे साधन कहा था, परमार्थसे वह हेय है। जहाँ शुभभाव भी हेय है वहाँ विषयानुरागरूप अशुभभावकी तो बात ही कहाँ रही? उससे तुझे क्या प्रयोजन है? क्या लाभ है?

शरीर निरोगी हो, पुत्र कमाऊ हों, बाहरकी सब सुविधाएँ हों तो निवृत्ति मिले और तब कुछ धर्म हो,—ऐसे बाह्य पदार्थोंका तुझे क्या काम है? उन वस्तुओंसे तुझे क्या प्रयोजन है? आत्माको उनके साथ तो प्रयोजन नहीं है, परन्तु उनके निमित्तसे होनेवाले विविध अशुभ भावोंके साथ भी कुछ प्रयोजन नहीं है। अंतरमें एक निज आत्माके साथ प्रयोजन रखना, और बाह्यमें भूमिकानुसार विकल्पके कालमें देव–शास्त्र–गुरुके साथ; बस, इसके सिवा दूसरोंके साथ तुझे क्या प्रयोजन है?

भगवान ज्ञायक आत्मा अमृतका सागर है, और शुभभाव उसके विरोधी, विषयरूप हैं। भाई! तुझे उस विषकी रुचि क्यों होती है? उस रुचिको लगा दे अंतर आत्मामें।

'आत्माकी मुख्यतापूर्वक देव–शास्त्र–गुरुका आलम्बन साधकको आता है।'

दृष्टिमें आनन्दकन्द ज्ञायकमूर्ति निज चैतन्यसामान्यकी मुख्यता होती है। उसकी मुख्यतापूर्वक साधकको देव–शास्त्र–गुरुका आलम्बन आता है। दृष्टिके साथ वर्तते हुए ज्ञानमें पर्यायसम्बन्धी विविध भाव आते हैं, परन्तु उस समय भी मुख्यता तो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावकी ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कोई कहे कि व्याख्यानमें आचार्योंके शास्त्र पढ़नेके बदले 'बहिनश्रीके वचनामृत' क्यों पढ़ते हो? भाई! आचार्योंके शास्त्र हों या बहिनकी पुस्तक हो—सब एक ही जाति है। क्या 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' पर व्याख्यान नहीं होते? वह ग्रन्थ भी गृहस्थका बनाया हुआ है न? केवली कहें, मुनि कहें अथवा स्वानुभवी सम्यग्दृष्टि कहें—उन सबका प्रयोजनभूत तत्त्व तो सत्य ही होता है।

सर्वदा आत्माकी—ज्ञायकसामान्यकी—मुख्यता रहना चाहिये; यदि एक क्षण भी उसकी मुख्यता छूट जाय और दूसरेकी मुख्यता हो जाय तो दृष्टि मिथ्या हो जायगी। अरे! आत्माको चूककर देव–शास्त्र–गुरुकी भी मुख्यता हो जाय तो वह जीव मिथ्यादृष्टि है। आत्माकी मुख्यता रखकर देव–गुरु आदिका आलम्बन साधकको आता है; मुनिराजको भी अन्य मुनिराजकी वैयावृत्तिका विकल्प आता है, परन्तु अभिप्रायमें वह हेय है। उपादेय कहो या मुख्य कहो—एक ज्ञायक ध्रुव आत्मा ही है।

"मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवने भी कहा है कि 'हे जिनेन्द्र! मैं किसी भी स्थान पर होऊँ, (परन्तु) पुनः पुनः आपके पादपंकजकी भक्ति हो!' ऐसे भाव साधकदशामें आते हैं और साथ ही साथ आत्माकी मुख्यता तो सतत बनी ही रहती है।"

धर्मी जीवको दृष्टिमें निज शुद्धात्म द्रव्यसामान्यके आश्रयकी सदा मुख्यता होनेपर भी भूमिकानुसार जिनेन्द्रभक्ति, गुरुसेवा, शास्त्रस्वाध्यायादिके शुभभाव आते हैं। 'हे जिनेन्द्रदेव! मैं चाहे जहाँ होऊँ—देवमें होऊँ या मनुष्यमें होऊँ—परन्तु पुनः पुनः मुझे आपके चरणकमलकी भक्ति हो!' ऐसे शुभभाव ज्ञानी मुनिराजोंको भी आते हैं; ऐसे शुभभाव आने पर भी अंतरमें उनकी मुख्यता एक क्षण भी नहीं होती; मुख्यता तो निरन्तर आत्माकी ही रहती है। अंतरमें दृष्टि ध्रुव ज्ञायकके ऊपर ही है, वहाँसे किंचित् भी नहीं हटती।

साधक जीवको शुभभाव होते अवश्य हैं परन्तु उनसे धर्म होता है ऐसा वे कदापि नहीं मानते। शुभभाव राग है, आस्रव है; आस्रवभावसे धर्म अर्थात् संवर–निर्जरा कभी नहीं होते, बन्ध होता है, यह बात सुनकर लोग इसे 'एकान्त' कहते हैं, परन्तु भाई! क्या हो?—धर्मका स्वरूप क्या है, वह कहाँसे होता है, किसके आश्रयसे होता है। यह उन्हें खबर नहीं है। देव–शास्त्र–गुरुके आश्रयसे भी धर्म नहीं होता, शुभभाव होते हैं; उसे व्यवहारसे धर्म कहा जाता है; परन्तु किसके शुभभावको धर्म कहते हैं?—कि जिसके अंतरमें निश्चय—निज शुद्धात्म द्रव्यसामान्यका आश्रय—सतत वर्तता हो। शुद्धात्माके आलम्बनरूप शुद्ध परिणति जिसे सदा वर्तती हो उसे भूमिकानुसार जिनेन्द्रभक्ति आदिके जो शुभभाव आते हैं उन्हें व्यवहारसे धर्म कहा जाता है। निश्चयसे धर्म तो अंतरमें वर्तती हुई शुद्धि ही है, परन्तु निचली भूमिकामें उस शुद्धिके साथ भक्ति आदिके शुभभाव आते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं इसलिये उन्हें भी व्यवहारसे धर्म कहा जाता है।

जहाँ अंतरमें निश्चय—आत्माश्रित शुद्धि—न हो वहाँ व्यवहार सच्चा नहीं होता। धर्मीकी दृष्टि भीतर ज्ञायकस्वभावमें लग गई है। यदि वहाँसे एकक्षण भी हट जाय और शुभाशुभ विभावका रस आ जाय तो मिथ्यात्व हो जाय। जिसे वास्तवमें शुभभाव आदरणीय है उसे भगवान आत्मा हेय है। शुभभाव आता है परन्तु वह चैतन्यकी जाति नहीं है, विभाव है, चैतन्यके स्वभावका कोई अंश उसमें नहीं है; इसलिये वह हेय है। उपादेय तो एकमात्र निज ध्रुव चैतन्यपदार्थ है, उसके आश्रयसे ही धर्म, धर्मकी वृद्धि और पूर्णता होती है।

ऐसी बात समझना कठिन लगती है इसलिये लोग मान लेते हैं कि सम्मेदशिखर, गिरनार आदिकी यात्रा करनेसे धर्म होगा। 'एक बार वन्दे जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहिं होई।' भाई! यात्रामें कदाचित् शुभ परिणाम किये हों तो मरकर स्वर्गमें जाता है, परन्तु 'शुभभावसे धर्म होता है' ऐसी मिथ्यादृष्टि होनेसे, वहाँसे निकलकर फिर पशुगतिमें और फिर नरक–निगोदमें जायगा। इसलिये यहाँ कहा है कि—अंतरमें तू अपने आत्माके साथ प्रयोजन रख।

*

गुरुदेवका तो परम उपकार है। पर एवं विभावके साथकी एकत्वबुद्धि तोड़कर अंतरमें चैतन्यकी सन्मुखता करके उसके साथ एकत्व करे तो वस्तुस्वरूप यथार्थ समझमें आये। एकत्वके लिये उसका निरन्तर अभ्यास, लगन तथा बारम्बार प्रयत्न करना चाहिये। गुरुदेवने तो चारों पक्षसे मार्ग बतलाया है—इतना स्पष्ट करके बतलाया है कि कहीं भूल न रह जाय; परन्तु पुरुषार्थ तो अपनेको करना है।

—बहिनश्री चम्पाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचन–१२६

दिनांक २४-१०-७८

वचनामृत–३४३

अनन्त जीव पुरुषार्थ करके, स्वभावरूप परिणमित होकर, विभावको टालकर, सिद्ध हुए हैं; इसलिये यदि तुझे सिद्धमण्डलीमें सम्मिलित होना हो तो तू भी पुरुषार्थ कर।

किसी भी जीवको पुरुषार्थ किये बिना तो भवान्त होना ही नहीं है। वहाँ कोई जीव तो, जैसे घोड़ा छलाँग मारता है वैसे, उग्र पुरुषार्थ करके त्वरासे, वस्तुको पहुँच जाता है, तो कोई जीव धीरे–धीरे पहुँचता है।

वस्तुको पाना, उसमें स्थिर रहना और आगे बढ़ना—सब पुरुषार्थसे ही आता है। पुरुषार्थ बाहर जाता है उसे अंतरमें लाओ। आत्माके जो सहज स्वभाव हैं वे पुरुषार्थ द्वारा स्वयं प्रगट होंगे। ३४३.

'अनन्त जीव पुरुषार्थ करके, स्वभावरूप परिणमित होकर, विभावको टालकर, सिद्ध हुए हैं; इसलिये यदि तुझे सिद्धमण्डलीमें सम्मिलित होना हो तो तू भी पुरुषार्थ कर।'

यह भगवान आत्मा जो कि ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि अनन्त स्वाभाविक गुणोंका अभेद एक पिण्ड है उसमें एक 'पुरुषार्थ' नामका भी गुण है। पर्यायमें निज त्रैकालिक अभेद स्वभावसन्मुख होना वह पुरुषार्थ गुणका सच्चा कार्य है। परके लक्षसे शुभाशुभ विभाव होता है वह स्वभावका पुरुषार्थ नहीं है, वह तो दुःखरूप परिणाम है। अनन्त जीव स्वभावसन्मुखताका पुरुषार्थ करके सिद्ध हुए हैं। वे किस प्रकार सिद्ध हुए हैं?—कि स्वभावरूप परिणमन करके। अपनी मूल जातिको रखकर वस्तुमें जो प्रतिक्षण उत्पाद–व्यय होते हैं वह परिणाम है। उस उत्पाद–व्ययरूप परिणामके समीप भीतर जो ज्ञान, आनन्द, वीर्यादिस्वरूप त्रैकालिक अभेद ध्रुव स्वभाव है उस ओरको झुकावसे जो स्वसन्मुखताका पुरुषार्थ होता है उसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभावरूप परिणमन कहा जाता है। अनन्त जीव अन्तर्मुख पुरुषार्थ करके, अभेद ज्ञायक-स्वभावरूप परिणमित होकर, मोक्षदशाको प्राप्त हुए हैं।

'पुरुषार्थ करना' ऐसा जो कहा जाता है उसमें 'पुरुषार्थ करूँ, पुरुषार्थ करूँ'—ऐसा विकल्प नहीं है, परन्तु परिणामको स्वभावोन्मुख करनेसे पुरुषार्थ सहज हो जाता है। सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि—वस्तु उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्तं सत् है; उसमें जो ध्रौव्य है वह सहज ज्ञानानन्दादि अनन्त गुणस्वरूप त्रैकालिक स्वभाव है। उस ओर रुचि एवं ज्ञानकी उन्मुखतासे स्वभावरूप परिणमन होता है। श्रीमद्ने कहा है न!–'मूलमारग सांभलो जिननो रे, करी वृत्ति अखण्ड सन्मुख'। त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ परमात्मा द्वारा कहा हुआ मुक्तिका मार्ग क्या है? कि—वर्तमान श्रद्धा–ज्ञानादिकी परिणतिको त्रैकालिक अखण्ड ध्रुव ज्ञायक सन्मुख करना। सत्स्वभावकी ओर अखण्ड वृत्ति करके हे भव्य! 'जिन'का मूल मार्ग सुनो। अनन्त जीव स्वसन्मुखताका अंतरपुरुषार्थ करके, सहज ज्ञानादि स्वभावसे उत्पन्न होकर, विषयानुराग या दया–दानादि धर्मानुरागको—अशुभ तथा शुभभावरूप विभावको—टालकर, पूर्ण परमात्मदशाको प्राप्त हुए हैं; इसलिये यदि तुझे परमात्मा होना हो तो तू भी पुरुषार्थ कर।

अहा! वीतरागदेव द्वारा प्ररूपित मार्ग सूक्ष्म है भाई! निज ध्रुव ज्ञायकस्वभावके सतत आलम्बनके सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है। सम्प्रदायमें तो 'व्रत करो, भक्ति करो, यात्रा करो, पूजा करो' ऐसी बाह्य क्रियाओंमें धर्म मनवा दिया है। बाह्य क्रियाएँ तो जड़की दशा है; यदि भीतर मन्दकषाय करके शुभभाव किया हो तो वह भी विकल्प, राग और विभाव है; वह मोक्षमार्ग कैसे हो सकता है? यदि तुझे धर्म करना हो, मोक्षका मार्ग प्रगटाना हो, तो त्रैकालिक स्वभावकी ओरका प्रयत्न करके, स्वभावरूप परिणमन कर; जिससे पर्यायमेंसे विभाव दूर होकर परिपूर्ण परमात्मदशा प्रगट हो।

'णमो सिद्धाणं'—अहा! वे सिद्ध परमात्मा किस प्रकार हुए? सर्वज्ञ जिनेश्वरदेवने जो ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप परमात्मा अंतरमें देखा है उसे यथार्थ समझकर, उस ओरका अंतरप्रयत्न करके, स्वभावरूप परिणमित होकर सिद्ध दशाको प्राप्त हुए हैं। तुझे उन सिद्धोंकी मण्डलीमें मिल जाना हो तो तू भी तदनुसार स्वभावसन्मुखताका यथार्थ पुरुषार्थ कर। सम्यग्दर्शन– ज्ञान–चारित्रकी एकतारूप निर्मल दशा वह वीतराग स्वभावरूप परिणमित हुई पर्याय है। वह स्वाभाविक पर्याय किस प्रकार प्रगट हो?—कि अंतरमें ज्ञायकस्वभावकी ओरका पुरुषार्थ करके, स्वभावरूप परिणमन प्रगट करके पुण्य–पापके विभावोंको हटानेसे सदा एकरूप रहनेवाले ध्रुवस्वभावका भीतर दृष्टिमें तथा ज्ञानमें आश्रय करके उसरूप परिणमनका पुरुषार्थ कर तो विभाव दूर होकर सिद्धदशाकी प्राप्ति होगी।

यदि तुझे मोक्षदशा प्राप्त करना हो तो—स्वर्गमें जाना हो, महा पुण्यशाली होना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो, आदि बाहरकी बातें तो यहाँ हैं ही नहीं—इतनी शरतें हैं : (१) स्वसन्मुखताका यथार्थ पुरुषार्थ करके, (२) सहज स्वभावरूप परिणमित होकर, (३) शुभाशुभ समस्त विभावका नाश कर, तो सिद्धदशा प्रगट होगी। ऐसी दशा प्रगट किये बिना जीव अनन्तबार स्वर्गमें हो आया, परन्तु उससे क्या हुआ?

मुनिव्रत धार अनन्त वार ग्रीवक उपजायो;
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

महाव्रतके परिणाम भी विभाव और दुःखरूप हैं। भाई! आत्मज्ञानके बिना दुःखमुक्तिका अन्य कोई उपाय नहीं है। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;' सुखधाम कहो या ध्रुवधाम; उसकी सन्मुखताका अंतर पुरुषार्थ करके, जीव यदि स्वभावरूप परिणमन करे और विभावको टाले तो अवश्य सिद्धपदको प्राप्त करता है। अहा! बेनकी भाषा तो सादी है प्रभु!

अरेरे! दुनियाको कहाँ चिन्ता है कि मेरा क्या होगा?—शरीर छूटनेके बाद मैं कहाँ जाऊँगा? आत्माका नाश तो कभी होता नहीं है। तू यदि राग और पुण्यके परिणामको अपना मानेगा तो वह तो विभावका आदर और स्वभावका अनादर हुआ; और उसका फल तो चार गतिमें परिभ्रमण है। इसलिये यदि तुझे परिभ्रमणसे छूटना हो, सिद्धमण्डलीमें मिलना हो तो तू भी अंतरमें स्वसन्मुखताका पुरुषार्थ कर। आत्मा द्रव्यस्वभावसे तो शुद्ध चैतन्यघन है; परन्तु पर्यायमें अशुद्धता और दुःख है। पर्यायमेंसे अशुद्धता तथा दुःखको दूर करना हो तो शुद्ध स्वभावके आश्रयका पुरुषार्थ करके स्वभावरूप परिणमन कर। परिणमन स्वयं है तो पर्याय, परन्तु वह शुद्ध पर्याय त्रैकालिक ध्रुव शुद्ध स्वभावके अवलम्बनसे प्रगट होती है।

सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि—'जिन सुमरो जिन चिंतवो, जिन ध्यावो मन शुद्ध;' यह जिन क्या हैं? भगवान सर्वज्ञदेव जिन हैं। उनका चिन्तवन करेगा तब भी विकल्प उत्पन्न होंगे, राग होगा। मोक्षपाहुडमें भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने कहा है—'पर दव्वाओ दुग्गइ'—जो अरिहंत, सिद्ध आदि परमात्मा हैं वे तेरे लिये परद्रव्य हैं; उनका लक्ष करेगा तो तुझे राग होगा, अपने चैतन्यपरिणमनकी दुर्गति अर्थात् विपरीत गति होगी।

प्रश्न:—आप ऐसा कहोगे तो लोग विरोध नहीं करेंगे?

उत्तर:—करेंगे, बेचारे करेंगे; उनकी दृष्टि बाह्यमें तथा शुभरागमें है न? परन्तु शुभभाव भी पराश्रित विभाव परिणाम होनेसे आत्माका स्वभावभाव नहीं है, उसे भगवान आत्माकी सुगति—स्वभावपरिणति नहीं कहते। समयसारमें शिष्यने प्रश्न किया है कि—प्रभु! यह शुभाशुभ अध्यवसानादि भाव जीव नहीं है—ऐसा आपने कहा, परन्तु यह भाव भी चैतन्यके साथ सम्बन्धित प्रतिभासते हैं, चैतन्यके सिवा जड़को तो दिखता नहीं है, तथापि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उन्हें पुद्गलके स्वभाव क्यों कहा? उसके उत्तरमें आचार्यदेवने कहा है कि—यह शुभाशुभ अध्यवसानादि समस्त भावोंको उत्पन्न करनेवाला जो आठों प्रकारका ज्ञानावरणीयादि कर्म है वह सब पुद्गलमय है। उस कर्मका फल अनाकुलतालक्षण जो सुख नामका आत्मस्वभाव उससे विलक्षण होनेसे, दुःख है। उस दुःखमें ही आकुलतालक्षण शुभाशुभ अध्यवसानादि भावोंका समावेश होता है; इसलिये यद्यपि वे चैतन्यके साथ सम्बन्ध होनेका भ्रम उत्पन्न करते हैं तथापि, वे आत्माका स्वभाव नहीं हैं परन्तु पुद्गलस्वभाव हैं; कर्मजन्य हैं इसलिये जड़ ही हैं।

भगवान ज्ञायक आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दकी मूर्ति है। उसका आश्रय करके जो स्वभावरूप परिणमन होता है उसमें अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आता है। उस अतीन्द्रिय आनंदरूप स्वभावपरिणमनसे समस्त विभाव दूर हो जायँगे और सिद्धगति प्राप्त होगी; इसलिये यदि तुझे सिद्धमण्डलीमें सम्मिलित होना हो तो, तू भी स्वभावप्राप्तिका यथार्थ पुरुषार्थ कर।

'किसी भी जीवको पुरुषार्थ किये बिना तो भवान्त होना ही नहीं है।'

किसी भी जीवको ज्ञानानन्दस्वभावी आत्माकी ओरका—स्वभावसन्मुखताका—पुरुषार्थ किये बिना कदापि भवका अन्त आना ही नहीं है। पुरुषार्थ अर्थात् प्रयत्न है तो वर्तमान एक समयकी पर्याय, परन्तु उस पर्यायके समीप भीतर आत्मामें अनन्तानन्त पुरुषार्थका पिण्ड—वीर्यनामका गुण—सदा विद्यमान है। आत्मस्वरूपकी रचनाके सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति सर्व आत्माओंमें है। सम्यग्दर्शन, आत्मरमणता, आनन्द, शान्ति आदि अनन्त स्वभावशुद्धताकी रचना करना वह वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ शक्तिका कार्य है। पुण्य–पापकी रचना करे वह तो नपुंसकता है; उसे स्वभाववीर्य नहीं कहते। समयसारमें कहा है कि—परमार्थभूत निज आत्माको नहीं जाननेवाले ऐसे अज्ञानी जन, नपुंसकरूपसे अत्यन्त विमूढ़ होते हुए, बहुत प्रकारसे परको—शुभाशुभ विभावको—भी आत्मा मानते हैं। दुरन्त कर्मचक्रको पार उतरनेकी नामर्दीके कारण परमार्थभूत ज्ञानके भवनमात्र सामायिकस्वरूप आत्मस्वभावको नहीं प्राप्त करते हुए ऐसे वे अज्ञानी जीव, स्वयं अपने अज्ञानसे मात्र अशुभभावको ही बंधका कारण मानकर व्रत, नियम, शील आदि शुभभाव भी बंधके कारण होने पर भी उन्हें बन्धका कारण नहीं जानते हुए, मोक्षके कारणरूपमें उनका आश्रय करते हैं। यह बात समझमें नहीं आनेसे लोग भड़कते हैं, परन्तु क्या हो? भाई! अशुभभावकी भाँति शुभभाव भी स्वभाववीर्य नहीं है, स्वभावकी जाति नहीं है, वह भी नपुंसकता है। शुभभावसे धर्म मानना वह तो मिथ्यात्वकी अनन्त नपुंसकता है। कठिन बात है भाई!

महाविदेहमें त्रिलोकीनाथ सीमंधर परमात्मा विराजते हैं, वहाँसे आयी हुई यह बात है। अरेरे! इस भरतक्षेत्रमें वर्तमानमें सर्वज्ञ परमात्माका विरह हुआ और अन्तरमें निज

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायक परमात्माका भी विरह हुआ। ज्ञायकका विरह वह भी अंतरके भगवानका ही विरह है न? अहा! आत्माको वर्तमान परिणाममें अपने ज्ञान–आनन्दादि समृद्धि भरपूर ध्रुव स्वभावका विरह हुआ। दया–दान या व्रत–भक्ति आदि परोन्मुख परिणामोंके प्रेममें रुक गया इसलिये पर्यायमें निज ज्ञायक भगवानका विरह हुआ है। बाह्यमें पर भगवानका विरह तो है, किन्तु अंतरके निज ज्ञायक भगवानका भी विरह है। त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि—व्रतादि या पूजादिके भाव पुण्य हैं, धर्म या धर्मका कारण नहीं हैं; धर्म तो आत्माका मोहक्षोभरहित वीतराग परिणाम है। दुनिया माने या न माने, वस्तुस्वरूप तो यही है।

शुभाशुभ विभावका प्रयत्न छोड़कर अंतरमें स्वसन्मुखताका प्रयत्न किये बिना किसी भी जीवको भवका अंत आना ही नहीं है। स्वभावका पुरुषार्थ ही भवके अन्तका एकमात्र उपाय है। 'निर्ग्रंथका पंथ भव-अन्तका उपाय है।'

'वहाँ कोई जीव तो, जैसे घोड़ा छलाँग मारता है वैसे, उग्र पुरुषार्थ करके त्वरासे वस्तुको पहुँच जाता है, तो कोई जीव धीरे–धीरे पहुँचता है।'

जैसे घोड़ा छलाँग लगाये वैसे, कोई जीव तीव्र पुरुषार्थ करके सिद्धिको शीघ्र प्राप्त कर लेता है और कोई जीव पुरुषार्थकी अशक्तिके कारण धीरे–धीरे प्राप्त करता है। सम्यग्दर्शन होने पर श्रद्धा-अपेक्षासे पूर्ण द्रव्यस्वभावको प्राप्त कर लेता है, परन्तु पर्यायमें अभी चारित्र-अपेक्षासे अशक्ति है। कोई ज्ञानी जीव पुरुषार्थकी छलाँग लगाकर अन्तर्मुहूर्तमें संयमश्रेणी और केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है। अहा! कैसी अद्भुत है यह बात! यह बात नहीं समझनेसे लोग इसे हँसीमें उड़ा देते हैं कि—सोनगढ़में तो सब निश्चयकी ही बातें हैं। भाई! निश्चय ही सत्य है, व्यवहारकी बातें तो उपचारकी हैं। सम्यग्दर्शन कैसे होता है उसकी तुझे खबर नहीं है। आत्मा अपने परिणामोंको स्वोन्मुख करके अपने ध्रुव ज्ञायक स्तंभके साथ बाँध दे, त्रैकालिक परिणामी सामान्यमें लगा दे, निज शुद्ध द्रव्यसामान्यके साथ एकाकार कर दे, तब संयोग और विभावसे भिन्न ऐसे निज आत्माकी सानुभव दृष्टि प्रगट होती है। यथार्थ दृष्टि प्रगट होने पर कोई जीव उग्र पुरुषार्थ करके अल्पकालमें केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है; किसी जीवको चारित्र प्राप्त करनेमें समय लगे तो वह अंतरमें त्रैकालिक स्वभावका आश्रय लेकर क्रमशः रागको हटाकर सिद्धि प्राप्त करता है।

ऋषभदेव भगवान सम्यक्त्व सहित तीन ज्ञान लेकर मरुदेवी माताके गर्भमें आये थे। उनको ८३ लाख पूर्वतक संयम चारित्रका पुरुषार्थ नहीं हुआ था। अहा! चारित्र किसे कहते हैं? त्रैकालिक ज्ञानानन्दमूर्ति भगवान ज्ञायककी दृष्टि और ज्ञानपूर्वक स्वरूपमें चरना—आनन्दमें रमना—सो चारित्र है। पंचमहाव्रत, समिति, गुप्ति आदिके विकल्प वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चारित्र नहीं है, वह तो चारित्रकी भूमिकामें अशक्तिके कारण वर्तता हुआ दोष है। दीक्षा लेनेके बाद भी, रमणतामें कमीके कारण, किसीको धीरे–धीरे स्थिरता बढ़कर केवलज्ञान होता है और कोई तो, भरत चक्रवर्तीकी भाँति, अंतर्मुहूर्तमें उग्र पुरुषार्थ करके त्वरासे स्वरूपमें स्थिर होकर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं।

वस्तुको प्राप्त करना, उसमें स्थिर होना और आगे बढ़ना,–सब पुरुषार्थसे ही होता है।'

भगवान आत्मा अपनी ध्रुव शुद्ध चैतन्य वस्तुको अपने अंतर्मुख परिणाम द्वारा ही प्राप्त करता है। एक समयके जो वर्तमान परिणाम उनको ध्रुव तत्त्वकी ओर उन्मुख करके उसमें स्थिर हो जाना, रम जाना, जम जाना—वह सब स्वोन्मुखताके पुरुषार्थसे ही होता है। अंतरमें ज्ञायक वस्तुको पाना, उसमें स्थिर होना और वृद्धि करना,—यह सब आत्मसन्मुखताके पुरुषार्थ द्वारा ही होता है। पुरुषार्थ है तो वीर्यगुणकी वर्तमान पर्याय, परन्तु उस पर्यायमें उग्रता लाकर अंतरमें विशेष रमणता होने पर शीघ्र केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। पूर्वकी रमणतासे मोक्ष होता है ऐसा कहना वह व्यवहार है। वास्तवमें तो त्रैकालिक ध्रुवस्वभावके परिपूर्ण आश्रयसे ही मोक्षदशा प्रगट होती है। अपूर्ण पर्यायका व्यय होकर केवलज्ञानकी पर्याय होती है। क्या व्ययमेंसे नवीन पूर्ण पर्याय उत्पन्न होती है? पूर्ण पर्याय तो भीतर द्रव्यमेंसे–ध्रौव्यमेंसे आती है। ध्रौव्यमेंसे आती है वह भी अपेक्षित कथन है। यदि उसमेंसे आती हो, तब वह तो सदा विद्यमान है, क्यों अभी तक प्रगट नहीं हुई? वास्तवमें आत्मा स्वयं ही उस समय अपने अभिन्न षट्कारकोंरूप परिणमनेसे केवलज्ञानादिरूप पूर्ण पर्याय प्रगट हुई है।

भगवान आत्माको प्राप्त करना, उसमें स्थिर होना और आगे बढ़ना,—यह सब अंतरके पुरुषार्थसे होता है, व्यवहाररत्नत्रयरूप शुभ परिणामसे नहीं। मोक्षमार्गरूप शुद्धि भीतर द्रव्यस्वभावके आश्रयसे आगे बढ़ती है। मोक्षमार्गसे मोक्ष प्रगट होता है—ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। मोक्षमार्गकी पर्यायका तो व्यय होता है। वास्तवमें सदा अनुत्पन्न और अव्यय ऐसे निज त्रैकालिक ज्ञायक द्रव्यस्वभावके पूर्ण आलम्बनसे ही मोक्षमार्ग प्रगट होता है। अहा! वीतरागकी ऐसी बातें लोगोंको सुननेको नहीं मिलतीं! सुनने जायँ वहाँ 'यह करो और वह करो, व्रत लो, यात्रा करो और भक्ति करो'—इस प्रकार पर और शुभरागके कर्तृत्वकी बातें सुननेको मिलती है। भाई! 'करना' वह तो चैतन्यका 'मरना' है। शुभरागके कर्तृत्वमें भी चैतन्यकी शान्तिका नाश होता है, आत्माका भावमरण होता है।

'पुरुषार्थ बाहर जाता है उसे अंतरमें लाओ।'

दया–दान, व्रत–तप और भक्ति आदिके भावमें भी पुरुषार्थ तो है, परन्तु वह पुरुषार्थ बहिर्लक्षी है। वह शुभभाव मात्र बन्धका कारण है, मोक्षका कारण नहीं है। मोक्षका कारण तो अंतर्मुखी शुद्धताका पुरुषार्थ है। 'पुरुषार्थ बाहर जाता है उसे अंतर्मुख

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करो' यह भी अपेक्षित कथन है। जो बहिर्लक्षी शुभभावका पुरुषार्थ उत्पन्न हो चुका है उसे अंतर्मुख कैसे करना? परन्तु स्वभावका आश्रय करके तेरा नवीन परिणमन—नवीन सर्जन—ऐसा कर कि जिससे अंतरमें शुद्धता प्रगट हो और शुभाशुभ भावरूप अशुद्धताका व्यय हो। अरेरे! वणिकोंको व्यापारके पापमें यह बात सुननेको भी नहीं मिलती! समझकर प्रगट करनेकी बात तो कहीं दूर रह गई। व्रत करो, पूजा करो, मन्दिर बनवाओ, भक्ति करो,—ऐसी बातें सुननेको मिलती हैं; परन्तु भाई! यह तो सब अनादि अज्ञान है।

पुरुषार्थ बाहर जाता है अर्थात् जो पुरुषार्थ बाहर शुभभावमें रुकता है, उसे अंतर्मुख कर। शुभभाव तो राग है, बन्धका कारण है, चेतनकी जाति नहीं है। जो चेतनकी जाति नहीं है उसे लोग धर्म मानते–मनवाते हैं; क्या किया जाय? यहाँ कहते हैं कि पुरुषार्थ जो विभावमें जाता है उसे आत्मामें लाओ।

'आत्माके जो सहजस्वभाव हैं वे पुरुषार्थ द्वारा स्वयं प्रगट होंगे।'

भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि अनन्त शक्तियोंका भण्डार है। वह भण्डार अंतरके पुरुषार्थ द्वारा स्वयं खुल जायगा। अरेरे! लोग बेचारे किस प्रकारकी मजदूरी करते हैं! बहिर्लक्षी व्रतादिके शुभभाव भी मजदूरी हैं। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रादि आत्माके सहजस्वभाव स्वसन्मुखताके पुरुषार्थ द्वारा प्रगट होते हैं, शुभभावकी मजदूरीसे नहीं। रागकी मन्दता या शरीरकी अनुकूलता स्वभाव प्रगट होनेमें कोई सहायता नहीं करती। आत्माकी पर्यायमें श्रद्धा, ज्ञान, आनन्दादि सर्व प्रकारकी सहज शुद्धियाँ तो भीतर आत्माश्रित पुरुषार्थ द्वारा अपने आप प्रगट होती हैं।

*

इस पंचमकालमें गुरुदेव जैसे महापुरुषका यहाँ अवतार हुआ यह महाभाग्यकी बात है। गुरुदेव—आश्चर्यकारी अपूर्व आत्मा, तीर्थंकरका द्रव्य—जीवोंका उद्धार करनेके लिये यहाँ पधारे। गुरुदेवने सारे हिन्दुस्तानको जाग्रत किया। पात्र जीवोंकी रुचि तत्त्वज्ञानकी ओर मोड़ दी है। उन्होंने स्वानुभूतिकी बात प्रगट करके समस्त भारतके जीवोंको जगाया है। गुरुदेवका परम उपकार है।

—बहिनश्री चम्पाबेन।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१३०

दिनांक २५-१०-७८

वचनामृत–३४४

जब तक सामान्य तत्त्व—ध्रुव तत्त्व—ख्यालमें न आये, तब तक अंतरमें मार्ग कहाँसे सूझे और कहाँसे प्रगट हो? इसलिये सामान्य तत्त्वको ख्यालमें लेकर उसका आश्रय करना चाहिये। साधकको आश्रय तो प्रारम्भमें पूर्णता तक एक ज्ञायकका ही—द्रव्यसामान्यका ही—ध्रुव तत्त्वका ही होता है। ज्ञायकका—'ध्रुव'का जोर एक क्षण भी नहीं हटता। दृष्टि ज्ञायकके सिवा किसीको स्वीकार नहीं करती—ध्रुवके सिवा किसीपर ध्यान नहीं देती; अशुद्धपर्याय पर नहीं, शुद्धपर्याय पर नहीं, गुणभेद पर नहीं। यद्यपि साथ वर्तता हुआ ज्ञान सबका विवेक करता है, तथापि दृष्टिका विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी छूटता नहीं है।

पूज्य गुरुदेवका ऐसा ही उपदेश है, शास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं, वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है। ३४४.

जब तक सामान्य तत्त्व—ध्रुव तत्त्व—ख्यालमें न आये, तब तक अंतरमें मार्ग कहाँसे सूझे और कहाँसे प्रगट हो?

सामान्य तत्त्वका अर्थ क्या? कि—जिसके बिना आत्मपदार्थमें शुभ, अशुभ या शुद्ध पर्यायरूप विशेषोंकी संभावना नहीं हो सकती ऐसा जो सदा एकरूप सदृश रहनेवाला शक्तिरूप द्रव्यस्वभाव—प्रतिसमय होते उत्पाद–व्ययसे कथंचित् भिन्न ऐसा ध्रुव परमभाव—उसे सामान्य तत्त्व कहते हैं। शक्तिरूप त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव रखकर वस्तुमें उत्पन्न होती नई–नई पर्यायोंको विशेष तत्त्व कहते हैं। सामान्य और विशेष दोनों मिलकर सम्पूर्ण पदार्थ है। 'उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्तं सत्' और 'सद्द्रव्यलक्षणम्' ऐसा आगममें कहा है। स्वभावसे अखण्ड ऐसी

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रत्येक वस्तुमें जो उत्पाद–व्यय स्वरूप परिणमता अंश है वह व्यक्तिभूत विशेष तत्त्व है और जो सामर्थ्यभरपूर ध्रौव्यस्वरूप एकरूप सदृश अंश है वह शक्तिभूत सामान्य तत्त्व है। सामान्य कहो, ध्रौव्य कहो, आदि–अनन्तशून्य नित्य कहो, परमपारिणामिकभाव कहो, अपरिणामी द्रव्यस्वभाव कहो अथवा अनन्त सामर्थ्य भरपूर अभेद एक ज्ञायकभाव कहो—सबका अर्थ एक ही है।

जब तक निज आत्माका ऐसा सामान्य तत्त्व—ध्रुव परमभाव—अंतरमें लक्षगत न हो तब तक कल्याणका सच्चा मार्ग कहाँसे सूझेगा? और जहाँ मार्गकी सूझ न हो वहाँ वह कहाँसे प्रगटेगा? अँधेरेमें टकराने जैसा होगा। चाहे जितनी जानकारी करे, ग्यारह अंगकी धारणा करे, परन्तु उस बहिर्लक्षी ज्ञानका कोई मूल्य नहीं है। समयसारकी छठवीं गाथामें जिसे 'ज्ञायक' कहा है, ग्यारहवीं गाथामें 'भूतार्थ' कहा है और बारहवीं गाथामें 'परमभाव' कहा है उसे यहाँ सामान्यमें तत्त्व—ध्रुवतत्त्व—कहा है। जब तक वह परम भाव समझमें न आये—समझ स्वयं ज्ञानगुणकी पर्याय है, परन्तु जब तक उस पर्यायके लक्षमें ध्रुवतत्त्व न आये—तब तक अंतरमें मोक्षका मार्ग कहाँसे सूझेगा और कैसे उसका विकास होगा? ध्रुव ज्ञायक स्वभावको चूककर यह जो ऊपर–ऊपरसे होनेवाले शुभ–अशुभ भाव हैं वह कोई कल्याणका मार्ग नहीं है। शुभाशुभ भावोंसे भिन्न भीतर निज शुद्धात्म द्रव्यसामान्यको यथार्थ समझे तो, प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन, उसके यथार्थ अवबोधरूप सम्यग्ज्ञान और उसमें यथार्थ रमणतारूप चारित्र—ऐसे रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग अंतरमें सूझे और प्रगट हो। अहा! ऐसी बातें हैं। भाषा तो सादी है।

शास्त्रोंकी जानकारी करके उसमें सन्तुष्ट हो गया, श्रवण, मनन, पठनके विकल्पमें अटक गया।

प्रश्न:—उससे संस्कार तो पड़ते हैं न?

उत्तर:—संस्कार तो तब पड़ेंगे जब वस्तुस्वरूप यथार्थ समझमें आये। चिंतवनके विकल्प द्वारा ज्ञानमें वस्तुस्वरूपका पक्ष हो, परन्तु ज्ञानकी यथार्थता तो जब पक्षातिक्रान्त हो तभी कहलायगी। जब तक टंकोत्कीर्ण ज्ञायक ध्रुव स्वभाव—नित्य एकरूप स्थायी वस्तु—बराबर लक्षगत न हो तब तक अंतरमें हितका उपाय कहाँ से सूझेगा? बाहरसे दया–दान–व्रत–भक्तिको अथवा गुणगुणी–भेदके विकल्प करता रहे, परन्तु वह कोई कल्याणकारी वस्तु नहीं है, कल्याणकन्द आत्मवस्तु तो चिन्तवनके विकल्पोंसे भी पार है। उसे भीतर विचारमें न ले—पर, विभाव और पर्यायका पक्ष छोड़कर ध्रुव ज्ञायक द्रव्यस्वभावका विचार न करे—तब तक अंतरका मार्ग सूझेगा कहाँसे और प्रगट कैसे होगा?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'इसलिये सामान्य तत्त्वको ख्यालमें लेकर उसका आश्रय करना चाहिये।'

भगवान आत्मा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्त सत् है। उसमें जो उत्पाद–व्यय है वह पर्याय अर्थात् विशेष तत्त्व है और जो ध्रौव्य है वह द्रव्यसामान्य अर्थात् त्रैकालिक ज्ञायक सामान्य तत्त्व है। उस सामान्य तत्त्वको बराबर विचारमें लेकर उसका आश्रय करना। ध्रुवतत्त्व अर्थात् क्या? वर्तमान जो पर्याय है उसके समीप, तलमें—गहरे वस्तुका जो सामर्थ्य—भरपूर पिण्ड पड़ा है वह वस्तुका ध्रुवस्वभाव है; वस्तुमें जो ऊपर तैरनेवाला क्षणिक भाव है वह पर्याय है। पर्यायके लक्षसे राग होता है, कल्याण नहीं होता। इसलिये पर्यायकी ओरका लक्ष छोड़कर, ध्रुव परमभावको विचारमें लेना और उसका आश्रय करना—दोनों एक ही समय हैं, परन्तु कथनमें तो क्रम पड़ता है न? वस्तु यदि ख्यालमें न आये तो उसका आश्रय किस प्रकार होगा? व्यवहारके रसिकोंको यह बात नहीं रुचेगी। भाई! जीवोंको व्यवहारका रस अनादिसे है, वे परस्पर उपदेश भी उसीका करते हैं; तथा जिनवाणीमें निश्चयका हस्तावलम्ब जानकर उसका निरूपण बहुत है; परन्तु उसके आश्रयका फल तो संसार ही है। इसलिये व्यवहारके विकल्परहित ध्रुव ज्ञायक वस्तुको विचारमें लेकर उसका आश्रय कर। वर्तमान वर्तती ज्ञानकी पर्यायको ध्रुव ज्ञायककी ओर उन्मुख कर। यह कथन भी अपेक्षासे है, वैसे वर्तमानमें जो पर्याय हुई है उसे क्या उन्मुख करेगा? परन्तु कथन अन्य किस प्रकार होगा? नवीन उत्पन्न पर्यायमें सामान्यतत्त्वका जो आश्रय लिया उसीको 'पर्यायको स्वभावोन्मुख किया' ऐसा कहा जाता है।

'साधकको आश्रय तो प्रारम्भसे पूर्णता तक एक ज्ञायकका ही—द्रव्यसामान्यका ही—ध्रुवतत्त्वका ही होता है।'

साधक, धर्मी, सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी—यह सब शब्द एकार्थ हैं। साधक धर्मात्माको प्रारम्भसे लेकर पूर्णता तक आश्रय तो एकमात्र ज्ञायकका ही होता है। ज्ञायक कहो, निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्य कहो, ध्रुवतत्त्व कहो या दृष्टिके विषयभूत परमपारिणामिक भाव कहो—यह समस्त शब्द एकार्थ हैं। जिसे स्वसन्मुखताके पुरुषार्थ द्वारा सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप साधना अंतरमें प्रगट हुई है ऐसे साधक जीवको प्रारम्भसे पूर्णता तक अर्थात् सम्यग्दर्शनसे लेकर केवलज्ञान तक आश्रय तो प्रमत्त या अप्रमत्तके सर्व भेदरहित ऐसे एकमात्र अभेद निज ज्ञायक तत्त्वका ही होता है। प्रमत्त–अप्रमत्तादि पर्याय होती है, परन्तु उसका आश्रय नहीं है, आश्रय तो एक त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकका ही होता है। अहा! वीतरागके मार्गमें ऐसी बातें हैं।

अरे! कितनोंको तो ऐसी बातें मस्तिष्कमें बैठना कठिन लगती हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि–यह किस प्रकारकी बात है? क्या जैनधर्म ऐसा होगा? जैनधर्ममें 'छहकायके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीवोंकी दया पालना, उपवास करना, यात्रा करना, मन्दिर बनवाना, गजरथ चलाना'—ऐसा हमने सुना है। भाई! यह सब क्रियाएँ परकी हैं, उस समय जीवने कदाचित् राग मन्द किया हो तो वे परिणाम शुभभाव हैं, आस्रव बन्धका कारण हैं, धर्मका अर्थात् संवर–निर्जराका कारण नहीं हैं। धर्मका कारण तो एकमात्र निज ध्रुव ज्ञायकतत्त्वका आश्रय ही है। साधक जीवको प्रारम्भसे अन्त तक निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्यका ही आश्रय होता है।

धर्मी जीवको भी भूमिकानुसार दिगम्बर जिनमन्दिर बनवाने, शास्त्र लिखवानेके भाव आते अवश्य हैं—नैरोबी (अफ्रीका)में वहाँके मुमुक्षु पन्द्रह लाखके खर्चसे एक भव्य दिगम्बर जिनमन्दिर बनवा रहे हैं—परन्तु वह शुभभाव है, धर्म नहीं है। उस भावसे धर्म होगा ऐसा कोई माने तो वह मान्यता सच्ची नहीं है। धर्म अर्थात् आत्माकी सच्ची शान्ति तो निज ज्ञायक स्वभावके आश्रयसे ही होती है। सम्यक्त्वीको साधनाके प्रारम्भसे पूर्णता तक आश्रय तो एक ज्ञायकका ही—द्रव्यसामान्यका ही—ध्रुव तत्त्वका ही होता है।

अहा! वणिकोंके पुत्र तो ठीक, परन्तु चक्रवर्ती, तीर्थंकर और बलदेव आदि महान पुरुषोंके राजकुमार कि जिनके बाह्य सुख–सम्पत्तियोंका कोई पार नहीं है, वे—आठ–आठ वर्षके राजकुमार—माताके पास जाकर संयम ग्रहण करनेकी आज्ञा माँगते हैं और कहते हैं कि—हे माता!

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवण्णा ण पुणब्भवामो।
अणागयं णेव अत्थि वि किंचि, सद्धा खमं णु विणेयं तु णेहं॥

—हमें अंतरमें ज्ञायक तत्त्वका आश्रय प्रगट हुआ है, अतीन्द्रिय आनंदका स्वाद आता है। अब द्रव्यस्वभावके विशेष आलम्बनसे इस अतीन्द्रिय आनन्दकी पूर्ण साधना हेतु संयमके पंथ पर जाना चाहते हैं, भगवती दीक्षा अंगीकार करने जा रहे हैं, आप हमें साधनाके उज्ज्वल पंथ पर जानेकी सहर्ष आज्ञा प्रदान करो। ज्ञायकके दृढ़ आश्रयसे प्रगट होनेवाले संयमके पथसे अब हम विमुख होनेवाले नहीं हैं, पुनः नवीन भव करनेवाले नहीं हैं। अब हमें सादि–अनन्त मुक्तिरमणीका स्वामी बन जाना है। इसलिये हे माता! हमारे प्रति जो स्नेह—मोह है उसे छोड़ो और हर्षित होकर हमें मुक्तिके मार्ग पर जानेकी आज्ञा दो।

अहा! मुनिदशामें वर्तते वे छोटे–छोटे राजकुमार, छोटा–सा बालकका शरीर और हाथमें छोटी–सी मोरपिच्छिका तथा छोटा कमण्डल! जंगलमें—असंगदशाको साधने असंगरूपसे असंगमें—भयसे हृदय कँपा देनेवाली ऐसी सिंह–बाघ आदि वन्य–प्राणियोंकी गर्जनाओंके बीच निर्भयरूपसे भीतर आनन्दकी मस्तीमें चले जा रहे हों! कैसी अद्भुत होगी वह मुनिदशा! उन राजकुमारोंको पता है कि—पूर्ण असंगदशा, परिपूर्ण परमानन्ददशा एक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे ही प्रगट होगी।

सम्यग्दर्शन धर्मकी पहली सीढ़ी है। सम्यग्दर्शन प्रगट होनेके साथ ही अतीन्द्रिय आनन्दका अंशतः स्वाद आता है। स्वाद स्वयं पर्याय है, परन्तु वह प्रगट होती है ध्रुव ज्ञायकका आश्रय करनेसे। ज्ञानीको वेदन पर्यायका होता है और आश्रय त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यसामान्यका। पर्याय द्रव्यकी ओर ढल गई है इसलिये पर्यायमें आनन्द भी द्रव्यके आश्रयसे ही आता है। ऐसी बात वीतराग सर्वज्ञके मार्गमें हैं, अन्यत्र कहीं नहीं है। यह मार्ग जगतको सुननेके लिये नहीं मिलता, जगत बाह्यमें रुककर चला जाता है, भव हार जाता है। साधकको आनन्दके बिना कहीं चैन नहीं पड़ता, और आनन्दका साधन है एक मात्र ज्ञायकस्वभावका आश्रय। इसलिये धर्मीको ज्ञायकका आलम्बन कभी नहीं छूटता।

"ज्ञायकका—'ध्रुव'का जोर एक क्षण भी नहीं हटता।'

ज्ञानीको अंतरमें जो ज्ञायकके प्रति झुकाव है वह एक क्षण भी नहीं हटता। साधकको पूर्ण केवलज्ञान हो तब तक सतत द्रव्यसामान्यका आश्रय वर्तता ही रहता है। आश्रय करनेवाली पर्याय वह विशेष है, और आश्रयभूत त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकभाव वह द्रव्यसामान्य है। ज्ञायक महासामान्यका जोर साधकको एक क्षण भी नहीं हटता। चतुर्थ गुणस्थानवाला शुभभावमें हो और पंचम गुणस्थानवाला अशुभभावमें हो—उन दोनोंमें अंतरस्थिरता विशेष होनेसे पंचमवालेको ध्रुवतत्त्वका आश्रय विशेष है। वस्तुतत्त्वके आश्रय पर ही जोर है। साथ ही शुभभाव होता है तथापि उस पर जोर नहीं है; जोर स्वभावके आश्रय पर है।

भगवान! यह तेरे घरकी बात आती है। तेरे घरमें अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति भरी है, परन्तु प्रभु! वह ध्रुवरूपसे विद्यमान है भाई! वह हिलती नहीं है, चलती नहीं है। धर्मीकी दृष्टि एक क्षण भी वहाँसे नहीं हटती।

'दृष्टि ज्ञायकके सिवा किसीको स्वीकार नहीं करती—ध्रुवके सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती; अशुद्ध पर्याय पर नहीं, शुद्ध पर्याय पर नहीं, गुण-भेद पर नहीं।'

द्रव्यदृष्टि सो सम्यग्दृष्टि। जो दृष्टि सम्यक् है वह निज अखंड ज्ञायकके सिवा, त्रैकालिक ध्रौव्यके सिवा, निज शुद्धात्म द्रव्यसामान्यके सिवा किसीका स्वीकार नहीं करती—देव, शास्त्र, गुरु आदि निमित्तोंका नहीं, शुभाशुभ भावरूप अशुद्ध पर्यायका नहीं, साधक-साध्य शुद्ध पर्यायका नहीं और ज्ञान-दर्शन-आनन्दादि गुणभेदका भी नहीं। अहा! लोग चिल्लाया करें ऐसी बात है। भाई! यह तो अन्तर्दृष्टिकी बात है। वह द्रव्य अर्थात् ध्रौव्यके सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती, किसीको स्वीकार नहीं करती। व्यवहाररत्नत्रयरूप शुभभाव साधक जीवको आता है परन्तु वह उसकी दृष्टिका विषय नहीं है। अरे! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप जो वीतरागी अपूर्व पर्याय प्रगट हुई वह भी दृष्टिका विषय नहीं है। अहा!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्म वह बहुत अलौकिक वस्तु है। लोगोंने तो 'व्रत करो, तप करो, दान करो' ऐसे कर्तृत्वमें—बाह्यमें—धर्म मनवा दिया है, परन्तु वे सब तो रागके—विकल्पके—विकारके परिणाम हैं।

ध्रुव ध्रुव ध्रुव.....अविचल एक ज्ञायकभाव, त्रिकाल एकरूप सामान्यस्वभाव, अपरिणामी द्रव्यस्वभाव, परमपारिणामिक भाव, त्रैकालिक सहज स्वभाव, निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्य वह दृष्टिका विषय है। दृष्टि निमित्तको, रागको, अपूर्ण पर्यायको या गुणभेदको स्वीकार नहीं करती क्योंकि उसके लक्षसे राग और विकल्प होते हैं। रागसे भिन्न तथा सर्व प्रकारके भेदसे रहित मात्र ज्ञायकसत्त्व ही उसके विषयमें झलकता है।

'यद्यपि साथ वर्तता हुआ ज्ञान सबका विवेक करता है, तथापि दृष्टिका विषय तो एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी छूटता नहीं।'

दृष्टि सम्यक् होने पर उसने जहाँ परिपूर्ण अभेद चैतन्यका स्वीकार किया, ध्रुव सत्त्वका सत्कार किया, ध्रुव परमभावका आदर किया, वहाँ उसके साथ वर्तता ज्ञान सबका विवेक है, ज्ञान देव–गुरु निमित्तको निमित्तरूपसे जानता है, स्वभावके आश्रयसे प्रगट हुई शुद्धताको, शेष रही अशुद्धताको, अपूर्णताको, गुणभेदको जैसे हैं वैसे बराबर जानता है। दृष्टि किसी भी प्रकारके भंगभेदको स्वीकार नहीं करती तथापि साथ वर्तता हुआ ज्ञान 'यह अशुद्ध परिणाम अपने पुरुषार्थकी कमजोरीसे मैंने ही किये हुए भाव हैं' ऐसा बराबर जानता है, साथ ही साथ ज्ञान ऐसा भी जानता है कि यह विभावभाव या गुणभेद आश्रय करने योग्य नहीं है, आश्रय करने योग्य तो त्रैकालिक अभेद ज्ञायकस्वभाव ही है। अहा! इन बेनके वचनामृतकी भाषा तो बहुत सादी है परन्तु भाव अत्यन्त गहरे हैं, द्रव्यदृष्टिकी जोरवाले हैं।

यह द्रव्यदृष्टि है वह अंतरमें अनन्त आनन्दकी शक्तिवाले, अनन्त प्रभुताकी सम्पत्तिवाले निज चैतन्य ज्ञायक देवके सिवा किसीका स्वीकार नहीं करती, परन्तु साथमें वर्तता ज्ञान द्रव्य–गुण–पर्याय, उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य, स्वभाव–विभाव, उपादान–निमित्त, निश्चय–व्यवहार, अपूर्ण–पूर्ण पर्याय, गुणभेद—सब जैसे हैं वैसे बराबर जानता है।

'साथमें वर्तता ज्ञान' कहा है अर्थात् श्रद्धा और ज्ञान दोनों साथ होते हैं, परन्तु कथनमें कभी 'दर्शन अर्थात् श्रद्धा कारण तथा ज्ञान कार्य' और कभी 'ज्ञान कारण और श्रद्धान कार्य'—ऐसा कहा जाता है। तत्त्वार्थसूत्रमें 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' कहा है। उसमें सम्यग्दर्शन ज्ञानमें सम्यक्ताका कारण होनेसे उसे पहले लिया है; परन्तु जाने बिना श्रद्धा किसकी? श्रद्धा स्वयं निर्विकल्प है, कुछ भी जानती नहीं है; वस्तु समझमें आये तभी उसकी सच्ची श्रद्धा होती है' ऐसा कथन आये वहाँ 'ज्ञान कारण और श्रद्धान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कार्य' कहा जाता है। जहाँ दृष्टिके विषयकी अपेक्षा चलती हो वहाँ दृष्टिके विषयका—ध्रुवज्ञायक परमभावका—अंतरमें आश्रय करने पर उस काल ज्ञान सम्यक् हुआ इससे दृष्टि कारण और ज्ञान कार्य है।—ऐसा परस्पर है, वैसे तो दोनोंकी उत्पत्ति साथ ही होती है।

दृष्टि केवलज्ञानकी पर्यायको भी स्वीकार नहीं करती, क्योंकि पर्याय है वह सद्भूत-व्यवहार नयका विषय है। जिसके आलम्बनसे केवलज्ञान और परमात्मदशा प्रगट होती है ऐसा जो ध्रुव परमात्मस्वभाव उसका जहाँ आश्रय लिया वहाँ दृष्टि सम्यक् हुई और उसके साथ वर्तता हुआ जो ज्ञान है वह भी सम्यक् हुआ। साथमें वर्तता हुआ वह ज्ञान ध्रुव स्वभावको जानता है, गुणके भेदको जानता है, पर्यायको जानता है, अशुद्धता हो उसे भी जानता है—सबका विवेक करता है, जाननेका स्वभाव स्व–पर प्रकाशक है इसलिये सब जानता है, तथापि दृष्टिका विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी छूटता नहीं है।

अहा! ऐसा तत्त्व समझमें नहीं आनेसे लोग बेचारे दूसरे मार्ग पर चढ़ गये। अरे! ऐसा यह दुर्लभ मनुष्यभव और उसमें यदि यह वीतरागका मार्ग समझमें नहीं आया तो भाई! कहाँ डेरा होगा? ध्रुवज्ञायकतत्त्वको ध्यानका विषय न बनाये तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं है, सम्यग्ज्ञान नहीं है और इसलिये चारित्र भी नहीं है। जो त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकका आश्रय करता है वह सम्यग्दर्शनके पुरुषार्थकी अपेक्षा स्वरूपकी रमणताका पुरुषार्थ अनन्त-गुना अधिक है। भाई! पंचमहाव्रतके परिणाम और यह बाह्य क्रियाकाण्ड वह कोई चारित्र नहीं है। ध्रुव ज्ञायक स्वभावके श्रद्धामूलक आश्रयसे सम्यग्दर्शन, तथा स्थिरतामूलक विशेष आश्रयसे सम्यक्चारित्र होता है। दोनोंमें आलम्बन तो एकमात्र ज्ञायकस्वभावका ही है।

दृष्टिके साथ वर्तता हुआ ज्ञान जानता है कि अभी पर्यायमें अशुद्धता है, कर्तृनयसे उसका कर्ता मैं ही हूँ, जितना राग है उसका भोक्ता भी मैं हूँ; रागके कालमें जो दुःखका वेदन है उसे भी ज्ञान जानता है—इस प्रकार ज्ञानमें सर्व भेद ज्ञात होने पर भी दृष्टिका विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी नहीं छूटता। त्रैकालिक अभेद निष्क्रिय चैतन्यपिण्ड कि जिसमें किसी प्रकारका हलन–चलन–परिणमन—नहीं है, सम्यग्दर्शन या केवलज्ञानकी पर्याय नहीं है ऐसे ध्रुव ज्ञायक तत्त्वको स्वीकार करनेवाली दृष्टिके साथ रहा हुआ ज्ञान भेद–अभेदको शुद्ध–अशुद्धको—सबको जानता है, तथापि अंतरमें दृष्टिका विषय तो—जो सदा एक ध्रुवतत्त्व है वह—कभी हटता नहीं है। अहा! ऐसी सूक्ष्म बातें करना और फिर पूछना कि—'आया कुछ समझमें?'

परिणाम और परिणामीके बीच कथंचित् भेद है। एक ही परिणामीके दर्शनपरिणाम (श्रद्धापरिणाम) अभेद ध्रुव तत्त्वको स्वीकार करते हैं और उसीके ज्ञानपरिणाम सबको जैसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं वैसे स्वीकार करते हैं। केवलज्ञानकी पर्याय एकसमयमें स्व–परका सब कुछ जानती है। आत्माके अनन्त गुण, अनन्त पर्यायें, अनन्त जड़ पदार्थ, उनके गुण और पर्यायें, एक–एक पर्यायमें अनन्त अविभाग–प्रतिच्छेद—उन सबको केवलज्ञानकी पर्याय जो भिन्न–भिन्न रूपमें जानती है उसे सद्भूतव्यवहार कहा है।

अहा! अद्भुत तेरी शक्ति प्रभु! तेरे एक ज्ञानगुणकी पर्याय प्रत्येक अंशको भिन्न–भिन्न जानती है और उसी समय दूसरे दर्शनगुणकी (सामान्य प्रतिभासरूप) पर्याय कुछ भी भेद किये बिना सब 'है' ऐसा अभेद देखती है।

अहा प्रभु! तेरा गुणवैभव अद्भुत है। ज्ञान आत्माके सर्व वैभवको जानता होने पर भी दृष्टिका विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी नहीं छूटता।

'पूज्य गुरुदेवका ऐसा ही उपदेश है, शास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं, वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है।'

इस बोलके अंतमें बेन स्वयं ऐसा कहती हैं कि—पूज्य गुरुदेवका इसी प्रकार उपदेश है,—वह एक बात; शास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं,—यह दूसरी बात; और वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है,—यह तीसरी बात। इस प्रकार तीन बातें कहकर वस्तुस्वरूप ऐसा ही है ऐसी दृढ़ता की है। अहा! वस्तुस्वरूप सूक्ष्म है।

❀ गुरुदेवने अमृतके प्रपात बहाये ❀

गुरुदेवने अमृतके प्रपात बहाये हैं। उनकी अमृतधारा चारों ओर बरसी। पतली धारासे नहीं अपितु मूसलाधार वर्षा बरसाई। सब एकसाथ पनप उठे, सब अन्तरके पेड़-पौधे पल्लवित हो जाये ऐसी मूसलाधार बरसाई; किन्तु अपनी उतनी तैयारी होनी चाहिये। अहा! पंचमकालमें श्रुतकी ऐसी मूसलाधार वर्षा! कौन कहनेवाला था—'मूल तत्त्व शुद्धात्मा है, उसे देख!' वह शुद्धात्मा ज्ञानस्वरूपी, ज्ञानसे ओतप्रोत है; उसमें अधूरा ज्ञान नहीं, अधूरा दर्शन नहीं, किन्तु वह परिपूर्ण ज्ञान, दर्शन व संयमकी—चारित्रकी मूर्ति है।

—बहिनश्री चंपाबेन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१३१

दिनांक २५-१०-७८

वचनामृत–३४५

मोक्षमार्गका स्वरूप संक्षेपमें कहें तो 'अंतरमें ज्ञायक आत्माको साध'। यह थोड़ेमें बहुत कहा जा चुका। विस्तार किया जाय तो अनन्त रहस्य निकलें, क्योंकि वस्तुमें अनन्तभाव भरे हैं। सर्वार्थसिद्धिके देव तेतीस–तेतीस सागरोपम जितने काल तक धर्मचर्चा, जिनेन्द्रस्तुति इत्यादि करते रहते हैं। उस सबका संक्षेप यह है कि—'शुभाशुभ भावोंसे न्यारा एक ज्ञायकका आश्रय करना, ज्ञायकरूप परिणति करनी।'। ३४५.

"मोक्षमार्गका स्वरूप संक्षेपमें कहें तो 'अंतरमें ज्ञायक आत्माको साध'।"

मोक्ष अर्थात् निज पूर्ण परमानन्दकी प्राप्ति। 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता'; परिपूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान, सुख एवं शान्तिस्वरूप जो आत्मलाभ उसका नाम मोक्ष है। जैसे 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' है वैसे ही सर्वगुणोंकी पर्यायमें पूर्ण प्राप्ति—सर्व गुणोंका पर्यायमें पूर्णरूपसे विकसित हो जाना—सो मोक्ष है। उसकी प्राप्तिका उपाय वह मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्गका स्वरूप संक्षेपमें कहें तो 'अंतरमें ज्ञायक आत्माको साध'। ज्ञायककी साधनाके लिये वास्तवमें सच्चे देव–शास्त्र–गुरु आदि बाह्य निमित्त और तत्त्व सम्बन्धी श्रवण–पठन–मननके विकल्प आदिके ओरकी दृष्टिकी आवश्यकता नहीं है। उन सबके ओरकी दृष्टिको समेटकर अंतरमें जो ज्ञान–आनन्दादि अनंत गुणसागर निज भगवान ज्ञायक आत्मा विराजता है उसे साध—उसे दृष्टिमें लेकर अनुभवगत कर। समयसारकी छठवीं गाथामें जिसे 'ज्ञायक' और ग्यारहवीं गाथामें 'भूतार्थ' कहा है ऐसे निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्यरूप परमभावमें दृष्टि स्थापित कर।

अनादिकालसे जीवने ज्ञायककी साधना नहीं की। वर्तमानमें तो अध्यात्मकी यह बात बिलकुल लुप्त हो गई है। सम्प्रदायमें तो इस बातकी गंध भी नहीं है। मात्र बाह्य क्रियाकाण्ड और शास्त्रोंके ज्ञानकी बातें हैं। यह बात जैनके सम्प्रदायमें नहीं है तो अन्यमें तो होगी ही कहाँसे? जैनके नामसे चलनेवाले जो सम्प्रदाय गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं, उनके

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आगम गृहीत मिथ्यादृष्टियों द्वारा रचित हैं, उन्होंने 'हमारे आगम सर्वज्ञप्रणीत हैं' ऐसा कहकर लोगोंको ठगा है। ज्ञायककी साधनाका यह मार्ग तो त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ वीतराग महावीर स्वामीने बतलाया है। वर्तमानमें भी महाविदेहमें त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेव श्री सीमंधर भगवान भी यह मार्ग बतला रहे हैं। उस वाणीकी यह बात है। वहाँ वर्तमानमें भी यह मार्ग जोरशोरसे चल रहा है। भीतर जो ज्ञायक ध्रुव निज शुद्धात्मा है उसे साध, दृष्टि और ज्ञानमें लेकर उसका अनुभव कर, वह मोक्षका मार्ग है भाई! कल्याणका मार्ग तो यही है, यह मार्ग आये बिना भवका अन्त नहीं आयगा। अहा! यह वचनामृत–पुस्तक! (सभामें किन्हीं श्रोताओंको सम्बोधन करके) पढ़ी है या नहीं? पूरी पढ़ी है न? कितनी बार पढ़ी है? एक बार? भाई! यह तो बारम्बार पढ़ने जैसी है।

यहाँ कहते हैं कि आत्माका कल्याण करना हो, शाश्वत ज्ञान और आनन्दकी प्राप्ति करना हो, मुक्तिके मार्ग पर गमन करना हो तो अंतरमें ज्ञायक आत्माको साध, अंतरमें त्रिकालशुद्ध परमानन्दपिण्ड ज्ञानमूर्ति निज द्रव्यस्वभावको लक्षगत कर, उसमें अपनी दृष्टिको स्थापित कर। स्वसन्मुख परिणति करके अंतरमें ज्ञायकका अध्ययन कर। शास्त्रोंका बहिर्लक्षी अभ्यास वह कोई ज्ञान नहीं है, वह तो 'मैं कुछ जानता हूँ, मुझे बहुत कुछ आता है'—ऐसे जानकारीके अभिमानमें रुक जानेका कारण है। बाहरी जानकारी निःसार है, सारभूत एक ज्ञायकस्वभाव है। उसके सन्मुख परिणति द्वारा ज्ञायकको लक्षगत कर। देव–शास्त्र–गुरु या उनकी श्रद्धा–भक्तिका राग तथा नव तत्त्वोंके श्रद्धानका विकल्प हो, परन्तु वह कोई ज्ञायकको लक्षगत करनेका परमार्थ साधन नहीं है।

अहा! बारह अंगका सार यह है कि अंतरमें स्वभावसे कृतकृत्य ऐसे निज भगवान ज्ञायक आत्माको साध, उसका अंतरसे स्वीकार कर। स्वीकार करनेवाली आत्माकी निर्मल पर्याय है; वह स्वीकार करती है आत्माके ध्रुव ज्ञायक स्वभावको। दृष्टि द्रव्यमें अभेद होती है। 'अभेद होती है' अर्थात् 'द्रव्य और पर्याय दोनों एक हो जाते हैं, पर्याय ध्रौव्यमें एकाकार हो जाती है' ऐसा अर्थ नहीं है, परन्तु ऐसा अर्थ है कि पर्याय ध्रुव ज्ञायकस्वभावको ध्येय बनाती है, दृष्टि ध्रौव्यका आलम्बन लेती है, पर्याय ज्ञायकस्वभावकी ओर उन्मुख होती है। पर्यायके ऊपर लक्ष रखकर पर्यायको द्रव्योन्मुख करे तो वास्तवमें यह 'उन्मुख' करना है ही नहीं। पर्यायमें स्थित रहकर 'यह ज्ञायक द्रव्य है' इसप्रकार ज्ञायकको साधने जाय तो नहीं साध सकेगा। पर्यायके ऊपरसे दृष्टि उठाकर 'मैं भगवान ध्रुव स्वयंभू ज्ञायक आत्मा हूँ' इस प्रकार ध्रुव ज्ञायकमें 'अहं'रूपसे परिणमित होकर ज्ञायकमें दृष्टिको स्थापित कर। 'मैं यह हूँ' ऐसे विकल्पकी यहाँ बात नहीं है। निर्विकल्परूपसे ज्ञायकमें पर्यायको स्थापित करनेकी बात है। अहाहा! ऐसी बातें!

पर्यायके ऊपरकी दृष्टि तो अनादिकालसे है, वह कोई नई बात नहीं है। पर्यायमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो ग्यारह अंगका ज्ञान भी किया। उसके ऊपरकी दृष्टि भी पर्यायदृष्टि है, जो अनादिकी है। अब उसे छोड़कर द्रव्यदृष्टि कर, 'ज्ञायक आत्माको साध'। अहाहा! 'ज्ञायक आत्मा' और उसे 'साधना'! भाषामें क्या आये? समझ सको उतना समझना। ध्रुव शुद्ध ज्ञायकस्वरूप प्रभु जो मोक्षस्वरूप है उसके अवलम्बनसे मोक्षमार्ग होता है। जो द्रव्यसे मोक्षस्वरूप है उसके अवलम्बनसे ही पर्यायमें मोक्षके मार्गरूप शुद्धि प्रगट होती है। उसने, 'ज्ञायकको साधा' ऐसा कहा जाता है। यह ज्ञायककी साधना ही मोक्षप्राप्तिका उपाय है।

'यह थोड़ेमें बहुत कहा जा चुका।'

'ज्ञायकको साध' कहो या भूतार्थका आश्रय लेना कहो—दोनों एक ही हैं। अंतरमें आनन्दघन चैतन्यपिताको साध तो मोक्षामार्गकी सन्तान—पर्याय प्रगट होगी। साधनाके लिये किसी बाह्य विद्वत्ताकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु अंतरकी सच्ची रुचिकी आवश्यकता है। अंतरमें रुचि, विश्वास, प्रतीति होना चाहिये। जिसके समक्ष केवलज्ञानकी पर्याय भी अल्प है ऐसे निज त्रैकालिक महान ज्ञायक प्रभुको साध। यह संक्षेपमें बहुत कहा गया। इसमें बारह अंगका सार आ गया।

'विस्तार किया जाय तो अनन्त रहस्य निकलें, क्योंकि वस्तुमें अनन्त भाव भरे हैं।

'अंतरमें ज्ञायक आत्माको साध' ऐसे संक्षिप्त कथनका विस्तार किया जाय तो भीतरसे अनन्त गूढ़ता निकले, क्योंकि ज्ञायक वस्तुमें अनन्त–अनन्त गम्भीर भाव भरे हैं कि जिनका वर्णन भगवानकी वाणी भी सम्पूर्णरूपसे नहीं कर सकती। 'अनन्त–अनन्त भावभेदसे भरेली भली, अनन्त–अनन्त नयनिक्षेपे व्याख्यानी है।' श्रीमद्ने कहा है न!—

जो पद श्री सर्वज्ञने देखा ज्ञानमें,
कह न सके उसको भी श्री भगवान जो;
उस स्वरूपको अन्यवाणी तो क्या कहे?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो.....अपूर्व०

आत्मवस्तुमें ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि अनन्तानन्त गुण भरे हैं। वह अनन्त गुणसागर आत्मा ज्ञायक, ध्रुवस्वभाव, सामान्य, परमपारिणामिक भाव आदि शब्दोंसे कहा जाता है; उसका विशेष–अपेक्षासे वर्णन किया जाय तो उसमें अनन्त रहस्य निकलते हैं, उन्हें विकसित करके समझाया जाय तो अनन्त प्रकार होते हैं, क्योंकि ज्ञायकवस्तु स्वयं अनन्तानन्त भावभेदसे भरी है।

'सर्वार्थसिद्धिके देव तेतीस–तेतीस सागरोपम जितने काल तक धर्मचर्चा, जिनेन्द्रस्तुति इत्यादि करते रहते हैं।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक सागरोपममें दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम काल आता है। एक पल्योपमके असंख्यातवें भागमें असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। ऐसे तेतीस सागरोपमकी आयुवाले देव नियमसे सम्यग्दृष्टि होते हैं। उनका समग्र जीवन मात्र धर्मचर्चा, जिनेन्द्रस्तुति आदि शुभ कार्योंमें वहीं व्यतीत होता है, वे कल्पवासी देवोंकी भाँति तीर्थंकर भगवानके कल्याणक अथवा तीर्थयात्राके निमित्तसे कहीं गमनागमन नहीं करते। ऐसे शुभभावके समय भी उनकी दृष्टि तो निरन्तर अंतरमें ध्रुव ज्ञायकतत्त्व पर ही होती है। अहा! तेतीस सागरोपम कालतक अपुनरुक्त चर्चा करें तथापि अन्त न आये ऐसे अनन्तानन्त गम्भीर भाव आत्मामें भरे हैं। एकावतारी वे देव वहाँसे निकलकर नियमसे मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। वे भी कहते हैं कि–अहो, यह अपार चैतन्यवैभव! तेतीस सागरोपम काल तक चर्चा करने पर भी उसका अन्त आये ऐसा नहीं है; जब मनुष्यपना प्राप्त करके, संयम धारण करके केवलज्ञान प्राप्त करेंगे तभी उसका पार आयगा। उन देवोंको न तो खाने, पीने या कमानेकी प्रवृत्ति है, और न स्त्री, बच्चों या परिवारकी उलझन, सारा जीवन निवृत्ति.....निवृत्ति, तथापि चर्चा द्वारा अन्त न आये ऐसे अनन्त रहस्य—अनन्त भाव वस्तुस्वभावमें भरे हैं; उनका पूर्ण पार तो केवलज्ञान द्वारा ही पाया जाता है।

"उन सबका संक्षेप यह है कि—'शुभाशुभ भावोंसे न्यारा एक ज्ञायकका आश्रय करना, ज्ञायकरूप परिणति करना'।"

अहा! तेतीस–तेतीस सागरोपम जितने दीर्घकाल तक तत्त्वकी—आत्मा, उसके अनन्तानन्त गुण, उसके स्वभाव–विभाव, अल्पता–विशेषता आदि अनन्त प्रकारोंकी—चर्चाके शुभभाव करे, परन्तु क्या शुभभावसे आत्माकी पूर्णता—मोक्ष प्राप्त होता है? ज्ञायक आत्मा तो समस्त शुभभावोंसे न्यारा है। उस सब चर्चाका सार यह है कि सर्व शुभभाव विभावोंसे भिन्न ऐसे निज त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक द्रव्यसामान्यका आश्रय करना, ज्ञायकरूप परिणति करना अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्दमय ज्ञानानुभूति प्रगट करना। अहा! भाषामें तो अन्य किस प्रकार कहा जाय? ज्ञायकका आश्रय करना, परिणतिको ज्ञायकोन्मुख करना, वर्तमान पर्यायमें ध्रुव आत्माको ग्रहण करना आदि अनेक प्रकारसे कथन आता है, परन्तु उसमें भी आश्रय–आश्रयीका भेद है, विकल्प है; इस कथनका मर्म यह है कि जहाँ आलम्बन लेने योग्य और आलम्बन लेनेवाला ऐसा भेद भी अस्त हो जाता है—ऐसी ज्ञायकरूप अभेद परिणति करना।

अहा! ऐसा वस्तुस्वरूप समझना कठिन लगे इसलिये लोग अन्य मार्ग पर—बाह्य क्रियाकाण्ड और ज्ञानत्वके मार्ग पर चढ़ गये हैं। यहाँ तो कहते हैं कि चाहे जितनी स्वाध्याय करो, तत्त्वचर्चा करो, परन्तु वह सब शुभभाव है; उस शुभभावसे भी रहित अंतरमें 'ज्ञायक ही मैं हूँ' ऐसी परिणति होना ही सबका सार है, बारह अंगमें भी अनुभूति

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करनेका विधान है। अंतरमें 'अनुभूति करूँ' ऐसा भी भेद नहीं है, द्रव्यस्वभावका आश्रय होने पर आत्मा अनुभूतिभावरूप स्वयं परिणमित हो जाता है।

कितने ही लोग ऐसा कहते हैं कि सोनगढ़वालोंने सम्यक्त्वको बहुत सूक्ष्म–कठिन बना दिया है। भाई! सूक्ष्म बना नहीं दिया है, परन्तु उसका स्वरूप ही सूक्ष्म है। जिन्होंने बाहरसे देव–शास्त्र–गुरुको मानना और तत्त्वविचारके शुभभाव करना ऐसे शुभरागको सम्यक्त्व मान रखा है उन्हें यह बात—समस्त प्रकारके रागसे रहित ऐसे निजज्ञायककी सच्ची अनुभूति हो वह सम्यक्त्व है यह बात—कठिन लगती है। यहाँ तो कहते हैं कि—समस्त स्वाध्याय अथवा तत्त्वचर्चाका संक्षिप्त सार 'शुभाशुभ भावोंसे भिन्न ऐसे एक निज शुद्ध ज्ञायक द्रव्यसामान्यका आश्रय करना, ज्ञायकरूप परिणति करना' वह है।

*

वचनामृत–३४६

पूज्य गुरुदेवने तो सारे भारतके जीवोंको जाग्रत किया है। सैकड़ों वर्षमें तो स्पष्टता नहीं हुई थी इतनी अधिक मोक्षमार्गकी स्पष्टता की है। छोटे–छोटे बालक भी समझ सकें ऐसी भाषामें मोक्षमार्गको खोला है। अद्भुत प्रताप है! अभी तो लाभ लेनेका काल है। ३४६.

'पूज्य गुरुदेवने तो सारे भारतके जीवोंको जाग्रत किया है।'

इस बोलमें बेनने यहाँका (हमारा) नाम लेकर कहा है कि गुरुदेवने तो सारे भारतके जीवोंको जाग्रत किया है। 'जाग्रत किया है' ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है, परन्तु वास्तवमें तो हम अपना अंतरका काम करते हैं, उसीमें वाणीके योगसे अध्यात्मकी यह बात सहज ही आ गयी है। जिज्ञासुओंको आत्माकी यह बात रुची है। अब तो हिन्दुस्तानमें क्या, अफ्रीका, विलायत, अमेरिका आदि परदेशमें भी यह बात पहुँच गई है। नैरोबीमें तो अपना मुमुक्षुमण्डल है, मुमुक्षुओंके ६० घर हैं। प्रतिदिन पूजा, भक्ति, दो बार शास्त्र-वचनिका, यहाँके टेप-प्रवचनादिका कार्यक्रम नियमित चलता है।

'सैकड़ों वर्षमें जो स्पष्टता नहीं हुई थी इतनी अधिक मोक्षमार्गकी स्पष्टता की है।'

दक्षिण भारतमें हैदराबाद और उसके आसपास गाँवोंमें भव्यसागर नामके एक दिगम्बर मुनि विचरते हैं। वे जालना शहरसे अपने एक पत्रमें लिखते हैं कि—स्वामीजी! आपका प्रवचन-साहित्य मैंने पढ़ा; उसमें सच्ची द्रव्यदृष्टि और मोक्षमार्गकी जो स्पष्टता की है ऐसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

खुली स्पष्टता अन्तिम दो सौ वर्षमें किसीने नहीं की। ऐसा मार्ग ही नहीं था, सब बाह्य क्रियाकाण्डकी बातें करते थे, अंतरका ज्ञान क्या वह कोई जानता ही नहीं था। उनकी भावना सोनगढ़ आकर व्याख्यान सुननेकी है; परन्तु अभी तो हमें बड़ौदा, पालेज आदिकी ओर विहारमें जाना है। भविष्यमें योग बनना होगा तो बनेगा।

'छोटे–छोटे बालक भी समझ सकें ऐसी भाषामें मोक्षमार्गको खोला है।'

यह बात सुनकर छोटे बच्चे भी प्रश्न करते हैं। छोटे बालकोंको भी अध्यात्मकी गहरी बातोंमें रस आता है। अभी एक बारह वर्षके बालकने प्रश्न किया था कि 'करी वृत्ति अखण्ड सन्मुख'का अर्थ क्या? इस शरीर, वाणी और मनसे भिन्न भीतर अखण्ड ज्ञायक भगवान आत्मा विराजता है, उस अखण्ड तत्त्वकी ओर—ज्ञायक सन्मुख अखण्ड वृत्ति करके जिनेश्वर भगवानके मूलमार्गको सुनो। अरेरे! भीतर भगवान आत्मा क्या है उसकी सूझ भी न पड़े तो उसे साधनेका अंतरपुरुषार्थ तो कहाँसे करेगा? यहाँ बेन कहती हैं कि आत्मज्ञानकी जो स्पष्टता सैकड़ों वर्षोंमें नहीं हुई थी वह सब स्पष्टता आजकल छोटे–छोटे बच्चे भी समझ सकें ऐसी भाषामें हुई है। सादी सरल भाषामें मोक्षमार्गका स्पष्टीकरण हुआ है।

'अद्भुत प्रताप है। अभी तो लाभ लेनेका काल है।'

अद्भुत प्रताप है। वर्तमानमें लाभ ले लेने जैसा है।—यह बेनके विनयके शब्द हैं।

*

वचनामृत–३४७

मुझे कुछ नहीं चाहिये, एक शान्ति चाहिये, कहीं शान्ति दिखायी नहीं देती। विभावमें तो आकुलता ही है। अशुभसे ऊबकर शुभमें और शुभसे थककर अशुभमें—ऐसे अनंत–अनंतकाल बीत गया। अब तो मुझे बस एक शाश्वत शान्ति चाहिये।—इस प्रकार अंतरमें गहराईसे भावना जागे और वस्तुका स्वरूप कैसा है उसकी पहिचान करे, प्रतीति करे, तो सच्ची शान्ति प्राप्त हुए बिना न रहे। ३४७.

'मुझे कुछ नहीं चाहिये, एक शान्ति चाहिये, कहीं शान्ति दिखायी नहीं देती।'

मुझे बाहरके अनुकूल पदार्थोंकी आवश्यकता नहीं है, सच्चे देव–शास्त्र–गुरु आदि बाह्य निमित्त भी प्राप्त नहीं करना है, तत्सम्बन्धी शुभराग भी नहीं चाहिये, अरे! परलक्षी जो शास्त्रज्ञान उसकी भी मुझे जरूरत नहीं है, मात्र अंतरकी सच्ची शांति चाहिये है; इन्द्रिय-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विषयोंमें अथवा शुभाशुभ विभावोंमें कहीं शान्ति दिखायी नहीं देती। भीतर शान्तिसे भरपूर त्रिकाल शुद्ध भगवान है उस पर दृष्टि नहीं जाती। सच्ची शान्ति बाह्यमें कहीं है नहीं, और अंतरमें जहाँ है वहाँ लक्ष नहीं करता, तो वह कहाँसे प्रगट हो?

भगवान आत्मा अकषाय शान्तरससे छलाछल भरा हुआ महासागर है। अरे! उसे कहाँ मान–अपमान, 'दुनिया मुझे जाने तो ठीक' आदि लालसा है? दुनिया मुझे जाने या न जाने उससे मुझे क्या लाभ या हानि है? जंगलमें खिले हुए फूलको कोई सूँघनेवाला मिले तब क्या उसमें सुगन्ध रहेगी और नहीं मिले तो सुगन्ध चली जायगी?—उसीप्रकार जिसे आत्माकी सच्ची दृष्टि, ज्ञान और अनुभूति हुई है उसे क्या दूसरे लोग जानें, स्वीकार करें तो रहेगी और नहीं जानें, स्वीकार न करें तो चली जायगी? फूल तो अपने स्वभावसे ही सुगन्धित है, वैसे ही अतीन्द्रिय आनन्द और शान्तिकी साधनारूप परिणमित भगवान आत्मा स्वयं ही आनन्द और शान्तिमय है। जीवको शान्ति चाहिये परन्तु उसे कहीं शान्ति दिखायी नहीं देती; क्योंकि जहाँ शान्तिका सागर उछल रहा है ऐसे निज ज्ञायक आत्मामें उसकी दृष्टि नहीं है।

'विभावमें तो आकुलता ही है।'

शुभ और अशुभ विभावभाव आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्वको अशुचि, विपरीत, दुःख और आगामी दुःखका कारण कहा है। विभावभाव पुद्गलकर्मके विपाकमें युक्त होनेसे होते हैं, इसलिये वे आत्माके स्वभावभाव नहीं हैं। उनमें कहीं आत्माकी शान्ति नहीं, मात्र आकुलता है।

'अशुभके ऊबकर शुभमें और शुभसे थककर अशुभमें—ऐसे अनंत–अनंतकाल बीत गया।'

व्यापार–धन्धेके परिणाम, विषय–कषायके भाव—यह सब अशुभभाव हैं। उनसे ऊबकर पूजा, भक्ति, स्वाध्यायादि शुभमें आये और उसमेंसे थककर फिर अशुभमें आ जाय—ऐसा करते–करते अनन्तकाल बीत गया। श्रीमद्को भी ऐसा लगता था कि—अरे! ऐसा उपाधियोग आता है कि धड़के ऊपर सिर न रहे। जीवने इस प्रकार अशुभके ऊबकर शुभमें और शुभसे थककर अशुभमें—ऐसे विभावके चक्रमें ही अनन्तकाल बिताया है, कभी अंतर्स्वभावकी दृष्टि नहीं की, इसलिये उसे अंशतः भी सच्ची शान्ति प्रात नहीं हुई।

'अब तो मुझे बस एक शाश्वत शान्ति चाहिये।—इस प्रकार अंतरमें गहराईसे भावना जागे और वस्तुका स्वरूप कैसा है उसकी पहिचान करे, प्रतीति करे, तो सच्ची शान्ति प्राप्त हुए बिना न रहे।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरे! दुनिया मुझे माने या न माने, दुनियाकी गिनतीमें मैं होऊँ या न होऊँ, इसका मुझे कोई काम नहीं, मुझे तो बस एक शाश्वत शान्तिकी आवश्यकता है। ऐसे तो भगवान ज्ञायक आत्मा शक्तिरूपसे शाश्वत शान्तिका ध्रुव पिण्ड है, परन्तु पर्यायमें भीतर प्रगटरूपसे शाश्वत शान्ति चाहिये। शुभाशुभ विभावभाव तो अशान्ति है, वह कोई विश्रामस्थान नहीं है। उसमें तो थकान लगती है, क्योंकि वह कोई विश्रामस्थान नहीं है। उसमें तो थकान लगती है, क्योंकि वह आत्माका सहज शुद्ध भाव नहीं है। मुझे तो अतीन्द्रिय परम शान्तिकी शाश्वत खान ऐसे शुद्ध ज्ञानस्वरूप भगवान आत्माके आलम्बनसे प्रगट होनेवाली नित्य शान्तिकी आवश्यकता है।—इस प्रकार अंतरमें गहराईसे भावना जागे और निज भगवान आत्माका स्वरूप कैसा है उसकी यथार्थ पहिचान एवं रुचि करे तो अंतरसे सच्ची शान्ति प्राप्त हुए बिना न रहे।

अरेरे! जिन्दगी चली जा रही है; उसमें अधिकांश तो पापमें ही पापमें जाती है। दिन–रात—बाईस–बाईस घन्टे—व्यापार–धंधा, खाना–पीना, विषयभोग और सोनेमें चले जाते हैं, अवकाश लेकर यदि घन्टा–दो घन्टा व्याख्यान सुनने जाय तो वहाँ भी उसे कैसा सुननेको मिलता है?—'दया पालो, दान करो, व्रत करो, यात्रा करो तो धर्म होगा'—इस प्रकार बाह्य क्रिया और शुभरागके कर्तृत्वकी संसारवर्धक विपरीत बातें सुननेको मिलती हैं। कदाचित् सत् श्रवण मिले तो भी वहाँ श्रवणके लक्षसे किंचित् पुण्य होता है। वह अशुभमेंसे शुभमें आया, परन्तु उसमें कहीं आत्माकी सच्ची शान्ति नहीं है। मुझे तो बस एक शाश्वत शान्तिकी आवश्यकता है ऐसी भावना अंतरकी गहराईसे प्रगट करके शान्तिके शाश्वत निधान ऐसे निज ज्ञायक ध्रुव तत्त्वका यथार्थ स्वरूप समझे, उसकी अंतरमें प्रतीति करे तो सच्ची शान्ति अवश्य प्राप्त होती ही है।

वेदनमें आनेवाली शान्ति तो पर्याय है। परन्तु वह प्रगट कैसे हो? यदि सच्ची शान्तिकी गहराईसे भावना जाग्रत करके, पर्यायके निकट अंतरमें शान्तिका जो ध्रुव तल है उसकी यथार्थ पहिचान करे, रुचि करे और उसमें एकाग्रता करे तो पर्यायमें भी अविनाशी शान्ति प्राप्त होगी।

'आतम भावना भावतां जीव कहे केवलज्ञान रे', परन्तु वहाँ भावनाका अर्थ न समझे और उसकी धुन लगाये रहे उससे कहीं केवलज्ञान नहीं होता। आत्माका यथार्थ शुद्धस्वरूप समझकर, प्रतीतिमें लेकर, उसमें एकाग्रता पूर्वक स्थिर हो जाना वह 'आतम भावना' है; और उसे भानेसे—उसरूप परिणमनेसे—साधक संत केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। यहाँ 'भावना' का अर्थ शुभराग नहीं है, शुद्धोपयोग है।

श्री जयसेनाचार्यदेवने प्रवचनसारकी टीकामें कहा है कि सम्यग्दृष्टि श्रावकको भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सामायिक-कालमें शुद्धोपयोगरूप भावना आती है। जिसे अंतरमें समताका परिपूर्ण पिण्ड ऐसा निज ज्ञायकदेव दृष्टिगत हुआ है और उसके आलंबनसे अंशतः विशेष स्थिरता प्रगट हुई है ऐसे ज्ञानी श्रावकको सच्ची सामायिक होती है। जिसे अभी आत्मा क्या वस्तु है, उसका समता स्वभाव कैसा है, उसकी खबर नहीं है उसे—भले ही घन्टों तक सामायिककी बाह्य क्रियामें लगा रहता हो तथापि—सच्ची सामायिक कैसी? सामायिकका अर्थ है समतारूप परिणमन; स्वसन्मुख दृष्टि होनेसे अंतरमें विशेष स्थिरता होकर जो समताका लाभ, वीतरागताका लाभ हो उसे भगवान सच्ची सामायिक कहते हैं।

भाई! सम्प्रदायमें तो अभी सच्चे देव–शास्त्र–गुरुकी श्रद्धाका भी ठिकाना नहीं है वहाँ सामायिक तथा प्रोषध कहाँसे आये? वहाँ तो शरीरकी क्रिया और शुभरागको सामायिक मनाते हैं परन्तु वह मान्यता तो मिथ्यात्व है। कायाकी सरलता, वचनकी सरलता और मनकी सरलताका भाव तो शुभ है, उससे तो शुभ नामकर्म आदि पुण्य-प्रकृतियोंका बंध होता है। जिस भावसे बंध होता हो उस भावसे धर्म होगा? नहीं होगा।

'समाधिशतक' में श्री पूज्यपाद स्वामीने तो यहाँ तक कहा है कि—अरेरे! हमें दूसरोंको उपदेश देनेका जो विकल्प आता है वह भी वास्तवमें तो उन्माद है। अहा! उन वीतरागी सन्तोंको अंतरमें आत्मदर्शन, स्वानुभूति और संयमपरिणतिजनित विशेष शान्ति और आनन्द भी सतत वर्तता है; वे भी कहते हैं कि हमें जो यह दूसरोंको तत्त्व समझानेका विकल्प उठता है वह राग है, उन्माद है। राग है वह रोग है, दुःख है। ऐसे भावलिंगी संतोंको उठता उपदेशका विकल्प भी उन्माद है, तो फिर जिन्हें उपदेशके रागका रस चढ़ गया है उनकी तो बात ही क्या? वे तो रागके प्रेमी मिथ्यादृष्टि हैं। अहा! ऐसी बातें हैं, भाई! मार्ग कोई और ही है।

तत्त्वार्थसूत्रके प्रथम अध्यायमें 'सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्' सूत्र आया है। उसमें जो 'उन्मत्त'के साथ तुलना की है वह मिथ्यादृष्टिकी विपरीतता बतलानेके लिये है। 'समाधिशतक'में जो 'उन्माद' कहा है वह अस्थिरताजनित चारित्रका दोष है। मैं दूसरोंको उपदेश देकर उनका कल्याण कर दूँ, दूसरोंको उपदेश देनेसे हमें लाभ होगा आदि मान्यता मिथ्यात्व है। समयसारके बंध–अधिकारमें स्पष्ट कहा है कि—दूसरा जीव बंध प्राप्त करे या मोक्ष प्राप्त करे वह तो उसके अपने परिणामोंके कारण है, उसमें तू क्या कर सकता है? अहा! यथार्थ वस्तुस्थितिको समझे बिना सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। परके कर्तृत्वरहित तथा शुभाशुभ विभावोंसे भी भिन्न ऐसा जो शान्तिका सागर निज ज्ञायक आत्मा उसे अंतरमें जाने, उसकी यथार्थ प्रतीति करे, तो सच्ची शाश्वत शान्ति प्राप्त हुए बिना नहीं रहेगी।

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१३२

वचनामृत–३४८

रुचिकी उग्रतामें पुरुषार्थ सहज लगता है और रुचिकी मन्दतामें कठिन लगता है। रुचि मन्द हो जाने पर इधर–उधर लग जाय तब कठिन लगता है और बढ़ने पर सरल लगता है। स्वयं प्रमाद करे तो दुर्गम लगता है और स्वयं उग्र पुरुषार्थ करे तो प्राप्त हो जाता है। सर्वत्र अपना ही कारण है।

सुखका धाम आत्मा है, आश्चर्यकारी निधि आत्मामें है—इस प्रकार बारम्बार आत्माकी महिमा लाकर पुरुषार्थ उठाना और प्रमाद तोड़ना चाहिये। ३४८.

'रुचिकी उग्रतासे पुरुषार्थ सहज लगता है और रुचिकी मंदतामें कठिन लगता है।'

क्या कहते हैं? कि—शरीरादि और रागादि विभावोंसे भिन्न जो निज परमानन्द पिण्ड ज्ञायकभाव उसे जिसने रुचिमें उग्ररूपसे लिया उसे ज्ञायककी ओर उन्मुख होनेका पुरुषार्थ सहज लगता है और ज्ञायकस्वभावकी रुचिकी मंदताके कारण अंतरान्मुख होनेका पुरुषार्थ कठिन लगता है। अंतरमें ज्ञायकस्वभावके यथार्थ लक्ष बिना, पर और पर्यायके लक्षसे 'मैं पुरुषार्थ करके ऐसा करूँ और वैसा करूँ'—यह कोई सच्चा पुरुषार्थ नहीं है, रागका पुरुषार्थ है। ज्ञायक द्रव्य तो अनन्त–अनन्त पुरुषार्थका पिण्ड है, उसकी रुचिवानको जो अन्तर्मुख प्रयत्न है वह तो शक्तिके अनन्तवें भाग है। जैसे आत्मद्रव्यमें ज्ञानादि अनन्त गुणोंके साथ एक पुरुषार्थ नामका गुण सहज है वैसे ही द्रव्यस्वभावकी रुचिकी उग्रतामें भी कार्यरूप पुरुषार्थ सहज है। स्व–परके भेदज्ञानपूर्वक ज्ञायककी अंतरंग रुचि प्रबल हो तो स्वभावोन्मुख पुरुषार्थ सरल लगता है और अंतरमें परमानन्दकन्द निज भगवान आत्माकी रुचिकी प्रबलता नहीं है अथवा मन्द है उसे स्वभावकी समझ तथा उस ओर उन्मुख होना कठिन लगता है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'रुचि मन्द हो जाने पर इधर-उधर लग जाय तब कठिन लगता है और रुचि बढ़ने पर सरल लगता है।

वस्तुस्वभावकी अंतरंग रुचि मंद हो जाय अथवा वहाँसे हट जाय तो वह इधर-उधर भटकने लगती है, शुभ और अशुभ भावोंमें पहुँच जाती है। रुचि यदि अन्यत्र लग जाय तो उसका स्वभावोन्मुख होना कठिन हो जाता है, और रुचिकी उग्रता करके जो जीव इधर-उधर न जाकर स्वभावोन्मुख होनेका पुरुषार्थ करता है उसे स्वभावको साधना सरल हो जाता है। अहा! ऐसी बातें हैं। अरे! यह किस प्रकारका मार्ग है? भाई! यह तो वीतरागका मार्ग है; अनन्त तीर्थंकरोंने जो बतलाया वह यही मार्ग है।

अपने अनादिनिधन त्रिकालशुद्ध ज्ञायकप्रभुकी महिमा भूलकर बाह्यमें देव-शास्त्र-गुरुके प्रति शुभभावसे, परलक्षी शास्त्रपठनसे या अणुव्रत-महाव्रतके बाह्य आचरणसे धीरे-धीरे आत्माको लाभ होगा—इस प्रकार स्वभावकी रुचि मंद हो जाने अथवा रुचि विपरीत हो जानेसे, जीव यदि इधर-उधर भटकने लगे तो स्वभावकी ओरका पुरुषार्थ कठिन हो जाता है; और यदि रुचिको स्वभावोन्मुख करे और उसमें वृद्धि हो तो स्वभावकी साधना सरल लगता है, स्वोन्मुखताका पुरुषार्थ सरल लगता है।

'स्वयं प्रमाद करे तो दुर्गम होता है और स्वयं उग्र पुरुषार्थ करे तो प्राप्त हो जाता है।'

जीव यदि स्वयं आलस्य करे, रुचिमें मन्दता लाये या हतोत्साह हो, प्रमादके कारण विचारशून्य हो जाय तो स्वभावको समझना दुर्लभ हो जाता है और यदि अंतरमें स्वभावकी समझ तथा रुचिका उग्र पुरुषार्थ करे तो स्वभावको प्राप्त कर लेता है।

'सर्वत्र अपना ही कारण है।'

साधक दशा हो या बाधक दशा हो, बन्धमार्ग हो या मोक्षमार्ग हो, सर्वत्र अपना ही कारण है, उसमें अन्य कोई कारण नहीं है। कर्मोदयके कारण विकारी भाव होते हैं और कर्म हट जाय तो विकारी भाव मिटकर शुद्धता प्रगट हो जाती है—ऐसा है ही नहीं। विकार हो या अविकार हो—सर्वत्र अपना ही कारण है। अपने विपरीत पुरुषार्थसे विपरीत दशा होती है और सीधे पुरुषार्थसे सीधी दशा होती है, उसमें कर्मका उदय या क्षयादि निमित्त होने पर भी कार्य तो अपने कारणसे—अपने पुरुषार्थसे—ही होता है।

'सुखका धाम आत्मा है, आश्चर्यकारी निधि आत्मामें है,—इस प्रकार बारम्बार आत्माकी महिमा लाकर पुरुषार्थ उठाना और प्रमाद तोड़ना चाहिये।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपना त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक आत्मा ही सुखका धाम है, इसके सिवा अन्यत्र कहीं सुख नहीं है। सुख न तो शरीर, स्त्री या लक्ष्मी आदि संयोगमें है और न दया, दान, भक्ति या व्रतादिरूप रागमय परिणाममें है। जिसे सच्चे सुखकी आवश्यकता हो, धर्म प्राप्त करना हो, उसे जिसमें ज्ञान और आनन्दादि अनन्त आश्चर्यकारी निधि परिपूर्ण विद्यमान है ऐसे निज चैतन्यप्रभु—ज्ञायक आत्मा—की ओर दृष्टि देना पड़ेगी।

जीवको दुःखका कारण निजात्माके सम्बन्धमें अनादि भ्रान्ति, अज्ञान और कषायभाव हैं। उन विभावोंका नाश करनेसे दुःखका अभाव अर्थात् सुखकी प्राप्ति होती है। दुःखका नाश वह कथन 'नास्ति'से है और सुखकी प्राप्ति वह कथन 'अस्ति'से है। जीवने अनादिकालमें धर्मके नाम पर सब कुछ किया, अनन्तबार दिगम्बर जैन साधु हुआ, पंच महाव्रत पाले, दुर्धर अनुष्ठान किये—'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' सुखका धाम, आश्चर्यकारी निधान आत्मा है। वह शुभाशुभ रागसे भिन्न है। वर्तमान एक समयकी प्रगट परिणतिके समीप अंतरमें जो सम्पूर्णतत्त्व शक्तिभरपूर विद्यमान है उसकी ओर दृष्टि करे, बारम्बार उसकी महिमा लाकर अन्तर्मुख होनेका पुरुषार्थ करे तो निज 'स्वयं ज्योति सुखधाम'की प्राप्ति हो।

भाई! यह सुन्दर शरीर, सुन्दर स्त्री, दस-बीस करोड़की सम्पत्ति—यह कोई आश्चर्यजनक वस्तु नहीं है; अरे! पुण्यपरिणाम भी आश्चर्यकारी नहीं हैं; वे सब तो दुःखके निमित्त हैं। आश्चर्यजनक और सुखका कारण तो एकमात्र भगवान आत्मा है। उसे बराबर पहिचानकर, उसकी बारम्बार महिमा लाकर स्वसन्मुखताका पुरुषार्थ बढ़ाना, प्रमाद छोड़ना।

अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दका महासागर उछलता है, परन्तु रागके साथ एकत्वबुद्धि तथा एक समयकी पर्यायके प्रति प्रेमके कारण वह दृष्टिगोचर नहीं होता। अन्तर्मुख दृष्टि करके महा सत्का स्वीकार करनेसे उसकी प्रगट दशामें जो अतीन्द्रिय आनन्दकी अंशतः झलक आये वह सुख है। उस सच्चे सुखके बिना सब—सेठ, राजा और देवादि—बेचारे दुःखी हैं।

प्रश्नः—राजा आदि सब बेचारे हैं?

उत्तरः—हाँ, शास्त्रमें उन्हें 'वराकाः' कहा है। वराका अर्थात् कंगाल, दीन, निर्धन, भिखारी, तुच्छ। 'यह लाओ और वह लाओ, पैसा लाओ, स्त्री लाओ, प्रतिष्ठा लाओ, हमें सब बड़ा मानें ऐसा कुछ लाओ',—इस प्रकार पर विषयोंके याचक होनेसे वे भिखारी हैं। जिसमें किसी भी बाह्य वस्तुकी याचना नहीं है ऐसे आनन्द भरपूर निज आत्माकी—सुखके आश्चर्यकारी धामकी—बारम्बार महिमा लाकर अन्तर्मुख पुरुषार्थ करे तो अनादिका दारिद्र्य मिट जाय, अतीन्द्रिय शाश्वत सुखकी प्राप्ति हो जाय।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न:—इस समय पंचम कालमें तो शुभयोग ही होता है न?

उत्तर:—अरे भाई! यह तू क्या कहता है? क्या पंचमकालमें शुभयोग ही होता है, धर्म नहीं होता? निजानन्दधाम ज्ञायक शुद्ध प्रभु क्या शुभयोगमें मिलता होगा? भगवानने तो ऐसा कहा है कि समस्त शुभाशुभ विभावोंसे रहित ऐसे निज त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक परमेश्वरको लक्षगत करके अंतरमें परिणाम शुद्ध होकर एकाग्रता हो तब उसकी प्राप्ति होती है। द्रव्यसंग्रहकी ४७वीं गाथामें भी ऐसा ही कहा है—दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि....' अर्थात् 'दो प्रकारका जो मोक्षमार्ग वह ध्यानमें प्राप्त होता है'। अंतरमें आनन्दधाम ज्ञायक प्रभुकी सम्यक् श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक उसमें स्थिरताकी धुन लगे—एकाग्रता परिणमित हो—वह ध्यान है, शुद्ध दशा है, संवर-निर्जरा है, मोक्षका साधन है। शुभ योग तो आस्रव भाव है, बंधका साधन है।

अहा! ऐसी बातें हैं। यह कोई बाह्य अध्ययन अथवा शास्त्रज्ञानसे प्राप्त हो ऐसी वस्तु नहीं है। जिसकी दृष्टि बहिर्लक्षी शास्त्रज्ञान पर है उसे ज्यों-ज्यों शास्त्रज्ञानका क्षयोपशम बढ़ता जाय त्यों-त्यों अंतरमें अहंपना—अभिमान बढ़ता जाता है, क्योंकि अंतरका सच्चा 'अहं'—निज चैतन्य ज्ञायक प्रभु—उसे दृष्टिगत नहीं हुआ, उसकी महिमा उसे भासित नहीं हुई। भगवान ज्ञायकको उसने रागके साथकी एकतामें छुपा दिया है। अंतरमें लक्ष करे तो अहा! आठ वर्षकी बालिका भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है। भीतर ध्रुव ज्ञायकस्वभावको ध्यानका ध्येय, एकाग्रताका विषय बनानेसे वर्तमान पर्यायमें अतीन्द्रिय आनन्द युक्त जो निर्मलता प्रगट हो यह निश्चयमोक्षमार्ग है, और भूमिकानुसार व्यवहार-रत्नत्रयका जो राग शेष रहे उसे, निमित्त तथा सहचर होनेसे, उपचारसे व्यवहार-मोक्षमार्ग कहा जाता है, वह द्विविध मोक्षमार्ग अंतरध्यानमें प्राप्त होता है, बहिर्लक्षी शुभयोगसे नहीं। इसलिये, सुखका धाम आत्मा है, आश्चर्यकारी निधि आत्मामें है—ऐसे बारम्बार आत्माकी महिमा लाकर पुरुषार्थ बढ़ाना, प्रमाद हटाना।

*

वचनामृत—३४६

चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकर जैसे 'यह राज्य, यह वैभव—कुछ नहीं चाहिये' इस प्रकार सर्वकी उपेक्षा करके एक आत्माकी साधना करनेकी धुनमें अकेले जंगलकी ओर चल पड़े। जिन्हें बाह्यमें किसी प्रकारकी कमी नहीं थी, जो चाहें वह जिन्हें मिलता था, जन्मसे ही, जन्म होनेसे पूर्व भी,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इन्द्र जिनकी सेवामें तत्पर रहते थे, लोग जिन्हें भगवान कहकर आदर देते थे—ऐसे उत्कृष्ट पुण्यके धनी सब बाह्य ऋद्धिको छोड़कर, उपसर्ग-परिषहोंकी परवाह किये बिना, आत्माका ध्यान करनेके लिये वनमें चले गये, तो उन्हें आत्मा सबसे महिमावन्त, सबसे विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा और बाह्यका सब तुच्छ भासित हुआ होगा तभी तो चले गये होंगे न? इसलिये, हे जीव! तू ऐसे आश्चर्यकारी आत्माकी महिमा लाकर अपने स्वयंसे उसकी पहिचान करके, उसकी प्राप्तिका पुरुषार्थ कर। तू स्थिरता-अपेक्षासे बाहरका सब न छोड़ सके तो श्रद्धा-अपेक्षासे तो छोड़ ! छोड़नेसे तेरा कुछ नहीं जायगा, उलटा परम पदार्थ—आत्मा—प्राप्त होगा। ३४६.

"चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकर जैसे 'यह राज, यह वैभव—कुछ नहीं चाहिये' इस प्रकार सर्वकी उपेक्षा करके एक आत्माकी साधना करनेकी धुनमें अकेले जंगलकी ओर चल पड़े!"

शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ—यह तीनों तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव—ऐसी तीन पदवियोंके धारी थे। उनके ९६ हजार रानियाँ, ९६ करोड़ पैदल सेना आदि वैभवोंकी कोई कमी नहीं थी। लोकोत्तर पुण्यशाळी ऐसे तीर्थंकर, चक्रवर्ती और बलदेव जेसे शलाका पुरुष भी 'यह राज्य, यह वैभव, यह रानियाँ—कुछ नहीं चाहिये, इस प्रकार सर्व विषयोंसे उदासीन वृत्ति करके एकमात्र निज ज्ञायक आत्माकी पूर्ण साधना करनेकी धुनसे अकेले वनमें चल पड़े। अहा! जगतके भौतिक पदार्थोंका आश्चर्य तोड़कर अंतरमें जानेका उग्र प्रयास करनेके लिए एकाकी चल पड़े तो उनको अतीन्द्रिय आनन्दधाम ऐसा निज ज्ञायक आत्मा जगतके सर्व पदार्थोंकी अपेक्षा विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा न!

जो मखमलकी रजाइयोंमें शयन करते थे, जिनकी सेवा सोलह-सोलह हजार देव करते थे; वे चक्रवर्ती सम्राट भी समस्त वैभवका त्याग करके आत्माकी साधना हेतु वनमें चले गये! संसारकी विचित्रता एवं अनेकताकी अंतरसे उपेक्षा करके आत्माका असंग एकत्व साधनेकी धुनमें एकाकी वनकी ओर चले गये। पूर्णानन्दका नाथ ऐसा निज अतीन्द्रिय चमत्कारी ज्ञायक भगवान अन्तर्दृष्टि एवं ज्ञानमें तो सतत वर्तता है, परन्तु उसकी पूर्ण साधना हेतु समस्त बाह्य वैभवको ठुकराकर अकेले वनमें चले गये। भीतर अतीन्द्रिय आनंदका हिमपर्वत है, उसमेंसे अतीन्द्रिय आनन्दके निर्झर बहते हैं; उसकी विशेष साधनाके लिये चल निकले तो उन्हें जगतके सर्व पदार्थोंकी अपेक्षा निज आत्मा विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा न?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चक्रवर्तीके छोटे राजकुमारोंकी बात आती है। उन्हें अंतरसे वैराग्य उछला है, दीक्षा लेनेके लिये माताके पास आज्ञा लेने जाते हैं। वे मातासे विनयपूर्वक नम्रतासे कहते हैं—हे इस शरीरकी जन्मदात्री जननी! हमें अपना अतीन्द्रिय आनन्दका सागर—भगवान आत्मा ज्ञात हुआ है, अब उसमें विशेष स्थिरता हेतु हमें चारित्रधर्म अंगीकार करना है—हमें जैनेश्वरी भगवती दीक्षा लेना है, इसलिये अपने उस उज्ज्वल कार्यके लिए सहर्ष आज्ञा प्रदान कर; हमें अपने आत्मामें जाना है, वहाँ रमना है। माता कहती हैं—बेटा! तुम्हारी उम्र छोटी है, मणि-रत्नोंके महलोंमें रहनेवाले और मखमली बिस्तरमें सोनेवाले तुम वनमें सर्दी-गर्मी कैसे सहन करोगे? इसलिये अभी कुछ समय ठहर जाओ। पुत्र कहते हैं—अरे माता! तू हमारे प्रति मोहको छोड़, हम आज ही दीक्षा लेना चाहते हैं और शपथपूर्वक कहते हैं कि अब हम दूसरी माताको नहीं रुलायेंगे। तुझे रोना हो तो रो ले, हम तो अतीन्द्रिय आनन्दके मार्ग पर प्रयाण करके मुक्ति प्राप्त करेंगे, अब हम भव धारण नहीं करेंगे। दूसरी माता नहीं बनायेंगे।

अहा! ९६ हजार रानियोंको छोड़कर वनमें चले जानेवाले उन चक्रवर्ती राजाओंको समस्त बाह्य वैभव तुच्छ लगा होगा और निज ज्ञायक आत्मा सर्वसे महिमावान तथा सर्वसे विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा तभी तो एकाकी वनगमन किया होगा? हमें तो अपना आनन्दधाम चाहिए—ऐसे निज आत्माकी साधना हेतु उसकी धुनमें वनगमन कर गये होंगे?

ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंका धाम ऐसा जो निज भगवान आत्मा उसकी पूर्ण साधना करने की धुनमें चक्रवर्ती अकेले वनगमन कर गये। तीर्थंकर-चक्रवर्ती हों या अकेले चक्रवर्ती हों, उन्हें ३२ कवलका आहार होता है। उनका आहार इतना कसवाला सारयुक्त होता है कि उसका एक कौर ९६ करोड़ पायदल सेना पचा नहीं सकती। कैसा होगा वह भोजन? ऐसा मूल्यवान भोजन करने वाले भी अंतरमें आनन्दके कौर लेने—अतीन्द्रिय आनन्दामृतका पान करने—के लिये वनमें चले जाते हैं। अहा! कैसा होगा वह आश्चर्यकारी आत्मा!

'जिन्हें बाह्यमें किसी प्रकारकी कमी नहीं थी, जो चाहें वह मिलता था, जन्मसे ही, जन्म होनेसे पूर्व भी, इन्द्र जिनकी सेवामें तत्पर रहते थे, लोग जिन्हें भगवान कहकर आदर देते थे—ऐसे उत्कृष्ट पुण्यके धनी सब बाह्य ऋद्धिको छोड़कर, उपसर्ग-परीषहोंकी परवाह किये बिना, आत्माका ध्यान करनेके लिये वनमें चले गये, तो उन्हें आत्मा सबसे महिमावन्त, सबसे विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा और बाह्यका सब तुच्छ भासित हुआ होगा तभी तो चले गये होंगे न?

उच्चसे उच्च प्रकारके भोजन, अप्सराओं जैसी रूपवती रानियाँ, स्फटिक, रत्नके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

महल आदि किसी बातका जिन्हें अभाव नहीं था, जो चाहें वह अनायास मिल जाता था, जन्मसे ही—जन्मसे पूर्व भी—इन्द्र जिनकी सेवामें तत्पर रहते थे, लोग जिनका भगवान कहकर बहुमान करते थे—ऐसे सातिशय पुण्यशाली अनेक बाह्य ऋद्धियोंको छोड़कर उपसर्ग–परीषहोंकी परवाह किये बिना सिंह और बाघों से भरे हुए वनमें आत्माका ध्यान करनेके लिये चल दिये, तो उन्हें आत्मा सबसे महिमावान, सबसे विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा और उसके सिवा अन्य सबकुछ तुच्छ भासित हुआ होगी तभी तो चल दिये होंगे न?

यहाँ तो साताकी एक सुविधा न हो तो अच्छा नहीं लगता। भरत चक्रवर्ती शीशमहलमें थे, उन्हें बाह्य वैभवका तो कोई पार नहीं था, वे भी आत्माके आश्चर्यकारी आनन्दकी पूर्णरूपसे साधना हेतु समस्त बाह्य वैभव छोड़कर चल दिये थे। अहा! उन्हें भगवान आत्माकी जाति कितनी चमत्कारी लगी होगी? अज्ञान हटाकर चैतन्यकी अनंतानंत ऋद्धियोंसे भरपूर ऐसे ज्ञायक आत्माकी प्रतीति करे तो चैतन्यके चमत्कारकी खबर पड़े। अहा! जिसके समक्ष इन्द्रोंके इन्द्रासन भी अत्यन्त तुच्छ लगें ऐसे भगवान आत्माकी पूर्ण साधना के लिये, उसका पूर्ण स्वाद लेनेके लिये एकाकी वनमें चले गये तो उन्हें समस्त बाह्य संयोगोंकी अपेक्षा आत्मा महिमावान, पुण्य–पापकी महिमासे भी भिन्न, सर्वसे विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा और समस्त बाह्यवैभव—अरे! शुभाशुभ विकल्प भी—तुच्छ भासित हुये होंगे तभी तो वे छोड़कर चल दिये, होंगे न?

'इसलिये हे जीव! तू ऐसे आश्चर्यकारी आत्माकी महिमा लाकर, अपने स्वयंसे उसकी पहिचान करके, उसकी प्राप्तिका पुरुषार्थ कर।'

भाई! तू विचार तो कर कि भीतर आत्मा क्या वस्तु है! शरीर, वाणी और मनसे भिन्न तथा पुण्य–पापके विभावोंसे रहित अंतरमें ज्ञान और आनन्दादि अनंत गुणोंसे भरपूर त्रिकाल शुद्ध आत्मा कोई महान अद्भुत पदार्थ है। इसलिये हे जीव! ऐसे आश्चर्यकारी आत्माकी अपूर्व महिमा लाकर, अपने स्वयंसे उसकी पहिचान करके, उसकी प्राप्तिका उद्यम कर।

प्रश्न:—'अपने स्वयंसे पहिचान कर' इसका क्या अर्थ?

उत्तर:—तू स्वयं अपनेसे पहिचान कर; भगवान बतला दें या गुरु समझा दें ऐसा नहीं। देव–गुरु तो मात्र बाह्य निमित्त हैं। पहिचानका कार्य तो स्वयं अपनेको करना है। समयसारमें आचार्यदेवने कहा है न!—अपने ज्ञानके समस्त वैभवसे मैं इस एकत्व-विभक्त आत्माको दरशाऊँगा; उसे हे जीव! तू स्वयं ही अपने अनुभवप्रत्यक्षसे परीक्षा कर प्रमाण करना—ऐसा कहकर यह कहना चाहते हैं कि कोई विकल्प, राग,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्यवहार या निमित्तसे आत्माकी पहिचान होती है—ऐसा नहीं है। तू स्वयं अपनेसे उसकी पहिचान कर, उसकी प्राप्तिका अंतरमें पुरुषार्थ कर।

अहा! यह तो कोई अमृतके—रत्नोंके—ढेर पड़े हैं इस पुस्तकमें। यह पुस्तक (बहिनश्रीके वचनामृत)तो कोई ऐसी प्रगट हो गई है कि जिसके प्रत्येक बोलमें निधान भरे हैं—महिमावन्त आत्मतत्त्वको प्रकाशित किया है।

भाई! यह शरीर, प्रतिष्ठा और पैसा तो कहीं रह गये; किन्तु अंतरमें उठनेवाले देव–शास्त्र–गुरु अथवा नवतत्त्व सम्बन्धी शुभ विकल्पोंकी भी महिमा छूट गई। चक्रवर्तीके वैभवकी भी विस्मयता छूट गई तो यहाँ अंतरात्मामें कोई आश्चर्यकारी अद्भुतता लगी होगी तभी तो छूटी होगी न? स्वभावका आकर्षण हुआ होगा, तभी तो बाह्य वैभव और विभावकी ओर आकर्षण छूटा होगा न? अंतरमें भगवान आत्माका सम्यग्दर्शन होनेपर अनन्त आनन्दकी महिमा उसे पर्यायमें प्रगट भासित होती है।

'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' कहा है न? संख्यासे ज्ञानादि अनन्तानन्त गुणोंका स्वामी ऐसे निज ज्ञायक भगवान आत्माको विकल्प तोड़कर ध्यानमें लेनेसे—स्वरूपमें स्थिर होनेसे—पर्यायमें सम्यग्दर्शनकी जो महिमा निर्मलता प्रगट होती है उसमें सर्व गुणोंका—प्रत्येक गुणका—यथासम्भव निर्मल अंश व्यक्तरूपसे—प्रगटरूपसे वेदनमें आता है। भले उसे सर्व गुणोंके नाम न आते हों, सर्वगुणोंके नाम भाषामें होते भी नहीं हैं, तथापि उनका संवेदन तो होता ही है।

अहा! अनंतका अनंतके साथ गुणा करो तब भी संख्या-अपेक्षासे जिनकी अनंतताको नहीं पहुँचा जा सकता ऐसे आकाशप्रदेशोंकी अपेक्षा भी जिसमें अनन्तगुने गुण हैं, ऐसे निज ज्ञायक भगवानका अंतरमें पता लगाने जाय वहाँ आत्माकी अद्भुत महिमा भासित होनेसे विकल्प टूटकर निर्विकल्प दशा हो जाती है—अतीन्द्रिय आनन्दकी झिरें फूट पड़ती हैं। इसलिये हे जीव! तू ऐसे आश्चर्यकारी आत्माकी महिमा लाकर, अपने स्वयंसे उसकी पहिचान करके, उसकी प्राप्तिका अपूर्व पुरुषार्थ कर।

'तू स्थिरता-अपेक्षासे बाहरका सब छोड़ न सके तो श्रद्धा-अपेक्षासे तो छोड़! छोड़नेसे तेरा कुछ नहीं जायगा, उलटा परम पदार्थ—आत्मा—प्राप्त होगा।

शुभरागके सूक्ष्म विकल्पसे लेकर चक्रवर्तीका पूरा राज्य–वह सब मेरा नहीं है, मुझमें नहीं है, मैं उसका स्वामी नहीं हूँ, मैं तो उनसे अत्यन्त भिन्न मात्र ज्ञाता ही हूँ,—ऐसी अंतरप्रतीति करके तू श्रद्धा-अपेक्षासे बाहरका सब छोड़ दे। प्रथम श्रद्धा-अपेक्षासे छूटता है। निचकी भूमिकामें अशक्तिके कारण आसक्ति न छूट सके तो प्रथम श्रद्धा-अपेक्षासे तो बाहरका सब छोड़! बाहरका लक्ष, बाहरकी रुचि छोड़नेसे तेरा कुछ भी चला

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं जायगा, उलटा परमपदार्थ—निज ज्ञायक आत्मा—प्राप्त होगा।

दया, दान पूजा, भक्ति, व्रत, तप तथा अन्य किसी प्रकारके रागका मुझे आदर नहीं है, अरे! जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्मका बंध हो वह भाव भी मेरा नहीं है; तीन लोकका नाथ ऐसा जो परमानंदकंद निज ज्ञायकदेव उसके सिवा अन्य किसीका—अरे! भगवानकी भक्तिका भी—मुझे परमार्थसे आदर नहीं है। श्रद्धा-अपेक्षासे भी यह सब छूट गया होनेपर भी सम्यग्दृष्टिको षोडशकारणभावना, पंचमहाव्रतकी भावना आदिके विकल्प आते हैं, क्योंकि अभी अस्थिरताका राग है न? स्थिरता-अपेक्षासे छूटनेमें देर लगे—बाहरका सबकुछ न छोड़ सके—तो 'उस शुभरागसे लेकर चक्रवर्तीका वैभव—यह सब बाहरका मेरा नहीं है, मात्र अतीन्द्रिय आनन्दका नाथ जो निज ज्ञायकदेव वही मेरा है।' इस प्रकार श्रद्धामें तो बाहरका सब छोड़ दे। स्थिरता-अपेक्षासे छोड़ना न हो सके तो श्रद्धा-अपेक्षासे तो छोड़! अशक्तिके कारण स्थिरता-अपेक्षासे बाहरका सबकुछ छोड़नेकी शक्ति न हो तो श्रद्धा-अपेक्षासे छोड़नेवालेको अनुक्रमसे स्थिरताका पुरुषार्थ प्रगट करके अजर-अमर पदकी—मोक्षकी—प्राप्ति होती है। 'दर्शन-प्राभृत'में कहा है न!—

थई जे शके करवुं अने नव थई शके ते श्रद्धवुं;
सम्यक्त्व श्रद्धावंतने सर्वज्ञ जिनदेवे कह्युं।

स्थिरता-अपेक्षासे यदि रागादि भाव नहीं छूट सकते हों तो 'वे भाव छोड़ने योग्य हैं' ऐसी श्रद्धा तो पक्की कर; क्योंकि सर्वज्ञ जिनदेवने श्रद्धावन्तको सम्यक्त्व—मोक्षमहलकी प्रथम सीढ़ी—कहा है।

छोड़नेसे तेरा कुछ चला नहीं जायगा, उलटा परम पदार्थ—आत्मा—प्राप्त होगा। किसी भी प्रकारका विकल्प हो उसे श्रद्धामेंसे छोड़; उसे छोड़नेसे तेरा कुछ चला नहीं जायगा, उलटा, तुझे अंतरमें भगवान आत्मा—तेरा ज्ञायक परमात्मा—प्राप्त होगा। स्तवनमें आता है न!—

लागी लगन हमारी जिनवर सुयश सुना मैं; लागी०
काहूके कहें कबहूँ न छूटे, लोकलाज सब डारी;
जैसे अमली अमल करत समै, लगी रहे खुमारी। जिन०

अफीम पीनेवालेको जैसे कसुंबाकी खुमारी—नशा—चढ़ जाती है वैसे ही हमें अपना ज्ञायकदेव देखनेसे, उसका सुयश सुननेसे, उसकी लगन लगनेसे अंतरमें खुमारी चढ़ गई है। 'काहूके कहें कबहूँ न छूटे, लोकलाज सब डारी;' दुनिया क्या कहेगी वह उसके घर रही; तू श्रद्धामेंसे शुभरागसे लेकर सब छोड़ दे, अरे! निर्मलपर्याय भी अंश है, उसके लक्षसे भी विकल्प उठते हैं, इसलिये उसका आश्रय भी श्रद्धामेंसे छोड़। श्रद्धा तो मात्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रिकालशुद्ध अभेद ज्ञायकसामान्यको ही स्वीकारती है। उस अपेक्षासे तू सबको—यह शरीर, वाणी आदि पर वह मैं नहीं हूँ, रागादि विभाव वह मैं नहीं हूँ, ज्ञानका क्षयोपशम भाव वह मैं नही हूँ, एकसमयकी जो पर्याय जितना मैं नहीं हूँ इस प्रकार सबको—छोड़ दे। श्रद्धा तो त्रैकालिक ज्ञायकको ही स्वीकार करती है। सम्प्रदायकी दृष्टिवालोंको यह सब कठिन लगता है, परन्तु वह दृष्टि तो अनादिकी है। यहाँ तो कहते हैं कि—तू स्थिरता-अपेक्षासे बाहरका सब न छोड़ सके तो श्रद्धा-अपेक्षासे तो छोड़! छोड़नेसे तेरा कुछ चला नहीं जायगा, उलटा परम पदार्थ—परमानन्द पिण्ड ज्ञायक आत्मा—प्राप्त होगा।

देव–शास्त्र–गुरुकी महिमा अपार है, अंतरमें शुद्धात्माकी महिमा लाकर उसीका ध्येय रखना; निरंतर उसीका भेदज्ञान करनेका प्रयास करना। वही करना है। जैसे स्फटिक स्वभावसे निर्मल है, परन्तु लाल–पीले फूलोंकी छायामें वह लाल–पीला दिखायी देता है, तथापि वस्तुतः वह कहीं मैला (लाल–पीला) नहीं हुआ है; उसी प्रकार चैतन्यपदार्थ स्वभावसे निर्मल है परन्तु उसकी परिणतिमें क्लेशकी कालिमाके कारण अनेक प्रकारके विभाव दिखायी देते हैं, तथापि वस्तुतः वह कहीं मैला नहीं हो गया है, अंतरमें दृष्टि करे तो शुद्ध है। इसलिये शुद्धात्मा पर दृष्टि करके, उसीकी लगन लगातार लगे तो वह निर्विकल्प तत्त्व—स्वानुभूति—प्राप्त हुए बिना नहीं रहेगा। गुरुदेवने स्वानुभूतिकी बात प्रगट करके सारे भारतके जीवोंको जाग्रत किया है। गुरुदेवका परम उपकार है। —*बहिनश्री चम्पाबेन.*

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१३३

दिनांक २८-१०-७८

वचनामृत–३५०

जीवोंको ज्ञान और क्रियाके स्वरूपकी खबर नहीं है और 'स्वयं ज्ञान तथा क्रिया दोनों करते हैं' ऐसी भ्रमणाका सेवन करते हैं। बाह्य ज्ञानको, भंगभेदके प्रश्नोत्तरोंको, धारणाज्ञानको वे 'ज्ञान' मानते हैं और परद्रव्यके ग्रहण-त्यागको, शरीरादिकी क्रियाको, अथवा अधिक करें तो शुभभावको वे क्रिया कल्पते हैं। 'मुझे इतना आता है, मैं ऐसी कठिन क्रियाएँ करता हूँ' इस प्रकार वे मिथ्या संतोषमें रहते हैं।

ज्ञायककी स्वानुभूतिके बिना 'ज्ञान' होता नहीं है और ज्ञायकके दृढ़ आलम्बन द्वारा आत्मद्रव्य स्वभावरूपसे परिणमित होकर जो स्वभावभूत क्रिया होती है उसके सिवा 'क्रिया' है नहीं। पौद्गलिक क्रिया आत्मा कहाँ कर सकता है? जड़के कार्यरूप तो जड़ परिणमित होता है; आत्मासे जड़के कार्य कभी भी नहीं होते। 'शरीरादिके कार्य मेरे नहीं है और विभावकार्य भी स्वरूप परिणति नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ'—ऐसी साधककी परिणति होती है। सच्चे मोक्षार्थीको भी अपने जीवनमें ऐसा घुँट जाना चाहिये। भले प्रथम सविकल्परूप हो, परन्तु ऐसा पक्का निर्णय करना चाहिये। पश्चात् जल्दी अंतरका पुरुषार्थ करे तो जल्दी निर्विकल्प दर्शन हो, देर करे तो देरसे हो। निर्विकल्प स्वानुभूति करके, स्थिरताका बढ़ाते–बढ़ाते, जीव मोक्ष प्राप्त करता है। —इस विधिके सिवा मोक्ष प्राप्त करनेकी अन्य कोई विधि नहीं है। ३५०.

"जीवोंको ज्ञान और क्रियाके स्वरूपकी खबर नहीं है और 'स्वयं ज्ञान तथा क्रिया दोनों करते हैं' ऐसी भ्रमणाका सेवन करते हैं।"

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अज्ञानी जीवोंको ज्ञानका स्वरूप क्या और क्रियाका स्वरूप क्या—उसकी तो खबर नहीं है और बहिर्लक्षी शास्त्रके जाननेको तथा रागकी क्रियाको धर्म मानते हैं, वह उनकी भ्रमणा है।

"बाह्य ज्ञानको, भंगभेदके प्रश्नोत्तरोंको, धारणाज्ञानको वे 'ज्ञान' मानते हैं और परद्रव्यके ग्रहण–त्यागको, शरीरादिकी क्रियाको, अथवा अधिक करें तो शुभभावको वे 'क्रिया' कल्पते हैं।"

बाह्य ज्ञान अर्थात् शास्त्रोंका ज्ञान, शब्दज्ञान; भंगभेदके पहाड़े अर्थात् गति–आगतिके बोल, जीवस्थान–गुणस्थान–मार्गणास्थान आदि भंगभेदके प्रश्नोत्तरोंको याद कर रखना। धारणाज्ञान अर्थात् इन भंगभेदको स्मरणमें रख लेना; ऐसे बहिर्लक्षी ज्ञानको अज्ञानी जीव 'ज्ञान' मानते हैं और स्त्री–पुत्र–लक्ष्मी आदि परद्रव्यके त्यागको तथा देव–शास्त्र–गुरु आदि परद्रव्यके ग्रहणको, मन–वचन–कायाकी क्रियाको अथवा अधिक तो अंतरमें होनेवाले शुभभावोंको वे 'क्रिया' कल्पते हैं—मानते हैं। समयसारके बंध अधिकारमें कहा है न! कि—आचारांग आदि शब्दश्रुत वह ज्ञान है, जीव आदि नवपदार्थ दर्शन है और छह जीव निकाय चारित्र है—इस प्रकार व्यवहार है। अज्ञानी जीव शुभाशुभ कर्मसे छूटनेके हेतुरूप, ज्ञानमात्र, भूतार्थ (निश्चय) धर्मको श्रद्धता, जानता, अनुभवता नहीं है, परन्तु भोगके निमित्तरूप शुभकर्ममात्र, अभूतार्थ (व्यवहार) धर्मको ही श्रद्धता–जानता–अनुभवता है; इसलिये वह अभूतार्थ धर्मके श्रद्धान, प्रतीति, रुचि और स्पर्शनसे नववें ग्रैवेयकके भोगमात्रको प्राप्त करता है परन्तु कदापि कर्मसे नहीं छूटता।

"'मुझे इतना आता है, मैं ऐसी कठिन क्रियाएँ करता हूँ' इस प्रकार वे मिथ्या संतोषमें रहते हैं।"

अज्ञानी जीवोंमें कितनोंको तो पढ़ना–विचारना आदि परलक्षसे होता है। अंतरमें गहरे–गहरे तो उनको ऐसा होता है कि कोई पूछे तो तुरन्त उसका उत्तर देना आये, उपदेश देना आये, सभाको रंजित करना आये। अरेरे! जीव कहीं न कही रुक जाता है न! मुझे इतना तो आता है न? दूसरोंको कहाँ यह सब आता है? कोई पूछे तो 'ऐसा है और वैसा है' इस प्रकार झटसे उत्तर देना मुझे आता है, मैं ऐसी व्रत–उपवासादिकी कठिन क्रियाएँ करता हूँ'—इस प्रकार बाह्य ज्ञानमें और शुभक्रियामें ज्ञान और चारित्र मानकर व्यर्थ ही सन्तुष्ट होता है, आत्माश्रित प्रगट होनेवाला जो वास्तविक ज्ञान और चारित्र उसकी उसे खबर नहीं है, और 'स्वयं ज्ञान तथा क्रिया दोनों करता है' ऐसी भ्रमणाका सेवन करता है।

"ज्ञायककी स्वानुभूति बिना 'ज्ञान' होता नहीं है और ज्ञायकके दृढ़ आलम्बन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्वारा आत्मद्रव्य स्वभावरूपसे परिणमित होकर जो स्वभावभूत क्रिया होती है उसके सिवा 'क्रिया' है नहीं।''

शरीरादिक पर और रागादि विभावसे भिन्न त्रिकाल शुद्ध परमानन्दकन्द निज ज्ञायककी जो स्वानुभूति—यथार्थ श्रद्धा और ज्ञानपूर्वक ज्ञायकका अनुभव—उसके बिना 'ज्ञान' नहीं होता; और ज्ञायकके दृढ़ आलम्बनसे अपना आत्मा स्वभावरूप परिणमित होकर जो स्वरूपरमणतारूप स्वभावभूत क्रिया हो उसके सिवा 'क्रिया' अर्थात् चारित्र है नहीं। अभी तो जीवोंको यह भी खबर नहीं है कि ज्ञान और क्रिया किसे कहा जाय। पं. राजमलजीने समयसार–कलशटीकामें कहा है कि—'अजीव पदार्थको—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, कालको—और संसारी जीवको भी सुख नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, इसलिये उनको 'सार'पना घटित नहीं होता। शुद्ध जीवको सुख है, ज्ञान भी है, उसे जाननेसे—अनुभवनेसे जाननहारको सुख है, ज्ञान भी है, इसलिये शुद्धजीवको 'सार'पना घटता है।' ज्ञान कब होता है और सुख कब होता है? तो कहते हैं कि–'धर्मास्तिकाय है, अधर्मास्तिकाय है, आकाश है, काल है, छहकायके जीव हैं, पुद्गलस्कन्ध हैं' ऐसे परको जाननेसे—परलक्षी ज्ञानसे—जाननहारको कहीं ज्ञान और सुख नहीं है, परन्तु अंतरमें भगवान ज्ञायक आत्मा स्वभावसे ही ज्ञान और सुख है ऐसी स्वानुभूति हो वही 'ज्ञान' है और स्वानुभूति होनेपर साथमें जो निराकुल आह्लाद प्रगट हो वही 'सुख' है। भले ही ग्यारह अंग पढ़ ले, समयसारादि समस्त शास्त्र कण्ठस्थ कर ले परन्तु वह परलक्षी जानना वह 'ज्ञान' नहीं है। परलक्षी जाननेमें जैसे 'ज्ञान' नहीं है वैसे ही सुख भी नहीं है। ज्ञानानन्दस्वभावसे भरे हुए निज ज्ञायक समुद्रके सन्मुख होकर उसकी जो स्वानुभूति—स्व अर्थात् ज्ञायक, उसका अनुसरण करके, उसके आश्रयसे अनुभव—हो उसे 'ज्ञान' कहा जाता है।

अरेरे! जीव कहाँ और कहाँ अटक जाता है! किंचित् शास्त्रोंकी जानकारी हुई वहाँ 'मुझे आता है, मैं दूसरोंकी अपेक्षा कुछ अधिक जानता हूँ' इस प्रकार जानपनेके अभिमानमें अटक गया। भाई! वह परसत्तावलम्बी धारणा कहीं ज्ञान नहीं है, परन्तु अंतरमें चैतन्यरसकन्द निज ज्ञायकके अवलम्बनसे जो आनंदझरती स्वानुभूति हो वह 'ज्ञान' है। वास्तवमें तो बहुधा ऐसी बात है कि जिसे स्वसन्मुखतापूर्वक निज चैतन्यमूर्तिका ज्ञान नहीं है उसे जितना पर सम्बन्धी ज्ञानके क्षयोपशमका विकास हो उतना 'मुझे आता है' ऐसा अभिमान विकसित होता है।

आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है, 'ज्ञ' स्वरूपी भगवान आत्माके सन्मुख होकर, रागके तथा शास्त्रोंकी पढ़ाईके साथ भी एकता तोड़कर जो स्वानुभूति हो उसे भगवान 'ज्ञान' कहते हैं। अहा! ऐसी बातें हैं; मार्ग कोई अन्य प्रकारका है! 'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपजायो', ग्यारह अंग और नव पूर्वकी लब्धि हुई, परन्तु वह कोई 'ज्ञान' नहीं है। जिस ज्ञानमें आनन्दसे ओतप्रोत स्वानुभूति न हो उसे 'ज्ञान' कौन कहे? वह परलक्षी ज्ञान भवका छेद नहीं करता। पढ़ाईके ज्ञानसे भी विमुख तथा अंतरस्वभावोन्मुख होनेसे जो स्वानुभव हो वही 'ज्ञान' है, शेष सब व्यर्थका अज्ञान है।

जैसे ज्ञायककी स्वानुभूति बिना जो ज्ञेयसत्तावलम्बी बहिर्लक्षी विकास वह ज्ञान नहीं है वैसे ही ज्ञायकके दृढ़ अवलम्बनसे आत्मद्रव्य स्वभावरूपसे परिणमित होकर जो स्वभावभूत क्रिया हो उसके सिवा 'क्रिया' है ही नहीं। 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः' आता है न? वहाँ ज्ञान और क्रिया किसे कहना वह बात यहाँ चल रही है। शास्त्रोंकी बहिर्लक्षी धारणा वह 'ज्ञान' नहीं है और ज्ञायककी प्रतीति तथा रमणताके बिना जो दया–दान, व्रत–तप या भक्तिकी क्रिया वह 'क्रिया' नहीं है। संवत् १९९० में सम्प्रदायके एक साधुने पूछा था—ज्ञान और क्रियाका क्या अर्थ है? तो कहा कि–शरीरादि और रागादिसे भिन्न ज्ञानस्वरूप निज आत्माका बोध वह 'ज्ञान' और आत्माके अवलम्बनसे जो स्वरूपरमणता हो वह 'क्रिया' है, यह दया–दानादि शुभरागके परिणाम अथवा बाहरकी चर्या वह कोई 'क्रिया' नहीं है। उत्तर सुनकर वे साधु आश्चर्यमें पड़ गये और बोले—ऐसा अर्थ हमने कभी कहीं नहीं सुना, परन्तु आपने कहा वही सच्चा अर्थ लगता है। उन्होंने ऐसा भी कहा कि—शास्त्रमें जिनप्रतिमा है, परन्तु हमारा जीवन शंकामें गया, सम्प्रदायमें फँस गये। 'जेहिं वासे वसइ णरो, जेहिं कुले समुप्पण्णो.....अण्णोण्णं अणुमण्णइ।'–जिस कुलमें जन्म लिया और जिस वासमें—सम्प्रदायमें—बसा उसीका जीव मानता है, अन्योन्य पुष्टि करते हैं, सत्य क्या है उसकी खबर या खोज नहीं है।

अब तो बहुतोंको लगा है कि सोनगढ़में कोई अलग बात चलती है। हाँ, भाई! जगतमें अन्यत्र चलती है उसकी अपेक्षा यह बात अलग है। दुनियामें क्या चलता है यह सब खबर है। जैनके सब सम्प्रदायोंमें तो ऐसा चलता है कि–छह कायके जीवोंको जानना वह 'ज्ञान' और उनकी दया पालना वह 'क्रिया;' भाई! लोग मानते हैं वह 'ज्ञान' और 'क्रिया' नहीं है, परलक्षी शास्त्रज्ञानसे भी विमुख होकर अंतरमें पूर्णानन्दकन्द चैतन्य ज्ञायक प्रभुके सन्मुख जानेसे जो अतीन्द्रिय आनन्दयुक्त स्वानुभव हो उसे 'ज्ञान' कहते हैं और चैतन्य ज्ञायक प्रभुके दृढ़ आलम्बनसे जो स्वरूपस्थिरतारूप परिणमन हो उसे 'क्रिया' कहते हैं, इसके सिवा बाह्यमें या शुभभावमें 'ज्ञान' और 'क्रिया' नहीं है।

'पौद्गलिक क्रिया आत्मा कहाँ कर सकता है?'

भगवानकी पूजा, गुरुकी सेवा, सामायिक, प्रतिक्रमण, तीर्थयात्रा उपवास, वंदना आदिमें होनेवाली शरीर या वाणीकी क्रिया तो पुद्गलकी पर्याय है। उसे आत्मा कहाँ कर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सकता है? आत्मा मात्र अपने अशुभ, शुभ या शुद्धपरिणाम कर सकता है, परका कुछ नहीं कर सकता। पूजामें खड़े रहना, यात्रा या विहारमें चलना, उपदेशमें वाणी बोलना आदि जड़की क्रिया आत्मा कदापि नहीं कर सकता, परन्तु 'शरीर और वाणीकी क्रिया मैं करता हूँ' ऐसी जीवको भ्रान्ति है और वही संसारपरिभ्रमणका कारण है।

जड़के कार्यरूप तो जड़ परिणमित होता है, आत्मासे जड़के कार्य कभी नहीं होते।

भाषारूपसे तो शब्दवर्गणाके पुद्गल परिणमित होते हैं; आत्मा उपदेशकी भाषा नहीं कर सकता। परके कर्तृत्वके अभिमानी जीव अंतरमें 'हमने उपदेश देकर बहुतोंको समझाया, न्यायालयमें बहस करके न्यायाधीशको प्रभावित किया, सभाओंमें भाषण देकर जनजागृतिके अनेक कार्य किये'—ऐसा अहंकार करते हैं, किन्तु भाई! परके कर्तृत्वका वह सब अभिमान तो मिथ्यात्वका महापाप है। भाषारूप जड़के कार्यरूप तो जड़ परिणमता है, उसमें तूने क्या किया? तूने तो कर्तृत्वका अभिमान किया। आत्मा जड़के कार्य कभी कर नहीं सकता।

प्रश्न:—रोटीके टुकड़े कौन करता है?

उत्तर:—परमें आत्मा कुछ भी कर सके यह बात बिलकुल हराम है। रोटीके टुकड़े होनेरूप कार्यरूप तो रोटीके पुद्गल परिणमते हैं, आत्मा नहीं। आँखकी पलकें हिलाना भी आत्माके हाथकी बात नहीं है, क्योंकि वह अजीव पदार्थ कहीं कार्यरहित नहीं है, अपने परिणमनरूप कार्य वह स्वयं ही करता है, उसमें आत्मा कुछ नहीं कर सकता। आत्मा अपने परिणामके सिवा और कुछ नहीं कर सकता।

"'शरीरादिके कार्य मेरे नहीं हैं और विभावकार्य भी स्वरूपपरिणति नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ'—ऐसी साधककी परिणति होती है।"

दया, दान, व्रत, तप तथा ईर्या आदि समितिमें जो बाह्यक्रिया है वह शरीरकी है, आत्माकी नहीं है; और भक्ति, पूजा, उपदेश आदिमें जो वचनोच्चार है वह क्रिया शब्दवर्गणाकी है, आत्मा शब्दवर्गणाको भाषारूप नहीं कर सकता; तथा दया, दान या पूजा, भक्ति आदि प्रसंगों पर अंतरमें जो शुभभाव है वह जीवका विभावकार्य है, स्वरूपपरिणति नहीं है। आत्मा तो पर तथा परके कार्योंसे और अपने शुभाशुभ विभावोंसे भिन्न मात्र ज्ञायक ही है। त्रिकालशुद्ध निज ज्ञायकतत्त्वकी अंतरमें सम्यक् श्रद्धा और ज्ञानपूर्वक रमणतारूप दशा वह स्वरूपपरिणति है। साधक जीवको ऐसी स्वरूपपरिणति सतत धारावाही होती है।

वन्दना, नमस्कार.....आदि शरीरकी क्रिया तो पुद्गल द्रव्यकी परिणति है, उसे अशरीरी ज्ञानस्वरूप आत्मा किस प्रकार कर सकता है? आत्मा पुद्गल या उसकी क्रियाको स्पर्शता भी नहीं है। समयसारकी तीसरी गाथाकी टीकामें कहा है—जीव-पुद्गलादि षट्-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्यस्वरूप लोकमें जो भी जितने पदार्थ हैं वे सब अपने-अपने गुण-पर्यायोंरूप धर्मको चूमते हैं परन्तु परस्पर एक-दूसरेको नहीं चूमते। प्रत्येक रजकण एक-दूसरेका स्पर्श नहीं करता तो आत्मा शरीरका या उसकी क्रियाका स्पर्श कैसे करेगा? आत्मा शरीर या वाणीकी क्रियाका तो कर्ता है ही नहीं, परन्तु अपने अंतरमें जो शुभाशुभ विकल्प उठते हैं वह भी विभावपरिणति है, स्वरूपपरिणति नहीं। शुभ और अशुभ दोनों भाव विभावरूप चाण्डालिनीके पुत्र हैं। अहा! बात तो सूक्ष्म है, मार्ग कोई अलग है, भाई! इस एक वाक्यमें अत्यन्त गहरे भाव हैं, वे समझने योग्य हैं।

जैसे देखकर चलना, विचार कर बोलना आदि जड़के कार्य जीवके नहीं हैं, वैसे ही उसके लक्षसे होनेवाले विभावकार्य भी आत्माकी स्वरूपपरिणति नहीं है, आत्मा तो मात्र ज्ञायकचन्द्र—ज्ञायकसूर्य है, मात्र ज्ञाता–द्रष्टा है। ज्ञायक जगतकी वस्तुओंका—परज्ञेयोंका—ज्ञाता होनेपर भी ज्ञान—जाननेरूप परिणमन—ज्ञेयका नहीं है, ज्ञाताका है। ज्ञानीको भूमिकानुसार दया, दानादिकी विभावपरिणति होती है परन्तु वे उसे हेयरूप जानते हैं, वह विभावपरिणति जीवका स्वभाव नहीं है। पूर्णानन्दका नाथ ऐसा जो निज चैतन्यभगवान वही एक आदरणीय, उपादेय, सत्कार–स्वीकार करने योग्य है, उसके सिवा पूजा–भक्ति आदिकी जितनी बाह्यक्रिया है वह जीवका कार्य नहीं है और अंतरमें जो शुभभाव हों वह भी चैतन्यकी स्वरूपपरिणति नहीं है। 'उन सबसे भिन्न मैं तो मात्र ज्ञायक हूँ' ऐसा जिसकी परिणतिमें सतत वर्तता है वह जीव साधक है, धर्मी है। चतुर्थ गुणस्थानसे लेकर बारहवें गुणस्थान तक साधक हैं; उन सबकी परिणति सतत धारावाही यथासंभव ज्ञातारूपसे ही वर्तती है। अहा! यह तो कोई पुस्तक प्रगट हो गई है। अनेक पढ़ते हैं, वेदान्ती आदि जैनेतर भी पढ़ते हैं। भाषा गुजराती और वह भी सादी, परन्तु इसके भाव अति उच्च हैं। सूक्ष्म बात है भगवान! क्या कहें? जो भाव यहाँ कहना चाहते हैं उन्हें बराबर समझना। अपनेसे समझना, परसे नहीं। 'गुरु ऐसा कहते हैं' इस प्रकार परलक्षसे समझना वह भी परलक्षी ज्ञान है, आत्मज्ञान नहीं है। आत्मसन्मुखतापूर्वक जो स्वानुभूति हो वह 'ज्ञान' और उसमें रमणतारूप जो स्थिरता हो वह 'क्रिया' है। भाषा सादी और भाव कुछ और ही प्रकारके! ऐसी साधककी परिणति होती है।

'सच्चे मोक्षार्थीको भी अपने जीवनमें ऐसा घुँट जाना चाहिये।'

'यह शरीर तथा वाणी आदिकी क्रिया मेरी नहीं है और पुण्य–पापके विभाव भी मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो मात्र ज्ञानानन्दका कन्द भगवान आत्मा हूँ' ऐसा रटन सच्चे मोक्षार्थीको अपने जीवनमें हो जाना चाहिये। सच्चे मोक्षार्थीकी बात है, परन्तु जो निज मतिकल्पनासे वर्ते, वस्तुके स्वरूपको न जाने, अंतरमें अनेक शल्यें हों—जानने की शल्य,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दुनियाको समझा सकनेकी शल्य, दुनियाको समझा सकनेके अभिमानकी शल्य, बाह्य आचरणसे अपनी बड़ाईको पोषनेकी शल्य हो—ऐसे कल्पित मोक्षार्थीकी बात नहीं है। अहा! भगवान तो ऐसा कहते हैं कि—हमारे समक्ष देखनेसे तुझे जो ज्ञान होता है वह परलक्षी ज्ञान है; उस ज्ञानको हम 'ज्ञान' नहीं कहते, परन्तु अंतरमें अपनी ज्ञायकवस्तुको दृष्टिमें लेकर उसके समक्ष देखनेसे जो ज्ञान हो वह 'ज्ञान' है और निज ज्ञायकवस्तुके प्रबल आलम्बनसे स्वरूपरमणता हो वह 'क्रिया' है। ऐसा त्रिलोकीनाथ भगवानने कहा है।

भाई! मिथ्याश्रद्धाके गर्भमें निगोदके अनंत भव पड़े हैं। प्रभु! तुझे अपने स्वभावकी महिमाकी खबर नहीं है। भवका अंत लाना हो तो यह सब संसारकी मजदूरी—पुण्य–पापके भाव भी संसारकी मजदूरी ही है—छोड़कर आत्मोन्मुख होनेकी क्रिया कर। जिसे संसारसे छूटना है ऐसे सच्चे मोक्षार्थीको 'मेरा क्या होगा, मैं यह शरीर छोड़कर कहाँ जाऊँगा; अकेला आया हूँ, अकेला जाऊँगा और अकेला रहूँगा, अरेरे! परिभ्रमणमें अनन्त जन्म-मरण करके दम निकल गया, मुझे अपना हित करनेके लिये शरीरादि और विभावोंसे भिन्न निज ज्ञायकतत्त्व सन्मुख होनेका अभ्यास करना चाहिये।' ऐसी लगन निरन्तर होती है।

सच्चे आत्मार्थी और साधक जीवको आत्माकी ही मुख्यता होती है। उनकी दृष्टिमें दया–दानादि शुभभावके फलमें मिलनेवाली जो धूल—चक्रवर्तीका राज्य आदि—उसका कोई मूल्य नहीं है; अरे! एक समयकी वर्तमान निर्मल परिणति प्रगटे उसका भी अवलंबनके लिये कोई मूल्य नहीं हैं। आलम्बन हेतु मूल्य है एकमात्र निज ध्रुव त्रिकालशुद्ध सामर्थ्य भरपूर ज्ञायक द्रव्यस्वभावका। जगतमें यह विषय चलता ही नहीं है, परन्तु वस्तु तो ऐसी ही है। मोक्षका जो सच्चा अर्थी हो उसके जीवनमें ऐसा घुँट जाना चाहिये। मेलेमें माताकी अँगुलीसे कोई बच्चा छूट गया हो और 'मेरी माँ, मेरी माँ' ऐसा कहकर रो रहा हो; उससे कोई पूछे—'तेरा नाम क्या?' उत्तरमें कहे–'मेरी माँ'। तेरा गाँव कौन सा? तेरी गली क्या? तेरे माँ–बापका नाम क्या? सब प्रश्नोंका एक ही उत्तर देता है—'मेरी माँ'। उस बच्चेको जैसे 'मेरी माँ' घुँट गया है वैसे ही सच्चे मुमुक्षुको 'मेरा ज्ञायक, मेरा ज्ञायक' ऐसा जीवनमें घुँट जाना चाहिये।

'भले प्रथम सविकल्परूप हो, परन्तु ऐसा पक्का निर्णय करना चाहिये।'

भले ही पहले वह घोंटन रागमिश्रित विचाररूप हो, स्वरूपके आँगनमें आनेपर प्रथम मनके सम्बन्धसे विकल्पसहित घोंटन हो, परन्तु अंतरमें ऐसा दृढ़ निर्णय करना चाहिये कि यह विकल्प भी मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो मात्र ज्ञायक हूँ। 'ज्ञायक मेरा नाथ, ज्ञायक मेरा प्रभु' ऐसा परिणमन भले ही पहले विकल्परहित न हो, तथापि विकल्पकी भूमिकामें भी 'इन समस्त विकल्पोंसे रहित मैं ज्ञायक हूँ, मुझे वहाँ जाना है, इन विकल्पोंमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहने जैसा नहीं है' ऐसा अंतरमें पक्का निर्णय करना चाहिये।

'पश्चात् जल्दी अंतरका पुरुषार्थ करे तो जल्दी निर्विकल्प दर्शन हो, देर करे तो देरसे हो।'

जिसने अंतरमें ऐसा पक्का निर्णय किया है वह आत्मार्थी जीव यदि अंतरमें स्वोन्मुखताका पुरुषार्थ शीघ्र करे तो निर्विकल्प आत्मदर्शन—अतीन्द्रिय आत्मानुभूति—शीघ्र होगा, पुरुषार्थमें विलम्ब करेगा तो विलम्बसे होगा। अंतरमें ज्ञायकके आलम्बनसे जो अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव हो उसे सम्यग्दर्शन और सच्चा ज्ञान कहा जाता है।

अहा! यह मार्ग कोई अलग है भाई! इसमें तो बहुतोंका पानी उतर जाय ऐसा है। विकल्प अर्थात् रागमिश्रित विचार छूटकर परिणति भीतर स्वरूपमें आयी उसे निर्विकल्प आत्मदर्शन कहते हैं। पं. दौलतरामजीके पदमें आता है न!—

हम तो कबहुँ न निज घर आये.....
पर घर फिरत बहुत दिन बीते,
नाम अनेक धराये.....हम तो०

जीव अनादिसे पुण्य और पापकी कथामें, अपने कर्तृत्वके अभिमानमें चढ़ गया है, परन्तु एक समय भी ज्ञानानन्दस्वरूप निज गृहमें कभी नहीं आया। बेनके ४०१वें बोलमें आता है न! कि—ज्ञानी निजस्वरूपमें सम्पूर्णरूपसे स्थिर हो जानेको तरसता है। अरे! यह दया–दानके अथवा पूजा–भक्तिके विकल्प—विभावभाव—हमारा देश नहीं है; इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? शुद्ध चैतन्य ज्ञायकके आलम्बनसे प्रगट होनेवाली अतीन्द्रिय आनन्दरसपूर्ण स्वानुभूति वह हमारा देश है; भक्ति, स्वाध्याय अथवा उपदेशका शुभराग भी परदेश है। रागरूप परदेशमें हमें अच्छा नहीं लगता। यहाँ हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्तगुणरूप हमारा परिवार बसता है वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूपस्वदेशकी ओर जा रहे हैं। हमें त्वरासे अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे बसना है जहाँ सब हमारे हैं। ज्ञाता-द्रष्टापना वह हमारा मूल वतन है, दया-दानादिके विकल्पमें आना वह हमारा मूल वतन नहीं है। अंतरमें वस्तुस्वरूप समझकर भले ही प्रथम विकल्परूप परन्तु पक्का निर्णय करे, और पश्चात् अंतरमें स्वसन्मुखपरिणति करनेका जो शीघ्र पुरुषार्थ करे तो आत्मदर्शन—स्वानुभूति—शीघ्र होगा, विलम्ब करेगा तो विलम्बसे होगा।

प्रथम तो जीवको मनके संगसे—विकल्पसे—ऐसा निर्णय करना कि 'मैं ज्ञायक हूँ, त्रिकाल शुद्ध हूँ, अभेद हूँ।' यद्यपि विकल्प सहित निर्णय वह कोई वास्तविक दर्शन नहीं है, परन्तु पहले वह आता है; पश्चात्, प्रथम इन्द्रियोंके विषयकी ओरकी वृत्ति छूट जाती है और अंतरमें मनके संगसे तत्त्वसम्बन्धी श्रुतके विकल्प रह जाते हैं। तत्त्वनिर्णयके दृढ़ संकल्पसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतरंग पुरुषार्थ करे कि जिससे श्रुतके विकल्प—रागमिश्रित विचार—टूटकर निर्विकल्प अतीन्द्रिय आत्मदर्शन हो। तब उसे धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ कहा जाय।

अहा! लाख या करोड़ शास्त्र पढ़े हों परन्तु वह बहिर्लक्षी विकल्पसहित ज्ञान आत्मानुभूतिका कार्य नहीं करता। बाह्य विषयोंके लक्षसे प्रवर्तती इन्द्रियोंका सम्बन्ध छूटकर अंतरमें मनके संग जो रागके विकल्प उठते हैं उनके द्वारा आँगनमें खड़े रहकर—चैतन्यद्रव्यमें खड़े रहकर—प्रथम द्रव्यस्वभावका पक्का निर्णय करना चाहिये। जवाहिरातसे भरी हुई दुकानके प्रांगणमें आकर पहले निर्णय करे कि—इसमें जवाहिरात भरे हैं, वैसे ही अनंत–अनंत ज्ञानादि गुण-जवाहिरातसे भरा हुआ, आनन्दादि चैतन्यरत्नोंसे परिपूर्ण यह भगवान ज्ञायक आत्मा इतना महान है कि जिसके सामने सिद्धपर्यायका भी मूल्य नहीं है;—ऐसा भले ही पहले सविकल्प हो, परन्तु ऐसा पक्का निर्णय करना चाहिये। पश्चात् अन्तरोन्मुख होनेका पुरुषार्थ शीघ्र करे तो शीघ्र निर्विकल्प आत्मानुभूति होगी और विलम्ब करे तो विलम्बसे होगी।

क्या कहा यह? कि–'इन्द्रियोंके विषय—भगवानके दर्शन करना, वाणी सुनना वे सब इन्द्रियविषय हैं—रोककर मात्र मनके विषयोंमें युक्त होकर विकल्पसे ज्ञायकवस्तुका निर्णय करना। यद्यपि विकल्पसे निर्णय यह कोई वस्तु नहीं है—धर्म नहीं है परन्तु अंतरमें जानेसे पूर्व विकल्पपूर्वक 'मैं मात्र ज्ञायक ही हूँ, विकल्पका अंश भी मेरा स्वभाव नहीं है' ऐसा पक्का निर्णय अंतरमें हो जाना चाहिये। जहाँ विकल्पपूर्वक सच्चा निर्णय भी न हो वहाँ विकल्प तोड़कर एकदम निर्विकल्प नहीं हो सकता। ज्ञायक स्वभावका अंतरमें विकल्पपूर्वक पक्का–दृढ़ निर्णय करनेके पश्चात् अंतरंग पुरुषार्थ शीघ्र करे तो शीघ्र निर्विकल्प आत्मदर्शन हो, विलम्ब करे तो विलम्बसे होगा।

'निर्विकल्प स्वानुभूति करके, स्थिरता बढ़ाते–बढ़ाते, जीव मोक्ष प्राप्त करता है। —इस विधिके सिवा मोक्ष प्राप्त करनेकी अन्य कोई विधि नहीं है।'

क्या कहा? कि–वस्तु प्राप्त होनेके बादकी यह बात है। ज्ञानकी पर्यायमें अनादिसे परका और विभावका प्रेम था, पर ज्ञेयकी और रागकी रुचि थी, वह मिथ्यात्व था। अब उस ज्ञानकी रुचिको ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त गुणोंके पिण्डस्वरूप निज ज्ञायक भगवान आत्माकी ओर ले जाकर—ध्रुव चैतन्य स्वभावको ध्येय बनाकर—निर्विकल्प स्वानुभूति प्राप्त की तब तो अभी धर्मका प्रारम्भ हुआ। पश्चात् ध्येयस्वरूप ज्ञायक आत्मामें रमणता बढ़ाने पर जीव परिपूर्ण शुद्ध दशा अर्थात् मोक्षको प्राप्त करता है।

प्रथम जीवने भगवान आत्माका विकल्पसे निर्णय किया, पश्चात् मनका भी संग छोड़कर निर्विकल्प आत्मानुभव किया। आत्मानुभव होनेपर भी अभी अस्थिरताका राग है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अब उस अस्थिरताके रागका, ज्ञानमें जो, शरीरादि परसे तथा रागादि विभावोंसे बिलकुल भिन्न, निज ज्ञायकस्वरूप अंतरके पुरुषार्थसे ज्ञात हुआ है उसमें रमणता बढ़ाते-बढ़ाते, अत्यन्त नाश करता है और इस प्रकार मोक्षको प्राप्त करता है।

आनन्दका नाथ, सुखका अगाध सागर अनुभवमें आया। 'अनुभवमें आया' अर्थात् एक समयकी पर्यायमें वह सम्पूर्ण द्रव्य आ नहीं जाता, द्रव्य पर्याय जितना नहीं हो जाता, परन्तु त्रैकालिक द्रव्यका पर्यायमें अनुभव हुआ। बिजलीका करन्ट लगने पर जैसे सारे शरीरमें झनझनाहट होती है, वैसे ही पर्यायमें द्रव्यस्वभावका आश्रय करनेसे सम्पूर्ण आत्मामें आनन्दकी झनझनाहट होती है। उसे यहाँ निर्विकल्प दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह निर्विकल्प आत्मदर्शन होनेके पश्चात् भी जो ज्ञायकवस्तु ज्ञानमें स्वानुभवप्रत्यक्ष ज्ञात हुई है उसमें स्थिरता होते–होते मोक्ष हो जाता है। यही एक मोक्षका उपाय है। इसके सिवा मोक्ष—पूर्ण परमानन्ददशा—प्राप्त करनेकी अन्य कोई रीति नहीं है।

अरेरे! जगत कहाँ खड़ा है? काहेमें धर्म मान रहा है? व्रत, तप और भक्तिके भाव भी शुभराग है। परसत्तावलम्बी—परलक्षी शास्त्रज्ञान भी बंधका कारण है, क्योंकि यदि वह बंधका कारण न हो तो उसके द्वारा किंचित् अबंधका अंश आना चाहिये न? अबंधपनेका अंश परलक्षी शास्त्रज्ञानसे नहीं आता, किन्तु अबंधस्वरूप–मुक्तस्वरूप भगवान आत्माके आश्रयसे आता है। त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायकस्वभावके अवलम्बनसे, उसमें 'अहं'पना आये तब, अंतरमें आनन्दकी दशा प्रगट होती है। उसे सम्यग्दर्शन अर्थात् धर्मका प्रथम सोपान कहा गया है। इसके सिवा और सब मात्र बातें हैं।

जिस पूर्णानन्दकन्द ज्ञायकस्वरूपको जाना है, उसीमें फिर रमना, स्थिर होना, विचरना ही मोक्षका उपाय है। जैसे—पशु घास चरते हैं या ढेलोंको? वैसे ही भगवान आत्मा अंतरमें आनन्दको चरे, अतीन्द्रिय आनन्दका भोजन करे, उसे आत्माकी स्थिरता कहा जाता है। वह आत्मस्थिरता—आनन्दनिमग्नता—बढ़ाते-बढ़ाते, जीव मोक्षदशाको प्राप्त करता है। पूर्णानन्दस्वरूप मोक्षदशाको प्राप्त करनेकी यह एक ही विधि है, इसके सिवा अन्य कोई विधि नहीं है। अहा! शब्द इतने हैं परन्तु उनमें गम्भीरता कितनी भरी है?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१३४

दिनांक २९-१०-७८

वचनामृत–३५१

किसी भी प्रसंगमें एकाकार नहीं हो जाना। मोक्षके सिवा तुझे और क्या प्रयोजन है? प्रथम भूमिकामें भी 'मात्र मोक्ष-अभिलाष' होती है।

जो मोक्षका अर्थी हो, संसारसे जो थक गया हो, उसके लिये गुरुदेवकी वाणीका प्रबल स्रोत बह रहा है जिसमेंसे मार्ग सूझता है। वास्तवमें तो अंतरसे थकान लगे तो, ज्ञानी द्वारा कुछ दिशा सूझनेके बाद अंतर ही अंतरमें प्रयत्न करनेसे आत्मा मिल जाता है। ३५१.

'किसी भी प्रसंगमें एकाकार नहीं हो जाना।'

किसी भी बाह्य प्रसंगमें तन्मय नहीं हो जाना। स्त्री, पुत्र, परिवार या व्यापार–धंधेका कोई भी प्रसंग हो उसमें, अपने हितका लक्ष खोकर, ओतप्रोत नहीं हो जाना; अरे! आत्महितके निमित्त ऐसे सच्चे देव-शास्त्र-गुरुकी भक्तिका प्रसंग आया हो तो वहाँ भी एकाकार नहीं हो जाना।

'मोक्षके सिवा तुझे और क्या प्रयोजन है?'

यदि तुझे धर्म और धर्मका फल चाहिये हो तो—धर्म वह मोक्षका मार्ग और फल वह मोक्ष—इसके सिवा तुझे अन्य क्या प्रयोजन है? इसलिये जिससे मोक्ष सधता हो उसके सिवा अन्य किसी भी प्रसंगमें—भावमें एकाकार नहीं हो जाना।

''प्रथम भूमिकामें भी 'मात्र मोक्ष-अभिलाष' होती है।''

'मात्र मोक्ष-अभिलाष' यह शब्द श्रीमद्ने 'आत्मसिद्धि'में जिज्ञासाका स्वरूप बतलाते हुए कहे हैं—

कषायकी उपशान्तता, मात्र मोक्ष-अभिलाष;
भवे खेद अंतर दया, ते कहीऐ जिज्ञास।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्महितके जिज्ञासुको मात्र मोक्षकी भावना होती है, उसके सिवा पुण्य या पुण्यके फलकी—स्वर्ग मिले, राज्य मिले, बड़प्पन मिले, दुनिया मुझे जाने और माने, मुझे कुछ आता है और 'मैं योग्यतावाला हूँ' ऐसा दुनिया जाने ऐसी कोई भी इच्छा—अभिलाषा आत्मार्थी जीवको अंतरसे नहीं होती, वह सब अभिलाषा तो मिथ्या-भ्रम है।

अतीन्द्रिय पूर्ण परमानन्दका आत्मलाभ होना उसका नाम 'मोक्ष' है। दिवालीके दिन वणिक–व्यापारी लिखते हैं न? कि—'शुभ–लाभ'। परन्तु शुभ–लाभ काहेका? धूलका—रुपयोंका? भाई! परसे और रागादि विभावसे भिन्न निज आत्माके अवलम्बनसे प्रगट होनेवाले परमानन्दके स्वरूप-लाभके सिवा जगतमें दूसरा कोई लाभ है ही नहीं। आत्महितका जिज्ञासु जीव कि जिसे आनन्दसागर ऐसे त्रिलोकनाथ निज ज्ञायक भगवानका ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ उसे बाह्य जगतके किसी भी प्रसंगमें एकाकारपना नहीं होता। उसे पत्नी, पुत्र या परिवारके प्रसंगमें तो नहीं परन्तु तत्त्वोपदेशके प्रसंगमें भी एकाकारपना नहीं होता। अरे! उपदेशके शब्दोंमें तो नहीं किन्तु उस समय साथमें जो विकल्प उठते हैं उनमें भी एकाकार नहीं होना; क्योंकि उपदेशकी भाषा तो आत्मासे भिन्न वस्तु है और जो विकल्प है वह भी आत्माका स्वभावभाव नहीं है, विभाव है, बंधका कारण है। 'किसी भी प्रसंगमें.....' कहा है न? धर्मका उपदेश भी एक प्रसंग है न? शुद्धात्माके उपदेशकी अभिलाषा करना वह भी राग है, हानिका कारण है। मोक्षकी अभिलाषा–इच्छा भी हानिका कारण है, क्योंकि वह भी मोक्षको रोकती है।

वास्तवमें तो त्रिकाल शुद्ध निज आत्मवस्तुकी दृष्टि होनेपर, त्रिकालमुक्त ऐसे निज ज्ञायकतत्त्वका अनुभव होनेपर, साधकदशा प्रगट होनेपर 'भव–मोक्षे पण शुद्ध वर्ते समभाव जो'—'मोक्ष करूँ' ऐसी भी उसकी भावनामें कर्ताबुद्धि नहीं है। मैं त्रिकालशुद्ध परमानन्द-पिण्ड ज्ञायक हूँ—ऐसे निज शुद्धात्म वस्तुके श्रद्धान–ज्ञानपूर्वक उसमें स्थिर होनेका जो साधक जीव अंतर्मुख प्रयत्न करता है उसे उसी प्रयत्नके फलरूप परिपूर्ण मोक्षपर्याय स्वयमेव प्रगट होती है, उसे उस स्वभावकार्यके लिये परमार्थसे अन्य किन्हीं साधनोंकी अपेक्षा नहीं है, अरे! 'मैं मोक्षपर्याय करूँ' ऐसी भेदबुद्धि—विकल्पवृत्तिकी भी अपेक्षा नहीं है। त्रिकालशुद्ध द्रव्यस्वभावका पूर्ण आश्रय करता है वहाँ मोक्षभावरुप स्वयं परिणमित हो जाता है।

साधककी दृष्टि निरन्तर ज्ञायक पर ही लगी रहती है। 'निर्मल परिणामको करूँ' ऐसे परिणामके कर्तृत्व पर उसकी दृष्टि नहीं है। 'परिणाम ऐसे करूँ और वैसे करूँ' उसमें तो बुद्धिपर्यायमें तथा भेदमें रुक जाती है; साधकको तो परमपारिणामिक स्वभावका दर्शन और अनुभव हुआ है इसलिये दृष्टिका जोर तो त्रिकालशुद्ध द्रव्य पर ही रहता है, परिणाम ऐसे करूँ और वैसे करूँ—यह बात नहीं रहती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मवस्तुमें जैसे ज्ञान, आनन्द, चारित्र, शान्ति, वीर्य, प्रभुत्व आदि अनन्त गुण हैं वैसे ही एक 'भाव' नामकी शक्ति भी है, जिसके कारण वस्तुमें कोई न कोई अवस्था विद्यमान होती ही है। भावशक्तिके कारण परिणाम होते ही रहते हैं। 'भाव' शक्तिको धारण करनेवाले ऐसे निज ज्ञायक द्रव्यकी दृष्टि और अनुभव जिसे हुआ है उसे वर्तमान निर्मल पर्याय होगी ही। उस परिणामको करूँ—ऐसे भेद-विकल्पकी बात रहती ही नहीं। भाव–शक्तिकी भाँति एक 'क्रिया' शक्ति भी आत्मामें है। उस गुणके धारक गुणीको जिसने दृष्टिमें लिया है उसे उस शक्तिके कारण, पर्यायमें अनादिसे अशुद्ध षट्कारकोंसे जो विकृत अवस्था होती है उससे रहित, निर्मल परिणमन होगा ही। समयसारके परिशिष्टमें, जहाँ ४७ शक्तियोंका वर्णन है वहाँ, 'भाव' शक्तिका दो प्रकारसे वर्णन किया है। एक तो, जिसके कारण द्रव्यको विद्यमान-अवस्थावानपना होता है वह; और दूसरी, कर्ता कर्म, करण आदि षट्कारक अनुसार होनेवाली जो क्रिया उससे रहित भवनमात्रमयी भावशक्ति। अहा! ४७ शक्तियोंका वर्णन अपूर्व है! 'भाव' और 'क्रिया'के उपरान्त कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण—ऐसी षट्कारक-शक्तियोंका भी वर्णन है। अहा! ऐसी अनंतशक्तियोंके धारक ऐसे निज शुद्ध द्रव्यस्वभावको जिसने दृष्टिमें लिया उसे अपने षट्कारकोंके कारण निर्मल परिणति धारावाही होती ही रहती है; उसमें उसे 'यह करूँ और वह करूँ' ऐसे कर्तृत्वके विकल्पोंको स्थान ही नहीं है।

यहाँ तो यह बात चल रही है कि—"किसी भी प्रसंगमें एकाकार नहीं हो जाना, मोक्षके सिवा तुझे और क्या प्रयोजन है? प्रथम भूमिकामें भी 'मात्र मोक्ष-अभिलाष' होती है।" बाहरका तो जिस काल जो होना है वह उसके कारणसे होता ही रहता है, अपने परिणाम यदि द्रव्यके लक्षसे होते हैं तो वे मात्र ज्ञातारूपसे ही होते रहते हैं। इसलिये किसी भी प्रसंगमें—क्षायिक सम्यग्दृष्टि एकावतारी इन्द्र भी अष्टाह्निकामें नन्दीश्वर द्वीपमें जाते हैं और पाँवमें घुँघरू बाँधकर शाश्वत रत्नमयी जिन प्रतिमाओंके सन्मुख नृत्य करते हैं,—ऐसी भक्तिके, स्वाध्यायके या श्रवणके किसी भी प्रसंगमें—अपने ज्ञातास्वभावकी दृष्टि—ज्ञाता परिणति—खोकर एकाकार नहीं हो जाना। ज्ञानीको भी बाहरसे जिनेन्द्रभक्ति, गुरुसेवा आदिका उत्साह दिखता है परन्तु वास्तवमें तो उसे अंतरमें स्वभावोन्मुखताका उत्साह है, परन्तु बहिर्लक्षी लोग उसे देख नहीं सकते। प्रथम भूमिकामें भी मात्र मोक्षकी ही अभिलाषा होती है, बाह्य प्रसंगका प्रेम अंतरमें नहीं होता।

'जो मोक्षका अर्थी हो, संसारसे जो थक गया हो, उसके लिये गुरुदेवकी वाणीका प्रबल स्रोत बह रहा है जिसमेंसे मार्ग सूझता है।'

परम अतीन्द्रिय पूर्णानन्दका आत्मलाभ—परमानन्दस्वरूपकी पूर्ण प्राप्ति—जिसका स्वरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है ऐसे मोक्षका जो कामी हो, जिसे अंतरमें सचमुच संसारकी ही थकान लगी हो, समस्त शुभाशुभ विभावोंमें जिसे दुःख दिखायी देता हो उसके लिये बेनने यहाँकी (गुरुदेवकी वाणीकी) बात कही है। (गुरुदेवकी वाणीका प्रबल स्रोत बह रहा है जिसमेंसे मार्ग सूझता है।) उसका जो स्वयं विचार करे, उसे समझनेका जो प्रयत्न करे, उसे मार्ग सूझता है ऐसा बेनने कहा है। यहाँकी वाणी (गुरुदेवकी वाणी) उसे सुझाती है—यह सब निमित्तकी बातें हैं। अब—

'वास्तवमें तो, अंतरसे थकान लगे तो, ज्ञानी द्वारा कुछ दिशा सूझनेके बाद अंतर ही अंतरमें प्रयत्न करनेसे आत्मा मिल जाता है।'

अंतरसे शुभाशुभ विभाव दुःखरूप लगें तो, ज्ञानीके बतलाये हुए मार्ग द्वारा वस्तुस्वभावकी—आनन्दमूर्ति निजात्मतत्त्वकी—कुछ दिशा सूझनेके पश्चात्, अंतरमें बारम्बार प्रयत्न करने पर भगवान आत्मा प्राप्त हो जाता है, उसकी दृष्टि होने पर अंतरमें उसका अनुभव प्राप्त हो जाता है। यह तो आत्मप्राप्तिकी प्रारम्भिक बात है न! वहाँ 'प्राप्त करनेका प्रयत्न करूँ' ऐसा कथनमें आता है; वास्तवमें तो 'प्रयत्न करूँ' ऐसे 'करनेकी' पर्यायके ऊपर बुद्धि नहीं है। पर्यायमें खड़े रहकर नहीं परन्तु द्रव्यस्वभावमें खड़े रहकर सहज प्रयत्नरूपसे परिणमित होनेपर आत्मा प्राप्त हो जाता है।

*

वचनामृत—३५२

'द्रव्यसे परिपूर्ण महाप्रभु हूँ, भगवान हूँ, कृतकृत्य हूँ' ऐसा मानते होनेपर भी 'पर्यायमें तो मैं पामर हूँ' ऐसा महामुनि भी जानते हैं।

गणधरदेव भी कहते हैं कि 'हे जिनेन्द्र! मैं आपके ज्ञानको नहीं पा सकता। आपके एकसमयके ज्ञानमें समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनंत पर्यायें ज्ञात होती हैं। कहाँ आपका अनन्त-अनन्त द्रव्य-पर्यायोंको जाननेवाला अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान! आप अनुपम आनन्दरूप भी सम्पूर्णतया परिणति हो गये हैं। कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द! इसी प्रकार अनन्त गुणोंकी पूर्ण पर्यायरूपसे आप सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हो। आपकी क्या महिमा करें? आपको तो जैसा द्रव्य वैसी ही एकसमयकी पर्याय परिणमित हो गई है; मेरी पर्याय तो अनन्तवें भाग है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस प्रकार प्रत्येक साधक, द्रव्य-अपेक्षासे अपनेको भगवान मानता होनेपर भी, पर्याय-अपेक्षासे—ज्ञान, आनन्द, चारित्र, वीर्य, इत्यादि सर्व पर्यायोंकी अपेक्षासे—अपनी पामरता जानता है। ३५२.

"'द्रव्यसे परिपूर्ण महाप्रभु हूँ, भगवान हूँ, कृतकृत्य हूँ' ऐसा मानते होनेपर भी 'पर्यायमें तो मैं पामर हूँ' ऐसा महामुनि भी जानते हैं।"

वस्तु—ज्ञायक द्रव्य—शक्तिस्वभावसे तो त्रिकाल शुद्ध परिपूर्ण चैतन्य महाप्रभु है, अनन्त महिमावंत पदार्थ होनेसे 'भगवान' है, कृतार्थ है। अहा! ऐसा अद्भुत पदार्थ कि जो पहले कभी देखा नहीं है, जाना नहीं है, अनुभव नहीं किया, उसका प्रथम 'ज्ञायकप्रभु' ऐसा है' इस प्रकार अनुमानसे निर्णय तो कर। किस प्रकार उसका अनुमान करना?—कि जो कुछ यह जानने–देखनेकी अल्प पर्याय है, वह किस भूमिमेंसे उत्पन्न होती है? वह भूमि कितनी है? वह चैतन्यभूमि ध्रुव तथा परिपूर्ण है। उस ध्रुवधनके आलम्बनसे ही पर्यायमें पूर्णता प्रगटती है। लोग धनतेरसको लक्ष्मीपूजन करते हैं न? वे रुपये, सोना, चाँदी आदि लक्ष्मी तो धूल है, पुद्गल है। सच्ची लक्ष्मी तो अपना ध्रुव ज्ञायक द्रव्य है। उसके आलम्बनसे पर्यायमें निर्मलताकी, आनन्दकी समस्त समृद्धियाँ प्रगट होती हैं।

वस्तुस्वभावसे अपनेको परिपूर्ण चैतन्य महाप्रभु, भगवान और कृतकृत्य जानते होनेपर भी, साधक महामुनि भी, पर्यायसे तो अपनेको पामर जानते हैं; क्योंकि स्थिरताकी पूर्णताका पूरा पुरुषार्थ करना अभी शेष है न? ज्ञानीको अभी अस्थिरता है, शुभाशुभ राग आता है। उसे अशुभराग आये वह तो विष है ही, परन्तु देव–शास्त्र–गुरुकी ओरका अथवा तत्त्वचिंतन और व्रतादिका जो शुभ राग आये वह भी काला नाग लगता है। बेनने कहा है न! कि—हमारा देश तो अंतरमें है कि जहाँ ज्ञान और आनन्दादि हमारा परिवार बसता है; यह पढ़नेका, कहनेका शुभ विकल्प आता है वह परदेश है; अरे! इस परदेशमें हम कहाँ आ पहुँचे? यह विभावभाव हमारा वतन नहीं है, इसमें हमारा परिवार नहीं है। हमें तो अपने शुद्धभावरूप वतनमें जाकर बसना है जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणरूप हमारा समस्त परिवार बसता है।

अरे! स्त्री, बच्चे या परिवारकी तो बात भी क्या करना? वे तो पर वस्तु हैं, तेरा परिवार नहीं हैं, तेरा और उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, तथापि उनके प्रति ममता करके मर गया। शास्त्रमें तो उन्हें 'ठगोंकी टोली' कहा है। 'बच्चे अभी छोटे हैं, व्यापारका कार्य बराबर नहीं चला सकते, हमें उनको अपने अनुभवका लाभ देना चाहिये।'—इस प्रकार मूढ़ मिथ्यादृष्टि जीव अपना अमूल्य मनुष्य जीवन खो देते हैं। ऐसी स्थूल बात तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दूर रही, परन्तु ज्ञानीको अंतरमें जो पढ़ने–विचारनेका शुभराग है वह भी पर्यायमें अपनी अशुद्धता है–पामरता है। द्रव्यस्वभावसे पूर्णानन्द प्रभु होनेपर भी पर्यायमें अपनी अशुद्धता है—पामरता है। ऐसा ज्ञानी बराबर जानता है।

अहा! सम्यग्दर्शन और स्वानुभूतिकी निर्मल पर्याय प्रगट हुई वह तो केवलज्ञानादि पूर्ण पर्यायके अनन्तवें भाग है। कहाँ वह केवलज्ञानरूपी रत्नका महापर्वत और कहाँ यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्नकणिका! सम्यग्दर्शन और स्वानुभवकी पर्यायरूप परिणमित साधक ज्ञानी केवलज्ञानके समक्ष अपनी अल्पता अनुभवते हैं। स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें कहा है न! कि—जो सम्यग्दृष्टि है वह परद्रव्योंमें और परभावोंमें गर्व नहीं करता, उपशमभावोंका चिन्तवन करता है तथा अपने आत्माको तृणतुल्य हलका मानता है; अपना पूर्ण स्वरूप तो अनन्त ज्ञानादिरूप है, परन्तु जबतक उसकी प्राप्ति न हो तबतक वह अपनेको तृणतुल्य लघु मानता है, किसी पदार्थमें गर्व नहीं करता।

महामुनियोंको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आदिकी अलौकिक तथा अभूतपूर्व निर्मल पर्यायें प्रगट हुई हैं, तथापि पर्याय-अपेक्षासे—द्रव्य-अपेक्षासे परिपूर्ण भगवान होनेपर भी—अपनेको पामर जानते हैं। अहा! कहाँ वह केवलज्ञानी भगवानकी पूर्ण पर्याय और कहाँ यह हमारी अल्प पर्याय! अरे! आजकल तो कितनोंको थोड़ा शास्त्रोंका ज्ञान हो जाय, जाननेरूप धारणा हो जाय तो उन्हें ऐसा लगता है कि हम दूसरोंकी अपेक्षा बहुत आगे बढ़ गये हैं। भाई! वह शास्त्रोंका बहिर्लक्षी ज्ञान कोई ज्ञान ही नहीं है, वह तो अज्ञान है, परसत्तावलम्बी जानना है। अंतरमें चैतन्य महाप्रभुका स्पर्श करके, उसका आश्रय करके अतीन्द्रिय आनन्द लेता हुआ जो सम्यग्ज्ञानका अद्भुत और अभूतपूर्व कण प्रगट हो उसे ज्ञान कहा जाता है। आया कुछ समझमें?

साधक जीवको जो सम्यक्त्वरूपी दूजका उदय हुआ है उसे पूर्ण केवलज्ञानरूपी पूनम होना है। जैसे दूजमें पूनम नहीं है, वैसे ही अंतरमें सम्यग्दर्शनरूपी दूज प्रगट हुई है, परन्तु अभी पूनम नहीं हुई है। 'द्रव्यस्वभावसे परिपूर्ण भगवान हूँ' ऐसा प्रत्येक साधक मानता होनेपर भी 'पर्यायसे अपूर्ण हूँ, पामर हूँ' ऐसा बराबर जानता है।

अहा! महामुनि किन्हें कहते हैं? जिन्होंने मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी आदि तीनकषायकी चौकड़ीका अभाव किया है, जिनको आनन्दरसझरते प्रचुर स्वसंवेदनकी मोहर–छाप लगी है ऐसे संत भी ऐसा जानते-मानते हैं कि 'पर्यायमें अभी मैं पामर हूँ'। जिनके आनन्दसागरमें यद्यपि अभी पूनम जैसा ज्वार नहीं आया है, तथापि छठ–सातम जैसा ज्वार तो आया है, अंतरमें अत्यन्त आनन्द उछल रहा है ऐसे साधक मुनि भी अपनेको केवलज्ञानके समक्ष तृणतुल्य पामर मानते हैं, क्योंकि अभी पूर्णता साधना शेष है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

''गणधरदेव भी कहते हैं कि 'हे जिनेन्द्र! मैं आपके ज्ञानको नहीं पा सकता।''

अहा! कहाँ तीनलोक और तीनकालके पदार्थोंको, विश्वके समस्त द्रव्य–गुण–पर्यायोंको, एकसमयमें युगपद् जाननेवाले केवली भगवानका—जिनेन्द्रदेवका—परिपूर्ण ज्ञान और कहाँ हमारा यह क्रमशः प्रवर्तता मर्यादित ज्ञान! समस्त श्रुतके ज्ञाता गणधरदेव भी कहते हैं कि है सर्वज्ञ प्रभु! मैं आपके ज्ञानको नहीं पा सकता।

'आपके एकसमयके ज्ञानमें समस्त लोकालोक तथा अपनी भी अनन्त पर्यायें ज्ञात होती हैं।'

सर्वज्ञस्वभावी भगवान 'आत्माको जब पर्यायमें सर्वज्ञदशा प्रगट होती है, प्राप्तकी प्राप्ति होती है अर्थात् जो ज्ञान शक्तिरूप था वह व्यक्त होता है तब उनका एकसमयका ज्ञानपरिणमन जगतके समस्त द्रव्य–गुण–पर्यायोंको, अपनी भी तीनों कालकी अनन्त पर्यायोंको, समस्त लोकालोकको—सब कुछ—युगपद् जान लेता है।

'कहाँ आपका अनंत–अनंत द्रव्य–पर्याययोंको जाननेवाला अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा अल्प ज्ञान!'

अंतर्मुहूर्तमें बारह अंग और चौदह पूर्वकी रचना करनेवाले गणधरदेव भी ऐसा कहते हैं कि–प्रभु! कहाँ आपका अनंत–अनंत द्रव्योंको तथा उनकी पर्यायोंको एकसाथ जानता हुआ अगाध ज्ञान और कहाँ मेरा यह अल्प ज्ञान! आपके अपार ज्ञानके सामने मेरा ज्ञान तो पामर है।

'आप अनुपम आनन्दरूप भी सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं।'

हे जिनेन्द्रदेव! आप परिपूर्ण ज्ञानरूप तो परिणमित हो गये हैं, परन्तु पूर्ण ज्ञानके साथ अविनाभावी ऐसे अनुपम पूर्णानन्दरूपसे भी सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। पहले अनुपम ज्ञानकी बात कहकर अब कहते हैं कि प्रभु! ज्ञानकी भाँति आप अनुपम आनन्दरूप भी परिणमित हो रहे हैं।

'कहाँ आपका पूर्ण आनन्द और कहाँ मेरा अल्प आनन्द!'

भगवानका पूर्ण परमानन्द और अपना भूमिकानुसार अल्प आनन्द—ऐसे दोनोंका मिलान—तुलना की है। सच्चे भावलिंगी साधुको अंतरमें अपनी दशाके अनुसार आनन्द तो है, भीतर चैतन्य-सरोवरमें आनन्दकी तरंगें उछल रही हैं, तथापि प्रभुके पूर्णानन्दके समक्ष वह अनन्तवें भागका है। अहा! कहाँ सर्वज्ञ परमात्माका पूर्णानन्द और कहाँ मेरा यह अल्प आनन्द!

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'इसी प्रकार अनन्त गुणोंकी पूर्ण पर्यायरूपसे आप सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हो।'

ज्ञान और आनन्द—इन दो गुणोंकी बात कहकर अब कहते हैं कि हे प्रभो! इसी प्रकार आप दर्शन, श्रद्धा, वीर्य, प्रभुत्व आदि अनन्त गुणोंकी पूर्ण पर्यायरूपसे सम्पूर्णतया परिणमित हो गये हैं। कहाँ आपका अनन्तदर्शीरूप पूर्ण परिणमन और कहाँ मेरा अल्पदर्शीरूप परिणमन! कहाँ आपकी पर्यायमें प्रगट हुई अनन्त वीर्यशक्ति और कहाँ मेरा पर्यायमें अल्पवीर्य! आप तो प्रभुत्व, विभुत्व, स्वच्छत्व, प्रकाशत्व आदि अनन्त अनुजीवी स्वभावोंकी पूर्ण पर्यायरूपसे खिल उठे हैं। कहाँ आपका वह पूर्ण विकास और कहाँ मेरा यह अल्प विकास! 'द्रव्यस्वभावसे मैं परिपूर्ण महाप्रभु हूँ' ऐसा मानते होनेपर भी 'पर्यायसे तो मैं अल्प हूँ' ऐसा गणधर भगवान भी जानते हैं।

'आपकी क्या महिमा करें? आपको तो जैसा द्रव्य वैसी ही एक समयकी पर्याय परिणमित हो गई है; मेरी पर्याय तो अनंतवें भाग है।'

हे सर्वज्ञ जिनेन्द्र प्रभु! आपकी क्या महिमा हो? आपको तो, द्रव्यमें जितना सामर्थ्य है वह सब एकसमयकी पर्यायमें पूर्णरूपसे खिल उठा है, जैसा द्रव्य है वैसी ही एकसमयकी पर्याय पूर्णरूपसे परिणमित हो गई है; और मेरी पर्याय तो आपकी अपेक्षा अनन्तवें भाग है। —इस प्रकार ज्ञानी भगवानकी पूर्ण पर्यायके समक्ष अपनेको पामर, अल्प और लघु जानता है। स्वयं शक्ति-अपेक्षासे परिपूर्ण प्रभु होनेपर भी पर्यायमें पामरताका उसे विवेक होता है।

'इस प्रकार प्रत्येक साधक, द्रव्य-अपेक्षासे अपनेको भगवान मानता होनेपर भी, पर्याय-अपेक्षासे—ज्ञान, आनन्द, चारित्र, वीर्य इत्यादि सर्व पर्यायोंकी अपेक्षासे–अपनी पामरता जानता है।'

इस प्रकार प्रत्येक साधक अर्थात् गणधरादि महामुनि भी, अपने आत्माकी पर्यायमें अपूर्णता देखकर, 'केवलज्ञानीकी पूर्ण पर्यायके समक्ष हमारी पर्याय पामर है, अल्प है, हमें पर्यायमें पूर्णता प्रगट करना अभी शेष है' ऐसा बराबर जानते-मानते हैं। यद्यपि दृष्टि-अपेक्षासे तो वे अपनेको 'मैं परिपूर्ण महाप्रभु हूँ, भगवान हूँ, कृतकृत्य हूँ' ऐसा मानते-जानते हैं, तथापि वर्तमान पर्यायमें अभी पूर्णता प्रगट नहीं हुई होनेसे, अपनेको पामर जानते हैं। दृष्टि तो सदा परिपूर्ण द्रव्यसामान्यको ही स्वीकारती है, परन्तु पर्यायमें जितनी अपूर्णता है उसे ज्ञान बराबर जानता है।

जिनको सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है वे सब जीव साधक हैं। उनकी दृष्टिका विषय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एकमात्र अपना परिपूर्ण ज्ञायक भगवान है। द्रव्य-अपेक्षासे उन्हें कुछ करना शेष नहीं है, तथापि पर्याय-अपेक्षासे 'मुझे ज्ञान-आनन्द, स्वरूपरमणता, पुरुषार्थ आदि अनन्तगुणोंकी पर्यायोंमें पूर्णता प्रगट करना शेष है' ऐसी अपनी पामरता जानता है। पर्यायमें अपनेको पामर जानता होनेपर भी 'द्रव्यस्वभावसे मैं परिपूर्ण भगवान हूँ' ऐसा दृष्टिमेंसे किंचित् नहीं हटता।

प्रश्न:—आत्मा आज भी 'भगवान' है?

उत्तर:—आज ही नहीं, तीनोंकाल भगवान है। अरे! जीवको अपनी प्रभुताकी खबर नहीं है; निगोदका जीव भी, जिसको स्वरूपकी विराधनाके कारण पर्यायमें ज्ञानादिका परिणमन अनन्तवें भागका हो गया है, शक्ति-अपेक्षासे परिपूर्ण भगवान है। निगोदके जीव हों या सिद्धके जीव हों—सब वस्तु-अपेक्षासे परिपूर्ण स्वरूप ही हैं। आत्मामें श्रद्धा और ज्ञान ऐसे दो गुण हैं। उनमें जो श्रद्धागुण है वह तो त्रिकालशुद्ध निज ज्ञायकतत्त्वको परिपूर्ण भगवानरूपसे स्वीकारता है और उसके साथ जो ज्ञान है वह त्रैकालिक ध्रुवस्वभावको आश्रय करने हेतु सदा उपादेय जानता है तथा पर्यायमें जो अल्पता है उसे भी जानता है।

ज्ञान और आनन्दादि अनन्त-अनन्त गुणोंकी समृद्धिसे भरा हुआ यह आत्मा भगवान है, पूर्णानन्द प्रभु है,—इस प्रकार सम्यग्दृष्टि साधक जीव अपनेको द्रव्य-अपेक्षासे 'परिपूर्ण परमात्मा' मानता होनेपर भी, पर्याय-अपेक्षासे—भले ही चार ज्ञान विकसित हुए हों, आनन्दसे ओतप्रोत प्रचुर स्वसंवेदन वर्तता हो, स्वरूप-रमणता अत्यन्त बढ़ गई हो, तथापि वह ज्ञान, आनन्दादि, चारित्र और वीर्य इत्यादि समस्त पर्यायोंकी अपेक्षासे—अपनी पामरता जानता है। अहा! ऐसी बात है। आया कुछ समझमें?

*

बाह्यमें देव-शास्त्र-गुरुके समीप निवास करनेकी प्रशस्त भावना ज्ञानीको भी होती है, परन्तु वह बाह्य लोक है। वह प्रशस्त भाव आता होनेपर भी ज्ञानीको चैतन्य-लोकमें बसनेका प्रयत्न चलता रहता है। शुद्धात्म परिणतिरूप—शुद्धात्मानुभूतिरूप लोक वही सच्चा अंतरका चैतन्य-लोक है; उसमें तू निवास कर। 'चिद्परिणतिरूप परिणमना ही सुखी होनेका मार्ग है' ऐसा सच्चा मोक्षमार्ग गुरुदेवने ही बतलाया है। *—बहिनश्री चम्पाबेन.*

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१३५

दिनांक ३०-१०-७८

वचनामृत–३५३

सर्वोत्कृष्ट महिमाका भण्डार चैतन्यदेव अनादि-अनन्त परमपारिणामिकभावमें स्थित है। मुनिराजने (नियमसारके टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेवने) इस परमपारिणामिकभावकी धुन लगायी है। यह पंचमभाव पवित्र है, महिमावंत है। उसका आश्रय करनेसे शुद्धिके प्रारम्भसे लेकर पूर्णता प्रगट होती है।

जो मलिन हो, अथवा जो अंशतः निर्मल हो, अथवा जो अधूरा हो, अथवा जो शुद्ध एवं पूर्ण होनेपर भी सापेक्ष हो, अध्रुव हो और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यवान न हो, उसके आश्रयसे शुद्धता प्रगट नहीं होती; इसलिये औदयिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, औपशमिक भाव और क्षायिक भाव अवलम्बनके योग्य नहीं हैं।

जो पूरा निर्मल है, परिपूर्ण है, परम निरपेक्ष है, ध्रुव है और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यवान है—ऐसे अभेद एक परमपारिणामिकभावका ही—पारमार्थिक असली वस्तुका ही—आश्रय करने योग्य है, उसकी शरण लेने योग्य है। उसीसे सम्यग्दर्शनसे लेकर मोक्ष तककी सर्व दशाएँ प्राप्त होती हैं।

आत्मामें सहजभावसे विद्यमान ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द इत्यादि अनन्त गुण भी यद्यपि पारिणामिकभावरूप ही हैं तथापि वे चेतन द्रव्यके एक–एक अंशरूप होनेके कारण उनका भेदरूपसे अवलम्बन लेने पर साधकको निर्मलता परिणमित नहीं होती।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसलिये परमपारिणामिकभावरूप अनन्तगुणस्वरूप अभेद एक चेतन द्रव्यका ही—अखण्ड परमात्मद्रव्यका ही—आश्रय करना, वहीं दृष्टि देना, उसीकी शरण लेना, उसीका ध्यान करना, कि जिससे अनन्त निर्मल पर्यायें स्वयं खिल उठें।

इसलिये द्रव्यदृष्टि करके अखण्ड एक ज्ञायकरूप वस्तुको लक्षमें लेकर उसका अवलम्बन करो। वही, वस्तुके अखण्ड एक परमपारिणामिकभावका आश्रय है। आत्मा अनन्तगुणमय है परन्तु द्रव्यदृष्टि गुणोंके भेदोंका ग्रहण नहीं करती, वह तो एक अखण्ड त्रैकालिक वस्तुको अभेदरूपसे ग्रहण करती है।

यह पंचमभाव पावन है, पूजनीय है। उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सच्चा मुनिपना आता है, शान्ति और सुख परिणमित होता है, वीतरागता होती है, पंचमगतिकी प्राप्ति होती है। ३५३.

'सर्वोत्कृष्ट महिमाका भण्डार चैतन्यदेव अनादि-अनन्त परमपारिणामिकभावमें स्थित है।'

भगवान ज्ञायक आत्मा सर्वोत्कृष्ट ज्ञानादि अनन्त अनन्त अनन्त गुणमहिमाका भरपूर भण्डार है। अनन्तका अनन्तके साथ अनन्तबार गुणा करो तथापि जिसका अन्त न आये इतने अपार अनन्त गुणोंसे चैतन्यदेव सदा परिपूर्ण है। अनन्त गुणसमृद्धिका भण्डार ऐसा अभेद चैतन्यदेव सम्यग्दर्शनका विषय है। सम्यग्दर्शन धर्मका प्रथम सोपान है। चैतन्य-देव, जो कभी नया नहीं हुआ है इसलिये अनादि है और जिसका कभी विनाश नहीं है इसलिये अनन्त है ऐसे, सहज परमपारिणामिकभावरूप रहा है। अहा! अधिकार तो बहुत उच्च आया है।

परमपारिणामिकभाव अर्थात्, जिसे विभावमें निमित्त ऐसे कर्मोंके सद्भावकी या कर्मोंके अभावकी अपेक्षा नहीं है ऐसा, कर्मनिरपेक्ष सहज स्वभाव। भाव पाँच प्रकारके हैं—औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिकभाव और पारिणामिक भाव। उनमें जो मिथ्यात्व, राग, द्वेषादि औदयिक भाव हैं उनको कर्मका उदय निमित्त है, औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्रमें कर्मका उपशम निमित्त है, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सम्यक्त्व और चारित्रके क्षायोपशमिक भावोंमें उस–उस कर्मका क्षयोपशम निमित्त है, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, सम्यक्त्व, चारित्रादिके क्षायिकभावमें उस–उस कर्मका क्षय निमित्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। इस प्रकार चारों भावोंरूप परिणति कर्मसापेक्ष है और पंचम पारिणामिक भाव अनादि–अनन्त सहज शुद्ध स्वभाव होनेसे उसे कर्मके सद्भावकी या अभावकी—कर्मके उदयकी, अनुदयकी, अंशतः उदय-अनुदयकी या सम्पूर्ण अभावकी—अपेक्षा नहीं है। भगवान ज्ञायक आत्मा द्रव्यस्वभावसे त्रिकाल शुद्ध तथा कर्मनिरपेक्ष होनेसे सदा सहज परमपारिणामिकभावरूप रहा है।

सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज सुख, सहज वीर्यादि अनंत-अनंत गुणोंका आधार ऐसा यह भगवान आत्मा सदा सहज स्वभावभावरूप अवस्थित होनेसे वह पारिणामिकभावरूप है। पारिणामिक अर्थात् वस्तुका सहज स्वभाव, सत्त्व, सत्का भाव, वस्तु पारिणामिकभावरूप होनेपर भी वस्तुरूपसे पलटती–बदलती नहीं है इसलिये वह अपरिणामी भी है। पलटना तो पर्याय-अपेक्षासे है, द्रव्य-अपेक्षासे नहीं है इसलिये वह अपरिणामी है। अहा! पारिणामिक भावको अपरिणामी कहना! यह क्या है? ध्रुव आत्मा त्रिकाल एकरूप सहज स्वभावरूप विद्यमान है इसलिये उसे पारिणामिकभावरूप कहा और वह पलटता नहीं है, पर्यायमें नहीं आता इसलिये उसे अपरिणामी कहा है।

प्रश्न:—पारिणामिकभावरूप रहा होनेपर भी चैतन्य पदार्थको 'अपरिणामी' क्यों कहा?

उत्तर:—पारिणामिकभावमें रहा हुआ—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकी एकतालक्षण परिणाम-प्रवाहमें सदा रहा हुआ—चैतन्य पदार्थ अपने मूल स्वरूपको नहीं छोड़ता इसलिये उसे 'अपरिणामी' कहा है। द्रव्यस्वभावरूप सदा अपरिणामी रहकर अवस्था-अपेक्षासे वह नवीन-नवीन परिणामरूप परिणमता है। अहा, ऐसी वस्तु है।

आत्माके परिणामको, मलिनता-निर्मलता अर्थात् कर्मके उदय या क्षय आदिकी विवक्षारहित, मात्र उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यलक्षण परिणामरूप कहा जाय तो वह पारिणामिकभावरूप है, और परमपारिणामिकभाव तो उत्पाद-व्यय निरपेक्ष त्रिकालशुद्ध ध्रौव्यस्वरूप है। चैतन्यदेव त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यस्वभावरूप सदा अवस्थित है यह बतलानेके लिये उसे 'सहज परमपारिणामिकभावरूप रहा है' ऐसा कहा है। ऐसे तो आत्मामें जो राग–द्वेषके परिणाम हों, मति–श्रुतकी या केवलज्ञानीकी दशा हो उसे भी 'जयधवला'में पारिणामिकभावरूप कही है परन्तु परमपारिणामिकभावरूप नहीं।

प्रश्न:—राग–द्वेषादि तो औदयिकभाव हैं और केवलज्ञान तो क्षायिकभाव है, उन्हें पारिणामिकभावरूप क्यों कहा?

उत्तर:—वे भाव उदय, अनुदय या क्षयरूप कर्मके सम्बन्धसे कहे जायँ तो पारिणामिकभावरूप नहीं हैं, परन्तु उन भावोंको मलिनता–अमलिनताकी मुख्यतासे नहीं, परन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मात्र परिणाम-सामान्यकी मुख्यतासे कहा जाय तो वे पारिणामिकभावरूप हैं। इस प्रकार पारिणामिकभावरूप अवस्थित वस्तुके परिणाम होनेसे, पर्यायको भी पारिणामिकभावरूप कहा है। परन्तु वर्तमान उत्पाद-व्ययरूप परिणामसे निरपेक्ष जो त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यसामान्य है वह तो परमपारिणामिकभावरूप है। अहा! ऐसी वस्तु और ऐसी भाषा! लोगोंको कहाँ समझनेका अवकाश है, वे तो बाहरकी दौड़धूपमें लग रहे हैं।

भाई! मार्ग कोई अलग है। वस्तुके मूलस्वरूपको समझे बिना, मात्र ऊपर–ऊपरसे थोड़ा पढ़ ले तो उससे कार्यसिद्धि नहीं होती। जिसको अंतरमें त्रैकालिक ज्ञायकभावकी खबर नहीं है वह अपने सहज अस्तित्वमें अहंपना छोड़कर शरीर, वाणी आदि परपदार्थोंमें ही अहंपना करता है। उसे ज्यों–ज्यों ज्ञानका परलक्षी विकास होता जाता है त्यों–त्यों अज्ञानजनित अहंकार बढ़ता जाता है। 'मैं सदा परमपारिणामिकभावरूप अवस्थित हूँ' ऐसा धारणाज्ञानमें लक्ष तो हुआ, परन्तु वह धारणा भी भेद, विकल्प और परलक्षी है। ऐसा तो करोड़ों और अरबों श्लोकोंका ज्ञान किया परन्तु वह तो, 'निज कल्पनासे कोटि शास्त्र, मात्र मनका भ्रम हुआ', उसे ऐसा हो गया कि मुझे कुछ ज्ञान प्रगट हुआ है, परन्तु वह तो उसका मिथ्या अभिमान है। त्रैकालिक परमस्वभावका अवलम्बन लेकर जो ज्ञान होना चाहिये वह उसे अंतरसे नहीं हुआ है।

जैसे पंचमहाव्रत या अट्ठाईस मूलगुणके परिणाम वह कोई चारित्र नहीं है, वैसे ही इस परलक्षी शास्त्रज्ञानमें पहाड़े पढ़ गया वह कहीं 'ज्ञान' नहीं है। थोड़ा शास्त्रज्ञान होनेसे लोग उसे 'पण्डित' कहते हैं। लोगोंने तो मोहमदिरा पी रखी है इसलिये पागल हैं; पागल तो पागलकी प्रशंसा करेगा ही न? यहाँ तो कहते हैं कि समस्त विभावरहित चैतन्यदेव अनादि–अनन्त परमपारिणामिक भावरूप अवस्थित है; उसका आश्रय करनेसे धर्मका प्रारम्भ—सम्यग्दर्शन—होता है।

'मुनिराजने (नियमसारके टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेवने) इस परमपारिणामिक भावकी धुन लगायी है।'

नियमसारकी टीकामें टीकाकार मुनिराजने इस परमपारिणामिक भावकी भारी धुन लगायी है। प्रत्येक गाथामें उसका गान किया है। यहाँ बेन उसे याद करके कहती हैं। नियमसारकी ३८वीं गाथामें आत्माको परमपारिणामिकभावरूप बतलाते हुए कहा है न!—

जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो॥

जीवादि बाह्यतत्त्व हेय हैं; कर्मोपाधिजनित गुणपर्यायोंसे व्यतिरिक्त आत्मा आत्माको उपादेय है। एक समयकी पर्याय, चाहे तो संवर-निर्जराकी हो, चार ज्ञानकी हो अथवा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञानकी हो, बाह्यतत्त्व है; इससे वह हेय है; समस्त गुण–पर्यायोंके भेदरहित अपना त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक आत्मा वह अनन्तःतत्त्व है और साधना प्रगट करनेके लिये एकमात्र वही उपादेय है। अहा! केवलज्ञान और मोक्षको भी बाह्य तत्त्व कह दिया। किस अपेक्षासे? जहाँ त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक परमभावको, जिसके आश्रयसे सादि-अनन्त केवलज्ञान और मोक्षकी पूर्ण पर्यायें प्रगट होती हैं, अनन्तःतत्त्व कहा वहाँ उसके आश्रयसे प्रगट होनेवाली वर्तमान पूर्ण पर्यायको भी 'बहिस्तत्त्व' कह दिया। ऐसे तो अन्तःतत्त्व और बहिस्तत्त्व शब्द अनेक अपेक्षासे प्रयुक्त होते हैं। जहाँ आत्माके अतिरिक्त बाहरके कर्म–नोकर्मको बाह्यतत्त्व कहते हैं, वहाँ अपनी पर्यायमें होनेवाले राग–द्वेषादि विभावोंको अन्तःतत्त्व कहते हैं; जब राग-द्वेषकी पर्यायको बहिस्तत्त्व कहते हैं, तब श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र आदिकी निर्मल पर्यायको अन्तःतत्त्व कहते हैं; अब जब उस ज्ञानादिकी पर्यायको भी बाह्यतत्त्व कहते हैं तब अंतरमें जो पूर्णानन्दका नाथ प्रभु ज्ञायक आत्मा है उसे अन्तःतत्त्व कहते हैं कि जिसमें केवलज्ञानादि क्षायिकभावस्वरूप पूर्ण पर्यायोंका भी अभाव है। अहा! जैनदर्शन—वीतरागका तत्त्व—अति सूक्ष्म है। एकसमयकी पूर्ण पर्याय सूक्ष्म है न? तब फिर उस पर्यायसे पार भगवान आत्मा तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है।

पातालमें जैसे गहरे-गहरे पानी होता है, वैसे ही एक समयकी पर्यायसे दूर—गहरे–गहरे तलमें ज्ञानमूर्ति भगवान आत्मा परमपारिणामिकभावरूप अवस्थित है; उसकी तू धुन लगा दे। परमपारिणामिकभावमें 'परम' शब्दका प्रयोग क्यों किया?—क्योंकि औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक तथा औदयिकभावको भी पर्यायकी अपेक्षासे 'पारिणामिक भाव' कहा जाता है; परन्तु वह यहाँ विवक्षित नहीं है; यहाँ तो त्रिकाल शुद्ध परमभाव विवक्षित होनेसे उसे 'परमपारिणामिकभाव' कहा है।

बेनकी सादी भाषामें वह बोल आया है न! कि—'जागता जीव विद्यमान है वह कहाँ जायगा?' 'जागता जीव' अर्थात् त्रैकालिक शुद्ध चैतन्य पारिणामिक स्वभावभाव। वह विद्यमान है न? ध्रुव है न? वह ध्रुव परमपारिणामिकभाव है वह कहाँ जायगा? वह तो सदा ज्योंका त्यों परिपूर्ण है। उसके निर्णयका जो कार्य होता है वह पर्याय है। उस पंचम परमपारिणामिकभावकी श्री पद्मप्रभमलधारिदेवने धुन लगायी है।

'यह पंचमभाव पवित्र है, महिमावंत है।'

अहा! उस पंचम परमभावकी महिमा क्या करें? उपमा देने योग्य जगतके समस्त पदार्थोंके साथ जिसकी तुलना नहीं हो सकती ऐसी जो अनुपम सिद्ध दशा उसकी अपेक्षा भी यह परम पवित्र पंचम पारिणामिकभावकी महिमा अनन्तगुनी है।

'उसका आश्रय करनेसे शुद्धिके प्रारम्भसे लेकर पूर्णता प्रगट होती है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पंचम परमभाव कहो, परमपारिणामिकभाव कहो, द्रव्यदृष्टिके विषयभूत त्रिकालशुद्ध द्रव्यसामान्य कहो, ज्ञायकभाव कहो या भूतार्थ स्वभाव कहो—सबका अर्थ एक ही है। समयसारकी ११वीं गाथामें आया है न! कि—भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।'—'भूतार्थके आश्रित जीव सुदृष्टि निश्चय होय है।' भूतार्थ ऐसा जो त्रिकाल शुद्ध परम-पारिणामिकभाव उसका आश्रय करनेसे, उसका ग्रहण करनेसे, वर्तमान पर्याय उसके सन्मुख ले जानेसे, वर्तमान पर्याय द्वारा उसीमें 'अहं'पना स्थापनेसे सम्यग्दर्शनसे लेकर पूर्णता तक सर्व शुद्धियाँ प्रगट होती हैं।

अनादिसे 'शरीरादि मैं हूँ, यह लक्ष्मी, मकानादि मेरे हैं' ऐसा जो बाह्यमें तथा बहिर्लक्षी धारणा ज्ञानकी पर्यायमें 'अहं'पना है, उसमें अंतर्मुख कुलाँट लगाकर परमस्वभावका—कि जिसमें सिद्धकी अनन्त पर्यायें प्रगट करनेका सामर्थ्य है, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, क्षायिक-सम्यक्त्व इत्यादि अनंत पर्यायें प्रगट करनेकी शक्ति है उसका—आश्रय करनेसे, उसीका अवलम्बन लेनेसे, उसीमें 'अहं'पना धारण करनेसे शुद्धिके प्रारम्भसे लेकर उसकी पूर्णता तक अर्थात् मोक्ष तककी सर्व दशाएँ प्रगट होती हैं।

ज्ञायक परमभावका आश्रय करनेसे प्रथम सम्यग्दर्शनरूप आंशिक शुद्धिका प्रारम्भ होता है; पश्चात् जैसे समुद्रमें ज्वार आये वैसे शुद्धिमें ज्वार आता है। समुद्रमें ज्वार किनारे आता है न? वैसे ही अनन्तगुणका भण्डार स्वरूप परमभावका अंतरमें स्वीकार होकर आश्रय लिया वहाँ पर्यायमें शुद्धिका ज्वार आता है। अहा! शुद्धिका प्रारम्भ और उसकी वृद्धि—सब परमपारिणामिकभावस्वरूप त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक परमभावके आश्रयसे ही होता है। वैसे बाह्यलक्षसे लाखों शास्त्र पढ़े और लाखों-करोड़ों तपस्याएँ करे तथापि अंतरमें शुद्धिका प्रारम्भ भी नहीं होगा।

प्रश्न:—शास्त्र पढ़ना या नहीं?

उत्तर:—जब तक लक्ष ही बाह्यमें—पण्डिताईमें और शुभभावमें—है तब तक शास्त्र पढ़ने-बढ़नेसे कुछ नहीं होगा। स्वलक्ष करानेके लिये शास्त्र पढ़नेको कहा जाता है। प्रवचनसारमें आता है न! कि—'प्रशमके लक्षसे शास्त्रका अभ्यास करना;.....जिनशास्त्र द्वारा प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे पदार्थोंके जाननेवालेको नियमसे मोहका नाश हो जाता है, इसलिये शास्त्र सम्यक् प्रकारसे अभ्यासने योग्य हैं;.....एकाग्रता पदार्थोंके निश्चयवन्तको होती है; निश्चय आगम द्वारा होता है; इसलिये आगममें व्यापार मुख्य है।' शास्त्र पठनमें ध्येय तो निज शुद्धात्म द्रव्यका रखना। स्वलक्षको चूककर बुद्धि मात्र शास्त्रोंमें भटके उसे 'पद्मनन्दि पंचविंशतिका'में व्यभिचारिणी कही है। त्रिकाल शुद्ध निज अखण्ड चैतन्यप्रभुके आश्रयसे, लक्षसे, ध्यानसे, वर्तमान पर्यायको उस ओर मोड़नेसे ही अतीन्द्रिय आनन्दमय शुद्धि प्रगट होती है। उस शुद्धिके प्रारम्भसे लेकर पूर्णता—सर्व निर्मलताएँ परमपारिणामिक भावका—शुद्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञायक परमभावका—आश्रय करनेसे ही प्रगट होती हैं।

केवलज्ञान और मोक्षकी पर्याय द्रव्यसामान्यके आश्रयसे ही होती है। मोक्षमार्गस्वरूप अपूर्ण पर्यायसे पूर्ण मोक्षपर्याय होती है, परन्तु वह कथन व्यवहारका है; वास्तवमें तो पूर्णानन्दस्वरूप निज ध्रुव ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे होती है।

'जो मलिन हो, अथवा जो अंशतः निर्मल हो, अथवा जो अधूरा हो, अथवा जो शुद्ध एवं पूर्ण होनेपर भी सापेक्ष हो, अध्रुव हो और त्रैकालिक–परिपूर्णसामर्थ्यवान न हो, उसके आश्रयसे शुद्धता प्रगट नहीं होती; इसलिये औदयिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, औपशमिक भाव और क्षायिकभाव अवलम्बनके योग्य नहीं हैं।'

दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत और तप आदि शुभभाव भी मलिन हैं। उस मलिनभावके अर्थात् औदयिक भावके आश्रयसे शुद्धि प्रगट नहीं होती; अथवा जो अंशतः निर्मल तथा अंशतः मलिन ऐसी जो मिश्र परिणति—चारित्रादिका क्षायोपशमिक भाव—उसके आश्रयसे भी शुद्धता नहीं प्रगटती; अथवा जो निर्मल है परन्तु अपूर्ण है—क्षायोपशमिक-ज्ञान—उसके आश्रयसे भी शुद्धता प्रगट नहीं होती; अथवा शुद्ध और परिपूर्ण होनेपर भी जो सापेक्ष अर्थात् कर्मके अभावकी अपेक्षावाला हो, अध्रुव हो और त्रैकालिक परिपूर्ण सामर्थ्यवान न हो उसके आश्रयसे भी निर्मलता प्रगट नहीं होती, अर्थात् औपशमिक या क्षायिकभावके आश्रयसे भी शुद्धता नहीं प्रगटती। अहा! निमित्त अर्थात् देव–शास्त्र–गुरु आदि परद्रव्यरूप अनुकूल सामग्री तो, जीव–पुद्गलकी गतिक्रियामें धर्मास्तिकायकी भाँति, अकिंचित्कर है ही, परन्तु अपनी अशुद्ध, अंशतः शुद्ध, अपूर्ण या पूर्ण शुद्ध पर्यायके अवलम्बनसे भी शुद्धिकी प्रगटता या वृद्धि नहीं होती; इसलिये औदयिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, औपशमिक भाव और क्षायिक भाव आश्रय करने योग्य नहीं हैं, आश्रय करने योग्य तो मात्र एक त्रिकाल शुद्ध परमपारिणामिकभाव ही है।

त्रैकालिक–परिपूर्ण–सामर्थ्ययुक्त नित्यानन्दस्वरूप भगवान ज्ञायक आत्माके आश्रयसे जो क्षायिक सम्यक्त्वादि निर्मल पर्यायें हों उनके अवलम्बनसे नवीन निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। जैसे परद्रव्यके आश्रयसे निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती वैसे ही अपनी अपूर्ण या पूर्ण पर्यायके अवलम्बनसे शुद्धता नहीं प्रगटती, इसलिये नियमसारमें उन्हें परभाव और परद्रव्य कहकर हेय अर्थात् आलम्बनके लिये अयोग्य कहा है।

प्रश्नः—केवलज्ञान भी हेय?

उत्तरः—हाँ, क्योंकि केवलज्ञानरूप पूर्ण पर्याय भी आश्रय करने योग्य नहीं है। उसमें नयी–नयी केवलज्ञानपर्याय प्रगट करनेका त्रैकालिक—परिपूर्ण—सामर्थ्य नहीं है। जिसके आलम्बनसे सादि-अनन्त नयी-नयी पूर्ण निर्मल पर्यायें प्रगट होती ही रहें ऐसा सहज

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रैकालिक–परिपूर्ण–सामर्थ्य तो एकमात्र त्रिकालशुद्ध परमपारिणामिकभावस्वरूप ज्ञायकभावमें ही है।

कर्मोदयके निमित्तसे होनेवाले दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रत, तपादि शुभभावके आश्रयसे दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीय कर्मके क्षयोपशमसे होनेवाले सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अंशतः निर्मल भावोंके अवलम्बनसे (अर्थात् पर लक्षवाले श्रद्धान-ज्ञान-चारित्रके लक्षसे तो नहीं, किन्तु अंतरमें त्रिकाल शुद्ध भगवान चैतन्यके अवलम्बनसे प्रगटती आनन्दसे ओतप्रोत अंशतः निर्मल पर्यायके भी लक्षसे), दर्शनमोहनीय या चारित्रमोहनीय कर्मका उपशम होनेसे उत्पन्न होती जो औपशमिकभावरूप निर्मलता उसके अवलम्बनसे, तथा ज्ञानावरणीयादि समस्त घातिकर्मके क्षयसे उत्पन्न होती जो परिपूर्ण निर्मलता उसकी सन्मुखतासे, नयी निर्मल पर्याय—धर्मकी पर्याय प्रगट नहीं होती; इसलिये वे चारों भाव अवलम्बन योग्य नहीं हैं।

'जो पूरा निर्मल है, परिपूर्ण है, परम निरपेक्ष है, ध्रुव है और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय है—ऐसे अभेद एक परमपारिणामिक भावका ही—पारमार्थिक असली वस्तुका ही—आश्रय करने योग्य है, उसीकी शरण लेने योग्य है।

अंतरमें सदा प्रकाशमान 'जागता जीव'—ज्ञायक नित्यानन्द प्रभु—परम निरपेक्ष ध्रुवतत्त्व है। क्षायिकभावमें भी कर्मके क्षयकी अपेक्षा है; इसलिये नियमसारमें औपशमिक–क्षायिकादि चारों भावोंको, कर्मसापेक्ष होनेसे, विभावभाव—परभाव कहा है, त्रिकाल शुद्ध सहज स्वभाव तो एकमात्र परमपारिणामिकभाव ही है। वह एक ही आश्रय करने योग्य आलम्बन लेने योग्य तथा शरण योग्य हैं, क्योंकि वह एक ही, प्रारम्भसे लेकर पूर्णता तककी निर्मल दशाएँ प्रगट करनेके लिये, त्रैकालिकपरिपूर्ण-सामर्थ्यमय है।

अरेरे! यह त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय अभेद एक परमपारिणामिकभाव अर्थात् पारमार्थिक यथार्थ वस्तु क्या है उसकी अभी खबर नहीं है और सारा खेल हो रहा है पर्यायमें। अज्ञानी सर्व जीव एक समयकी पर्यायमें रम रहे हैं। ग्यारह अंग और नव पूर्वका ज्ञान पढ़ जाय, महाव्रत और तपके दुर्धर आचरण करे तथापि, जबतक दृष्टि एकसमयकी पर्यायके उपर है, त्रैकालिक ध्रुव परमभाव लक्षगत हुआ नहीं तबतक उसका सब किया–कराया इकाई रहित शून्यके समान है। अहा! त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय निज ज्ञायक परमभावका ख्याल तथा महिमा उसे कभी नहीं आयी। औदयिक, औपशमिक या क्षायिकादि एक समयकी पर्यायके पीछे भीतर समीप ही जो त्रैकालिक ध्रुव परमपारिणामिक-भावस्वरूप ज्ञायकदेव विराज रहा है वही एक धर्म–शान्ति–सुख प्रगट करनेके लिये, आश्रय करने योग्य है, उसीकी शरण लेना योग्य है।

'अरिहन्ते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि'—वे अरिहन्त–सिद्ध तो निमित्तभूत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परद्रव्य हैं; उनकी शरण वह तो व्यवहारनयका कथन है। परन्तु 'केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि'—यह भी व्यवहारका कथन है। केवली प्ररूपित धर्म वीतराग भाव है; वीतरागभाव भी एकसमयकी निर्मलपर्याय है, ध्रुव परमभाव नहीं है; इसलिये निर्मलपर्यायकी शरण कहना वह भी व्यवहार है। वर्तमान निर्मल पर्याय जिसका आश्रय करनेसे प्रगट होती है ऐसा पूर्ण निर्मल, शक्तिसे परिपूर्ण, परम निरपेक्ष, ध्रुव और त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय निज ज्ञायक द्रव्यस्वभाव—निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्य—ही शरण लेने योग्य है। वह त्रिकालशुद्ध निज द्रव्यसामान्य ही परमार्थसे मंगल, उत्तम और शरणरूप है। अहा! 'मंगल'की व्याख्या भी कोई अलग है!

'उसीसे सम्यग्दर्शनसे लेकर मोक्ष तककी सर्व दशाएँ प्राप्त होती हैं।'

त्रिकाल शुद्ध ज्ञायकरूप पारमार्थिक यथार्थ वस्तुके आलम्बनसे ही धर्मका प्रारम्भ, वृद्धि और पूर्णता होती है। सम्यग्दर्शन, श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणी, केवलज्ञान—अरिहंत दशा और सिद्धदशा—सर्व निर्मल अवस्थाएँ ध्रुवस्वभावके आश्रयसे ही प्राप्त होती हैं। अहा! अधिकार अत्यन्त सरस है।

*

ज्ञानीकी दृष्टि अद्भुत महिमावन्त द्रव्यस्वभाव पर लगी होनेसे उसे जगतका कुछ नहीं चाहिये। उसकी समस्त इच्छाएँ मिट गई हैं। जगतके समस्त पदार्थ भले ही जाननेमें आयें परन्तु 'मैं तो ज्ञाता ही हूँ' ऐसे भावसे परिणमता वह ज्ञेयोंको एकत्वपूर्वक ग्रहण नहीं करता, भिन्न ही वर्तता है। श्री समयसारमें, अस्थिरताजनित इच्छा तो मात्र ऊपरी इच्छा होनेसे उसे न गिनकर, सर्व ज्ञानियोंको अनिच्छक कहा है, मात्र ज्ञायक कहा है।—इस प्रकार गुरुदेवने बहुत-बहुत बतलाया है। गुरुदेवका परम परम उपकार है। उस उपकारकी तो क्या बात करें! *—बहिनश्री चम्पाबेन।*

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचन–१३६

दिनांक ३१-१०-७८

वचनामृत–३५३ (चालू)

'वचनामृत'का ३५३वाँ बोल चल रहा है। आधे बोल पर कल प्रवचन हो गया था। अब आगे कहते हैं :—

आत्मामें सहजभावसे विद्यमान ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द इत्यादि अनन्तगुण भी यद्यपि पारिणामिकभावरूप ही हैं तथापि वे चेतनद्रव्यके एक–एक अंशरूप होनेके कारण उनका भेदरूपसे अवलम्बन लेने पर साधकको निर्मलता परिणमित नहीं होती।

क्या कहते हैं? कि—त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक द्रव्य तो परमपारिणामिक भावरूप है। यहाँ दो बातें चलती हैं कि प्रारम्भसे लेकर ठेठ पूर्णता तककी समस्त निर्मलताएँ किसके अवलम्बनसे होती हैं? यहाँ कहते हैं कि—त्रैकालिक-परिपूर्ण-सामर्थ्यमय निज ज्ञायक परमपारिणामिकभावका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप साधकदशा और उसका फल परिपूर्ण मोक्षदशा प्रगट होती है। परमपारिणामिकस्वरूप शुद्धात्मद्रव्यसामान्यमें सहजभावसे स्थित—सहजज्ञान, सहज दर्शन, सहज चारित्र, सहज आनन्द, सहज वीर्यादि—अनन्त गुण भी यद्यपि पारिणामिकभावरूप ही हैं तथापि वे आत्मद्रव्यके एक-एक अंशरूप होनेके कारण उनका भेदरूप अवलम्बन करनेसे साधकको विकल्प उठते हैं इसलिये निर्मलता परिणमित नहीं होती।

अहा! किसका आश्रय लेनेसे सम्यग्दर्शन—धर्मका प्रारम्भ—होता है? किसके अवलम्बनसे स्वरूपरमणता बढ़कर चारित्रदशा–मुनिदशा प्रगट होती है? किसकी शरण लेनेसे परिपूर्ण मोक्षदशा होती है?—तो कहते हैं कि—औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक तथा औदयिक—यह चार विभावभाव पर्याय हैं, क्षणपरिणामी अवस्था है; उनसे रहित जो त्रिकाल शुद्ध परमपारिणामिकभाव है वह निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्य है; उसके आश्रयसे सम्यक्त्व, चारित्र तथा केवलज्ञानादि धर्मकी समस्त पर्यायें प्रगट होती हैं।

प्रश्न :—पारिणामिकभावस्वरूप आत्मद्रव्यमें जो अनन्त गुण हैं उनका आश्रय लेना या नहीं? वे भी पर्यायस्वरूप चार भावोंसे रहित पारिणामिकभावरूप हैं न?

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर :—गुण पारिणामिकभावरूप होनेपर भी वे आश्रय करने योग्य नहीं हैं; क्योंकि गुणभेदके प्रति लक्ष जाने पर विकल्प उठते हैं, निर्मलता परिणमित नहीं होती। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, जीवत्व, वीर्य, प्रभुत्वादि गुण—पारिणामिकभावरूप होनेपर भी—चेतनद्रव्यके एक-एक सहवर्ती अंशरूप होनेके कारण उन्हें भेदरूपसे लक्षगत करने पर साधकको शुद्धि परिणमित नहीं होती। अचिन्त्य अपार जिसकी महिमा है ऐसे परमपारिणामिकभावमें स्थित त्रैकालिक ध्रुवज्ञायक अभेद द्रव्यके आश्रयसे ही सभी निर्मल दशायें प्रगट होती हैं। अहा! ऐसी बात है।

धर्म करनेके लिये प्रभु! तुझे परमार्थतः देव-शास्त्र-गुरु आदि निमित्तके अवलम्बनकी तो आवश्यकता नहीं है, परन्तु रागके, हीनाधिक पर्यायके अथवा गुणभेदके अवलम्बनकी भी आवश्यकता नहीं है। मोक्षमार्गमें आलम्बन तो एकमात्र पर्याय तथा गुणभेद रहित, अभेद निज ज्ञायक द्रव्य सामान्य ही है। अहा! लोगोंको यह मार्ग कठिन लगता है, किन्तु क्या किया जाय? वस्तु ही ऐसी है। 'घट–घट अंतर जिन बसे'—अंतरमें जो द्रव्यस्वभाव है वही त्रिकाल शुद्ध जिनपना है; उसीका आश्रय करनेसे कल्याणका आरम्भ और उसीमें लीनता करनेसे कल्याणकी वृद्धि और पूर्णता होती है।

अभेद ज्ञायक द्रव्यसामान्यका आलम्बन करते हुए उसमें जो सहज ज्ञानादि अनन्त गुण रहे हैं वे भी द्रव्यसामान्यकी भाँति ही, पारिणामिकभावरूप हैं। भले हों, परन्तु वे द्रव्यके त्रैकालिक सहभावी अंश हैं। ज्ञान भी द्रव्यका एक अंश, दर्शन भी एक अंश, आनन्द भी एक अंश, वीर्य भी एक अंश—इस प्रकार वे चेतनद्रव्यके एक-एक अंशरूप होनेके कारण उन्हें भेदरूपसे लक्षमें लेनेसे साधकको विकल्प—रागका उत्थान—उठते हैं, शुद्धि परिणमित नहीं होती। प्रवचनसारकी १७२वीं गाथाकी टीकामें 'अलिंगग्रहण'के १८वें बोलमें कहा है न! कि–"लिंग अर्थात् गुण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध (पदार्थ ज्ञान) वह जिसके नहीं हैं वह 'अलिंग ग्रहण' है; इस प्रकार आत्मा गुणविशेषसे नहीं आलिंगित ऐसा शुद्ध द्रव्य है।" समयसारकी १४वीं गाथाकी टीकामें भी कहा है–जैसे सुवर्णका, चिकनेपन, पीलेपन, भारीपन आदि गुणरूप भेदोंसे अनुभव करने पर विशेषपना भूतार्थ है—सत्यार्थ है, तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं ऐसे सुवर्णस्वभावके समीप जाकर अनुभव करनेसे विशेषपना अभूतार्थ है—असत्यार्थ है; इस प्रकार आत्माका, ज्ञान-दर्शनादि गुणरूप भेदोंसे अनुभव करने पर विशेषपना भूतार्थ है–सत्यार्थ है, तथापि जिसमें सर्व विशेष (गुणरूप भेद) विलय हो गये हैं ऐसे आत्मस्वभावके समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषपना अभूतार्थ है—असत्यार्थ है। ऐसे भूतार्थ अभेद द्रव्यस्वभावके आश्रयसे धर्मकी सर्व पर्यायें प्रगट होती हैं।

आत्माके त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक पक्षको जो ग्रहण करता है उसे शुद्धनय अर्थात्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निश्चयनय कहते हैं। वह निश्चयनय श्रुतज्ञानप्रमाणका एक अंश है। उसके विषयभूत वस्तुसामान्यांशको द्रव्य अर्थात् द्रव्यसामान्य कहते हैं। वह भी है तो प्रमाण ज्ञानके विषयभूत द्रव्यपर्यायात्मक वस्तुका एक भाग, परन्तु वह बहुत बड़ा और मूल्यवान भाग है, क्योंकि उसीके आलम्बनसे प्रारम्भसे अन्त तककी सर्व शुद्धियाँ प्रगटती हैं।

अरेरे! व्यापारियोंको व्यापार–धंधेके कारण यह बात सुननेका या समझनेका अवकाश नहीं है। परमपारिणामिकभावरूप सुस्थित त्रैकालिक वस्तु और उसके आश्रयसे प्रगट होनेवाली अनुभूति क्या वस्तु है—यह कब समझें? भाई! यह तो भगवानका कॉलेज (–महाविद्यालय) है; थोड़ा पढ़ा हो—जाना हो तो यह शास्त्र समझमें आये। यह पहली कक्षा नहीं है। पहले इकाई अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप उसकी समझमें आना चाहिये, पश्चात् ध्रुव 'द्रव्यसामान्य' किसे कहते हैं वह समझमें आये। इसलिये यहाँ कहते हैं कि—चेतनद्रव्यके ज्ञान, दर्शनादि गुण भी पारिणामिकभावरूप होनेपर भी वे एक-एक अंशरूप होनेके कारण उनके आश्रयसे निर्मलता परिणमित नहीं होती। साधकको गुणभेदके आश्रयसे नहीं किन्तु त्रैकालिक अभेदके आश्रयसे नई–नई निर्मलता—धर्मकी दशा—प्रगट होती है। अहा! ऐसी बातें हैं। आया कुछ समझमें?

पर्यायमें शास्त्रका जो ज्ञान हो उसके आलम्बनसे भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। अरे! शास्त्रज्ञान तो नहीं परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिकी निर्मल पर्यायके आलम्बनसे भी नई निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। प्रवचनसारकी १७२वीं गाथाकी टीकामें 'अलिंगग्रहण'के १८वें बोलमें 'गुणविशेषका ग्रहण नहीं है' और १९वें बोलमें 'पर्यायविशेषका ग्रहण नहीं है' इसलिये आत्मा 'अलिंगग्रहण' है—ऐसा कहा है। ऐसे भेदोंसे अभेद आत्माका ग्रहण हो ऐसा नहीं है।

कोई कहता है—विषय-भोगमें जो आनन्द आता है वह आत्माका आनन्द है। अरे, भाई! विषय-भोगका भाव वह तो पाप ही है, परन्तु ब्रह्मचर्य पालनेका जो भाव है वह भी शुभभाव है, वह कहीं धर्म नहीं है। समयसारके पुण्य–पाप अधिकारमें चाण्डालिनीके दो पुत्रोंका उदाहरण दिया है न? कि—एकका लालन-पालन ब्राह्मणके घर हुआ और दूसरेका पालन चाण्डालके घरमें। ब्राह्मणके घरमें पला हुआ चाण्डाल पुत्र कहता है कि—'हम ब्राह्मण हैं, हम मांस-मदिराका सेवन कदापि नहीं कर सकते;' तथापि है तो वह चाण्डालिनीका ही पुत्र। वैसे ही 'हम अव्रत—हिंसा, झूठ, चोरी आदि कभी नहीं कर सकते'—ऐसा भाव भी है तो शुभराग और बंधका कारण! जहाँ शुभराग भी दुःख और बंधका कारण है वहाँ भोगका अशुभराग आनन्द कहाँसे हो सकेगा?

वस्तुके गुणधर्म सब हैं तो पारिणामिकभावरूप, परन्तु वे द्रव्यके एक-एक अंशरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं। उस एक-एक अंशका अवलम्बन लेनेसे ज्ञायकको विकल्प उठते हैं, शुद्धिका परिणमन नहीं होता; इसलिये गुणभेद भी अवलम्बनके योग्य नहीं हैं।

'इसलिये परमपारिणामिकभावरूप अनन्तगुणस्वरूप अभेद एक चेतनद्रव्यका ही—अखण्ड परमात्मद्रव्यका ही—आश्रय करना, वहीं दृष्टि देना, उसीकी शरण लेना, उसीका ध्यान करना, कि जिससे अनन्त निर्मल पर्यायें स्वयं खिल उठें।'

चेतनद्रव्यके लिये चार विशेषण कहे हैं—(१) परमपारिणामिक भावरूप, (२) अनन्तगुणस्वरूप, (३) अभेद और (४) एक। जिसमें गुण–गुणीका भेद भी नहीं है ऐसे अनन्त गुणके पिण्डरूप अखण्ड एक निज परमात्मद्रव्य स्वभावका ही आश्रय करना। उसके आश्रयसे ही समस्त विभाव छूटकर पर्यायमें परिपूर्ण परमात्मदशा प्रगट होती है। त्रैकालिक परमभाव वर्तमानमें ही एकरूप और परिपूर्ण है। भूतकालमें था, वर्तमानमें हैं और भविष्यमें रहेगा—ऐसे तीनोंकालको एकत्रित करके अखण्ड परिपूर्ण है—ऐसा नहीं है, परन्तु वर्तमानमें इस समय भी स्वभावसे परिपूर्ण है। वहीं दृष्टि स्थिर करना, क्योंकि स्वभाव निष्कम्प स्थिर होनेसे दृष्टि वहाँ स्थिर होगी। पर्याय अस्थिर है, कम्पशील है, वहाँ दृष्टि स्थिर नहीं होगी, लगेगी नहीं। समझमें आया कुछ? अहा! ऐसी भाषा, ऐसा भाव और ऐसी बातें हैं।

आज महावीर भगवानके मोक्षकल्याणकका मंगल दिवस है। भगवानने मोक्ष कैसे प्राप्त किया? कि–परमपारिणामिकभावरूप निज ध्रुव ज्ञायक स्वभावका पूर्ण आश्रय करनेसे, नहीं कि मोक्षमार्गरूप अपूर्ण पर्यायका आश्रय करनेसे। मोक्षमार्ग तो अधूरी पर्याय है, उससे पूर्ण पर्याय प्रगट नहीं होती। जैनतत्त्वमीमांसामें कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथाका आधार देकर 'पूर्व परिणामयुक्त द्रव्य वह कारण है और उत्तरपरिणामयुक्त द्रव्य वह कार्य है' ऐसा कहा है। वह कथन भी अपेक्षासे है; वास्तवमें तो त्रैकालिक ध्रुव कारणपरमात्माके आश्रयसे ही वर्तमान पर्यायका निर्मलतारूप कार्य होता है।

प्रश्न:—कारणपरमात्मा तो सर्व जीवोंको सदैव है, तो फिर कार्य क्यों नहीं आता?

उत्तर:—कारणपरमात्मा सबको होनेपर भी 'मैं कारणपरमात्मा हूँ' ऐसे अंतर्मुख होकर उसका सच्चा स्वीकार कहाँ किया है? जिसने त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक ध्रुव निज कारणपरमात्माका वर्तमान पर्यायमें स्वीकार किया, उस पर दृष्टि दी, अंतरमें उसका आलम्बन लिया, उसे पर्यायमें निर्मलता—साधकदशा—प्रगट हुए बिना रहेगी ही नहीं। आया समझमें?

त्रैकालिक अखण्ड ध्रुव ज्ञायक परमभावकी ही शरण लेना। 'चत्तारिसरणं' आता है न? वह तो व्यवहारकी बातें हैं। उसमें अरिहंत, सिद्ध और साधु—यह तीन तो परद्रव्य हैं, और 'केवलिपण्णत्तो धम्मो' यह वीतरागी निर्मल पर्याय है। वह पर्याय है इसलिये व्यवहार है; उसके अवलम्बनसे, उसकी शरणसे निर्मलता प्रगट नहीं होती। वास्तवमें तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'त्रैकालिक ध्रुव निज आत्मा ही मंगल, उत्तम और शरण है; उसीके आश्रयसे मोक्षमार्ग और मोक्ष—समस्त निर्मलताएँ प्रगटती हैं। अहा! ऐसी बातें हैं। किसीका पत्र आया है कि 'आपकी' पुस्तक (बहिनश्रीके वचनामृत) पढ़कर मुझे अति प्रमोद आया है।

निज अखण्ड परमात्मद्रव्यकी ही शरण लेना, उसीका ध्यान धरना, ताकि अनन्तानन्त निर्मल पर्यायें स्वयं खिल उठें। अंतरमें राग होता है वह तो शरण है ही नहीं, परन्तु जो निर्मल पर्याय हो वह भी शरण नहीं है; क्योंकि पर्याय तो पलटती दशा है न? जो सदा स्थिर न हो वह शरण कैसे होगी? अंतरमें जो 'जागता जीव विद्यमान है', ध्रुव ज्ञायक परमभाव है, वह सदा स्थिर निज परमात्मद्रव्य ही शरण, मंगल और उत्तम है, इसलिये उसीकी शरण ले, पर्यायकी या गुणभेदकी भी नहीं। देव-शास्त्र-गुरुकी शरण वह तो व्यवहारके विकल्पकी बातें हैं। प्रथम ऐसे विकल्प आते अवश्य हैं परन्तु उनके अवलम्बनसे शुभराग होता है, निर्मलता परिणमित नहीं होती। समस्त निर्मलताएँ तो निज शुद्धात्मद्रव्यकी शरणमें जाते ही प्रगटती हैं।

इसलिये, शुद्धात्मद्रव्यका ही ध्यान करना। ध्यानके शास्त्रोंमें जहाँ ध्यानकी विधि बतलायें वहाँ ऐसा कथन आता है कि—'प्रथम छातीमें हृदय स्थानमें आठ पंखुरियोंके आकारके खिले हुए कमलका चिन्तन करना; फिर उसमें स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान अरिहंतकी स्थापना करके उनका चिंतवन करना', परन्तु यह सब तो विकल्पकी बातें हैं। अशुभभावोंसे बचनेके लिये उपयोगको विमुख करने के लिये और शुद्धात्माके प्रति एकाग्रता साधनेके लिये पहले ऐसे विकल्प किसीको आते हैं, परन्तु उस समय भी अंतरमें त्रिकालशुद्ध निज शुद्धात्मद्रव्यको ध्येय बनानेसे ही होता है। ध्यानकी पर्यायमें ध्रुवद्रव्यको ध्येय बनाने पर पर्यायमें अनन्त गुणोंकी निर्मल पर्यायें खिल उठती हैं। शक्तियोंके संग्रहालयस्वरूप शुद्धात्मस्वभावकी दृष्टि करने पर 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' इस न्यायसे, सर्व गुणोंकी यथासंभव निर्मलता खिल उठती है; अंतरमें पूर्ण स्थिरता होनेपर निर्मलता पूर्णरूपसे विकसित हो जाती है।

'इसलिये द्रव्यदृष्टि करके अखण्ड एक ज्ञायकरूप वस्तुको लक्षमें लेकर उसका अवलम्बन करो।'

आजका दिन महान है, भगवान महावीरके मोक्षगमनका आज दिन है। दिन तो जो है वह है, परन्तु भगवानका आत्मा तथा उन्होंने आज जो मोक्षपद प्राप्त किया वह महान है; उसका आरोप करके दिनको भी महान कहा जाता है।

त्रैकालिक निज शुद्धात्मद्रव्यसामान्यकी दृष्टि करके—अखण्ड एक ज्ञायकरूप निज चेतनद्रव्यको लक्षगत करके—उसका अवलम्बन सतत रखना।

'वही, वस्तुके अखण्ड एक परमपारिणामिकभावका आश्रय है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रिकाल शुद्ध निज ज्ञायक परमभावको, पर्याय और गुणभेदसे रहित, अभेदरूपसे लक्षगत करना, उसीका अभिप्रायमें सतत अवलम्बन रखना, वही वस्तुके अखण्ड एक परमपारिणामिकभावका आश्रय है। शक्तियोंके संग्रहस्वरूप उस परमभावका दृष्टिमें आश्रय करनेसे अनन्त गुणोंके निर्मल अंश यथासंभव प्रगट होते हैं। 'आश्रय'का अर्थ क्या?—उसकी यहाँ व्याख्या की है।

'आत्मा अनन्तगुणमय है परन्तु द्रव्यदृष्टि गुणोंके भेदोंका ग्रहण नहीं करती, वह तो एक अखण्ड त्रैकालिक वस्तुको अभेदरूपसे ग्रहण करती है।'

अहा! समयसारकी छठवीं, ग्यारहवीं, चौदहवीं आदि अनेक गाथाओंमें 'द्रव्यदृष्टि'की सुन्दर बात आयी है; वह बात बेनने यहाँ सादी गुजराती भाषामें कही है। एक बार मध्यस्थ होकर यह (बहिनश्रीके वचनामृत) पढ़े और सुने तो बाहरकी सब जानकारीका पानी उतर जाय। उसे अंतरमें तो ऐसा लगेगा कि हम जानते हैं उसकी अपेक्षा यह कोई अलग बात है। अंतरसे यह बात समझे तो पानी उतर जाये; परन्तु जिनको अंतरमें अभिमान हो कि—'हमें भी आता है, हम भी समझते हैं', उनके अभिमानका पानी नहीं उतरेगा। अहा! सूक्ष्म बातें हैं भाई! 'हमने कुछ नहीं समझा, हमें कुछ नहीं आता, हम तो देव-शास्त्र-गुरुकी शरणमें हैं'—ऐसा जब अंतरमें लगेगा तब अज्ञान और अभिमानका पानी उतर जायगा, और ज्ञानकी कला खिल उठेगी।

बेनके ३३३वें बोलमें आ गया है कि—'मुझे आता है' ऐसे जानकारीके गर्वमें चढ़ जायगा तो मर जायगा, आत्मा हाथ नहीं आयगा। बाहर प्रसिद्ध होनेका और 'दूसरे मुझे जानें' ऐसे गर्वको छोड़ देना। वह सब निःसार है, उसमें कोई माल नहीं है, मालदार तो निज अखण्ड ज्ञायकभाव है; उसका ग्रहण करनेसे पर्यायमें निर्मलता प्रगट होती है। आत्मामें अनन्त गुण हैं; परन्तु द्रव्यदृष्टि, समल–निर्मल पर्यायको तो कदापि नहीं, परन्तु गुणोंके भेदोंका भी ग्रहण नहीं करती; वह एक अखण्ड त्रैकालिक वस्तुको अभेदरूपसे ग्रहण करती है।

यह त्रैकालिक द्रव्य अभेद है और उसे मैं ग्रहण करता हूँ; इस प्रकार पर्यायमें—भेदमें खड़ा-खड़ा 'अभेद हूँ' माने तो वह दृष्टि भी मिथ्यात्व है। पर्यायमें खड़ा-खड़ा अर्थात् भेदमें–पर्यायमें 'अहं'पना रखकर 'यह द्रव्य अभेद है' ऐसा लक्ष करता है वहाँ स्वयं तो पर्यायमें खड़ा है, इसलिये वह पर्यायदृष्टि है। वास्तवमें तो पर्याय, गुणभेद और 'यह अभेद द्रव्य मैं हूँ' (यह और मैं) ऐसा भेद भी निकालकर त्रिकाल शुद्ध अभेद ज्ञायकमें 'अहं'पना स्थापित कर देना—श्रद्धानमें अभेद ज्ञायकभावरूप परिणमित हो जाना—वही सच्ची द्रव्यदृष्टि है।

'यह पंचमभाव पावन है, पूजनीय है।'

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

औदयिक भाव, औपशमिक भाव, क्षायोपशमिक भाव और क्षायिक भाव—वे चार भाव समल–निर्मल पर्यायस्वरूप हैं, यह पंचम परमपारिणामिकभाव तो त्रिकालशुद्ध अभेद द्रव्यस्वरूप है, इसलिये वह पावन है तथा पूजनीय है; क्योंकि उसके आश्रयसे ही प्रारम्भसे पूर्णता तककी सर्व शुद्धियाँ प्रगटती हैं। पर्यायस्वरूप चार भावोंके आश्रयसे–लक्षसे शुद्धि परिणमित नहीं होती, किन्तु भेदके विकल्प उठते हैं इसलिये वे, आश्रय योग्य नहीं हैं इस अपेक्षासे, पावन या पूजनीय नहीं कहे जाते। पर्यायमें कर्तव्य अपेक्षासे सर्व शुद्धियाँ पावन और पूज्य हैं, परन्तु वह तो सद्भूतव्यवहारनयका विषय है, दृष्टिका विषय नहीं है; दृष्टि किसी भी पर्यायको या गुणभेदको स्वीकार नहीं करती।

'उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सच्चा मुनिपना आता है, शान्ति और सुख परिणमित होता है, वीतरागता होती है, पंचमगतिकी प्राप्ति होती है।'

त्रिकालशुद्ध ज्ञायक परमभावके आश्रयसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। उसीके आश्रयसे विशेष लीनता होनेपर 'सच्चा मुनिपना' आता है। 'सच्चा मुनिपना' उसे कहते हैं कि जिसे इस ध्रुव परमभावके श्रद्धान-ज्ञानपूर्वक विशेष आश्रयसे स्वरूपरमणता बढ़कर तीन कषायके अभावस्वरूप प्रचुर स्वसंवेदनमुद्रित स्थिरता परिणमित हुई हो। इस पूजनीय परमपारिणामिकभावके अवलम्बनसे ही शाश्वत शान्ति तथा निराकुलतास्वरूप सुख परिणमता है, वीतरागता प्रगट होती है और चार गतियोंसे विजातीय ऐसी पंचम मोक्षगतिकी प्राप्ति होती है। अहा! आजका अधिकार अति उत्तम है। आज भगवान महावीर मोक्ष पधारे हैं; उन्होंने भी इस त्रिकालशुद्ध परमभावके आश्रयसे ही मुक्तिरमणीका वरण किया है।

*

वचनामृत–३५४

तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है ऐसा गुरुदेवने युक्ति-न्यायसे सर्वप्रकार स्पष्टरूपसे समझाया है। मार्गकी खूब छानबीन की है। द्रव्यकी स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्माका शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रतापसे इस काल सत्यरूपसे बाहर आया है। गुरुदेवकी श्रुतकी धारा कोई और ही है। उन्होंने हमें तरनेका मार्ग बतलाया है। प्रवचनमें कितना मथ–मथकर निकालते हैं! उनके प्रतापसे सारे भारतमें बहुत जीव मोक्षमार्गको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समझनेका प्रयत्न कर रहे हैं। पंचमकालमें ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवनमें सब उपकार गुरुदेवका ही है। गुरुदेव गुणोंसे भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमलकी सेवा हृदयमें बसी रहे। ३५४

'तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है ऐसा गुरुदेवने युक्ति–न्यायसे सर्व प्रकार स्पष्टरूपसे समझाया है।'

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा द्वारा कहा गया जो दिगम्बर जैन धर्म वही एक सच्चा धर्म है, अन्य कोई धर्म—जैन नामधारी सम्प्रदाय भी—सत्य हैं ही नहीं। जैनधर्म वह वास्तवमें कोई पक्ष या सम्प्रदाय नहीं है, किन्तु वस्तुका स्वरूप है। आत्मा त्रिकालशुद्ध वीतरागस्वरूप है, उसके अवलम्बनसे पर्यायमें जो वीतरागता प्रगट हो वह दिगम्बर जैनधर्म है। चारों अनुयोगका तात्पर्य वीतरागता है। वह किस प्रकार प्रगट हो? —कि त्रिकालशुद्ध द्रव्यस्वभावका आश्रय करनेसे। यह बात मात्र दिगम्बर जैन धर्ममें ही है, अन्यत्र कहीं नहीं है। यह बात युक्ति और न्यायसे बराबर सिद्ध हो सकती है। बेन कहती हैं कि—यह बात यहाँसे (गुरुदेवसे) सर्व प्रकारसे स्पष्टतया समझायी गई है।

'मार्गकी खूब छानबीन की है। द्रव्यकी स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्माका शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रतापसे इस काल सत्यरूपसे बाहर आया है।'

प्रत्येक द्रव्यकी परिपूर्ण स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, द्रव्यदृष्टि आदि अनेक बातोंके—प्रयोजनभूत सब बातोंके—स्पष्टीकरण यहाँसे (गुरुदेवसे) हो गये हैं, इसलिये बेन कहती हैं कि—गुरुदेवश्रीके परम प्रतापसे इस काल मोक्षमार्गकी प्रयोजनभूत सब बातें सत्यरूपसे प्रगट हुई हैं। उपादान-निमित्त और निश्चय-व्यवहारकी चर्चासे तो सोनगढ़ हिन्दुस्तानमें सर्वत्र फैल गया है। उसे लोग सोनगढ़ी-चर्चा कहते हैं; सम्प्रदायके लोग—त्यागी तथा पण्डित भी—ऐसा मानते हैं कि निमित्तकारणके बिना उपादानकारण कुछ भी कार्य कर ही नहीं सकता। वस्तुस्वरूप ऐसा है कि विश्वका प्रत्येक कार्य अपने अंतरंगकारणसे—उपादानकारणसे—ही होता है, उस काल जो अनुकूल पर्यायपरिणत संयोगी पदार्थ होता है उसे उस उपादानकृत कार्यका निमित्तकारण—असद्भूत व्यवहारनयसे कारण—कहा जाता है। समयसारके बंध अधिकारमें आता है न!—'परजीवको बंधन करूँ या मोक्ष करूँ' ऐसा जो तेरा अध्यवसाय है वह परमें बिलकुल अकिंचित्कर है। तेरे अध्यवसानसे परमें क्या होगा? सामनेवाला जीव स्वयं अपनी अज्ञानदशासे—अपने उपादानकारणसे—बंधनको प्राप्त होता है और अपनी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानदशासे—अपने उपादानकारणसे—मोक्षको प्राप्त करता है। अन्य जीव मोक्ष प्राप्त करता है वह अपनी वीतरागदशासे प्राप्त करता है। क्या वह तेरे उपदेशसे मोक्ष प्राप्त करता है? वीतरागमार्गके प्रयोजनभूत सब पक्ष यहाँसे (गुरुदेवश्रीके परम प्रतापसे) इस काल सत्यरूपसे प्रगट हुए हैं—इस प्रकार बेन अपनी विनय कहती हैं।

'गुरुदेवकी श्रुतधारा कोई और ही है। उन्होंने हमें तरनेका मार्ग बतलाया है। प्रवचनमें कितना मथ-मथकर निकालते हैं! उनके प्रतापसे सारे भारतमें बहुत जीव मोक्षमार्गको समझनेका प्रयत्न कर रहे हैं। पंचमकालमें ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवनमें सब उपकार गुरुदेवका ही है। गुरुदेव गुणोंसे भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमलकी सेवा हृदयमें बसी रहे।'—ऐसे भक्तिभावके और निर्मानताके बहिनके वचन हैं।

*

एकत्वविभक्त शुद्धात्माको ग्रहण करनेका अभ्यास करना। प्रत्येक कार्यमें शुद्धात्माका जिस प्रकार ग्रहण हो तदनुसार उद्यम रखना। छह द्रव्योंमें एक शुद्धात्मा, नवतत्त्वोंमें भी एक शुद्धात्मा ग्रहण करने योग्य है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रमें भी आलम्बनभूत एक शुद्धात्मा ही है बस, एक शुद्धात्माको ग्रहण करना। वह शुद्धात्मा परसे और विभावसे विभक्त है और भेदभावोंसे भी न्यारा है, तथापि आत्मामें वीचमें साधक दशाकी पर्यायें आये बिना नहीं रहती, ऐसा ज्ञान करना। उस शुद्धात्माको यथार्थ ग्रहण करके, उसकी प्रतीति और उसमें लीनता करनेसे स्वानुभूति प्रगट होती है, और वह स्वानुभूति ही जीवनमें प्रगट करने योग्य है। गुरुदेवने कोई अद्भुत मार्ग बतलाया है। उन्होंने बहुत समझाया है। गुरुदेवकी वाणी भी कैसी अपूर्व थी! गुरुदेवका द्रव्य 'तीर्थंकरका द्रव्य' था। इस भरतक्षेत्रमें आकर उन्होंने महान-महान उपकार किया है। मैं तो उनका दास हूँ।

—बहिनश्री चम्पाबेन.

*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com